इस अंक में

1. **समाज को विघटित करने में धर्म के दुष्प्रकार्य** 1–11
प्रोफेसर श्यामधर सिंह

2. **भारतीय संघवाद : सहकारी संघवाद से प्रतिस्पर्द्धी संघवाद की ओर** 12–18
प्रोफेसर पंकज कुमार
डॉ. जितेन्द्र कुमार पाण्डेय

3. **मुसहर समुदाय की उर्ध्वाधर गतिशीलता हेतु सामाजिक नीतियों की भूमिका** 19–26
कु. शालिनी यादव
प्रोफेसर आशीष सक्सेना

4. **युवाओं में यौन–जनित संक्रमण एवं यौन–जनित रोग के प्रति जागरुकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** 27–35
डॉ. दिनेश कुमार

5. **भूमिका समायोजन के संदर्भ में कार्यशील महिलाओं की प्रस्थिति : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण** 36–43
डॉ. राजश्री मठपाल

6. **राजस्थान की बहुआयामी गरीबी का तुलनात्मक अध्ययन** 44–50
हितेष कुमार सुथार
डॉ. नेहा पालीवाल

7. **पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में मानवाधिकारों की दशा** 51–56
डॉ.बी.डी.बारहठ

8. **किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन** 57–61
दिनेश चन्द्र पाण्डे
प्रोफेसर दीपा वर्मा

9. **पुलिस सुधार एवं अपराध नियंत्रण : सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैश्वीकरण के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** 62–67
सुश्री ज्योति भारद्वाज
प्रोफेसर दिवाकर सिंह राजपूत

10. **महिलाओं में विधिक जागरूकता : जनपद देहरादून की ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं का एक तुलनात्मक अध्ययन** 68–75
डॉ. सविता राजपूत

11. **विस्थापित कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास का सवाल : जम्मू और कश्मीर राज्य पुनर्गठन अधिनियम के विशेष संदर्भ में अध्ययन** 76–83
डॉ. सर्वेश कुमार

12. **चेरो जनजातियों का जीवन एवं समस्याएँ : समाजशास्त्रीय अध्ययन** 84–91
डॉ. विमल कुमार लहरी

13. **विद्यालय नेतृत्व एवं जेंडर चुनौतियाँ : छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले की महिला प्राचार्यो के सन्दर्भ में एक अध्ययन** 92–100
डॉ. ज्योति वर्मा

14.	**पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ग्रामीण उत्प्रवासियों की दशाओं का तुलनात्मक अध्ययन** विजय कुमार शुक्ल	**101–106**
15.	**कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन एवं गाँधी दर्शन : वर्तमान आवश्यकता** डॉ वन्दना द्विवेदी सुश्री नेहा सविता	**107–114**
16.	**महिलाओं में राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन** डा0 बृजेश कुमार जोशी कु. अंजलि	**115–122**
17.	**ऐतिहासिक भूमि, गिलगित-बाल्टिस्तान का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विधिक विश्लेषण** डॉ. गिरीश गौरव सुश्री रागिनी शर्मा सरस्वती	**123–129**
18.	**राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में रचनावाद की सार्थकता** कल्पनाथ सरोज डॉ. अनु जी. एस.	**130–136**
19.	**सरकारी क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं का कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़नः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण** डॉ. प्रेम प्रकाश पाण्डेय	**137–144**
20.	**भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन का ऐतिहासिक विश्लेषणः स्वदेशी आंदोलन (1905–11) के सन्दर्भ में** मानस कुमार दास	**145–150**
21.	**उत्तराखण्ड में महिला प्रतिनिधित्व : संसद तथा राज्य विधान सभा के विशेष संदर्भ में** मयंक प्रसाद देवेन्द्र सिंह	**151–156**
22.	**महिलाओं पर प्राकृतिक आपदाओं से पड़ने वाला प्रभाव : सामाजिक संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** सुश्री शैलजा प्रोफेसर हिमांशु बौड़ाई	**157–161**
23.	**भारतीय राजनीति में अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन** मुनेश कुमार	**162–168**
24.	**पाकिस्तान के लिए अच्छा व बुरा तालिबान** महेश जगोठा राहुल सिंह	**169–176**
25.	**मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले में स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान स्थिति का आर्थिक अध्ययन** धनपत कुमार डा. राजकुमार नागवंशी	**177–184**
26.	**बिहार में महिला सशक्तीकरण के विविध आयाम** डॉ. सुनीता राय	**185–192**

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

समाज को विघटित करने में धर्म के दुष्प्रकार्य

❑ प्रोफेसर श्यामधर सिंह

पिछले कुछ वर्षों से न केवल सम-सामयिक भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में लोग एक चिन्ताजनक दौर से गुजर रहे हैं। धार्मिक उन्माद की भावना के विस्फोट ने धर्म की संरचना की नींव हिला दी है और सम्पूर्ण विश्व विखण्डन के द्वार पर खड़ा है। विश्व का धार्मिक इतिहास बताता है कि अत्यन्त सामान्य कारणों से समय-समय पर विखण्डन की आग भड़क उठती है जिससे सैकड़ों-हजारों ही नहीं कभी-कभी असंख्य व्यक्ति हताहत होते हैं। धन-सम्पत्ति की अपार क्षति होती है। इसके अतिरिक्त पैशाचिकता और बर्बरता का नग्न नृत्य होने लगता है। रक्त की नदियाँ बहने लगती हैं, लूट-पाट और अग्निकाण्ड, मारकाट, बलात्कार कुछ भी बाकी नहीं रहता। मानव आनन-फानन में दानव बन बैठता है। धर्म और सम्प्रदाय खतरे में हैं इस नारे से बहक कर पढ़ा-लिखा समझदार व्यक्ति भी जघन्य कृत्य करने को तत्पर हो उठता है। निरक्षरों और अन्धविश्वासियों का तो कहना ही क्या? 'अल्लाह हो अकबर' और 'हर-हर महादेव' का उद्‌घोष करने वाले लोग धर्म के नाम पर भोली-भाली जनता का विरोध करने एवं उनका रक्त बहाने में रत्ती भर नहीं शर्माते। कैसी विडम्बना है यह धर्म की जिसे प्रत्येक समाज व संस्कृति में आधारभूत एवं संगठनकारी निर्माणक तत्व के रूप में समझा जाता है। भारतीय समाज व संस्कृति की तो यह आधारपीठिका ही है। हाँ, किन्तु इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि समाज के अन्दर धार्मिक भिन्नताएँ बहुधा तनाव, विभाजन, संघर्ष, विखण्डन और विघटन को जन्म देती हैं। कहना न होगा कि इससे समाज में उच्छश्रृंखलता बढ़ती जाती है और सामाजिक विघटन का मार्ग प्रशस्त होता जाता है। इस प्रकार धर्म जो सामाजिक संगठन का मेरुदण्ड है, मानवीय अधोवृत्ति के कारण सामाजिक विघटन का सशक्त कारण बन जाता है। मानवीय अधोवृत्ति धर्म-संरचना को विलोभात्मक स्थिति में लाने के लिए उत्तरदायी है। इसी प्रवृत्ति के कारण मानव में स्वार्थ एवं अस्मिता-विभुक्षा जैसी मानसिकताओं का जन्म होता है। धर्म ही क्या यदि मानव को कोई धर्मेतर सिद्धान्त भी मिल जाता है तो अपनी अधोवृत्ति के कारण वह उसे भी विरूपित करके समाज में विभाजन, विखण्डन और संघर्ष जैसी स्थिति उत्पन्न कर देता है। इस परिप्रेक्ष्य में धर्म के विघटनात्मक पक्ष पर नहीं समाजशास्त्रियों की दृष्टि धर्म के केवल संगठनात्मक पक्ष तक ही सीमित रही है। आज की स्थिति में धर्म के विघटनात्मक संगठनात्मक पक्ष का अध्ययन उतना ही आवश्यक है, जितना संगठनात्मक पक्ष का अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत प्रपत्र का बीज प्रश्न है - क्या आज के हमारे समाजशास्त्री धर्म के विघटनात्मक पक्ष पर अपना ध्यानाकर्षित कर इस महत्वपूर्ण समस्या के अध्ययन को दिशा और गति देकर देश को विघटन से बचा सकेंगे?

आधारपीठिका : प्रस्तुत शोध-निबन्ध में यह पर्यवेक्षित करने का प्रयास किया गया है कि किसी भी समूह, समुदाय व समाज के विघटन में धर्म किस प्रकार उत्तरदायी होता है। यह कथन चौकाने वाला है, क्योंकि वस्तुतः समाज का बुनियादी आधार धर्म है। यह स्वीकार किया जाता है कि धर्म में ही समाज की प्रतिष्ठा है। केवल मानव समाज की ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा धर्म में ही है। इस विषय में महाभारत का यह वाक्य श्रुतिवाक्य बन चुका है - ''धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।'' अर्थात् धर्म ही विश्व का आश्रयभूत है। अस्तु स्वीकार करना ही होगा कि समाज की रीढ़ है धर्म। धर्मधुरन्धरों का दृढ़ मत है कि धर्म वस्तुतः संगठनात्मक है, विघटनात्मक नहीं। महाभारत का मत है कि ''धारणाद् धर्म मित्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः। यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।'' (शान्तिपर्व, 109:11) अर्थात् धर्म का नाम 'धर्म' इसलिए पड़ा है कि वह सबको धारण करता है- अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है। अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता है वही धर्म है। ऐसा धर्मवेत्ताओं का निश्चय है।

अब यदि इस नानाकार जगत् के धारण करने में समर्थ वस्तु ही धर्म के नाम से अभिहित है तो धर्म के मूलस्वरूप के विवरण के अनन्तर अनेक प्रकार के धर्मों, यहाँ तक कि एक ही धर्म के अन्तर्गत अनेक प्रकार के मत-मतान्तरों, पंथों एवं सम्प्रदायों का प्रतिपादन क्यों किया गया है? आपाततः प्रतीत होता है कि सभी धर्मों एवं उनमें पाये जाने वाले पंथों एवं सम्प्रदायों में परस्पर विरोध है, परन्तु धर्मवेत्ताओं का मत है कि धर्मों के अन्तःकक्ष में तत्वतः कोई विरोध नहीं है प्रत्युत बाह्‌यतः विरोधाभास दिखाई पड़ता है, क्योंकि 'सत्य' का स्वरूप निश्चय रूप से एक ही प्रकार का है। फिर भी यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि सम्पूर्ण मानव समाज विभिन्न समूहों, समुदायों, पंथों एवं सम्प्रदायों तथा धर्मसंघों में बँटकर संघर्षरत होकर विघटित क्यों हो रहा है? इस विघटन के लिए कौन उत्तरदायी है - धर्म या स्वयं मानवीय समाज? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर वैमत्य स्वाभाविक है।

यह सन्देह रहित सत्य है कि मानव को संगठित करने, सामाजिक आदर्शों तथा मूल्यों को परिपक्व बनाने, प्रतिकायित करने और उन्हें पुष्ट करते रहने के क्षेत्र में धर्म प्रायः महत्वपूर्ण कार्य करता है तथापि इस सत्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता

❑ प्राक्तन प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

है कि समाज के अन्दर धार्मिक विभिन्नताएँ बहुधा तनाव, विभाजन और संघर्ष को जन्म देती हैं, अर्थात् वे समस्त समाज के लिए संगठनात्मक व एकीकारी न होकर विघटनात्मक व संघर्षकारी होती हैं। दो धर्म बहुधा कतिपय बिन्दुओं पर समान मूल्यों पर बल देते हैं और कतिपय बिन्दुओं पर पूर्णतया भिन्न तथा कदाचित् विरोधात्मक मूल्य रखते हैं। इस प्रकार कुछ दृष्टियों से धर्म समाज के लिए संगठनात्मक एवं एकीकारी हो सकता है, जबकि अन्य दृष्टियों से यह विघटनकारी एवं संघर्षकारी हो सकता है।

इसके अतिरिक्त, जिस समाज में एक ही धर्म हो, वहाँ भी संगठिन धर्म तथा राजनीतिक सत्ताधारियों के बीच तनाव के निरन्तर संघर्ष के कुछ क्षेत्र हो सकते हैं। परन्तु जहाँ राजनीतिक एवं धार्मिक सत्ता एक हो जाती है, वहाँ धर्म निश्चय ही संगठनकारी होता है।

यह तो माना जा सकता है कि धार्मिक भिन्नताएँ सामाजिक विघटन का मूल कारण है, परन्तु यह भी देखा जाता है कि जहाँ धर्म नहीं है, विघटनकारी शक्तियाँ वहाँ भी है। वर्तमान में यूक्रेन एवं रूस के बीच जो महायुद्ध हो रहा है, उसके पीछे धर्म की भूमिका नहीं है वरन् उसके पीछे अस्मिता की विभुक्षा एवं संकीर्ण स्वार्थ तथा सीमा-निर्धारण एवं सीमा-विस्तारण की भूमिका है। रोमानिया में जो अभी इतना रक्तपात हुआ है, उसके पीछे क्या धर्म की भूमिका थी? चीन में हजारों विद्यार्थियों का रक्त बहा, क्या इसके पीछे धर्म की भूमिका थी? सारे साम्यवादी देश कई राष्ट्रों और सैद्धान्तिक समूहों में बँटे हैं, क्या इसके पीछे धर्म की भूमिका है? ऐसी स्थिति में धर्म को सामाजिक विघटन के लिए कैसे उत्तरदायी माना जा सकता है? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका सम्यक् उत्तर देने के लिए विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा, लेकिन यह मानना पड़ेगा कि जब धर्म मानवीय उपभोग प्रवृत्ति से आक्रान्त हो जाता है तो उसके अपने मूलस्थ उज्लवल, उदात्त एवं निष्कलंकता के आधारभूत गुण मलिन, अनुदात्त एवं विरूपित हो जाते हैं, तथा मानव धर्म का उपयोग साध्य के रूप में नहीं वरन् साधन के रूप में करने लगता है तो ऐसी स्थिति में समाज में संकीर्ण स्वार्थ एवं अस्मिता की विभुक्षा के परिणामस्वरूप धर्म सामाजिक विघटन का अवांछनीय कारण बन जाता है।

निःसंदेह प्रत्येक धार्मिक व्यवस्था अपने प्रारम्भिक काल में एक सामान्य त्रिभुज की भाँति होती है जिसमें आस्तिकता शीर्ष कोणस्थ रहती है। इसके नीचे नैतिकता का क्रम आता है। नैतिकता के अन्तर्गत दया, करुणा, सहानुभूति, परमार्थ, सद्भावना, आत्मबलिदान जैसी मनोवृत्तियाँ आती हैं। नैतिकता खण्ड के नीचे का भाग कुछ उपखण्डों में विभक्त रहता है जिसके अन्तर्गत रूढ़ि, वर्जना, संस्था, कर्मकाण्ड एवं अन्य धर्मगत विश्वास आते हैं।

धार्मिक संरचना का यह स्वरूप अनुक्रम स्थिति में रहता है। अनुक्रम के विपरीत प्रतिक्रम स्थिति होती है। प्रतिक्रम स्थिति में धर्म-त्रिभुज की स्थिति विलोमात्मक हो जाती है। शीर्षकोण अधोस्थिति में आ जाता है और त्रिभुज का आधारस्थ भाग शीर्ष-स्थिति में आ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि आस्तिकता और नैतिकता गौणता को प्राप्त हो जाती है और शेष धर्मांगों को प्राथमिक महत्व प्राप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप लोग अपने समूह व संस्कृति के धार्मिक विश्वासों, कर्मकाण्डों, मत-मतान्तरों, विचारों, दृष्टिकोणों, धार्मिक रूढ़ियों, प्रथाओं एवं परम्पराओं को सर्वोपरि मानने लगते हैं तथा अपने धार्मिक विश्वासों से भिन्न अन्य समूहों व संस्कृतियों के धार्मिकता के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, घृणा और आक्रमणकारी भावना से आक्रान्त हो जाते हैं। इन विरोधी भावों से विभिन्न धार्मिक समूहों में यहाँ तक कि एक ही समूह के विभिन्न पंथों व सम्प्रदायों में, तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक अलगाव की भावना की सृष्टि होती है तथा अन्ततः साम्प्रदायिकता का विशालकाय दुर्ग निरूपित हो जाता है। साम्प्रदायिकता के कारण सामाजिक सांस्कृतिक विघटन होता है। विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं संस्कृतियों के लोग परस्पर मिल नहीं पाते, अतः एकीकरण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है और अलगाववादी भाव बने रहते हैं। जब-जब समाज में साम्प्रदायिक संघर्ष होते हैं, भूतकाल में सामाजिक, सांस्कृतिक एकता के लिए किये गये प्रयास धाराशायी हो जाते हैं और समाज में अन्धविश्वास, भय, शंका तथा घृणा का वातावरण पैदा हो जाता है। साम्प्रदायिक उपद्रव की लहर न केवल एक राष्ट्र या एक देश तक परिसीमित होती है वरन् यह विश्व के अन्य देशों में भी अपने विष-परिणाम का वमन करती है।

धार्मिक संरचना की अनुक्रम स्थिति

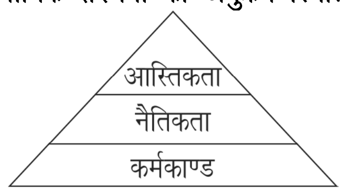

धार्मिक संरचना की प्रतिक्रम स्थिति

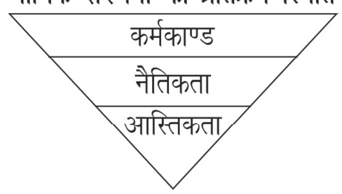

साम्प्रदायिकता की भावना से प्रभावित समूह के व्यवहारों में व्यवहारगत उन्मुखता के प्रतिमान की परिकल्पना की जा सकती है। ऐसे प्रतिमान की पृष्ठभूमि में दो प्रेरक मानसिक स्थितियाँ होती है - संकीर्ण स्वार्थ तथा अस्मिता की विभुक्षा। हिंसा, संघर्ष एवं विभाजन इन दोनों मानसिकताओं से अनुप्राणित मानवीय व्यवहारों का परिणाम है। अस्मिता-विभुक्षा को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- (क) अस्मिता सीमा-निर्धारण तथा (ख) सीमा-विस्तारण। सीमा निर्धारण वह स्थिति है जिसमें समूह व सम्प्रदाय विशेष अपनी अस्मिता का संरक्षण इस प्रकार करता है जिससे उसका समुदायगत वैशिष्ट्य बना रहे। सीमा-विस्तारण के अन्तर्गत वह केवल अपनी अस्मिता की रक्षा ही नहीं करता है वरन् उसके विस्तार के लिए चेष्टित रहता है। विस्तारण प्रक्रिया का परिणाम स्वाभाविक रूप से संघर्ष, हिंसा आदि होता है, क्योंकि सामान्यतया कोई समूह यह नहीं चाहता है कि उसकी अस्मिता का विलय किसी अन्य समूह में हो।

किसी भी समूह व समाज के विघटन में धर्म निम्नलिखित रूप में उत्तरदायी होता है -

(1) धार्मिक विश्वासों की विभेदक तीव्रता : एक जटिल समाज में धार्मिक विश्वासों की बाहुल्यता सामाजिक विघटन का उत्पादक कारक हो सकती है। जब ऐसे समाज में मानवीय अधोवृत्ति के कारण विभिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वासों का विकास हो जाता है, तब धर्म के वास्तविक स्वरूप में संकुचितता का प्रवेश हो जाता है। धर्मानुयायी अपने-अपने धार्मिक विश्वासों को सर्वोपरि मानने लगते हैं तथा अन्य भिन्न धर्मों के विश्वासों के प्रति घृणा, विरोध और आक्रमण की भावना से आक्रान्त हो जाते हैं। ये विरोधी भाव ही धार्मिक संघर्ष के मूल कारण होते हैं। जब किसी समाज में धार्मिक संघर्ष छिड़ जाते हैं तब सामाजिक विघटन का होना अपरिहार्य हो जाता है। धर्म जो कभी समाज में से राग-द्वेष, हिंसा, संघर्ष आदि को मिटाने के लिए ही विकसित हुआ था, उसी के नाम पर रक्त की धाराएँ बहने लगती हैं। स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि संसार में धर्म के नाम पर जितना रक्त बहा है, उतना और किसी कारण से नहीं। धार्मिक विश्वास-भेद मानव जीवन को शताब्दियों से प्रभावित करते आ रहे हैं।

(2) धार्मिक मूल्यों की विभेदक तीव्रता : जब किसी समूह व समाज में विभिन्न प्रकार के धार्मिक मूल्यों का सृजन हो जाता है और ये आपस में एक-दूसरे से टकराने लगते हैं तो सामाजिक एकात्मकता समाप्त हो जाती है, फलस्वरूप सामाजिक विघटन का आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक समूह व समाज के लिए उसके धार्मिक मूल्य अर्थपूर्ण होते हैं और उसके सदस्य अपनी जीवनचर्या में उन्हें अत्यन्त पवित्र और महत्वपूर्ण समझते हैं। हिन्दू समाज में ''गाय'' की महिमा व्यापक तथा विशाल है। सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति ''गाय'' के आधारपीठ पर प्रतिष्ठित है। ''गाय'' को इस धर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार गंगाजल से उसकी पवित्रता पृथक् नहीं की जा सकती, उसी प्रकार हिन्दू धर्म और संस्कृति से ''गो'' शब्द। हिन्दू संस्कृति का मेरूदण्ड गाय है और हिन्दुओं के लिए उसका एक धार्मिक मूल्य है। यह पूज्य एवं भारत की आध्यात्मिक संस्कृति की प्राण है। परन्तु इस धर्म से भिन्न अन्य धर्मों में ''गो'' मांस से बना एक प्रकार का व्यंजन खाना एक मूल्य है। प्राचीन भारत में कभी भी ''गो-वध'' नहीं होता था। अब यदि हिन्दू धर्म से इतर अन्य धर्मों के अनुयायी ''गो-वध'' करेंगे तो निश्चय ही हिन्दू धर्म के अनुयायी ऐसी दुरावस्था का सहन नहीं कर सकेंगे। गो-रक्षा के लिए वे अपने प्राणों का त्याग कर सकते हैं। यही तो गाय के प्रति हिन्दुओं की महनीय भावना है। गो-वध की समस्या को लेकर हिन्दुओं तथा गैर-हिन्दुओं के बीच कई बार संघर्ष हो चुके हैं।

इस्लाम धर्म में ''अल्लाह'' अथवा ''खुदा'' एक है, अद्वितीय है। अल्लाह को छोड़कर कोई और पूज्य नहीं है। ''कुरान'' को अल्लाह का कलाम माना जाता है। अतः मुस्लिम आचार संहिता, जिसे शरीयत कहते हैं, में परिवर्तन किसी भी हालत में मान्य नहीं है, क्योंकि शरीयत के मुख्य आधार 'कुरानपाक' और 'हदीस' है।

इस्लाम में कुरान को खुदा का कलाम माना जाता है, अतः उस पर आधारित 'शरीयत' से छेड़-छाड़ करने का हक आदमी को नहीं है। इस्लाम की स्थापना कभी सामाजिक न्याय, मानववाद एवं आस्तिकवाद का भाव जगाने के लिए हुई थी पर आज इसके कारण अन्तर्सामुदायिक कलह एवं संघर्ष पैदा हो गये हैं। इसका मूल कारण यह है कि मुसलमान चाहते हैं कि जैसा वे विश्वास करें, व्यवहार करें, अन्य लोग भी वैसा ही करें। वे अगर बुतपरस्ती नहीं करते हैं तो कोई समुदाय बुतपरस्ती न करे। इसीलिए वे मन्दिर व मूर्तियों को तोड़ते हैं। कुरान को खुदा का सन्देश मानते हैं, अतः सब लोगों के लिए यह आवश्यक है कि वे भी ऐसा ही मानें। इसी मान्यता के तहत अन्य धर्मों के धर्मग्रन्थों को वे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। यदि हिन्दू लोग मुसलमानों से कहें कि वे वेद को ईश्वरीय कृति मानें तो क्या मुसलमानों को यह बात मान्य होगी? स्पष्टतः झगड़े का मूल कारण है, भिन्न मूल्यों में टकराहट।

इसी तरह विश्व के अन्य धर्मों के अपने अलग-अलग मूल्य हैं, यद्यपि धार्मिक मूल्य सम्पूर्ण समाज को भावात्मक एकता में बाँधे रहते हैं, किन्तु जब किन्हीं कारणों से इनमें एक-दूसरे से समायोजन नहीं रहता तो संघर्ष उत्पन्न हो जाता है, मानसिक असन्तुलन और सामाजिक असमायोजन की वृद्धि हो जाती है तथा सामाजिक अस्थिरता और मूल्यात्मक भिन्नता सामाजिक विघटन को जन्म देती है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में ईसाईयत के प्रचारक आरम्भ से ही हिन्दुत्व की निन्दा की वृष्टि करते रहे हैं, मध्यकाल में मुसलमान मूर्तियाँ तोड़ते रहे, मन्दिर ढहाते रहे एवं पुस्तकालयों को फूँकते एवं जलाते रहे। हिन्दू अहिंसकवादी मूल्यों से प्रभावित होते हैं जबकि गैर-हिन्दू हिंसावादी मूल्यों से। जब मुस्लिम-आक्रमण के साथ मन्दिरों और मूर्तियों पर विपत्ति आयी, हिन्दुओं का हृदय फट गया और वे इस्लाम से तभी जो भड़के, सो अब तक भड़के हुए हैं। इस्लाम में हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि सभी को काफिर माना जाता है। सांस्कृतिक प्रतिशोध से हिन्दुओं ने उन्हें मलेच्छ कहना आरम्भ कर दिया। इसी तरह ईसाई धर्मावलम्बी अन्य भिन्न धर्मों को शैतान का खेल समझते रहे हैं।

प्रत्येक धर्म की केन्द्रीय विशेषता है मूल्यात्मक बाध्यता। प्रत्येक धर्म की मान्यता है कि उसके धार्मिक मूल्य ही शाश्वत है। सारे संसार को उसके धर्मगत मूल्यों के अनुसार ही चलना है। धर्म-विशेष के अतिरिक्त मानवता के सम्मुख और कोई विकल्प है ही नहीं। स्पष्ट है कि विश्व के सभी धर्म धार्मिक मूल्यों के प्रश्न पर एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। इसी भिन्नता को लेकर भिन्न-भिन्न धर्मों के बीच संघर्ष होता रहता है। परिणामतः समाज में कम्पन आ जाता है और धर्म-वज्राघात से समाज में विघटन प्रारम्भ हो जाता है। ईसाइयत और इस्लाम अपने धार्मिक मूल्यों को स्थापित करने के सन्दर्भ में हिन्दू धर्म की जो धज्जियाँ उड़ाते रहे, निर्भीकतापूर्वक अत्याचार करते रहे, उससे हिन्दू धर्म-समाज का कितना विघटन हुआ है, कहा नहीं जा सकता।

(3) धार्मिक अभिवृत्तियों की विभेदक तीव्रता : अभिवृत्ति मानसिक तथा स्नायुयिक तत्परता की एक स्थिति है जो अनुभव द्वारा संगठित होती है, जो उन समस्त विषयों तथा परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति के प्रत्युत्तरों पर एक निर्देशक या गतिशील प्रभाव डालती है जिससे कि यह सम्बन्धित है। कोई व्यक्ति भगवान शंकर की मूर्ति को सिर झुकाता है और उसे समादर की दृष्टि से देखता है। कोई उधर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। एक हिन्दू को देखकर कुछ मुसलमान उसे काफिर एवं बुतपरस्त समझकर घृणा करने लगते हैं, तो एक मुसलमान को देखकर कुछ हिन्दू उसे मलेच्छ समझकर घृणा करते हैं, कुछ लोग स्त्रियों को नापाक समझकर उनसे दूर हटने का प्रयास करते हैं तो कुछ उन्हें त्याग और तपस्या की मूर्ति मानकर उनकी पूजा करते हैं तथा ''यत्र नार्यस्तू पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। इस प्रकार अभिवृत्ति व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह समाज की विभिन्न परिस्थितियों, वस्तुओं, व्यक्तियों आदि के प्रति अपने विचार या मनोभाव को प्रकट करता है।

चूँकि विश्वास अभिवृत्ति के ज्ञानात्मक पक्ष के रूप में समझा जाता है, अतएव धार्मिक विश्वास और धार्मिक अभिवृत्ति घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। प्रत्येक धार्मिक अभिवृत्ति में एक धार्मिक विश्वास अन्तर्निहित होता है, किन्तु प्रत्येक धार्मिक विश्वास में धार्मिक अभिवृत्ति समाहित नहीं होती। क्रेच तथा क्रचफील्ड का मत है कि ''सभी अभिवृत्तियाँ किसी वस्तु के प्रति अभिवृत्ति से सम्बन्धित विश्वास हैं, किन्तु सामान्यतः हम यह कह सकते हैं कि समस्त विश्वास अभिवृत्ति की संरचना के भाग हैं।[1]

धार्मिक अभिवृत्तियाँ अर्जित होती हैं और इनका निर्धारण संस्कृति विशेष में होता है। संस्कृति का प्रभाव हमारी अभिवृत्तियों पर होता है। चूँकि धार्मिक विश्वास संस्कृति के अविभाज्य अंग होते हैं। अतः धार्मिक अभिवृत्तियाँ धार्मिक विश्वासों से संचालित होती हैं। हम देखते हैं कि हिन्दू वेद-मन्त्रों को सुनकर गद्गद् हो जाते हैं। इसका कारण उनकी वेदों के प्रति धार्मिक अभिवृत्ति है। यह अभिवृत्ति हिन्दुओं में उनकी धार्मिक आस्था के कारण उत्पन्न हुई। मुसलमान प्रायः "हज" पर जाते हुए मुसलमानों को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। पर यदि कोई उनके तीर्थ स्थानों (मक्का और मदीना) पर सीधा प्रहार करता करता है तो वे क्रुद्ध हो जायेंगे और तीर्थ-प्रधान धार्मिक परम्परा की महिमा का आख्यान करने लगेंगे, क्योंकि उनका धर्म हर मुसलमान के लिए इस धार्मिक कृत्य को निर्धारित करता है। धर्म संस्कृति का अंग है, अस्तु विश्वास धर्म और अभिवृत्तियों को निर्धारित करता है।

परन्तु धार्मिक विश्वासों को लेकर अभिवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं और इनके अंतर्गत धर्मवादियों में कई पंथ व सम्प्रदाय हो सकते हैं। पंथ व सम्प्रदाय कदाचित मतान्धता के परिणामस्वरूप एक-दूसरे पर तरह-तरह के अत्याचार करने लगते हैं। परिणामतः ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाने लगता है। जिस नरमेध से बचने के लिए धर्म का अभ्युदय हुआ था, वहाँ नरमेध होने लगता है। उन्माद, आवेश, जनून, आक्रमणशीलता, प्रलोभन और जबरदस्ती, अपने मत को श्रेष्ठ मानना और सबको अपने ही मत का बनाने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करना, उसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सबका प्रयोग करना मतान्धता की प्रकृति है। इसका अनिवार्य परिणाम सामाजिक विघटन होता है।

(4) धार्मिक संकट : यद्यपि सामाजिक विघटन एक क्रमिक प्रक्रिया है, इसकी अधिकांश, प्रकट अभिव्यक्तियाँ संकटकालीन परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं। संकट किसी समूह के सामान्य क्रियाकलापों में एक गम्भीर हस्तक्षेप है जो व्यवहार के प्रतिमानों में समायोजनों को आवश्यक बना देता है। धार्मिक संकट का तात्पर्य ऐसी परिस्थिति से है जिसमें किसी समूह के सदस्यों को उनके अभ्यस्त परम्परागत धार्मिक विश्वासों, विचारों, अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों में परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है तथा किसी नूतन धार्मिक विश्वासों, विचारों, अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों को बाध्यतावश तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के सन्दर्भ में स्वीकार करना पड़ता है। धार्मिक संकट की परिस्थिति में व्यक्ति उतावला हो जाता है, उसकी बुद्धि विकल हो जाती है और परिणामस्वरूप वह आदर्शशून्य व्यवहार करने के लिए बाध्य हो जाता है। ऐसे बहुत कम सर्जनात्मक व्यक्ति होते हैं जो नूतन परिस्थिति में व्यवहार के नवीन स्वरूपों के साथ तत्क्षण अपना समायोजन करने में सक्षम होते हैं। औसत व्यक्ति अपेक्षाकृत नवीन समस्याओं का सन्तोषपूर्ण ढंग से समाधान करने में कोसों दूर होता है। वह अचानक परिवर्तित प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं को स्वीकार करने में पूर्णतया असफल रहता है, क्योंकि अपने विगत जीवनमें उसने कभी ऐसी परिस्थितियों का न तो सामना किया होता है और न ही इस सन्दर्भ में कभी किसी प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त किया होता है। परिणामस्वरूप समाज में ऐसी अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो जाती है जो सामाजिक विघटन को अभिव्यक्त करती है। **धार्मिक संकट** दो प्रकार के हो सकते हैं - (1) आकस्मिक तथा (2) संचयी।

(1) आकस्मिक धर्म संकट - यह संकट तब घटित होता है जब समूह के प्रवहमान जीवन में अप्रत्याशित रूप से कोई अचानक बाधा उत्पन्न होने से अधिकांश व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर सामूहिक आदतों को छोड़कर नूतन भूमिकाएँ शीघ्र अदा करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार के आकस्मिक धार्मिक संकटों में धार्मिक नेताओं की मृत्यु एवं धर्म-युद्ध (जेहाद), साम्प्रदायिक दंगे, बलात् धर्मान्तरण, आक्रमणकारी धर्म-विस्तार आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसाई धर्म के प्रवर्तक महात्मा ईसा की मृत्यु के बाद प्रथम तीन शताब्दियों के इतिहास की विशेषता यह रही है कि उनके शिष्यों द्वारा तथा रोमन साम्राज्य के संरक्षण (ईस्वी सन् 313 से 750 तक) में ईसाई धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु समय- समय पर कठोर प्रहार एवं अत्याचार किये गये। संत ग्रिगोरी महान प्रथम जो सन् 590 में रोम के पोप निर्वाचित हुए बेनेडेक्टाडन सम्प्रदाय का मठवासी सदस्य होते हुए भी धर्म परिवर्तन और ईसाई संघ के परिवर्तन के अतिरिक्त किसी अन्य बात पर ध्यान नहीं देते थे। उनके समय से लेकर 900 वर्षों तक धर्मान्तरण के सन्दर्भ में ईसाई तथा मुसलमान सेनाओं के बीच संघर्ष चलता रहा। उत्तर मध्यकाल (सन् 1050 ई. से 1500 ई. तक) ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म की पवित्र भूमि

फिलस्तीन और उनकी राजधानी येरुसलम में स्थित महात्मा ईसा की समाधि का गिरजाघर मुसलमानों से छीनने और अपने अधिकार में करने के प्रयास में जो युद्ध किये उनको ''क्रूसेड''[2] (क्रूस युद्ध या जेहाद) अर्थात् ''क्रॉस'' के निमित्त युद्ध कहा जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में धर्म-युद्धों का प्रारम्भ हुआ। इतिहासकार ऐसे सात ''क्रूस युद्ध'' मानते हैं। ईसाई धर्मयुद्धों का आयोजन हुआ था पूर्वीय ईसाई साम्राज्य को मुसलमानों के शासन से त्राण दिलाने के लिए किन्तु सम्पूर्ण पूर्वीय ईसाई साम्राज्य पर मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया। इतिहास के दृष्टिकोण से देखा जाय तो सम्पूर्ण ईसाई धर्म-युद्ध आन्दोलन एक विशाल विशिष्ट असफल आन्दोलन मात्र था।[3]

इस्लाम का विस्तार करने के सन्दर्भ में सन् 637 ई. में मुसलमानों एवं पारसियों में कदिसिया युद्ध हुआ जिसमें मुसलमानों की विजय हुई। पारसियों के पराजय से ईरान में एक नया सांस्कृतिक-राजनैतिक अध्याय प्रारम्भ हुआ। इसी पराजय से ईरानी समाज का सम्बन्ध अपने अतीत से समाप्त हो गया। क्रमशः ईरान में इस्लामी संस्कृति का साम्राज्य स्थापित हो गया। ईरान में पिछले चौदह सौ वर्षों से इस्लाम धर्म राज धर्म के रूप में प्रतिष्ठित है। पारसी धर्मावलम्बियों को या तो इस्लाम में धर्मान्तरित कर दिया गया अथवा उन्हें देश छोड़ने के लिए बाध्य किया गया। आक्रमणकारी प्रवृत्ति के कारण ईरान के बाद मुसलमानों ने सीरिया, जार्डन, टर्की एवं अफगानिस्तान में अधिकार करके इस्लाम धर्म को स्थापित किया। इस्लाम की घोषणा है कि जेहाद (धर्म-युद्ध) करके मुस्लिम समुदाय सारी दुनियाँ से क्रमशः कुफ्र (अविश्वास) को समाप्त कर देगा और इस प्रकार सम्पूर्ण संसार में इस्लाम का साम्राज्य (दारूल इस्लाम) हो जाएगा। अब तक मुसलमान दुनिया के 32 देशों में वहाँ के स्थानीय धर्म का आत्मसात करके इस्लाम धर्म की स्थापना कर चुके हैं।

भारत में ईसाई एवं इस्लाम संस्कृतियों का प्रवेश आकस्मिक संकट का ही द्योतक है। अरब आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम, अफगानिस्तान लुटेरा मुहम्मद गजनी, मुहम्मद गोरी, खिलजी मुसलमान, मुहम्मद बिन तुगलक, तैमूर लंग एवं मुगलशासक बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब जैसे प्रतापी बादशाहों ने साढ़े छः सौ वर्षों तक जिस रूप में अपने शासनकाल के दौरान इस्लाम धर्म का प्रचार एवं प्रसार भारत में किया है, यह सर्वविदित है। इस लम्बे इतिहास में हम पाँच नाम कभी नहीं भूल सकते। वे हैं- महमूद गजनी, बख्तियार खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, फीरोजशाह तुगलक और औरंगजेब। मुहम्मद गजनी को हिन्दुस्तान में मूर्तिभंजक के रूप में देखा जाता है। उसने बहुत से मन्दिर तोड़े। सोमनाथ के मन्दिर से उसका नाम अनन्त काल तक जुड़ा रहेगा। बख्तियार खिलजी ने नालन्दा के विशाल पुस्तकालय में आग लगा दी। इतिहासकारों का कहना है कि ग्रन्थागार कई सालों तक धू-धू करके जलता रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने पाटन स्थित एक पुस्तकालय को जलाकर राख कर दिया। फीरोजशाह तुगलक ने कोहन स्थित संस्कृत पुस्तकों के एक विशाल भण्डार को जलाकर राख कर दिया। औरंगजेब ने पुस्तकालय जलाये, मन्दिर तोड़कर मस्जिदें बनवायीं। काशी में ज्ञानवापी पर काशी विश्वनाथ का विशाल मन्दिर था। औरंगजेब की आज्ञा से इसे तोड़ा गया और उसके स्थान पर मस्जिद बनवायी गयी। मस्जिद का पूर्वी भाग अब भी इस बात की गवाही दे रहा है कि यह कभी मन्दिर था। नन्दी की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि उसके सम्मुख शिव पिण्डी रही होगी।

इन पंच महारथियों को भारत का इतिहास कभी नहीं भूल सकता है। जब भी भारत में हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव का वृक्ष हरा-भरा होने लगता है, इन महारथियों की रूह उस पर अपना काली नजर फेंकती है।

अब तक के विवेचन से स्पष्ट हो चुका है कि धर्मयुद्ध (जेहाद) आकस्मिक संकट का सबसे भयंकर स्वरूप है। ऐसे युद्धों की तीव्रता का लोगों को पूर्वानुमान नहीं होता। अप्रत्याशित युद्ध छिड़ जाने पर समाज की सामान्य व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। भविष्य निश्चित नहीं रहता। वीर एवं साहसी पुरुष लड़ाई के मैदान में चले जाते हैं। पीछे वृद्ध, स्त्रियाँ एवं बच्चे भयातुर अवस्था में अस्थिर और अनिश्चित जीवन व्यतीत करते हैं। अनेक पुरुष प्राणों से हाथ धोते हैं और स्त्रियों को परिवार के पालन-पोषण की व्यवस्था करनी पड़ती है। जिन लोगों का जीवन अत्यन्त शान से गुजरता था उन्हें कई बार अनाथ की तरह भीख माँगने को बाध्य होना पड़ता है। स्त्रियाँ जो कभी हाथ से स्वयं काम नहीं करती थीं, मजदूरी करने को विवश होती है। अनैतिकता और समाज विरोधी कार्य बढ़ जाते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, सामाजिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार

आकस्मिक संकट समाज की एकसूत्रता नष्ट करके अनिश्चितता और आशंका की स्थिति उत्पन्न करते हैं जो सामाजिक विघटन का प्रतीक है।

(2) संचयी धर्म संकट – संचयी धर्म संकट आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं होते प्रत्युत धीरे-धीरे विकसित होते हैं और कालान्तर में समाज में विस्फोटक स्थिति पैदा करते हैं। सांस्कृतिक प्रसार के कारण जब किसी देश में किसी विदेशी संस्कृति के लोग आकर बस जाते हैं तो समायोजन की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसी प्रकार जब किसी एक क्षेत्रीय भूखण्ड में कई विरोधी संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं तब कभी-कभी उनके लिए अन्य संस्कृतियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना असम्भव हो जाता है। वैचारिकी असामंजस्य की स्थिति के परिणामस्वरूप उनमें विभिन्नताएँ बढ़ जाती हैं और कदाचित् तनाव तथा संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण सामाजिक विघटन का जन्म होता है।

संचयी धर्म संकट का एक अच्छा उदाहरण अपने देश की धर्म निरपेक्षतावादी नीति का दिया जा सकता है। महात्मा गांधी, पं0 जवाहरलाल नेहरु एवं तत्कालीन अन्य नेताओं के व्यक्तित्व की 'धौंस' ऐसी थी कि लोग इस सिद्धान्त के विविध पक्षों पर सम्यक् विचार करने की स्थिति में ही नहीं रहे। यह सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में स्थापित हो गया, स्वयं सिद्ध बन गया। प्रो. त्रिपाठी के अनुसार ''भारत में धर्म-निरपेक्षता का ऐसा लौह-आवरण राजनैतिक अभिजातवर्ग ने यहाँ की जनता के ऊपर लादा है कि लोकमत उमड़ ही नहीं पाता है। लौह आवरण से लोकमत लगभग दब-सा गया है और अल्पगत बहुमत के रूप में भारतीय राजनीति पर हावी हो गया है।''[4] प्रोफेसर त्रिपाठी लिखते हैं ''धर्म-निरपेक्षता से भारतीय समुदायों के प्रति कितना अन्याय हुआ, इसे समझने के लिए हमें विभाजन के दिनों की ओर लौटना होगा। जनसंख्या की अदला-बदली से तो मुसलमानों को दोनों हाथों में लड्डू मिला, पाकिस्तान में तो वे धर्म-सापेक्षता के छाते के नीचे आराम फरमाने लगे और भारत में धर्म-निरपेक्षता के ''गोड़े'' के भीतर फलने-फूलने लगे। बेचारे भारतीय बहुजन समुदाय के लोग दोनों तरफ से मारे गये। पाकिस्तान में उन्हें धर्म-सापेक्ष का विष पीने के लिए बाध्य होना पड़ा और भारत में धर्मनिरपेक्षता का ''ओखद'' (औषधि की कड़वी घूँट) पीना पड़ा। वहाँ लात खा रहे हैं, यहाँ घूसा। वहाँ पत्थर, यहाँ डंडा, वहाँ लात, यहाँ जूता। भारतीय समुदायों को धर्म-निरपेक्षता के कम्बल में लपेट कर मारा जा रहा है, उन्हें खुले आम उल्लू बनाया जा रहा है। बढ़िया न्याय मिल रहा है, भारतीय समुदायों को भारत-भूमि पर। सामुदायिक न्याय का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर रही है हमारी धर्म निरपेक्ष सरकार और ऊपर से तुर्रा यह कि हम तो सबको समदृष्टि से देख रहे हैं। मुसलमानों को तो पाकिस्तान के रूप में ''अपना घर' मिल गया है पर भारतीय समुदाय विगत 42 वर्षों से इस बात की खोज कर रहे हैं आखिर उनका अपना घर कहाँ है, उनका देश कहाँ है, अपनी भूमि कहाँ है लेकिन भूमि है कि मिल ही नहीं रही है। उन्हें अभी तक ऐसा भूखण्ड अप्राप्त है जिससे वे पूरी तरह अपनी कह सकें। मुसलमानों ने हर क्षेत्र में कोई न कोई 'खुरपेंच' लगा रखी है। भारतीय समुदायों का भूमि के लिए भटकाव अभी जारी है।''[5]

''पुनः प्रोफेसर त्रिपाठी के शब्दों में ''धर्म-निरपेक्षता की धुन में भारत सरकार जनतन्त्र की मूल मान्यताओं को भी ''रौंदती'' चली जा रही है। जनतन्त्र की मूल मान्यता तो यह है कि जनता की मनोकांक्षाओं का क्रियान्वयन राजनैतिक दल और सरकार करने के लिए तत्पर रहे। जनतांत्रिक मर्यादा यह है कि जनता की इच्छानुसार उनके संकेतों पर सरकार की सम्पूर्ण गतिविधि होनी चाहिए। लेकिन वस्तु-स्थिति ठीक इसके विपरीत है। जनता को, विभिन्न संचार-माध्यमों का दुरूपयोग करके धर्म निरपेक्षता का 'ओखद'' पिलाया जाता है, उन्हें राजनीतिक ''उपदेश'' दिया जाता है, आत्मनियन्त्रण की अच्छाइयाँ समझायी जाती है। यह कैसा जनतन्त्र है, जिसमें अपने विश्वासों के अनुरूप व्यवहार के लिए लोग स्वतन्त्र नहीं है, हर काम करने में ''अड़ंगा'' लगा है। हर अगले कदम पर ''बैरियर'' हमें मुँह 'बरा' रहा है, हमारी गति रोक रहा है।''[6]

(5) विभिन्न धार्मिक पंथों एवं सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव : जब किसी समाज में अनेक धार्मिक पन्थ एवं सम्प्रदाय प्रकट हो जाते हैं तब वे अपने-अपने संगठनों का वर्चस्व कायम रखने के लिए और दूसरे संगठनों से अपने संगठन को उच्चतर सिद्ध करने के लिए अथक् प्रयास करते हैं। कभी-कभी एक ही धार्मिक पंथ में अनेकानेक उप-पंथों का सृजन हो जाता है। ये सभी पंथ एवं उप-पंथ अपने-अपने मतों को ही सर्वोपरि मानते हैं। पंथ विशेष की दृष्टि से प्रभावित पंथानुयायी अपने ही पंथीय विश्वासों एवं व्यवहारों को समाज पर आरोपित करने के

सन्दर्भ में वे अन्य धार्मिक पंथों एवं सम्प्रदायों के विश्वासों एवं व्यवहारों की न केवल अनुदार आलोचना करते दिखाई पड़ते हैं, बल्कि उन्हें वे निकृष्ट समझकर उनको पूर्णतः समाप्त करने के लिए कटिबद्ध होते हैं। प्रत्येक पंथ अपने पंथ के प्रणेता, आध्यात्मिक गुरु, अध्यात्म तत्त्व, भक्ति और साधना तथा वचनों और उपदेशों को अखण्ड और अबाध रूप से प्रासंगिक मानता है तथा अन्य भिन्न पंथों की प्रासंगिकता को क्षणिक तथा सीमित मानता है।[7]

कभी-कभी पंथ विशेष स्वभाव से ही विद्रोही प्रकृति के होते हैं। ऐसे ही दर्प से भरे कबीर पण्डितों की भर्त्सना करते कहते हैं –

''मैं कहता सुरझावन हारी, तू कहता अरूझाई रे।''

नव-पंथ के स्रष्टा अपनी ''वाणी'' को समर्थ्यवान बनाने के लिए 'उलटबासी' शैली का प्रयोग करते हैं। प्रायः सभी निर्गुणमार्गी संत इस शैली को अपनी अभिव्यक्ति का एक विशेष अधिकार सा मान कर चलते रहे हैं। विरोधागर्भिता वाण ''उलटबाँसी'' शैली के रूप में गोरखनाथ के साहित्य में ''उलटी चरचा'' (गोरखबानी, पृ. 142) नाम से पल्लवित एवं प्रतिष्ठित हो चुकी है। आगे चलकर संत कबीर ने मध्ययुगीन हिन्दी निर्गुण साहित्य में प्रचारित और प्रतिष्ठित किया। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि नवपंथ स्रष्टा अपने 'उलटि या उलटवेद' द्वारा वेदमार्ग या शास्त्र लोक-परम्परा का अतिक्रमण करना चाहते हैं। यही कारण है कि पंथ विशेष के अनुयायी अपने पंथ की मान्यताओं को ही सर्वोपरि मानते हैं जो अन्य भिन्न पंथों एवं सम्प्रदायों से तनाव व संघर्ष उत्पन्न करने का सशक्त कारण बन जाते हैं। पंथानुयायी यह कहते पाये जाते हैं कि ''जो मेरे'' पर चढ़कर सागर का संतरण करना चाहते हैं, वे मझधार में डूबते हैं और जो ''निराधार'' होते हैं वे पार हो जाते हैं। पंथ का अतिक्रमण करने वाले गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं और लीक पर चलने वाले बीच में ही लूट लिये जाते हैं।[8] वाणी की इसी ज्ञान-गुस्ता को उद्घाटित करने के लिए कबीर साहब ''उलटिवेद'' के माध्यम से लोक-रूढ़ पण्डित मान्य का विरोध करत हैं –

''है कोई जगत गुरु ग्यानी उलटि वेद बूझै।
पांणी में अगनि जरै अंधेरे को सूझै।।''

– ग्रन्थावली, पद 160

संत सुन्दरदास ने 'उलटवाँसी' शब्द के समकक्ष 'उलट बात', 'उलटी रीति', 'उलटा ख्याल' आदि शब्दों का प्रयोग किया।[9]

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निर्भान्ततः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न पंथों एवं सम्प्रदायों में वैचारिकीय मतभेद होने के कारण वे कई उपपंथों में बँट जाते हैं तथा उनमें एक-दूसरे के प्रति विद्रोह-भावना के कारण शनैः-शनैः प्रभावहीन हो जाते हैं तथा आपस में लड़ने-झगड़ने लगते हैं। ऐसे पंथ व सम्प्रदाय सामाजिक एकता को नष्ट कर समाज को विखण्डित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

(6) साम्प्रदायिकता : साम्प्रदायिकता आज के भारत की अत्यन्त भयंकर समस्या है। पण्डित जवाहर लाल नेहरु ने महात्मा गांधी के निधन पर फरवरी सन् 1948 के अपने ब्राडकास्ट में कहा था कि ''हम सबको साम्प्रदायिकता नष्ट करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए जिसने हमारे युग के महानतम व्यक्ति की हत्या कर दी है।''[10] 16 सितम्बर, 1951 को उन्होंने लखनऊ में कहा कि ''साम्प्रदायिकता को मैं भारत का शत्रु नम्बर एक मानता हूँ।''[11] 27 फरवरी, 1957 को उन्होंने कहा कि ''साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं हो सकता, फिर चाहे वह हिन्दू साम्प्रदायिकता हो चाहे मुस्लिम साम्प्रदायिकता, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रत्व और भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध एक भारी चुनौती है।''[12]

साम्प्रदायिकता की कोई विशिष्ट परिभाषा नहीं है। किन्तु इसकी व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय अथवा सम्प्रदायों के प्रति उपेक्षा, घृणा विरोधी और आक्रमण की भावना साम्प्रदायिकता है। धर्म विशेष, मत विशेष, मजहब विशेष, पंथ विशेष और सम्प्रदाय विशेष के प्रति ऐसी अंधी और सर्वोच्च समूह भक्ति है, जो केवल अपने समुदाय के कल्याण एवं भोग की भावना पर आधृत होती है। साम्प्रदायिकता में विश्वभ्रातृत्व की भावना अथवा ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना की सर्वथा उपेक्षा की जाती है। भारतवर्ष के धर्म-इतिहास में रक्त की धारा बहाने तथा देश का विभाजन करवाने का श्रेय साम्प्रदायिकता को ही है। इसने बैर, विरोध, घृणा, उपेक्षा, वैमनस्य, तिरस्कार, हिंसा और मारकाट के शास्त्र-भित्ति पर हमारे जीवन को पारस्परिक संघर्षपूर्ण तथा घोर विप्लवपूर्ण बना दिया है।

साम्प्रदायिकता की भावना से प्रेरित होकर अनेक साम्प्रदायिक संगठनों की स्थापना की जाती है। यद्यपि ये संगठन अपने को धार्मिक अथवा अराजनीतिक कहते हैं, किन्तु उनका

उद्देश्य मूलतः राजनीतिक ही होता है। नेहरु जी के शब्दों में, ''ऐसे साम्प्रदायिक संगठन यद्यपि धर्म के नाम का दुरूप्योग करते हैं, फिर भी वे धार्मिक नहीं होते। संस्कृति का नाम लेते हैं, किन्तु संस्कृति का कोई काम नहीं करते, पुरातन संस्कृति के गीत भले ही गाते रहे हैं। नैतिकता का नाम लेते हैं, किन्तु नैतिकता से कोसों दूर रहते हैं। ये आर्थिक समूह भी नहीं होते क्योंकि उन्हें जोड़ने वाली कोई आर्थिक कड़ी नहीं होती। वे केवल राजनीतिक होते हैं। किन्तु अपने को कहते हैं - अराजनीतिक। उनकी माँगे राजनीतिक ही होती है।''[13] मुस्लिम लीग की दिसम्बर, सन् 1906 में स्थापना ने हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के बीच मतभेद का बीज बो दिया, ऐसा रेमजे मेडकानेल्ड ने 'दि अवेकनिंग ऑफ इण्डिया' में लिखा है।[14]

सन् 1930 में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं। मुसलमानों का राष्ट्र पाकिस्तान, हिन्दुस्तान से पृथक होना चाहिए। मुहम्मद अली जिन्ना ने घोषणा की कि ''राष्ट्र की किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान एक राष्ट्र है। अतः उनका अपना निवास स्थान, अपना प्रदेश और अपना राज्य होना चाहिए।''[15] हिन्दू महासभा एक ओर हिन्दू राष्ट्र का राग अलापने लगी, मुस्लिम लीग दूसरी ओर पाकिस्तान का। अक्टूबर 1938 में सिंध की प्रान्तीय मुस्लिम लीग ने मांग की - ''भारतीय महाद्वीप में शान्ति बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दुस्तान को दो संघ-शासनों में बाँट दिया जाय जिनमें से एक मुस्लिम राज्यों का संघ हो और दूसरा गैर-मुस्लिम का।''[16]

साम्प्रदायिकता की प्रकृति की चर्चा करते हुए दादा धर्माधिकारी लिखते हैं कि जिसमें हम जा सकते हैं और जिसमें से हम निकल सकते हैं, वह ''सम्प्रदाय'' कहलाता है। इस्लाम सम्प्रदाय है। ईसाईयों का सम्प्रदाय है। सिखों का सम्प्रदाय है। मुसलमान, सिख, ईसाईयों में सम्प्रदाय ही वास्तविकता है। सम्प्रदाय हमेशा आक्रमणशील होता है, जयिष्णु होता है। उसमें विजिगीषा होती है। दूसरों को परास्त करने की आकांक्षा होती है। उसका स्वरूप चाहे जितना सौम्य हो,वह उसमें अधिक से अधिक लोगों को सम्मिलित करना चाहता है। सम्प्रदायवादी मानता है कि मेरा ही मार्ग सही है। लोग जब तक मेरे मार्ग पर नहीं आयेंगे तब तक वे नरक से बच नहीं सकते। वह दूसरों को उसमें अपने के लिए फुसलाता है। शादी का, सम्मान का प्रलोभन देता है। फिर भी जो उसके चकमे में नहीं आते, उन्हें वह धमकाता है। सम्प्रदाय आक्रमणशील बन जाता है। उसमें अपने सिद्धान्त के लिए अपने धर्म के लिए एक उन्माद, आवेश जुनून होता है। इस अन्ध आवेश के कारण सम्प्रदायवादी कहता है कि ''यह समझता नहीं है, यह बेवकूफ है, इसे मारपीट कर समझाना चाहिए। जो उत्कृष्टता ओर तीव्रता होती है उसका लक्षण यह है कि दुनियाँ में जितने आदमी हैं, सबको हम अपने में मिला लेना चाहते हैं।[17] दादा मानते हैं कि हिन्दुओं के जातिवाद में से मुसलमानों का सम्प्रदायवाद इस देश में पनपा है।[18] उनका कहना है कि सम्प्रदायवाद का निराकरण प्रति सम्प्रदायवाद से नहीं हो सकता। ''इस्लामियत ही राष्ट्रीयता है'' मुसलमान ने कहा। हिन्दू समाज ने जवाब दिया - ''हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयता है।'' यह प्रतिसम्प्रदायवाद है। वह कहता है, हमारी सत्ता जहाँ पर होगी वही पुण्यभूमि है।'' पाकिस्तान का ठीक-ठीक अनुवाद है - पाक-पुण्य, स्तान-भूमि। मुसलमानों के सम्प्रदायवाद का जवाब है हिन्दुओं का प्रतिसम्प्रदायवाद। इससे लोक सत्ता की स्थापना कदापि नहीं हो सकती है।[19]

स्पष्ट है कि उन्माद, आवेश, जुनून, आक्रमणशीलता, प्रलोभन और जबरदस्ती अपने को श्रेष्ठ मानना और सबको अपने ही मत का बनाने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करना, उसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सबका प्रयोग करना सम्प्रदायिकता की प्रकृति है।

साम्प्रदायिकता आज भारतीय जीवन के नस-नस में व्याप्त हो गयी है। ''हिन्दू पानी'' और ''मुसलमाना पानी'' से लेकर जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका प्रवेश हो गया है। जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में साम्प्रदायिकता का रंग भर गया है। कोई भी क्षेत्र शायद ही इससे अछूता रहता है। लोकतन्त्र का मेरूदण्ड है मतदान। मतदान के हर बैलट बॉक्स में,हर मतदाता पर उसकी छाप दिख पड़ती है। चुनाव में, पदों और कुर्सियों की माया ने साम्प्रदायिकता को फलने-फूलने का अधिकतम अवसर प्रदान किया है। **साम्प्रदायिक** भावना साम्प्रदायिक उपद्रवों की जननी है और साम्प्रदायिक उपद्रव सामाजिक विघटन का महत्वपूर्ण स्रोत है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ.राजेन्द्र प्रसाद 'खण्डित भारत' में लिखिते हैं कि ''सन् 1916 से लेकर विगत 30 वर्ष के साम्प्रदायिक उपद्रवों के इतिहास का

निष्पक्ष रूप से अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि देश के राजनीतिक इतिहास में जब-जब अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षण उपस्थित हुए हैं, तभी ये उपद्रव होते दिखाई देते हैं।''[20] गाँधी जैसी पवित्र आत्मा का रक्त पान करके भी साम्प्रदायिकता की प्यास तृप्त नहीं हुई। स्वतन्त्र भारत के 46-47 वर्षों के भीतर समय-समय पर अनेक बहानों से साम्प्रदायिकता खूब खेलती और सामुदायिक विघटन का कारण बनती रहती है। भारत का साम्प्रदायिक इतिहास बताता है कि अत्यन्त सामान्य कारणों से समय-समय पर उपद्रवों की आग भड़क उठती है जिसमें सैकड़ों, हजारों ही नहीं, कभी-कभी असंख्य व्यक्ति हताहत होते हैं। धन-सम्पत्ति की अपार क्षति होती है। इसके अतिरिक्त पैशाचिकता ओर बर्बरता का नग्न नृत्य होने लगता है। रक्त की नदियाँ बहने लगती है। लूटपाट और अग्निकाण्ड, मारकाट, बलात्कार कुछ भी बाकी नहीं रहता। मानव आनन-फानन में दानव बन बैठता है। ''धर्म और सम्प्रदाय खतरे में है'' इस नारे से बहक कर पढ़ा-लिखा समझदार व्यक्ति भी जघन्य कृत्य करने को तत्पर हो उठता है, निरक्षर और अन्धविश्वासियों का तो कहना ही क्या। ''जय श्रीराम'' और ''अल्ला हो अकबर'' का उद्घोष करने वाले लोग धर्म के नाम पर निरपराध भाई-बहनों का रक्त बहाने में रत्ती भर नहीं शर्माते। कैसी भयंकर विडम्बना है यह धर्म की।

(7) अनेकानेक धर्म गुरुओं का प्रकटन : जब समाज में अनेकानेक धर्मगुरुओं का प्रादुर्भाव हो जाता है, तब प्रायः उनमें धार्मिक मतों के सम्बन्ध में विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। प्रायः प्रत्येक धर्मगुरु अपने मत को सर्वश्रेष्ठ मत मानता है और अन्य मतों की कटु आलोचना करता है। कुछ धर्मगुरु अपने मत को एकमात्र सत्य होने का एकाधिकारी दावा करते हैं। यथा, ईसाई धर्म के प्रवर्तक महात्मा ईसा का मत है कि उनके द्वारा प्रवर्तित ईश्वर विषयक चिन्तन ही सर्वोत्कृष्ट चिन्तन है, अतः उनके द्वारा बताये गये मार्गों का जो अनुसरण करेगा उसका ही कल्याण होगा। ईसा ने मनुष्यों में अपने प्रति भक्ति का भाव और यह विश्वास उत्पन्न किया है कि - ''मैं ही कर्त्ता हूँ, मैं ही प्रकाश हूँ, मैं ही मार्ग हूँ, मैं ही पुनरुत्थान हूँ।'' इस्लाम धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद का साधिकार दावा है कि इस्लामिक धर्म सिद्धान्त के आधार पर ही ईश्वर की कृपा प्राप्त की जा सकती है। इस्लाम धर्मानुयायी कुरान को स्वतः प्रमाण ग्रन्थ मानते हैं। इसी तरह एक ही धर्म के विभिन्न धर्मगुरुओं में धार्मिक मतों के सन्दर्भ में एकमतता नहीं होती है। प्रत्येक धर्मगुरु अपने धर्म-चिन्तन को अद्वितीय एवं मोक्ष अथवा ईश्वर की कृपा प्राप्त करने का प्रमुख मार्ग मानता है। कभी-कभी कुछ धर्मगुरु अपने को अवतारी पुरुष, ईश्वर-पुत्र, प्रॉफेट, मसीह, पैगम्बर या नबी के रूप में उद्घोषित करते हुए पाये जाते हैं। वे लोगों में सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को त्यागकर अपने शरण में आने का उपदेश देते हैं। इस सन्दर्भ में वे उनको सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देने और किसी प्रकार का शोक न करने का भी उपदेश देते हैं।[21] महात्मा ईसा ने स्पष्ट शब्दों में कहा है - ''जीवन और सच्चाई का मार्ग मैं ही हूँ। बिना मेरे द्वारा कोई भी पिता के पास नहीं पहुँच सकता।''[22]

यदि सभी धर्म गुरु अपने-अपने धर्म को एकमात्र सत्य मानें तो हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम इत्यादि के बीच कौन और कैसे निबटारा करेगा? सभी धर्म स्वयं को एकमात्र सत्य कहलाने के लिए आपस में इतना झगड़ने लगेंगे कि आपस में कलह से धर्म के स्थान पर अधर्म का ही बोलबाला हो जाएगा। संघर्ष होने लगेगा और अन्ततः सामाजिक एवं सामुदायिक विघटन का ताण्डव नृत्य होने लगेगा। वर्तमान समय में हम सभी विभिन्न धर्मगुरुओं को अपने-अपने धर्म को एकमात्र सत्य धर्म मनवाने के सन्दर्भ में आपस में संघर्षरत देखते हैं। इतिहास साक्षी है कि धर्मगुरु समाज में अपने मत को स्थापित करने के सन्दर्भ में आपस में सदैव लड़ते रहे हैं, एक-दूसरे पर वाक प्रहार करते रहे हैं तथा कदाचित हिंसात्मक युद्ध भी करते रहे हैं।

निष्कर्ष : इस शोध निबन्ध में यह दर्शाया गया है कि धर्म जो सामाजिक संगठन का मेरुदण्ड है, मानवीय अधोवृत्ति के कारण सामाजिक विघटन का महत्वपूर्ण कारण बन जाता है। मानवीय अधोवृत्ति धर्म-संरचना को विलोमात्मक स्थिति में लाने के लिए उत्तरदायी है। इसी प्रवृत्ति के कारण मानव में स्वार्थ एवं अस्मिता-विभुक्षा जैसी मानसिकताओं का जन्म होता है। धर्म ही क्या यदि मानव को कोई धर्मेतर सिद्धान्त भी मिल जाता है तो अपनी अधोवृत्ति के कारण वह उसे भी विरूपित करके समाज में विभाजन और संघर्ष की स्थिति पैदा कर देता है।

सन्दर्भ

1. डी. क्रेच एवं आर.एस. क्रचफील्ड, 'थीअरि एण्ड प्रॉब्लम्स ऑफ सोशल साइकॉलोजी', 1978, एमसीग्रा हिल बुक कम्पनी, पृ. 152.
2. ''क्रूसेड'' शब्द का उद्गम स्रोत लैटिन भाषा का शब्द ''क्रक्स'' है जिसका तात्पर्य ''क्रास'' है। यह ईसाई धर्म का प्रतीक है।
3. रनासिमेन स्टिवेन, 'ए हिस्ट्री ऑफ दि क्रूसेड्स', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987, वाल्यूम 8, पृ. 468.
4. त्रिपाठी बंशीधर, 'मुस्लिम समुदाय और भारतीय राजनीति', त्रिपाठी प्रकाशन, अकबरपुर, केराकत, जौनपुर, 1990, पृ. 94.
5. वही, पृ. 95-96.
6. वही, पृ. 97.
7. रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में सन्त तुलसीदास ने इसकी ओर स्पष्टतः संकेत किया है -

   ''कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
   दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किये बहु पंथ।।'' (6:97क)
8. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दरदास, पृ. 147
9. सुन्दर उलटी बात है समुझै चतुर सुजान।
   सबै काढ़ै पकरि कै या मिनकी के प्रान।। -सुन्दर ग्रन्थावली, अंक 20, साखी 7
10. गुप्त एन.एल.(सं.) 'नेहरू ऑन कम्यूनलिज्म', दिसम्बर, साम्प्रदायिकता विरोधी कमिटी, 1965, पृ. 206.
11. वही, पृ. 222.
12. वही, पृ. 253.
13. वही, पृ. 27.
14. मेहता अशोक और अच्यूत पटवर्धन, 'कम्यूनल ट्राइएंगिल', किताबिस्तान, सेकेण्ड रिवाइज्ड एडिशन, जनवरी 1, 1942, पृ. 66.
15. जमिल-उद्-दिन अहमद, एम. अशरफ, (संकलित एवं सम्पादित) 'सम रीसेन्ट स्पीचेज ऐण्ड राइटिंग्स ऑफ मास्टर जिना', पंचम संस्करण, जनवरी 1, 1952, पृ. 155.
16. चाँद एस.एम., 'महात्मा गांधी और साम्प्रदायिक एकता', 1970, पृ. 88.
17. दादा धर्माधिकारी, 'सर्वोदय दर्शन, 1957', सर्वसेवासंघ प्रकाशन, वाराणसी, 2013, पृ. 210-211.
18. वही, पृ. 214.
19. वही, पृ. 221-222
20. प्रसाद राजेन्द्र, 'खण्डित भारत', प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, जनवरी 1, 2018, पृ. 190-191.
21. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
    अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। -श्रीमद्भगवद्गीता, 18.66
22. जॉन, 14.6

सहायक पुस्तकें :

1. हार्डन, जॉन ए., 'रिलिजन्स ऑफ दि वर्ल्ड', मैरिलैण्ड, न्यूमैन, वेस्टमिनिस्टर, 1963.
2. हाल्ट, थामस फोर्ड, 'दि सोशियोलॉजी ऑफ रिलिजन', दि ड्राइडेन प्रेस, इंक, न्यूयार्क, 1948.
3. लेवी, रियूबेन, 'सोशल स्ट्रक्चर ऑफ इस्लाम', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1957.
4. राबर्टस, कीथ, ए., 'रिलिजन इन सोशियोलाजिकल पर्सपेक्टिव', डोरसे प्रेस, न्यूयार्क, 1984.
5. राबर्टसन, आर., 'दि सोशियोलॉजिकल इन्टरप्रिटेशन ऑफ रिलिजन', आक्सफोर्ड, 1970.
6. वरनन, ग्लेन एम., 'सोशियोलॉजी ऑफ रिलिजन', मैकग्रा हिल, 1960.
7. यिंगर, मिल्टन जे., 'रिलिजन, सोसाइटी ऐण्ड दि इन्डिविजुअल', दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1957.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारतीय संघवाद : सहकारी संघवाद से प्रतिस्पर्द्धी संघवाद की ओर

❑ प्रोफेसर पंकज कुमार
❖ डॉ. जितेन्द्र कुमार पाण्डेय

सूचक शब्द : संघवाद, सहकारी संघवाद, प्रतिस्पद्धी संघवाद, राजकोषीय संघवाद, वस्तु एवं सेवा कर, नीति आयोग, बहुलवाद, आपात उपबन्ध

संघवाद राष्ट्र और राज्य निर्माण का एक गतिशील सिद्धान्त है। मुख्यतः यह संस्थागत राजनीतिक सहयोग और सामूहिक सह-अस्तित्व के लिए एक संरचना है। संघीय व्यवस्था केन्द्र और राज्य के बीच संतुलन बनाये रखने का कठिन कार्य करती है। कोई भी कानूनी या संस्थानिक फार्मूला संघीय व्यवस्था के सुचारू रूप से कार्य करने की गारंटी नहीं दे सकता। इसकी सफलता के लिए जनता और राजनीतिक प्रक्रिया को पारस्परिक विश्वास, सहयोग तथा सहनशीलता की भावना पर आधारित कुछ गुणों, मूल्यों और संस्कृति का विकास करना चाहिए। स्वतन्त्रता के पश्चात् संघवाद की धारणा मजबूत केन्द्र एवं भारत की एकता को सुनिश्चित रखने की चिन्ता से प्रेरित थी, लेकिन मजबूत केन्द्र एवं कमजोर राज्यों के संघ ने ठीक से काम नहीं किया है। बदलते सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य एवं कोरोना संकट के वर्तमान अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि इस वैश्विक महामारी से निपटने के लिए केन्द्र एवं राज्यों के बीच आपसी सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। अब यह धारणा बनी है कि मजबूत राज्य ही मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। आज राज्यों को देश का ही नहीं, बल्कि देश भर के नागरिकों के जीवन में सुधार का भी वाहक माना जा रहा है। विविधताओं और क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांगों के प्रति संवेदनशील तथा उत्तरदायित्व राजनीतिक व्यवस्था ही सहकारी एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद का आधार है।

''**हम देश** में सहयोगात्मक संघवाद को बढ़ावा देना चाहते हैं। साथ ही, हम राज्यों में प्रतिस्पर्धा की भावना भी चाहते हैं। मैं इसे संघवाद, सहकारिता और प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद का नया रूप कहना चाहता हूँ।''

– प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी[1]

संघीय शासन प्रणाली ऐसे विशाल एवं बहुलवादी राज्यों के अनुकूल है, और बेहतर शासन की गारंटी है, जहाँ विविध प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषायी एवं क्षेत्रीय विविधताएँ या विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।[2] संघवाद में कोई ऐसे निश्चित और कठोर सिद्धान्त नहीं होते हैं, जो प्रत्येक ऐतिहासिक परिस्थिति में समान रूप से लागू हों। शासन के सिद्धान्त के रूप में संघवाद विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करता है। फिर भी संघवाद की कुछ मूलभूत अवधारणाएँ/ विशेषताएँ हैं।

1. दोहरी शासन प्रणाली : निश्चित रूप से संघवाद एक संस्थागत प्रणाली है जो दो प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं को समाहित करती है। इसमें एक प्रांतीय स्तर की होती है और दूसरी केन्द्रीय स्तर की। प्रत्येक सरकार अपने क्षेत्र में स्वायत्त होती है। कुछ संघीय देशों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होती है पर भारत में इकहरी नागरिकता है।

2. शक्तियों का विभाजन : केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन संघीय सरकार की मुख्य विशेषता है। राष्ट्रीय महत्व के विषयों-जैसे प्रतिरक्षा और मुद्रा का उत्तरदायित्व संघीय या केन्द्रीय सरकार का होता है। क्षेत्रीय या स्थानीय महत्व के विषयों पर प्रांतीय या राज्य सरकारों का दायित्व होता है।

3. लिखित एवं सर्वोच्च संविधान : संघीय सरकार का जन्म संविधान से होता है। प्रत्येक शक्ति कार्यपालिका, विधायी या न्यायिक चाहे वह संघ का हो या राज्यों की संविधान के अधीन होती है और संविधान द्वारा नियंत्रित होती है।

4. स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका: केन्द्र और राज्यों के मध्य किसी टकराव को रोकने के लिए एक स्वतन्त्र न्यायपालिका की व्यवस्था होती है जो संघर्षों का समाधान करती है। न्यायपालिका को केन्द्रीय सरकार और राज्यों के बीच शक्ति के बँटवारे के संबंध में उठने वाले कानूनी विवादों को हल करने का

❑ प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
❖ सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मगरहां, मीरजापुर (उ.प्र.)

अधिकार होता है।[3]

हमारे संविधान द्वारा जिस राजनीतिक प्रणाली को अपनाया गया है उसमें संघीय राज्य व्यवस्था के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। हमारा संविधान अपने देश की सर्वोच्च विधि है एवं संघ और राज्य सरकार तथा उनके विभिन्न अंग संविधान से ही प्राधिकार प्राप्त करते हैं। इन बुनियादी लक्षणों के कारण ही सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान को संघात्मक कहा है।[4] यद्यपि हमारे संविधान में संघवाद के सभी लक्षण विद्यमान हैं किन्तु यह विश्व की आदर्श संघीय व्यवस्था से कुछ मूलभूत बातों में भिन्न है।

1. अवशिष्ट शक्तियाँ : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 248 के अंतर्गत अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र सरकार को प्रदान की गयी हैं, जबकि आदर्श संघीय व्यवस्था में यह राज्यों के पास होती है।

2. राज्य सभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व : संघीय विधानमण्डल के दूसरे सदन में प्रायः राज्यों का समान प्रतिनिधित्व रहता है। जैसे अमेरिका के द्वितीय सदन सीनेट में प्रत्येक राज्य दो-दो प्रतिनिधि भेजते हैं परन्तु भारत की राज्यसभा में राज्यों को प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर नहीं बल्कि जनसंख्या के आधार पर दिया गया है जो संघात्मक प्रणाली के सिद्धान्त के विपरीत है।

3. आपात उपबंध : संविधान में केन्द्र को अत्यन्त शक्तिशाली बनाने वाले कुछ आपातकालीन प्रावधान हैं, जो लागू होने पर हमारी संघीय व्यवस्था को एक अत्यधिक केन्द्रीकृत व्यवस्था में बदल देते हैं। आपातकाल के दौरान शक्तियाँ कानूनी रूप से केन्द्रीकृत हो जाती हैं। संविधान के अनुच्छेद 352, 356 तथा 360 के अनुसार राष्ट्रपति आपात स्थिति की घोषणा कर सकते हैं।[5]

4. सामान्य स्थितियों में भी केन्द्र सरकार की अत्यन्त प्रभावी वित्तीय शक्तियाँ और उत्तरदायित्व हैं। सबसे पहले आय के प्रमुख संसाधनों पर केन्द्र सरकार का नियंत्रण है। इस प्रकार केन्द्र के पास आय के अनेक संसाधन हैं और राज्य अनुदानों और वित्तीय सहायता के लिए केन्द्र पर आश्रित हैं।

इन प्रावधानों में संघीय सरकार की शक्ति पर इतना अधिक बल दिया गया है कि उन सिद्धान्तों पर भी प्रभाव पड़ता है जो संघवाद के बुनियादी लक्षण माने जाते हैं। इसलिए कई विद्वान् उसकी आलोचना करते हैं। के0सी0 वेयर ने इसे संघीय विशेषताओं वाला एकात्मक संविधान कहा।[6] एम0वी0 पायली ने कहा, ''भारतीय संघवाद का ढाँचा संघात्मक है, लेकिन इसकी आत्मा एकात्मक है।''[7] विधि विशेषज्ञ डी0डी0 बसु ने कहा ''भारत का संविधान न तो शुद्ध रूप से संघीय है और न शुद्ध रूप से सकारात्मक, यह दोनों का मिश्रण है। यह एक नए प्रकार का संघ है। इसमें यह सिद्धान्त अर्न्तनिहित है कि संघीय होते हुए भी राष्ट्रीय हित सर्वोच्च होना चाहिए।[8]

वस्तुतः कोई भी विद्वान जो निष्पक्ष और सूक्ष्म तरीके से भारत के संविधान का अध्ययन करता है, तो यह स्वीकार करता है कि आज राजनीति विज्ञान में संघीय प्रणाली के विभिन्न प्रकार हो सकते हैं वह यह देखे बिना नहीं रह सकता है कि भारत का संविधान अत्यन्त संघीय है। वस्तुतः भारतीय संघ इस विचार को परिलक्षित करता है कि विभिन्न सामाजिक या सांस्कृतिक पर्यावरण में संस्थाएँ एक प्रकार की नहीं होती हैं, और न ही सबका ऐतिहासिक प्रयोजन समान होता है।[9] वस्तुतः भारतीय संघवाद दो परस्पर विरोधी-विचारधारा का समन्वय है।

1. शक्तियों का एक सामान्य विभाजन जिसके अन्तर्गत राज्यों को अपने-अपने क्षेत्रों में स्वायत्ता मिली हुई है। उन्हें राजस्व उगाही करने की पर्याप्त शक्ति भी प्रदान की गई है।

2. राष्ट्रीय एकता और अखण्डता तथा विकास को गति प्रदान करने हेतु मजबूत संघ सरकार की आवश्यकता को स्वतंत्रता के 75 वर्ष बाद भी आवश्यक समझा जाता है। इसलिए भारतीय संघवाद का मूल्यांकन इन्हीं दो आधारों पर किया जाना चाहिए। उच्च्तम न्यायालय ने भी संविधान का निर्वचन करते हुए इन दो विपरीत विचारों का परस्पर प्रभाव स्वीकार किया है। स्वयं संविधान के अनुच्छेद 1 में यह कहा गया है कि भारत राज्यों का संघ है और संविधान की व्याख्या करते समय इस बात को दृष्टि में रखना चाहिए संघ की घटक इकाइयों को भी उसी प्रकार की कुछ शक्तियाँ है जैसे संघ की है। इस विषय पर एक समुचित नीति विकसित करते हुए संविधान निर्माताओं ने तीन मुख्य विचारों को ध्यान में रखा था।

पहला – भारत के व्यापक हित में व्यापार, वाणिज्य और समागम का मुक्त प्रवाह होना चाहिए।

दूसरा – प्रान्तीय हितों की अवहेलना नहीं होनी चाहिए और

तीसरा – संकट के समय संघ को भारत के किसी भाग में उत्पन्न समस्या को सुलझाने हेतु हस्तक्षेप की शक्ति

होनी चाहिए। किन्तु विद्वान इस तथ्य की उपेक्षा कर देते हैं और संघवाद का मूल्यांकन और व्याख्या साधारणतः पर औपचारिक शैली में करते हैं जिसके अंतर्गत या तो राज्यों के अधिकारों का परम्परागत पक्ष लिया जाता है, या मजबूत केन्द्र की आधुनिक अवधारणा की वकालत की जाती है, या फिर राज्यों और संघ सरकार के बीच सहयोग और प्रतिस्पर्धा को कसौटी मानकर संघवाद के प्रकृति की व्याख्या की जाती है।[10] इस आधार पर विद्वानों ने निम्नलिखित आधारों पर भारतीय संघवाद की प्रकृति का विश्लेषण किया है।

केन्द्रीकृत संघवाद का युग : सन् 1950 से 1967 तक का समय केन्द्रीकृत संघवाद का युग कहा जा सकता है। सर आइवर जेनिंग्स इस धारा के प्रतिनिधि विचारक हैं। जब संविधान सभा में संघीय स्वरूप पर सहमति बनाने की कोशिश हो रही थी, तो उसी समय अमेरिका सहकारी संघवाद के दौर से गुजर रहा था। इसके विपरीत भारत में जब संघवाद के प्रयोग की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तभी से इसमें केन्द्रीकृत संघ की विशेषताएँ विद्यमान थीं। जेनिंग्स ने कहा ''भारत ऐसा संघ राज्य नहीं जिससे एकात्मक लक्षण सहायक लक्षण के रूप में दिए गए हों। यह तो एकात्मक राज्य है जिसमें संघात्मक लक्षण सहायक लक्षण के रूप में दिए गए है।[11] हालांकि इस चरण में केन्द्र और राज्यों के आपसी संबंध मधुर बने रहे और उनमें उग्र मतभेद उभरकर सामने नहीं आए। इस दौर में केन्द्रीकरण की सशक्त प्रवृतियों के फलस्वरूप भारतीय संघवाद राजनीतिक समन्वय और आर्थिक विकास के दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना। शक्तिशाली केन्द्र को लेकर अपने आग्रह के बावजूद संविधान बनने के बाद नेहरू ने अधिकांश मामलों में राज्यों की सलाह ली। उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान 378 पत्र राज्यों को लिखे।[12]

सहयोगी संघवाद : ग्रैनविल ऑस्टिन और ए0एच0विर्च इस धारा के मुख्य विचारक हैं। ऑस्टिन ने कहा है कि भारत की संविधान सभा वह पहली सभा थी जिसने शुरू में सहकारी संघवाद की धारणा को अपनाया। इसकी विशेषता है संघीय तथा क्षेत्रीय सरकारों की अधिकाधिक आपसी निर्भरता जो साथ ही संघीय तत्व को बरकार भी रखती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सहकारी संघवाद की धारणा को पुनः राजनीतिक शब्दावली में पी0 चिदम्बरम ने सम्मिलित किया जब वे संयुक्त मोर्चा सरकार में वित्त मंत्री थे। ऑस्टिन के अनुसार प्रान्तीय सरकार बहुत हद तक केन्द्रीय नीतियों के लिए प्रशासनिक अभिकरण है। उन्होंने ए0एच0 विर्च को उद्धत किया जिन्होंने सहकारी संघवाद को सामान्य तथा क्षेत्रीय सरकारों में प्रशासकीय सहयोग की प्रथा तथा सामान्य सरकारें शर्त वाले अनुदानों के प्रयोग से प्रायः उन विषयों के विकास को बढ़ाती हैं जो संवैधानिक रूप से क्षेत्रों को सौपे गए हैं- सहकारी संघवाद कहलाता है।[13] आस्टिन की मान्यता है कि केन्द्र एवं प्रांतीय सरकारों में केवल प्रशासनिक सहयोग ही नहीं अपितु राजनीतिक सहयोग भी पाया जाता है। एम0सी0 सीतलवाड के असार चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् शक्ति का सन्तुलन राज्यों की ओर झुका। नेहरू के बाद मुख्यमंत्री शक्ति के केन्द्र बन गए और केन्द्र को प्रभावित करने लगे। कांग्रेस में विभाजन के पश्चात् लोकसभा में शासक दल अल्पमत में आ गया जिससे केन्द्रीय नेतृत्व को राज्यों की मांगों को मानना पड़ा। केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों के उपरान्त भी सहयोग बना रहा और सहयोगी संघवाद के युग का सूत्रपात हुआ। सहयोगी संघवाद का प्रमुख लक्षण केन्द्र और राज्यों की सरकारों की एक दूसरे पर निर्भरता है।[14] चौथे आमचुनाव के बाद श्रीमती इन्दिरा गाँधी को तमिलनाडु के सी अन्नादुराई, उड़ीसा के आर0एन0 सिंह देव, उत्तर प्रदेश के चौधरी चरण सिंह तथा पंजाब के गुमनाम सिंह जैसे गैर कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों का विश्वास प्राप्त हुआ।

सौदेबाजी संघवाद : प्रोफेसर मॉरिस जोन्स इस प्रतिमान के प्रतिनिधि विचारक हैं। संघवाद का यह प्रतिमान मुख्यतः तीसरी दुनिया के देशों में पाया जाता है। पश्चिमी देशों में दलीय प्रणाली में सहकारी संघवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। किन्तु भारत सहित तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में ऐसे दल विकसित हुए जो स्तरीय प्रकृति रखते हैं। इसमें कुछ राष्ट्रीय स्तर पर और कुछ क्षेत्रीय स्तर पर संगठित होते हैं। इन देशों में सत्ता की प्राप्ति की संभावनाओं एवं अवसरों के कारण बहुत से दल राष्ट्रीय हितों के विरूद्ध स्थानीय हितों को प्राथमिकता देते हुए सौदेबाजी का सहारा लेने लगे। जोन्स का कहना है कि भारत में जो संघवाद है वह सौदेबाजी वाले संघ की धारणा का उदाहरण है। वे कहते हैं कि भारत में संघवाद का वह रूप है जिसमें कड़ी प्रतियोगिता वाली सौदेबाजी सम्मिलित है।[15] छठे आम चुनाव के बाद भारतीय राजनीति में आमूल-चूल बदलाव आया। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई और राज्यों में विविध दलों की

सरकारों की स्थापना हुई। केन्द्र की जनता सरकार एक दुर्बल सरकार थी क्योंकि यह विभिन्न दलों से बनी एक गठबन्धन सरकार थी। अतः राज्यों की सरकारों ने सौदेबाजी करने का निरन्तर प्रयास किया। यहाँ तक गैर जनता सरकारों ने 'राज्य स्वायत्तता' का नारा बुलंद किया। वित्तीय स्रोतों के लिए पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने सदैव केन्द्र सरकार से दबाव एवं सौदेबाजी की भाषा में बातचीत करने का प्रयास किया। 1989-1999 के चुनाव में भी भारत में संघीय व्यवस्था इसी प्रतिमान पर कार्य करती रही। विश्वनाथ प्रताप सिंह, चन्द्रशेखर, पी0वी0 नरसिंहाराव, एच0डी0 देवगौड़ा, इन्द्रकुमार गुजराल तथा अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनने वाली सभी सरकारे अल्पमत की थीं, जिन्हें सत्ता में बने रहने के लिए क्षेत्रीय दलों का सहारा लेना पड़ा।[16] इसी कारण संघीय सरकार को क्षेत्रीय दलों के दबाव में रहना स्वाभाविक था।

भारतीय संघवाद के ये तीनों प्रारूप ऐसे नहीं है कि अलग-अलग समय में प्रकट होते हैं। इनका उद्भव बदलती हुई राजनीति एवं बदलती सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार होता रहा है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक से दुनिया की राजनीति के साथ भारतीय राजनीति में गुणात्मक परिवर्तन आए हैं। यह परिवर्तन वैश्वीकरण, सुरक्षा की चाह, आर्थिक सुधार समावेशी विकास की राजनीति, क्षेत्रीय आकांक्षाओं के उभार, और शासन के त्रिस्तरीय संरचना के सृजन के फलस्वरूप हुआ। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद की प्रकृति में पुनः बदलाव आया। वर्ष 2014 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में नई सरकार का गठन हुआ। नई सरकार ने सहकारी संघवाद की अवधारणा को पुनः मजबूत किया, और इसको साकार करने के लिए कई नीतिगत निर्णय/पहल कीं जिससे राज्यों के विकास एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिला।

सहयोगात्मक और प्रतिस्पर्धी संघवाद : सहयोगी संघवाद उस उदार और जीवंत लोकतंत्र का द्योतक है, जिसकी मूल प्रकृति ही सहभागिता की है। इसमें सहयोग की भावना मुखर होती है और शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया जाता है।

सहयोगात्मक संघवाद के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य सरकारें परस्पर, समन्वय और सहकारिता के आधार पर काम करती हैं। इसमें सहभागिता की भावना प्रबल होती है। एक सशक्त लोकतंत्र और मजबूत राष्ट्र के लिए सहकारी संघवाद ही प्रासंगिक है क्योंकि राज्यों और स्थानीय सरकारों की उपेक्षा करके न तो लोकतंत्र में पारदर्शिता लायी जा सकती है और न ही राष्ट्र को मजबूती प्रदान की जा सकती है। जैसा की प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा 'सशक्त एवं प्रतिस्पर्धी राज्य मिलकर ही सशक्त राष्ट्र का निर्माण करते हैं'।[17]

वर्तमान सरकार ने सहयोगात्मक एवं प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद की अवधारणा को सुदृढ़ किया है। यह बदलाव समसामयिक आवश्यकताओं तथा विकास की प्राथमिकताओं के कारण स्वाभाविक था। संघवाद का बुनियादी सिद्धान्त तो वही रहा किन्तु नए घटनाक्रमों एवं नयी पहल के कारण इसके स्वरूप में सकारात्मक बदलाव आया।[18] इन पहलों में पहला है- योजना आयोग के स्थान पर भारतीय राष्ट्रीय परिवर्तन संस्थान (नीति आयोग) की स्थापना जिसका गठन जनवरी 2015 में किया गया।

नीति आयोग : नीति आयोग जिसकी स्थापना 1 जनवरी 2015 को किया गया। यह नयी संस्था सार्वजनिक और भारत सरकार के सीमित दायरे से परे जाकर विकास की समग्र पहल द्वारा शक्ति प्रदान करने वाले समग्र वातावरण का पोषण करते हुए विकासमान प्रक्रिया में उत्प्रेरक का काम करती है। इस संस्था की बुनियादी अवधारणाा है- **सहकारी** संघवाद के सिद्धान्त पर जोर देते हुए राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास, प्राथमिकता वाले, क्षेत्रों और नीतियों का एक साझा दृष्टिकोण विकसित करना।

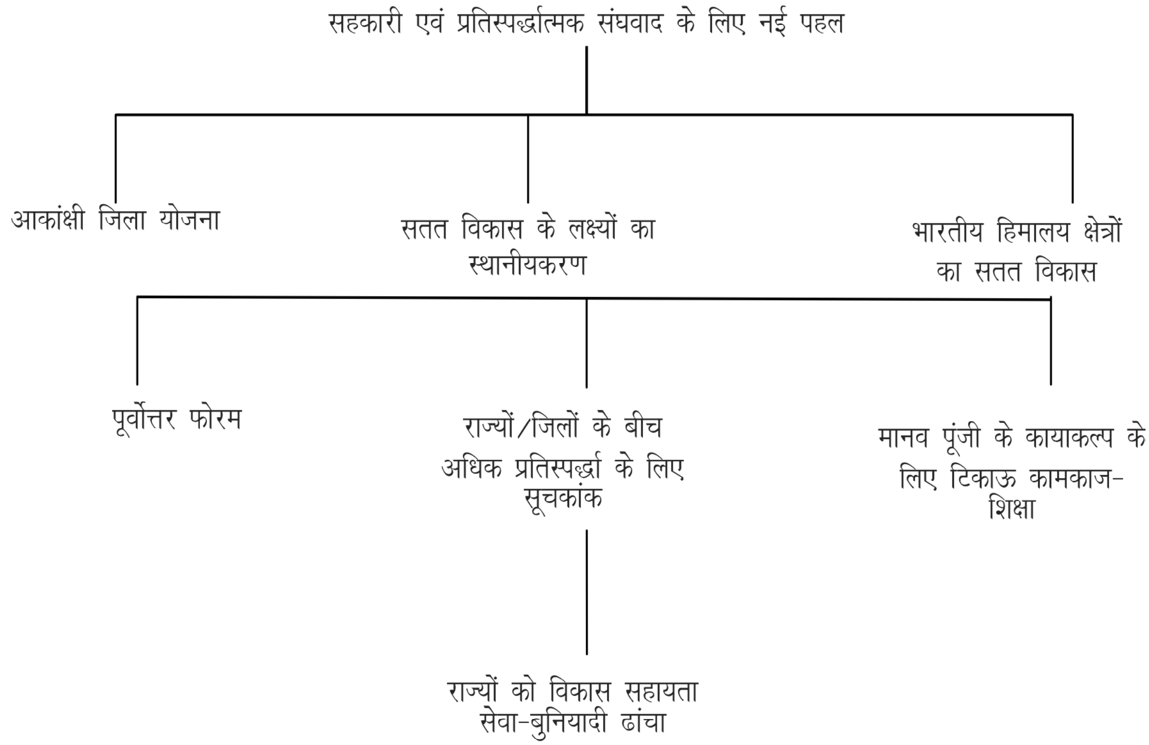

नीति आयोग प्रधानमंत्री और मुख्यमन्त्रियों की प्रेरक शक्ति बनेगा तथा 'राष्ट्रीय एजेण्डा' का आधार बनेगा, इस तथ्य की महत्ता स्वीकार करते हुए कि मजबूत राज्य ही मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकता है, पहल और क्रियाविधि के माध्यम से सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना, यह सुनिश्चित करना कि जो क्षेत्र विशेष रूप से इसे सौपे गए हैं, उनकी आर्थिक कार्यनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों को सम्मिलित किया जाए।[19] नीति आयोग ने सहयोगी कार्यक्रमों एवं राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के साथ लगातार जुड़े रहने की प्रक्रियाओं के द्वारा सहयोगी संघवाद को सुदृढ़ बनाने हेतु कई पहल की हैं। इसमें प्रधानमंत्री/कैबिनेट मंत्रियों के साथ सभी मुख्यमंत्रियों की बैठकें, पिछड़े जनपदों के विकास के लिए आकांक्षी जिला कार्यक्रम करना, विभिन्न क्षेत्रों में गहनता के साथ विषय आधारित कार्य करना तथा पूर्वोतर हिमालयी राज्यों एवं द्वीपों के विकास के लिए क्षेत्र विशेष योजनाएँ बनाना सम्मिलित हैं।[20]

नीति आयोग भारत सरकार के लिए रणनीतिक एवं दीर्घकालीन नीतियों तथा कार्यक्रम बनाने के अलावा केन्द्र, राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को प्रासंगिक तकनीकी सलाह भी उपलब्ध करता है। नीति आयोग के आधारभूत ढाँचे के विकास के लिए तथा केन्द्र राज्य साझेदारी मॉडलः राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को विकास सहयोग की सेवा तथा सस्टेनेबल एक्शन फॉर ट्रांसफार्मिंग ह्यूमन कैपिटल (साथ) कार्यक्रम जैसी निजी-सार्वजनिक साझेदारी में नयी दिशा देने के लिए मॉडल तथा कार्यक्रम चलाए गए है। आयोग ने नयी पहल करते हुए राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों का प्रदर्शन बेहतर करने के उद्देश्य से प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। नीति आयोग द्वारा आरम्भ किए गए कुछ सूचकांक शिक्षा सूचकांक, स्वास्थ्य सूचकांक, समग्र जल प्रबन्धन सूचकांक, सतत विकास के लक्ष्य सूचकांक एवं आकांक्षी जिलों के प्रदर्शन हेतु डेल्टा रैकिंग है। विचार यह है कि जब जिले एक दूसरे से स्पर्धा करेंगे तो राज्य अधिक मजबूत बनकर उभरेगें और जब राज्य एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करेंगे तो राष्ट्र अधिक सशक्त होगा।

वित्त आयोग की नयी भूमिका भारत में राजकोषीय संघवाद के लिए नीतिगत सुझाव : वित्त आयोग, भारत के संविधान के अनुच्छेद 280 के अंतर्गत गठित किया जाने वाला एक संवैधानिक निकाय है। यह संघ और

राज्यों के वित्त साधनों की स्थिति की समीक्षा करने, और एक स्थिर स्थायी राजकोषीय परिवेश रखने के लिए सुझाव देने हेतु, भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक पाँच वर्ष बाद गठित किया जाता है। चौदहवाँ वित्त आयोग वाई0वी0 रेड्डी की अध्यक्षता में गठित आयोग ने 2015-16 से 2020-21 की अवधि के लिए अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की। 14वें वित्त आयोग ने केन्द्रीय विभाज्य पूल में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत बढ़ाकर 42 प्रतिशत कर दिया है जो उर्ध्वाधर कर अंतरण का अब तक सबसे अधिक है।[21] असयोग ने राज्य हिस्से के वितरण के लिए नए क्षैतिज पुल का भी सुझाव दिया है। 15वें वित्त आयोग ने भी 2021-2026 की अवधि के लिए 14वें वित्त आयोग के समान ही उर्ध्वाधर अंतरण की सिफारिश की है। दोनों वित्त आयोग ने कर अंतरण ने ऐसे दूरगामी परिवर्तन किये हैं जो राज्यों को अधिक स्वायत्तता देते हुए देश को बेहतर राजकोषीय संघवाद की ओर ले जायेगा।

वस्तु एवं सेवा कर (जी0एस0टी0) : वस्तु एवं सेवा कर जिसको आजादी के बाद देश का सबसे बड़ा वित्तीय सुधार माना जा रहा है, जो 13 वर्षों के लम्बे सतत प्रयास के बाद अंततः 1 जुलाई 2017 को लागू हुआ। जीएसटी देश को बहुस्तरीय और रूढ़ कर ढांचे से मुक्त कर उसके स्थान पर ऐसी व्यवस्था कायम करेगा, जिससे देशभर में साझा बाजार का निर्माण हो सके। कर की एक समान दर के माध्यम से यह सभी राज्यों को जोड़ देगा और कर इंस्पेक्टर का राज बहुत हद तक कम हो जाऐगा।[22]

जीएसटी को अनेक कारणों से व्यापक जनसमर्थन मिला है जो विशेषकर एक भारतीय बाजार सृजित करने की इसकी क्षमता, कर आधार को विस्तार प्रदान करने तथा सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने में इसकी सक्षमता के कारण है। इस कर व्यवस्था को लागू करने के पश्चात् अप्रत्यक्ष करदाताओं की संस्था में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है; तथा अनेक करदाताओं ने स्वेच्छा से जीएसटी को अपनाया है।[23] राज्यों के बीच जीएसटी आधार का वितरण उनकी अर्थव्यवस्था के आकार से मजबूती से जुड़ा हुआ है जिसमें प्रमुख उत्पादक राज्यों का यह भय समाप्त हो गया कि नई प्रणाली को अपनाने से उनके कर संग्रहण में कमी आएगी। राज्यों द्वारा देश के कुल अप्रत्यक्ष कर में से औसतन 60 प्रतिशत संग्रहित किया जाता था। यह राज्यों का अपना लगभग संपूर्ण कर राजस्व था। चूंकि 2017 में लाया गया और सेवा कर केन्द्र और राज्यों दोनों को एक साथ कर वसूलने और संग्रहीत करने की शक्ति प्रदान करता है; अतः वस्तु और सेवा कर के क्रियान्वयन हेतु संविधान में 101वाँ संविधान संशोधन किया गया।[24]

वस्तु और सेवा कर परिषद : वस्तु एवं सेवा के क्रियान्वयन हेतु संविधान के अनुच्छेद 279ए के अंतर्गत वस्तु एवं सेवाकर परिषद के गठन का प्रावधान किया गया, जो केन्द्र एवं राज्यों का संयुक्त मंच था, जिसे जीएसटी दरें, कर, उपकर छूट आदि के लिए सिफारिश करने का दायित्व दिया गया। यह नयी संस्था सहकारी संघवाद का एक अनूठा उदाहरण है। वस्तु एवं सेवा कर परिषद का प्रत्येक निर्णय बहुमत से लिया जाएगा जो किए गए भारित मतदान के तीन-चौथाई से कम नहीं होना चाहिए। किए गए कुल मतदान में केन्द्र का एक तिहाई महत्व होगा और सभी राज्यों को मिलाकर किए गए कुल मतदान का दो - तिहाई महत्व होगा। अभी तक वस्तु एवं सेवा कर परिषद द्वारा लिए गए सभी निर्णय सर्वसम्मति के लिए गए हैं और मतदान करने के विकल्प का आज तक प्रयोग नहीं किया गया।

स्पर्धी संघवाद से स्पर्धी अनुसंघवाद नगर : इतिहास से यह सीख मिलती है कि यदि समृद्ध होना है तो नगरों का निर्माण किया जाए। शहरों के अनुसंघवाद एवं भारत के विकास में नगरों का सशक्तीकरण बहुत निर्णायक हो सकता है। अब शहरी भारत देश की एक तिहाई आबादी है और यह सकल घरेलू उत्पाद का 60 प्रतिशत का उत्पादन कर रहे हैं। सभी संकेत यही इंगित कर हैं कि शहरीकरण ही भारत के विकास पथ की रचना करने जा रहा है। आने वाले समय में वित्त आयोग के लिए यह विचारणीय प्रश्न उठा रहा है। संभावना है कि नगरों को भी राज्यों की भाँति परस्पर प्रतिस्पर्धा गतिशीलता की शक्तियों को बंधन मुक्त करना होगा। भारत को अपने प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद के साथ प्रतिस्पर्धी अनुसंघवाद को भी जोड़ लेना श्रेयस्कर होगा क्योंकि राज्यों के बीच प्रतिस्पर्धा आज परिवर्तन और विकास को एक बड़ी संचालक शक्ति का रूप धारण कर रही है। यह परिवर्तन अब राज्यों और नगरों तथा नगरों के बीच प्रतिस्पर्धा के पटल पर भी दिखाई देना चाहिए।[25] ये वास्तव में स्पर्धी अनुसंघवाद की क्षमताओं की शक्तियों को फलीभूत भी कर सकते हैं।

निष्कर्ष : पिछले कुछ वर्षों से भारतीय संघीय व्यवस्था में केन्द्र और राज्य दोनों ने एक दूसरे पर विश्वास करना और एक साथ रहना सीख लिया है। भारत जिस प्रकार सहकारी एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद की तरफ बढ़ रहा है उससे एक ओर भारतीय लोकतंत्र की जड़ें गहरी और मजबूत होंगी वहीं दूसरी तरफ विकास को नई गति मिलेगी। आज भारत में जो सहकारी एवं स्पर्धी संघवाद का रूप दिखाई दे रहा है वह आजादी से पहले के भारत में आरम्भ हुए ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। एक समय संघीय व्यवस्था केन्द्र सरकार के असीमित विवेकाधीन अधिकारों वाली कठोर एकल व्यवस्था के रूप में संगठित थी, किन्तु वर्तमान सरकार द्वारा किए गए नवीन प्रयासों यथा 14वें एवं 15वें वित्त आयोग द्वारा राज्यों को लिए जाने वाले ऊध्वधिर अंतरण, नीति आयोग का गठन, जीएसटी को लागू करना जिसके लिए सर्व समावेशी जीएसटी परिषद का गठन किया गया जिससे संघीय व्यवस्था अधिक गहन हुई और विकेन्द्रीकरण को नयी दिशा मिली। आज भारतीय संघीय व्यवस्था संविधान से नियंत्रित भारतीय संघीय व्यवस्था में रूपान्तरित हो गया है जिससे सहकारी एवं प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद का स्वर्णिम युग का प्रारंभ हो चुका है। यह विकास बहुलवादी मान्यता को परिलक्षित करता है कि शासनकारनी सत्ता को अपनी प्रकृति में संघात्मक होना चाहिए क्योंकि आधुनिक समाज भी अनिवार्यतः संघात्मक होता है।

सन्दर्भ

1. आर्थिक समीक्षा 2015-2015, वित्त मंत्रालय भारत सरकार, पृ. 130
2. वीथम डेविड एवं केविन बॉयले, 'लोकतंत्र के 80 प्रश्न', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1997 पृ. 3
3. बसु डी0डी0, 'भारत का संविधान : एक परिचय', बाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, 1997, पृ. 53
4. एस0आ0बोम्मई बनाम भारत सरकार, ए0आई0आर0 1994, एस0सी0 1918
5. बसु, डी0डी0, पूर्वोक्त, पृ. 60
6. Whare K.C., 'Federal Government', Oxford University Press, London, 1951,p. 26
7. Pylee M.V., 'Science-Constitutions of the World', Universal Law Publishing Co., New Delhi, 1984, p. 187
8. Basu D.D., 'Commentry on the Constitution of India', Lexis Nexis, 2016, p.55
9. Livingston W.S., 'Federalism and Constitutional Change', Clarendon Press, Oxford University Press, 1956, pp. 6-7
10. कोठारी, रजनी, 'राजनीतिक की किताब', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 96
11. Jennings, Sir Ivor, 'Some Characteristics of the Indian Constitution', Oxford University Press, London, 1953, p. 53.
12. तिवारी, अंशुमान, 'संघवाद का इन्द्रधनुष', इण्डिया टुडे, 8 मई, 2019, पृ. 9
13. आस्टिन, ग्रैनविल, 'भारत संविधान राष्ट्र की आधारशिला' (अनुवादित), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2017, पृ. 278-79
14. वही, पृ. 282
15. Johns Morris, 'The Government and Politics in India', Hutchison University Press, London, 1984, pp. 141-142.
16. इंडिया टुडे, 20 अगस्त 2007, नई दिल्ली, पृ. 63-65
17. www.myhindilekh.in/essay on cooperative-federalism
18. कांत, अभिताभ, 'भारतीय संघवाद की व्यवस्था', योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जनवरी 2021, पृ. 30
19. भारत 2017, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली 2017, पृ. 655
20. योजना जनवरी 2021, पृ. 32.33
21. आर्थिक समीक्षा, 2014-15, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 130
22. इण्डिया टुडे, 12 जुलाई 2017, पृ. 17
23. आर्थिक समीक्षा 2017-18, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 32
24. सूचना बुलेटिन, शोध एवं सूचना प्रभाग, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, अगस्त 2018, पृ. 3
25. आर्थिक समीक्षा 2016-17, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 301

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा   Regd. No. UPHIN/1999/00955   ISSN 0974-0074
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022   UGC-CARE List-Social Sciences

मुसहर समुदाय की उर्ध्वाधर गतिशीलता हेतु सामाजिक नीतियों की भूमिका (गोरखपुर जिले के मुसहर समुदाय के विशेष सन्दर्भ में)

❑ कु. शालिनी यादव
❖ प्रोफेसर आशीष सक्सेना

सूचक शब्द : समुदाय, मुसहर समुदाय, सामाजिक गतिशीलता, सरकारी नीतियाँ, गैर सरकारी संगठन

मुसहर शब्द सुनते ही प्रायः मस्तिष्क में सामान्य सी एक धारणा बन जाती है कि एक ऐसा समुदाय जो मूस अर्थात चूहों पर अपना जीवन यापन करता हो। मुसहर समुदाय उत्तर भारत के निचले गंगा मैदान में निवास करने के साथ साथ कुछ तराई क्षेत्रों में भी निवास करते हैं। अगर बात पूर्वी उत्तर प्रदेश में करें तो यह समुदाय सर्वाधिक रूप से कुशीनगर तथा जौनपुर जिले में निवास करते हैं। आर्थिक और सामाजिक रूप से मुसहर समुदाय की पहचान दलित और पिछड़ी जातियों के रूप में की जाती रही है और इनकी निम्न दयनीय आर्थिक सामाजिक स्थिति के कारण इस समुदाय को सीमांत समूह के रूप में भी जाना जाता है। हालाँकि 1871 की प्रथम जनगणना के बाद प्रथम बार इस समुदाय को एक अलग श्रेणी में रखते हुए जनजाति का दर्जा दिया गया। इसके बावजूद आज भी मुसहर समुदाय की पहचान भूमिहीन कृषक मजदूर के इर्द गिर्द ही घूमती नजर आती है हालाँकि इनके सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए अनेक नीतियों के सहयोग लेते हुए इन्हें मुख्य धारा में सम्मिलित करने हेतु निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं तो वहीं दूसरी तरफ कुछ गैर सरकारी संगठन भी इनके सामाजिक आर्थिक सुधार हेतु निरंतर प्रयासरत हैं।

सामान्यतः समुदाय को हम इस रूप में समझ सकते है। एक निश्चित भौगोलिक सीमा के अंतर्गत निवास करते हुए सामान्य संस्कृति को साझा करते हैं और एक साथ जीवन यापन करते हैं। किंग्सले डेविस[1] समुदाय को ''सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं को सम्मिलित करने वाले क्षेत्र के रूप में परिभाषित करते हैं'' इसी प्रकार मैकाइवर एवं पेज[2] कहते हैं "एक समुदाय जो सामाजिक जीवन का एक क्षेत्र है जो कुछ हद तक सामाजिक सामंजन्स द्वारा चिन्हित है।" अतः कहा जा सकता है कि एक मानव समूह जो सीमित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए एक सामान्य परस्पर आश्रित जीवन व्यतीत करता है समुदाय कहलाता है। उदाहरण के लिए जनजाति को समुदाय माना जाता है। इस सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा कई प्रमुख अध्ययन किये गए हैं, जैसे एस. सी. दुबे (2004), एम.एन. श्रीनिवास (1952), वेरियर एल्विन (1939), विलियम क्रुक (1897) आदि। इन सभी अध्ययनों से एक सामान्य सी बात निकलकर सामने आती है, कि समुदाय में व्यक्ति या समूह निश्चित भौगालिक सीमा के अंतर्गत रहते हुए सामान्य संस्कृति के भागीदार होते हैं। मुसहर जो कि एक समुदाय के रूप में चिन्हित किये गए हैं क्योंकि ये एक भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए सामान्य भाषा एवं संस्कृति के साझेदार होते हैं। मुसहर समुदाय अपनी एक विशिष्ट नृजातीय पहचान के लिए जाने जाते हैं। प्रायः मुसहर जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है कि मुसहर दो शब्दों का मेल है, 'मूस और आहार', मूस अर्थात चूहा और आहार अर्थात खाना या ग्रहण करना। अतः यह कह सकते हैं कि ऐसे समुदाय जो चूहे को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं मुसहर कहे जाते हैं और यही विशेषता अन्य जातीय समुदायों से इनको अलग करती है। मुसहर जो कि भूमिहीन कृषक मजदूर के रूप में जाने जाते हैं जिनकी दयनीय स्थिति के कारण आज भी ये दलित, पिछड़ा एवं हाशियाकृत समुदाय के रूप में जाने जाते हैं।

प्रस्तुत लेख की विषयवस्तु गोरखपुर जिले के अंतर्गत ब्रह्मपुर ब्लाक के विश्वनाथपुर गाँव के मुसहर समुदाय पर आधारित है तथा इनके उत्थान हेतु किये जा रहे सरकारी एवं गैर सरकारी नीतियों को जानने का प्रयास किया गया है।

साहित्य सर्वेक्षण : क्रुक[3] मुसहर समुदाय की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि, ''यह एक जंगली द्रविड़ियन जनजाति है जो अवध (Province) के पूर्वी जिलों में पाई जाती है।''

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
❖ विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

क्रुक[4] नेसफ़ील्ड का हवाला देते हुए लिखते हैं कि ''नेसफ़ील्ड अपने कलकत्ता के जनजाति आधारित मोनोग्राफ के खंड LXXXVI में मुसहरों को 'मुशेरा' (Mushera) कहते हैं। मुसहरों की ब्युत्पत्ति शब्द जिसको सामान्य भाषा में ''Rat-catcher,'' अर्थात चूहा पकड़ने वाला कहते हैं जो कि पूर्णतया गलत है, क्यूंकि ''चूहा पकड़ने और खाने'' जैसी बात किसी भी जनजाति की विशिष्ट या स्थायी विशेषता नहीं है। वहीं मुसहरों को ऊपरी भारत के निवासियों द्वारा मुसहर (Rat -taker) अर्थात चूहा लेने वाला और (Musah) अर्थात rat killer अर्थात चूहा हत्यारा के रूप में उच्चारित ही नहीं किया जाता है बल्कि इनके स्थान पर Mushera का उच्चारण किया जाता है। एक पुरानी लोककथा की चर्चा करते हुए आगे क्रुक[5] लिखते हैं कि- मुसहर नाम Flesh seeker or hunter अर्थात मांस साधक या शिकारी के रूप में इन्हें सूचित करने के लिए बनाया गया है, जो कि मूसा 'Flesh' और 'Hera Seeker' से व्युत्पन्न होने के कारण है। क्रूक[6], रिजले का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "रिजले इस समुदाय को मुसहर कहना ही उचित समझते हैं।"

सिंह[7] लिखते हैं कि मुसहर सामान्यतः बिहार क्षेत्र के भागलपुर, मुंगेर, पुरनिया, गया, मुजफरपुर, चंपारण, परगना आदि क्षेत्रों में पाए जाते हैं। सिंह[8], रिजले का हवाला देते हुए लिखते हैं कि ''मुसहर छोटानागपुर की भुइयां जनजाति की एक शाखा हैं।'' नेसफ़ील्ड का हवाला देते हुए लिखते हैं कि नेसफ़ील्ड इनको (मूसा + आहार) अर्थात चूहा लेने वाला या चूहा खाने वाला समुदाय के रूप में स्वीकार करते हैं।'' सिंह[9] मुसहरों के बहिर्विवाही गोत्रों की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि- बलकुमनी या बलकमुन, दैयतिनिया, सोहलौत, रिखमुन, रिशिमुनी, तिसबरिया, बासघट, दनहरिया, सर्पुरुखा, कस्मेता, मांझी, मंडल आदि इनके उपनाम हैं। उत्तर प्रदेश के मुसहरों की चर्चा करते हुए सरकार[10] लिखते हैं कि, उत्तर प्रदेश में मुसहरों को बनमानुष, बंजारा, गोनर कहा जाता है जो कि उत्तर प्रदेश के मध्य और पूर्वी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। मुसहर प्रमुख रूप से तीन उपक्रमों में विभाजित है जिनमे क्षैतिज रूप से भगत, सकथिया, तुर्कहिया हैं। इस समुदाय में जाति अंतर्विवाह की प्रक्रिया प्रचलन में है किन्तु सामान्यतः ये अपने वंश या खानदान से बाहर ही विवाह (बहिर्विवाह) करते हैं।

सरकार[11] उत्तर प्रदेश के मुसहरों के बारे में चर्चा करते हुए लिखते हैं कि ''मुसहरों को बनमानुष, आर्य, बंजारा आदि नामों से जाता है, हालाँकि अनुसूचित जाति की सूची में इनको 'मुसहर' नाम से ही चिन्हित किया गया है। बनमानुष और बंजारा इनके पर्यायवाची शब्द हैं जबकि उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर और वाराणसी जिले में इनको मुसहर ही कहा जाता है, इस समुदाय को सुल्तानपुर के कादीपुर तहसील के पूर्वी क्षेत्रों में इनको 'बनमानुष' कहा जाता है, रायबरेली में 'गोनर' तथा फैजाबाद के क्षेत्रों में 'बंजारा' कहा जाता है।''

किसी भी समुदाय की पहचान को विकसित करने के लिए ऐतिहासिकता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मुसहरों की अपनी अलग जातीय पहचान है, जो अन्य समुदायों से इन्हें अलग करती है, इस संदर्भ में, मदन पौडेल[12] (2018:107) मुसहर समुदाय की उत्पत्ति की व्याख्या करने के लिए कई किंवदंतियों का उद्धरण देते हैं जैसे - परमेश्वर (भगवान् शिव) ने प्रत्येक जातियों में पहले आदमियों को बनाया, तभी भगवान ने घोड़ा भी दिया, इसके साथ ही आदमियों को उस घोड़े पर चढ़कर अपना काम करने हेतु उपकरण भी दिया, लेकिन मुसहरों ने घोड़े के पेट में एक जोड़ी छेद करना शुरू किया जिससे कि वे घुड़सवारी के लिए ठीक प्रकार से अपने पैरो को निर्धारित (फिक्स्ड) कर सके। परमेश्वर ने उनकी मूर्खता को देखा और श्राप दिया कि मुसहरों के वंशजों को उन चूहों पर आश्रित रहना चाहिए, इसीलिए इस समुदाय को मुसहर (चूहा मरने वाला) कहा जाने लगा। इस समुदाय से जुड़ी एक और कहानी; जब रावण बलपूर्वक सीता का हरण कर ले गया था और भगवान राम सीता को खोज रहे थे, तब उनकी भेंट शबरी से हुई, जो मुसहर समुदाय से सम्बंधित थीं और भगवान राम की अनन्य भक्त भी थीं, उन्होंने राम को प्रेमपूर्ण भोजन हेतु जूठे बेर दिया। तब राम ने शबरी से कोई इच्छा पूछी और फिर उन्होंने राम से एक पुत्र का वरदान मांगा। फिर दस महीनों के बाद एक दंपति शबरी के घर आया, जिसने धनीराम और दिनभाद्री नाम के जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया, जिन्हें आज भी मुसहर समुदाय द्वारा उनके पैतृक स्वामी के रूप में पूजा जाता है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य गोरखपुर जिले के विश्वनाथपुर गाँव के मुसहर समुदाय के सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं का अध्ययन एवं इनके उन्नयन हेतु किये जा रहे सरकारी प्रयासों का अध्ययन करना। इसके साथ ही इनके समावेशी उत्थान हेतु गैर सरकारी संगठनों की भूमिका का अध्ययन करना। विश्वनाथपुर गाँव गोरखपुर जिले के अंतर्गत सर्वाधिक मुसहर जनसँख्या वाला गाँव है,

अतः इस गाँव का चयन कर अध्ययन का आधार बनाया गया।

विश्वनाथपुर[13] गाँव की भौगोलिक संरचना : यह गाँव गोरखपुर शहर से 29 किलोमीटर दक्षिणपूर्व में ब्रह्मपुर ब्लाक के अंतर्गत आता है जिसकी कुल जनसँख्या 5356 है जिसमें 750 कुल परिवार सम्मिलित हैं और अगर बात की जाये मुसहर समुदायों की तो यहाँ इनकी कुल जनसँख्या 736 हैं 436 पुरुष एवं 300 महिलाएं सम्मिलित हैं जिनमें कुल परिवारों की जनसँख्या 146 है।

विश्वनाथपुर गाँव के मुसहर समुदाय का इतिहास : इस गाँव के मुसहर समुदाय की उत्पत्ति एवं इतिहास से सम्बंधित निम्न मिथक प्रचलित हैं

रुदल (52 वर्ष) बताते हैं कि- 'हम मुसहर कोल भील के वंशज हैं, कोल और भील दो सगे भाई थे जिनका बटवारा होने के बाद कोल मुसहर कहलाये जो जंगलो में रहकर अपना जीवनयापन करते थे जिनको वनवासी भी कहा जाता है और भील निषाद कहलाये जिनको स्थानीय भाषा में मल्लाह अर्थात मछली पकड़ने वाले समुदाय के रूप में जाना जाता है।'

इसी क्रम में धरम (84 वर्ष) बताते हैं कि हम मुसहर जाति से ऊंचे है किन्तु कर्म से नीचे हैं, आगे अपनी उत्पत्ति सम्बंधित इतिहास की चर्चा करते हुए बताते हैं, 'हम मुसहर बनबासी है लगभग दो शताब्दी पूर्व यहाँ के निकटस्थ कुसुमी जंगल में एवं उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में घुमंतू जीवन व्यतीत करते हुए जीवनयापन करने के लिए आये, और गोरखपुर के निकटवर्ती राप्ती नदी के क्षेत्रों में आकर बसने लगे क्योंकि प्रायः इनका बसना वहीं होता है जहाँ धान की खेती होती थी और धान की खेती के लिए पानी की पर्याप्त उपलब्धता अति आवश्यक है। अतः मुसहरों ने नदी के समीपवर्ती क्षेत्रों में आकर निवास बनाना शुरू किया और धान की खेती करने लगे जैसे ही इन पौधों में अनाज लगते तो उनको खाने के लिए चूहे आने लगते थे और धान के मोटे अनाजों को अपने बिल में छुपाते थे, ऋतु समाप्ति के बाद मुसहर इन बिलों में से अनाज निकालकर लाते और भोजन बनाते थे फिर धीरे - धीरे मुसहरों ने इनको अपने घरों में पालना शुरू कर दिया फिर चूहे धान के अनाजों को लेकर इनके घरों में आते थे फिर इन्होने इनको पकड़ना शुरू किया और आहार के रूप में लेना प्रारंभ किया जिससे इस समुदाय को मुसहर कहा जाने लगा।''

वहीं दूसरी तरफ देवीदीन (35 वर्ष) बताते हैं कि- 'हमारे पूर्वज आदिवासी है जो जंगलों में आकर जीवनयापन करते थे इसीलिए इनको बनवासी भी कहा जाता है क्योंकि जंगल आधारित इनकी जीवन शैली होती थी जहाँ घुमंतू जीवन व्यतीत करते थे अतः यहाँ कुसुमी जंगल से फलों और पत्तों को इकठ्ठा करके और लकड़ियों को काटकर अपना जीवन यापन करने लगे किन्तु जंगली जानवरों के खतरों से इन्होने जंगल के निकटवर्ती क्षेत्रों में अपना निवास स्थान बनाना प्रारंभ किया जो आज एक मुसहर बाहुल्य गाँव विश्वनाथपुर के मुसहरी टोले के रूप में अस्तित्व में है।'

मुसहर समुदाय की सामाजिक - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : यदि विश्वनाथपुर गाँव के मुसहर समुदाय के घरों की स्थिति की बात करें तो इनमें एक सामान्य सी बात निकलकर सामने आती है कि इनकी आर्थिक स्थिति का प्रभाव इनके घरों पर एवं अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों जैसे खान- पान और वेश - भूषा पर भी देखा जा सकता है। अधिकांश इनके मकान अर्धकच्चे/अर्ध पक्के प्रकार के हैं। **कच्चे प्रकार** के मकानों के निर्माण हेतु पूस, घास, बांस, लकड़ी (सागौन और शीशम की लकड़ी) का मुख्य रूप से प्रयोग करते हैं पूस के बने छप्परों (छानी) पर मिटटी और गोबर के घोल से पुताई कर देते हैं तब ये घर रहने लायक होता है इस प्रकार के घरो को ये अपनी सामान्य भाषा में 'भीति' कहते हैं। इसी प्रकार पक्के मकानों के निर्माण के लिए एस्वेस्टस, ईट, सीमेंट, बालू, सरिया आदि का प्रयोग तो करते हैं किन्तु गुणवत्ता के हिसाब से इनमे उच्च्य गुणवत्ता की कमी दिखायी देती है, क्योंकि ये निर्धनतावश ये अच्छी गुणवत्ता वाले बिल्डिंग मटेरियल को खरीद नहीं सकते अतः ये जो मकान बनाते वो कुछ ही सालों में जर्जर हो जाने के कारण रहने योग्य नहीं रहता है।

खान-पान : विश्वनाथपुर गाँव के मुसहर सर्वाधिक मांसाहारी प्रकार के भोजनों को खाना पसंद करते है, मांसाहार इनका प्रिय भोजन है जिसमें मुख्य रूप से चिकन और मछली ज्यादातर खाते हैं जो कि इनका एक प्रकार से परम्परागत भोजन भी रहा है। अतः इनकी निरंतरता बनाये रखने के लिए अधिकांश मुसहर परिवार मुर्गी पालन का काम करते हैं, इसी क्रम में घोंघा (डोका) भी इनका परम्परागत भोजन रहा है, चावल के साथ घोंघा प्रमुख रूप से खाते हैं। शाकाहारी भोजनों में चावल,

दाल, रोटी, खिचड़ी और सभी मौसमी सब्जियों के साथ दूध, दही, घी मुख्यतः लेना पसंद करते हैं किन्तु प्राथमिकता के तौर पर चावल, साग के साथ चटनी ज्यादातर खाना पसंद करते हैं।

वेश – भूषा : विश्वनाथपुर गाँव के अधिकांश मुसहर पुरुष शर्ट- पैंट, कुर्ता पायजामा, टी-शर्ट, लुंगी, धोती और कमीज आदि पहनते हैं। अधिकांश बुगुर्ग मुसहर जो 60 वर्ष से उपर हैं, वो अधिकांश सफ़ेद धोती, कमीज, लुंगी, आदि पहनते हैं, मुसहर युवा लड़कियां प्रायः सलवार कमीज, दुपट्टा फ्रॉक आदि पहनती हैं तो वहीं विवाहित महिलाएं साड़ी (लुग्गा/लुगरी) ब्लाउज (कमीज) धोती (किनारी) आदि धारण करती हैं। अब इनके वेश- भूषा में आधुनिकता के लक्षण प्रतीत होते हैं, जैसे अब लड़कियां जींस पैंट, टी-शर्ट्स लैगिंग्स (लायिलून), चूड़ीदार आदि पहनने लगीं है तो वहीं मुसहर पुरुष भी आधुनिक वस्त्रों को प्राथमिकता दे रहे हैं।

धार्मिक पक्ष : विश्वनाथपुर गांव के सभी मुसहर हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं इसीलिए हिन्दू देवी देवताओं की पूजा पद्धति एवं धार्मिक क्रियाकलापों को मनाते हैं। होली, दीपावली, छठ पूजा, दुर्गा पूजा, सावनी पूजा आदि हिन्दू त्योहारों को प्रमुख रूप से मानते हैं, अतः इनसे सम्बंधित कर्मकांडों को अपनाते हुए पवित्रता और प्रदूषण का भी कड़ाई से पालन करते हैं। चैत्र रामनवमी एवं शरद ऋतु की शारदीय नवरात्री का इनके धार्मिक जीवन में विशेष महत्व है, यहाँ एक स्थानीय तरकुलहा देवी (दुर्गा देवी) मंदिर अवस्थित है जिसको लोग जिसको बड़ी ही श्रद्धा के साथ इस मंदिर की मान्यता और इसके प्रति गहरी श्रद्धा प्रकट करते हैं। चैत्र राम नवमी में तरकुलहा देवी के स्थान पर प्रत्येक मुसहर परिवार द्वारा बकरे (खसू) और मुर्गे की बलि दी जाती है। अतः इस देवी को प्रसन्न करने के लिए अनेक पूजा पद्धति आदि का पालन करते हैं। इसी प्रकार शारदीय नवरात्र में माता तरकुलहा देवी के नाम पर हलवा (लपसी और पूड़ी) का प्रसाद चढ़ाते हैं, फिर प्रसाद को घर के अन्य सदस्य और पड़ोसियों में बांटते हैं। इसके साथ ही स्थानीय देवी देवता की भी उपासना श्रद्धापूर्वक करते है, इनमे प्रमुख रूप से ब्रह्म देव (बरम बाबा) तथा काली माता (हट्ठी मैया) की पूजा सामूहिक रूप से करते हैं। बरम बाबा के लिए धोती, लंगोट, कौवे और कबूतर की बलि बरम बाबा के नाम पर चढ़ाते हैं, ये सब पूजा पद्धति प्रायः मुसहर बस्ती से बाहर थोड़ी दूरी पर पीपल के वृक्ष पर चढ़ाते हैं, इनकी मान्यता है की बरम बाबा इस पेड़ पर निवास करते हैं अतः पीपल के पेड़ को ये अपना टोटम मानते हैं इसके साथ ही मुसहर स्त्रियाँ भी इसके प्रति पवित्रता एवं प्रदूषण का विशेष ध्यान रखती हैं। हट्ठी मैया को प्रसन्न करने के लिए खप्पर, कड़ाही, धूप, बत्ती, धार आदि के साथ सामूहिक रूप से पूजा पाठ की क्रियाविधि में सहभागिता करतीं हैं, अतः इस प्रकार धार्मिक एवं सामूहिक एकता के रूप इस समुदाय में प्रमुखता से देखे जा सकते हैं।

वैवाहिक जीवन : क्रुक (1893:21) मिर्ज़ापुर के मुसहरों के वैवाहिक जीवन के बारे में चर्चा करते हुए कहते हैं कि "विवाह की पहल लड़के पक्ष से उसके जीजा (Brother in law) द्वारा किया जाता है। फिर लड़की के पिता अपने तीन चार रिश्तेदारों द्वारा लड़के के घर जाते हैं। एक रूपया तथा कुछ खाने की वस्तुओं के साथ कुछ प्रक्रिया करते हैं जिसे आम भाषा में ये 'बरखी करना' कहते हैं किन्तु अगर विश्वनाथपुर गाँव के मुसहर की बात करें तो इनकी विवाह तय करने की प्रक्रिया कुछ अलग दिखायी देती है, यहाँ विवाह की प्रक्रिया लड़की पक्ष द्वारा उनके पिता द्वारा या लड़की के भाई द्वारा प्रारंभ की जाती है, लड़के के घर जाते है और विवाह तय करने की प्रक्रिया सूखे नारियल और कुछ मिठाईयाँ लड़के के हाथ पर रखने के साथ प्रारंभ करते हैं। इस गाँव के मुसहर वर्तमान समय में सामान्यतः एकल विवाह की प्रथा का पालन करते हैं।

सरकार[15] मुसहर समुदाय में बाल विवाह प्रथा की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि प्रारंभ में ये बाल विवाह करते थे, लड़के सात से आठ साल के होने पर और लड़की के चार से पांच होने पर विवाह संपन्न होता था किन्तु अब लड़के के बीस और लड़की के अट्ठारह वर्ष पूरे होने पर ही विवाह करते हैं। कुछ लोग जल्दी विवाह करने के बाद गौना करते हैं। इसी प्रकार विश्वनाथपुर गाँव में भी अब बाल विवाह की प्रथा इस समुदाय में समाप्त हो चुकी है, अब ये समुदाय वयस्क विवाह ही करते हैं। बाल विवाह करने के पश्चात वयस्क होने तक माता पिता अपनी लड़की को अपने पास रखते थे फिर गौना करने के बाद ही लड़की को ससुराल भेजा जाता था, अतः गौना करने हेतु लड़की के परिवारजनों द्वारा दोहरा आर्थिक खर्च का वहन करना पड़ता था, अतः निर्धन मुसहर धीरे - धीरे गौना की प्रथा से विमुख होते गए और वयस्क विवाह की

तरफ अग्रसर होने लगे।

मुसहर समुदाय का आर्थिक एवं व्यवसायिक जीवन : यहाँ के अधिकांश (लगभग 99 प्रतिशत) मुसहरों का प्राथमिक आर्थिक कार्य कृषि केन्द्रित मजदूरी रहा है। इनके जीवनयापन करने के संसाधनों में पत्तल बनाना, शिकार करना, मधुमक्खी पालन, जंगलों से लकड़ी काटकर बाजारों में बेचना, मुर्गी पालन आदि प्रमुख व्यवसाय रहें हैं। इसके अतिरिक्त वयस्क मुसहर पुरुष कुछ द्वितीयक कार्यो में भी लगे हैं जैसे वयस्क मुसहर पुरुष प्रवास करते हैं जिनमें प्रवास के दौरान प्रमुख रूप से पेंटिंग का कार्य फलों एवं सब्जियों की ढुलाई का कार्य दैनिक मजदूर के रूप में करते हैं। क्षेत्रकार्य के दौरान शोधार्थिनी द्वारा अपने न्यादर्श चयन के दौरान कुल 146 मुसहर परिवारों के सापेक्ष 109 (75 प्रतिशत) उत्तरदाताओं को अध्ययन का आधार बनाया गया, अतः क्षेत्र अध्ययन के दौरान निम्न तथ्य सामने आये

तालिका 01

मुसहर समुदाय आर्थिक एवं व्यावसायिक सन्दर्भ –

दैनिक मजदूरी	संख्या	प्रतिशत
कृषि दैनिक मजदूर	86	78.89
मनरेगा दैनिक मजदूर	67	61.46
राजगीर, मिट्टी और ईंट भट्टे पर कार्य करने वाले मजदूर	46	42.20
प्रवासी मजदूर	23	21.10
परंपरागत मजदूरी		
पत्तल निर्माण	55	50.45
लकड़ी काटकर बेचने का काम	32	29.35
सूअर पालन	06	5.50
मुर्गी एवं बकरी पालन	69	63.30
सरकारी नौकरी	02	1.83
गैर सरकारी नौकरी	03	2.75

जैसा कि यह सर्वविदित है कि मुसहर धान की खेती करने में प्रवीण हैं, हालाँकि ये भूमिहीन हैं किन्तु कृषि करने की कला में यह समुदाय अग्रणी हैं, धान के पौधों की बुवाई (रोपिया) से लेकर उनकी निराई, गुनाई से लेकर फसलों के तैयार होने तक की सभी प्रक्रियाओं में इनको दक्षता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त गेहूँ, सरसों और जायद फसलों के उत्पादन में भी श्रमिक मजदूर के रूप में अपना श्रम देते हैं। परंपरागत कार्यो को पुरुषों की अपेक्षा मुसहर महिलाएं अधिक तल्लीनता के साथ करती हैं जैसे पत्तल बनाना मुसहर समुदाय के प्रारंभिक और परम्परगत कार्य का हिस्सा रहा है लेकिन क्षेत्रकार्य के दौरान शोधअध्येत्री द्वारा यह अनुभव किया गया कि पत्तल बनाने की कला में मुसहर महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा अधिक दक्ष और तल्लीन हैं और यह भी अनुभव किया गया कि अधिकांश महिलाएं ही पत्तल बनाने का कार्य कर रही हैं। कुल 55 उत्तरदाताओं के सापेक्ष मात्र 5 पुरुष उत्तरदाताओं को यह कार्य करते देखा गया शेष 50 महिलाएं इस व्यवसाय से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हैं हालाकि पत्तल निर्माण कार्य में श्रम अधिक किन्तु पारिश्रमिक कम प्राप्त होता है। जिलेबिया (67 वर्ष) एक वृद्ध महिला होने के बावजूद इस कार्य को करने में दक्ष है किन्तु इससे मिलने वाले पारिश्रमिक से संतुष्ट नहीं हैं, इनका कहना है कि– ''लईके बच्चिन के भेजी का जंगल में से शाखुआ पेड़े पे चढ़ाई के ऊके पतई तुड़ाई के सुखायिके पत्तर बनायिलेजा त पांच सौ पतरी पीछे खली डेढ़ सौ रुपैया मिलेला।''

कहने का तात्पर्य यह है कि पत्तल बनाना कठिन तो है लेकिन उसके बदले में पारिश्रमिक कम मिलता है क्योंकि इस कार्य के लिए इन्हें दोगुना श्रम करना पड़ता है। लगभग 50–70 फिट ऊँचे साखू के पेड़ की पत्तियों को ये पत्तल बनने के काम के लाते हैं, अतः इन पत्तियों को प्राप्त करने के लिए इनको जान जोखिम में डालकर पेड़ के उपर चढ़ना पड़ता है फिर पत्तियों को तोड़कर उनका संग्रहण कर नीचे उतरना पड़ता है। महिलाएं घर पर उसको अलग अलग कर सुखाकर पत्तल बनाना प्रारंभ करती हैं। इतना ही नहीं इन पत्तो को गूंथने के लिए नदी के तट पर से एक विशेष प्रकार धागे के समान अत्यंत पतली लकड़ी जिसको ये आम भाषा में 'मूजा' कहते हैं उसको लाते हैं कई बार इन लकड़ियों को तोड़ते समय इनके हाथ कट भी जाते हैं जो कभी-कभी गहरे जख्म का रूप भी ले लेते हैं। जब ये पत्तल को बनाकर उसे प्रयोग हेतु अंतिम रूप दे देते हैं, तब व्यापारी द्वारा के 500 पत्तलों के एक बंडलो के एवज में सिर्फ 120 से 150 रूपए ही प्राप्त होते हैं जिससे इनके लिए गुजर बसर कर पाना अत्यंत मुश्किल सा प्रतीत होता है।

कबूतरी देवी (54 वर्ष) बताती है कि – ''ई पतरौलिया सबसे ढेर फागुन में बनेला जब रोपिया अउरी कटिया सोहनी के दीन नाइ रहेला त पेट चलावे के खातिर पत्ता बीनि के पतरौली बनावे लीन जा, बाकि मेहनताना बहुते कम मिलेला, जैसे दो जून के रोटियों नही हो पावेला बाकि ई दिनवा में खाली बईठल रहेनिजा त दु चार पैसा के खातिर ई पतरौलिया बनावेनिजा।''

अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि पत्तल बनाने की प्रक्रिया सर्वाधिक पतझड़ के मौसम से लेकर चैत्र मास के प्रारंभिक सप्ताह तक होती हैं। इस दौरान जब फसल की बुवाई और कटाई का समय भी नहीं रहता जिससे आय के साधन बिलकुल बंद रहते हैं तब मुसहर महिलाएं इस कार्य को करती हैं। एक दिन में औसतन 90-100 पत्तलों का निर्माण करती हैं किन्तु इनके पीछे सिर्फ 150 रूपए ही मिलते हैं जिससे बड़ी ही मुश्किल से दो समय का भरण-पोषण कर पाते हैं।

मुसहर समुदायों के प्रवासी मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय है, इनका कहना है कि प्रवास के दौरान इनकी अशिक्षा और इनकी निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के दौरान इनको रोजगार और परिश्रमिक में उद्योगपतियों द्वारा भेदभाव किया जाता है। इस सन्दर्भ में रामसमुझ (44) वर्ष बताते हैं कि - ''बहरे में हम गरीबन कम पढ़ल लिखल के वोजे से मालिकन लोग कम्मे समय में ढेर काम करवावेला अउरी निम्मन करवो नहीं मिलेला खाली ढोवे वाला काम मिलेला अउरी खाए के बढ़िया खाना भी नहीं दिहल जाला मालिकन के तरफ से।''

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रवास के दौरान अशिक्षा और निम्न आर्थिक स्थिति के कारण मालिकों द्वारा इनसे कम समय में अधिक कार्य लिया जाता है और पारिश्रमिक भी कम दिया जाता है इसके साथ भी कम गुणवत्तापूर्ण भोजन दिया जाता है।

क्षेत्रकार्य के दौरान शोध अध्येत्री ने यह पाया कि कुल 23 (21.10 प्रतिशत) उत्तरदाताओं जो कि अन्तर्राज्जीय प्रवासी मजदूर के रूप में काम करते हैं जिनमे से 9 (8.25 प्रतिशत) बेंगलुरु में पेंट पालिश का काम करते हैं, 7 (6.42 प्रतिशत) मुम्बई में मौसमी फलों और सब्जियों की ढुलाई का काम करते हैं शेष 7 (6.42 प्रतिशत) फर्नीचर का काम करते हैं, ऐसा कोई भी उत्तरदाता नहीं मिला जो प्राइवेट कंपनियों में कार्य करता हो और मासिक रूप से वेतनभोगी हो।

भूमिहीन होने के कारण इनके पास कृषि योग्य उपजाऊ भूमि भी नहीं है और ना ही ये किसी जमींदार या साहूकार से कृषि हेतु भूमि ही ले पाते हैं क्योंकि इनके पूरे गाँव में दूसरी अन्य जातियों में लघु किसानों की ही पर्याप्तता है जिनके पास सीमित भूमि है जो सिर्फ स्वयं के भरण-पोषण के लिए कृषि करते हैं। अतः इस गाँव के मुसहरों में बटाईदारी की प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती है। परिणामस्वरूप इनके समक्ष भोजन पानी की समस्या निरंतर ही बनी रहती है, सरकार द्वारा भी इनको कृषि हेतु पट्टे के रूप में भूमि आवंटित नहीं करायी गयी है जिससे कि ये कुछ कृषि कर जीवनयापन कर सकें।

109 मुसहर उत्तरदाताओं के सापेक्ष 31(28.44 प्रतिशत) मुसहर परिवारों के पास कुछ (औसतन 1.5 बिस्वा/कट्टा) कृषि योग्य भूमि है, जिनपर ये या तो कृषि कार्य करते थे या इन जमीनों पर ऋण लेकर लघु किसानों के पास गिरवी रख दिया है और उसे अब तक छुड़ा भी नहीं पाए हैं।

शिक्षा : इस गाँव के मुसहरों की शैक्षिक स्थिति पर यदि प्रकाश डाला जाये तो हम कह सकते हैं कि इनमें शिक्षा का स्तर निम्नतर है। जैसे ही इस समुदाय के बच्चे 13-14 साल में प्रवेश करते हैं, उनको दिहाड़ी मजदूरी के काम में लगा दिया जाता है। निर्धनता अत्यधिक होने के कारण प्रायः इनके सम्मुख रोजी - रोटी की समस्या निरंतर ही बनी रहती है, ऐसी स्थिति में जीवन यापन के संसाधनों का एकत्रीकरण करना इनके समक्ष प्रमुख चुनौती बन जाती है अतः स्कूली शिक्षा से ये वंचित रह जाते हैं। क्षेत्र कार्य के दौरान पाया गया कि 6-14 वर्ष के मुसहर बच्चे प्राथमिक विद्यालय में पंजीकृत तो हुए है किन्तु विद्यालय में अध्ययन हेतु नहीं जाते हैं बल्कि इस उम्र में पास के ईंट भट्ठे पर ईंट बनाने के काम में लग जाते हैं, जिसके बदले में इनको 60-70 रूपए प्रतिदिन में प्राप्त हो जाते है। स्कूली शिक्षा से वंचित होने के कारणों की यदि चर्चा की जाये तो यह ज्ञात होता है कि घर से विद्यालय की दूरी अधिक (लगभग तीन किमी.) होने के कारण ये विद्यालय नहीं जा पाते इसके साथ ही इस गाँव के समीप भी कोई प्राइवेट विद्यालय नहीं जिसमे जाकर शिक्षा ग्रहण कर सकें, वहीं एक अन्य कारण जंगली जानवरों के भय से ये विद्यालय नहीं जाना चाहते हैं।

मुसहर समुदाय के उत्थान हेतु नीतियों की भूमिका : मुसहर समुदाय के निम्न आर्थिक सामाजिक स्थिति में सुधार हेतु अनेक प्रयास किये गए हैं और वर्तमान समय में भी निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। हालाँकि इनमें आर्थिक सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने एवं मुख्य धारा में सम्मिलित करने हेतु विशेष रूप से कोई योजना तो नही है किन्तु जो सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत जो योजनायें चलायी जा रही हैं उनमें मुसहर समुदाय को वरीयता दी जा रही है।

यहाँ कुछ सरकारी कार्यक्रमों जैसे मनरेगा, वृद्धा पेंशन योजना, विधवा पेंशन योजना, शौचालय, आवास आदि

योजनायें वर्तमान समय में गतिमान है जिसमें मुसहर समुदाय की भागीदारी का प्रतिशत निम्न हैं।

तालिका 02

सरकारी योजनाओं के अंतर्गत मुसहर लाभार्थियों का प्रतिशत

योजनायें	संख्या	प्रतिशत
मनरेगा	103	94.49
शौचालय	102	93.57
आवास	51	46.78
खाद्य सुरक्षा योजना अंतर्गत प्रदत्त राशन कार्ड	109	100
वृद्धा पेंशन	17	15.59
विधवा पेंशन	11	10.09
जल आपूर्ति	30	27.52
विकलांग पेंशन	07	6.42
उज्जवला गैस योजना	19	17.43
किसी योजना का लाभ नहीं	04	3.66

मुसहर समुदाय के उत्थान हेतु गैर सरकारी संगठनों की भूमिका : समुदाय के उत्थान हेतु सरकारी योजनाओं के साथ – साथ कुछ गैर सरकारी संगठनों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी क्रम में मानव सेवा संस्थान द्वारा संचालित 'सेवा' जो की एक गैर सरकारी संगठन है, जिसकी स्थापना 1988 में उमाशंकर त्रिपाठी के द्वारा किया किया गया था। इस संस्थान का लक्ष्य एक स्थायी समाज का निर्माण करने के साथ ही सीमांत और वंचित समुदायों को मुख्य धारा में सम्मिलित करने हेतु शिक्षा, रोजगार एवं आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करना है जिसमें सीमांत और वंचित समुदायों तथा गरीब व्यक्तियों को उनकी योग्यता और क्षमता के अनुसार समान अवसर उपलब्ध करना है। इस संस्थान का उद्देश्य धर्म, जाति, लिंग एवं आर्थिक आधारों पर भेदभाव रहित न्यायपूर्ण समाज की स्थापना है। इस संस्थान का एक अन्य उद्देश्य महिला एवं बच्चों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए एक सुरक्षित समाज की स्थापना जिसमें स्त्री पुरुष को समान नेतृत्व प्रदान करते हुए मुख्यधारा में सम्मिलित करना है।

'सेवा' मुसहर संस्थान के उद्देश्य : मानव सेवा संस्थान का उद्देश्य पूर्वी उत्तर प्रदेश विशेष रूप से पूर्वांचल के मुसहरों के आर्थिक सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए सामुदायिक नेतृत्व, स्वास्थ्य, आजीविका एवं भूमि अधिकार और बाल शिक्षा और सरकारी योजनाओं में प्रतिभागिता पर जोर देते हुए उनके समावेशी विकास हेतु लगातार कार्य करना है। यह संगठन विभिन्न माध्यमों से लगभग 5000 से अधिक घरों में अपनी सेवा पहुँचा रही है जिसमें स्वास्थ्य शिक्षा, रोजगार, टिकाऊ कृषि, कौशल विकास, लघु उद्यमों आदि विभिन्न मुद्दों पर ये प्रमुख रूप से कार्य करता है। **इस संस्थान** का एक अन्य उद्देश्य विभिन्न माध्यमों से युवा सशक्तीकरण पर ध्यान केन्द्रित करना है जिसमे सिलाई, कम्प्यूटर शिक्षा, मोबाइल और ऑटोमोबाइल रिपेयरिंग के साथ राजगीर कार्य के लिए प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमों के माध्यम से सशक्त करने हेतु निरंतर प्रयास कर रही है। संस्थान के प्रयास निम्नवत हैं-

(अ) आजीविका : सेवा संस्था मुसहर समुदायों की आजीविका में वृद्धि हेतु विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रम जैसे मोटर ड्राइविंग, ऑटोमोबाइल व्यवसाय हेतु प्रशिक्षण एवं परामर्श, कम्प्यूटर शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा द्वारा मुसहरों के आजीविका को बढाने हेतु निरंतर प्रयासरत है। इसके साथ ही मुसहर महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के क्रम में कई ट्रेनिंग प्रोग्राम जैसे सोलर टार्च निर्माण, सिलाई – बुनाई प्रशिक्षण, बीड़ी निर्माण आदि कार्य करते है,इसके साथ ही महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु वित्तीय सहायता भी प्रदान करते हैं।

(ब) कृषि सहायता संस्थान द्वारा जैव विविधता संरक्षण, सतत कृषि और किसान अधिकारों के लिए निरंतर प्रयासरत है। इसी क्रम में (Sustainable Agriculture) एक प्रकार का कृषि माध्यम है जो कम लागत पर टिकाऊ और सतत कृषि कार्य को बढ़ावा देने का एक उपक्रम है, जिसमें कम संसाधनों के प्रयोग द्वारा कृषि कार्य करते हुए पर्यावरण को होने वाले नुकसान से बचाया जा सके। इसके साथ ही कम भूमिजोत वाले किसानों और कम भूमि वाले मुसहरों को सब्जियों के उत्पादन हेतु बीज वितरण जैसे (पालक, टमाटर, धनिया मिर्च, हरी मौसमी सब्जियों) करने के साथ ही इन फसलों को उत्पादनों को बढ़ावा देने के क्रम में कीटनाशक दवाओं को भी वितरित करते हैं।

(स) राजनीतिक जागरूकता : चूंकि लोकतंत्र में राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक मुख्य और मजबूत आवाज है इसलिए संविधान और अधिकारों के बारे में जागरूकता और ज्ञान हमेशा नुक्कड़ नाटकों, लोक गीतों और अन्य गतिविधियों के माध्यम से अधिकार आधारित जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से और इस संगठन के लंबे हस्तक्षेप के बाद से मुसहर समुदाय को अवगत कराया गया था। चुनाव के

परिणामस्वरूप 2015 के पंचायत चुनाव में मुसहर समुदाय से 2 से 3 ग्राम प्रधान पद पर चयनित हुए थे इसी क्रम में 2020 के पंचायत चुनाव में एक ग्राम प्रधान मुखिया के रूप में चुना गया है । इन निर्वाचित सदस्यों ने भी समुदाय की आवाज उठाई है और इसके परिणामस्वरूप समुदाय के सदस्यों को अधिकार प्राप्त हुए हैं ।

(द) ब्रिज शिक्षा केंद्र : ब्रिज शिक्षा केंद्र बुनियादी शिक्षा हेतु वर्णमाला, संख्यात्मक गणना और शब्दों से संबंधित अनौपचारिक शिक्षा के साथ ड्रॉप आउट हुए और स्कूल न जाने वाले बच्चों के लिए शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। ब्रिज शिक्षा केंद्र नियमित रूप से स्कूलों में भाग लेने की आदत विकसित करने के लिए एक मंच के रूप में कार्य कर रहे हैं। साथ ही शिक्षा केंद्र बच्चों को औपचारिक स्कूली शिक्षा की मुख्यधारा में लाने में सक्षम बना रहे हैं।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, मुसहर समुदाय आज भी शोषण एवं वंचना का शिकार है, जिससे इनकी सामाजिक गतिशीलता की स्थिति उर्ध्वमुखी होने के बजाय अधोमुखी होती जा रही है सिर्फ वही मुसहर सामाजिक रूप से उर्ध्वमुखी दिशा की ओर गतिशील हैं जो शिक्षित हैं और राजनैतिक अधिकारों के प्रति थोड़े से जागरूक हैं या जो अपनी बातों को और अधिकारों को ग्राम पंचायत या ब्लाक स्तर तक सही प्रकार से पंहुचा सकते हैं। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय है, हालांकि इनके दयनीय जीवन को सुधारने और इनको मुख्य धारा में सम्मिलित करने के उद्देश्य से अनेक नीतियों के माध्यम द्वारा इनका उत्थान करने का प्रयास किया जा रहा है किन्तु वास्तविकता यह है कि यह प्रयास सिर्फ कागजों में ही सिमटकर रह गए है बल्कि वर्तमान स्थिति तो यह है कि निर्धनता, अशिक्षा और कम राजनैतिक जागरूकता के कारण यह समुदाय आज भी पिछड़ा है और हाशिये पर खड़ा है। मुसहर समुदाय में कम गतिशीलता और पिछड़ेपन का अन्य कारण इनकी अपनी संस्कृति भी रही है, परम्परागत रूप से जीवनयापन जैसे जंगल आधारित जीवन शैली, शिकार करना,मछली मारना, पत्तल निर्माण आदि कही न कहीं इनके पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार हैं। अशिक्षा के कारण मुसहर समुदाय कल्याणकारी योजनाओं के प्रति जागरूक नहीं हो पाते हैं तो वहीं दूसरी तरफ राजनैतिक कमी के कारण भी ये अपनी बातो को सरकार तक पहुचाने में असमर्थ हैं। राजनीतिक दल भी इनके सामाजिक आर्थिक सुधार हेतु आगे नहीं आती है, वोट बैंक की राजनीति को भले ही आधार बनाकर मुसहर समुदाय का मत प्राप्त करने के उद्देश्य से चुनावी मुद्दा तो जरूर बनाते हैं लेकिन चुनाव बीत जाने के बाद स्थिति जस की तस दिखाई देने लगती है।

सन्दर्भ

1. Davis, Kingsley. 'Human Society', The Macmillan Company, New York, 1969, p.312
2. Maciver, R. M., and Page . 'Society', Macmillan & Co. Ltd, London, 1959, p.359
3. Crooke, W. 'Tribe Caste of the North Western provinces and Oudh', Vol IV, Superintendent of Government Printing, Calcutta, 1896, p.12
4. Ibid
5. Ibid
6. Ibid
7. Singh ,K.S. 'The Scheduled Caste, People of India, National Series', Vol- 2, Oxford University Press, Delhi, 1993, p.964.
8. Ibid, p.964
9. Ibid., p. 965
10. Sarkar, R . 'Musahar' (K.S.Singh .ed.Peoples of India, Uttar Pradesh), Manohar Publication, New Delhi, 2005 pp.1006,1007.
11. Ibid., pp.1006,1007.
12. Paudel, Madan.'Nepal Human Rights Year Book', Dream Graphic Press, Kathmandu, 2018, p.107.
13. विश्वनाथपुर गाँव की भौगोलिक संरचना, प्रस्तुत आंकड़े ग्राम प्रधान, विश्वनाथपुर द्वारा दिनांक 16 फरवरी 2021 को प्रदत्त।
14. Crooke W., op.cit., p.12
15. Sarkar R, op.cit., p.1007

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

युवाओं में यौन–जनित संक्रमण एवं यौन–जनित रोग के प्रति जागरूकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. दिनेश कुमार

सूचक शब्दः यौन–जनित संक्रमण, यौन–जनित रोग, स्वास्थ्य, जागरूकता।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भारत विश्व में एक ऐसा देश है जहाँ पर स्वास्थ्य का स्तर सन्तोषजनक नहीं है। बढ़ता हुआ प्रदूषण जिस तरह से हमारी जीवन शैली को प्रभावित कर रहा है उससे समाज में नित नए संक्रामक रोग जन्म ले रहे हैं। युवा इन संक्रामक रोगों से ग्रस्त हैं, जिनमें इन रोगों के प्रति जागरूकता का अभाव है तथा इनके विषय में वे खुलकर बात नहीं कर पाते हैं ऐसा अध्ययनों से उजागर होता है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध विधि, गैर–सम्भावना प्रतिदर्शन की सुविधात्मक निदर्शन विधि एवं सम्भावना प्रतिदर्शन की नियमित अंकन प्रणाली का प्रयोग किया गया है। प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़ों को एकत्र किया गया है। निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि छात्र–छात्राएं इन रोगों के प्रति जागरूक हैं लेकिन दोनों के दृष्टिकोण अलग–अलग हैं। छात्राएं छात्रों की अपेक्षा इन रोगों के प्रति अलग राय रखती हैं। आयु के आधार पर 18 से 22 वर्ष के युवा छात्र–छात्राएं संक्रामक रोगों के बारे में अधिक जागरूक हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यदि युवा यौन–जनित संक्रमण एवं यौन–जनित रोगों के विषय में जागरूक हो जाता है या उसके ज्ञान का स्तर बढ़ जाता है तो वह समाज के लिए एक बेहतर सकारात्मक पक्ष होगा।

भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही स्वास्थ्य का क्षेत्र संस्कृति के अन्तर्गत निहित रहा है, पहले यह व्यावहारिक संस्कृति (प्राकृतिक रूप से, झाड़–फूँक, आत्माओं एवं देवी देवताओं में विश्वास) के अन्तर्गत आता था और अब समय के साथ इस संस्कृति में कुछ औपचारिक तत्व (आधुनिक औषधियाँ एवं उपचार पद्धतियाँ) आ गये हैं अर्थात् स्वास्थ्य के बारे में हमारा ज्ञान पूर्वापेक्षा विस्तृत हो गया है। विश्व के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा भारत में अभी–भी स्वास्थ्य की गुणवत्ता का अभाव है और यही कारण है कि आज भी हमारे यहाँ मृत्यु का एक बहुत बड़ा कारण संक्रामक रोग हैं। संक्रामक रोग एक गम्भीर सामाजिक समस्या हैं जो सम्पूर्ण विश्व में फैले होने के कारण राष्ट्र, राज्य व समाज के लिए अत्यन्त संवेदनशील हैं तथा समाज में फैल रही यह समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चिन्ता का विषय है। क्योंकि एक महामारी के रूप में संक्रामक रोग इस बीमारी से ग्रसित व्यक्ति को ही प्रभावित नहीं करते हैं बल्कि पूरे परिवार, समुदाय और राष्ट्र को भी प्रभावित करते हैं।[1]

वर्तमान में जिस तरह के वातावरण में हम रह रहे हैं वास्तव में वह हमारे शरीर के लिए प्रतिकूल होता जा रहा है जिसमें रोग उत्पन्न करने वाले विभिन्न तरह के जीवाणु और विषाणु होते हैं जो शरीर के अन्दर के सन्तुलन को बिगाड़ कर रोग उत्पन्न करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में हम संक्रामक रोगों के विषय में बात कर रहे हैं। यह संक्रामक रोग कई तरह के हो सकते हैं लेकिन हम उन संक्रामक रोगों के विषय में बात कर रहें हैं जिनसे बहुत बड़ी संख्या में युवा प्रभावित हो रहे हैं। यह युवाओं से युवाओं को हस्तांतरित होते हैं और इनके हस्तांतरित होने के कई कारण हो सकते हैं और इन रोगों की अंतिम स्थिति ही एचआईवी/एड्स को जन्म देती है। संक्रामक रोग वे हैं जो एक जीवित विषाणु से मनुष्यों को लग जाते हैं। इस बीमारी पर सफल नियंत्रण पाने के लिए आवश्यक है कि लोगों को पता चले कि इन यौन रोगों का प्रसार कैसे होता है? और वे कौन–से माध्यम हैं जो संक्रमण में अहम भूमिका निभाते हैं? संक्रमण के स्रोत क्या हैं? और इनके संग्राहक क्या हैं? आदि। वैसे तो मुख्य रूप से स्वयं मनुष्य ही इसका स्रोत होता है क्योंकि मनुष्य ही स्वयं संक्रामक रोगों का संवाहक और संग्राहक होता है। ये संवाहक अत्यंत खतरनाक होते हैं यदि समय रहते इनका इलाज न किया जाए तो ये बीमारी का पूर्णरूप धारण कर लेते हैं। अतः इन संक्रामक रोगों के विषय में यह कहना गलत नहीं

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, (उत्तराखण्ड)

होगा कि समाज में व्याप्त किसी भी रोग से छुटकारा पाने के लिए हमें चिकित्सकीय उपायों के साथ-साथ समाज को उस रोग के विषय में जागरूक करना चाहिए।[2]

समाज विज्ञान का वह क्षेत्र, जिसके अन्तर्गत रोगों के सामाजिक पहलू का अध्ययन किया जाता है उसे चिकित्सा समाजशास्त्र कहते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न रोगों के प्रति सामाजिक अभिवृत्तियाँ क्या-क्या हैं; कौन-कौन से रोग, किन-किन सामाजिक समूहों में पाये जाते हैं और रोग और सामाजिक मूल्यों में क्या संबंध है आदि का अध्ययन किया जाता है। इनके अलावा इसमें चिकित्सालय-संगठन, रोगी, नर्स और डॉक्टर इत्यादि की सामाजिक भूमिकाओं का अध्ययन भी किया जाता है। मानव शरीर में रोग जीविकीय कारकों से जाने जाते हैं और शरीर में होने वाले परिवर्तनों के द्वारा ही इन रोगों के विषय में पता चलता है। कुछ परिवर्तन जीन द्वारा प्राप्त शारीरिक संरचना द्वारा भी होते हैं और इन सभी परिवर्तनों द्वारा व्यक्ति का शरीर रोग ग्रस्त हो सकता है या उसे अपने शारीरिक स्वास्थ्य को सामान्य बनाए रखने में बाधा उत्पन्न हो सकती है। रोग की उत्पत्ति की प्रक्रिया चाहे प्राकृतिक हो या अप्राकृतिक, उसके साथ सामाजिक और सांस्कृतिक कारक जुड़े हो सकते हैं। क्योंकि रोगग्रस्तता व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती है, जिसका प्रतिफल व्यक्तिगत, संस्थागत, सामुदायिक तथा सामाजिक हितों को क्षति पहुँचाना हो सकता है। इसलिए यह सत्य है कि व्यक्ति के साथ रोग और स्वास्थ्य का नाता जन्म से ही जुड़ जाता है।[3]

यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो मनुष्य के मानव रूप में धरती पर प्रकट होने के काल से लेकर वर्तमान समय तक रोग और स्वास्थ्य उसके जीवन साथी रहे हैं और धीरे-धीरे अनुभव एवं चेतना द्वारा मनुष्य में रोग और स्वास्थ्य की पहचान तथा उपचार के उपक्रम ढूँढने की क्षमता विकसित हुई। यहाँ पर यह कहना कि रोग और स्वास्थ्य प्रारम्भिक काल से ही प्रत्येक समाज की सामान्यता है, मात्र एक सरल अभिव्यक्ति होगी। जबकि सही बात तो यह है कि रोग और स्वास्थ्य ने हर समाज में सदैव व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित किया है।रोग पूर्ण रूप से एक जैविकीय एवं शारीरिक तथ्य नहीं है बल्कि यह एक घटना है जो सामाजिक सन्दर्भ में घटित होती है और व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ संबंध इसकी रूपरेखा को उजागर करता है। इस प्रकार रोग अथवा व्याधि-रोग की अवस्था में व्यक्ति यदि किसी प्रकार के दर्द की शिकायत करता है तो इस कष्ट के आधार पर उपचार खोजा जाता है और इस रोग के सन्दर्भ में भौतिक, जैविकीय एवं मनोवैज्ञानिक कारकों के आधार पर अनेक अनुसन्धान किये जाते हैं। अतः ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की परिभाषा के अनुसार, ''रोग, शारीरिक दशा अथवा शरीर के किसी हिस्से अथवा अंग की वह अवस्था है जिसमें इनके कार्य अवरुद्ध अथवा अव्यवस्थित हो जाते हैं।''

कई बार रोगों के लक्षण स्पष्ट नहीं होते या हल्की अवस्था में होते हैं और वे शरीर के अंदर कोई बड़ा परिवर्तन नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में कई बार रोग का निदान संभव नहीं हो पाता। सामान्य तौर पर जब व्यक्ति में रोग के लक्षण मिलते हैं तभी उसे रोगी समझा जाता है और उसी के आधार पर निदान की संभावनाएँ व्यक्त की जाती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति जो प्रत्यक्ष रूप से रोगी नहीं दिखता वह जरूरी नहीं कि स्वस्थ ही हो और ऐसे रोगों में स्वास्थ्य की स्थिति और बीमारी की स्थिति के बीच अंतर भी पता नहीं चलता जबकि कई रोग तुरंत पकड़ में आ जाते हैं।[4]

स्वास्थ्य की उपयोगिता जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। जीवन को सुखपूर्वक जीने के लिए स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन का होना अत्यंत आवश्यक है। बीमार व्यक्ति जीवन की उपयोगिता और आनंद से वंचित हो जाता है। स्वस्थ व्यक्ति ही अपने उद्देश्य में सफल होते हैं और अपने जीवन का उपयोग और उपभोग दोनों कर सकते हैं। सफल जीवन के लिए अच्छे स्वास्थ्य का होना नितांत आवश्यक है। अतः हमें रोगों के विभिन्न कारणों और उन पर नियंत्रण की जानकारी होनी चाहिए ताकि हम स्वयं को स्वस्थ रख सकें और दूसरों को भी इसके विषय में जागरूक कर सकें।

यदि रोग उत्पत्ति के सिद्धांतों की बात की जाए तो इसकी उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत हैं लेकिन कुछ प्रमुख हैं जैसे-प्रथम, रोगाणुओं का सिद्धांत; द्वितीय, रोग संबंधी त्रिकोण और तृतीय, बहुकारक सिद्धांत आदि प्रथम सिद्धांत के अन्तर्गत विभिन्न तरह के जिवाणु और विषाणु रोग के प्रमुख कारक हैं। इस सिद्धांत ने 19वीं शताब्दी के अंत में और 20वीं शताब्दी के शुरू में जोर पकड़ा। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के लिए यह एक क्रांतिकारी सिद्धांत था लेकिन धीरे-धीरे पता लगा कि बीमारी का कारण केवल

रोगाणु नहीं होते बल्कि इसमें कई अन्य तरह के कारकों का भी हाथ होता है। इसलिए अब आधुनिक चिकित्सा पद्धति इस रोगाणु सिद्धांत से कुछ-कुछ दूर हट गई है और इसके साथ अन्य बीमारी उत्पन्न करने वाले कारकों को भी मानना पड़ा है।

द्वितीय सिद्धांत के अन्तर्गत, रोगाणु सिद्धांत की कुछ अपनी सीमाएँ होती हैं जिसके आधार पर यह काम करता है। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि एक क्षय रोगी के संपर्क में आने वाले व्यक्तियों में से कुछ को यह बीमारी हो जाती है जबकि कुछ में नहीं होती। यह देखा गया है कि जो व्यक्ति कुपोषण के शिकार होते हैं उनको बीमारी जल्दी लगती है। इसी तरह वातावरण और व्यक्ति से संबंधित अन्य कारक यह तय करते हैं कि रोग उत्पन्न होगा अथवा नहीं। इसमें प्रभावित व्यक्ति की रोग-प्रतिरोधक क्षमता की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जैसे-

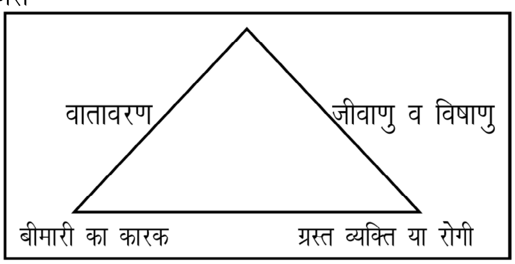

इस त्रिकोण[5] में यह बताने का प्रयास किया गया है कि बीमारी का कारण जीवाणु या विषाणु भी हो सकते हैं अथवा कोई अन्य कारक भी हो सकता है, जो प्रमुख भूमिका निभाता है। रोगग्रस्त व्यक्ति और वर्तमान वातावरण भी इसका हिस्सा हैं।

तृतीय सिद्धांत के अन्तर्गत यदि देखा जाए तो यह कोई नया सिद्धांत नहीं है बल्कि प्रभावी एंटीबायोटिक दवाओं के द्वारा कुछ रोग फैलाने वाले जीवों पर नियंत्रण पा लेने की एक प्रक्रिया है, लेकिन अन्य कई गंभीर बीमारियाँ ऐसी भी हैं जिन पर काबू नही पाया जा सका है जो आधुनिकता की देन के रूप में बढ़ रही हैं। इन बीमारियों का 'रोगाणु सिद्धांत' द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता था। अतः वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि रोगाणु के अलावा भी अन्य कारक हैं जो रोग उत्पन्न कर सकते हैं। ये कारक सामाजिक, आर्थिक, पैतृक, मानसिक इत्यादि तरह के हो सकते हैं और इनकी रोग उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि क्षय रोग का कारण केवल जीवाणु नहीं है बल्कि इसमें अन्य कारकों जैसे-गरीबी, प्रदूषण इत्यादि की भी हिस्सेदारी होती है। इसी तरह कई हृदय रोगों का कारण मोटापा, व्यायाम का अभाव, चर्बी वाले खाद्य पदार्थ इत्यादि हैं और फेफड़ों के कैंसर का कारण धूम्रपान होता है तथा एड्स जैसी बीमारी के लिए जागरुकता की कमी और इस बीमारी के प्रति समाज का अव्यावहारिक रुख आदि, इसलिए बीमारियों को उत्पन्न करने वाले इस बहुकारक सिद्धांत को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा मान्यता दी गई है।[6]

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार "स्वास्थ्य केवल शरीर में बीमारी की अनुपस्थिति नहीं बल्कि वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वयं को अच्छा महसूस करता है।"[7] लेकिन कुछ लोग विश्व स्वास्थ्य संगठन की इस परिभाषा को बहुत आदर्शवादी बताकर आलोचना भी करते हैं। उनके अनुसार इस परिभाषा में कोई खरा नहीं उतरता। फिर स्वास्थ्य संबंधित एक और परिभाषा दी गई। इसके अनुसार "स्वास्थ्य का अभिप्राय है कि : (अ) शरीर में किसी बीमारी के प्रमुख लक्षण मौजूद न हों और व्यक्ति सामान्य रूप से कार्य कर रहा हो। (ब) शरीर के सभी अंग यथोचित रूप से अपना कार्य कर रहे हों और उनमें सामंजस्य की स्थिति हो।"[8] अतः स्वास्थ्य की परिभाषा के अनुसार स्वास्थ्य केवल शरीर स्वस्थ होने को नहीं कहते बल्कि इसके अलावा मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, भावात्मक इत्यादि परिमाण हैं और इन परिमाणों में दार्शनिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरण, शिक्षा, पोषण, इलाज एवं बचाव के साधनों इत्यादि को भी सम्मिलित किया गया है।[9]

मानवीय स्वास्थ्य की नई परिभाषा के अनुसार अच्छा मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक बीमारियों की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति का अपने आस-पास के व्यक्तियों और वातावरण के बीच संतुलन रहता है। वह घर के अंदर एवं बाहर के लोगों से मेल रखे और वातावरण में समायोजित करने की क्षमता भी उसमें हो लेकिन कुछ दशकों पूर्व यह समझा जाता था कि मस्तिष्क और शरीर अलग-अलग इकाई हैं लेकिन अब शोधों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि मनोवैज्ञानिक कारण सभी तरह की बीमारियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। इनके कारण पेट में छाले हो सकते हैं, यहाँ

तक कि दमा की शिकायत हो सकती है और तो और व्यक्ति आत्महत्या भी कर सकता है।

व्यक्ति को जब उसके उद्देश्य और क्षमता के अनुरूप कार्य मिलता है तो वह उसके शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के स्वास्थ्य का संवर्धन करता है। शारीरिक कार्य व्यक्ति की कार्यक्षमता बढ़ाता है जबकि कार्य की सफलता या उद्देश्य की प्राप्ति, व्यक्ति को संतुष्ट बनाती है, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करती है। स्वास्थ्य के कुछ ऐसे परिमाण भी हैं जिनका चिकित्सा विज्ञान से सीधा संबंध नहीं है, जैसे-सांस्कृतिक परिमाण, शैक्षणिक परिमाण आदि। बहुत से परिमाण और भी हैं जैसे-दार्शनिक परिमाण, सामाजिक-आर्थिक परिमाण, पर्यावरणीय परिमाण, पोषणगत परिमाण, चिकित्सागत परिमाण आदि। स्वास्थ्य की परिभाषा और परिमाणों को दृष्टिगत रखें तो शायद कोई व्यक्ति उन पर पूर्णतः खरा नहीं उतर सकता लेकिन प्रयास करने पर इसके बहुत कुछ अनुरूप बना जा सकता है।[10]

साहित्य समीक्षा : कुमार, मनोज[11] ने अपने अध्ययन 'एड्स तथा सैक्सुअलटी-संवेदनशील वर्ग का एक अध्ययन' में सैक्सुअलटी की संवेदनशीलता को प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन का उद्देश्य ट्रक ड्राईवरों तथा क्लीनरों का एड्स संबंधी जानकारी का स्तर ज्ञात करना था। ड्राईवर और क्लीनर एक ऐसा वर्ग है जो एचआईवी/एड्स के सम्पर्क में बहुत जल्दी आ जाता है और अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। क्योंकि इनमें जागरूकता का अभाव होता है। अधिक से अधिक ड्राईवरों के असुरक्षित सेक्स संबंध थे और कण्डोम का प्रयोग बहुत कम व्यक्तियों के द्वारा किया जाता था। अध्ययन में सुझाव के तौर पर बताया गया है कि ट्रक ड्राइवरों को लाइसेंस देने से पहले उन्हें एचआईवी की जानकारी तथा कण्डोम के प्रयोग की विधि बतलाना आवश्यक है ताकि वे संक्रामक रोगों और बीमारियों से बच सकें। समय-समय पर इनका प्रशिक्षण भी कराया जाना चाहिए। कण्डोम को प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स में रखना अनिवार्य होना चाहिए। सुरक्षित सेक्स क्रियाएं क्या हैं? इसकी पर्याप्त जानकारी उपलब्ध करायी जानी चाहिए। ड्राइवरों को अधिक जागरूक करने के लिए अधिक से अधिक शैक्षणिक सामग्री देने की आवश्यकता है।

एस्टल, स्मिथ एलिसन एवं सोफिया ग्रस्किन[12] ने अपने शोध-पत्र 'एच.आई.वी./यौन-संचारित संक्रमणों के प्रति नेपाल के प्रवासी समुदायों की ग्रामीण महिलाओं की संवेदनशीलता : स्वास्थ्य और मानवाधिकार से जुड़ा एक विषय', में पाया कि प्रवास, स्वास्थ्य की स्थिति, जेंडर आधारित भेद-भाव और शिक्षा सेवाओं की उपलब्धता से किस तरह नेपाल के प्रवासी समुदायों की ग्रामीण विवाहित महिलाओं का जीवन प्रभावित होता है और वे यौन-संचारित संक्रमण से ग्रस्त होने के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। इस लेख में नेपाल की प्रवासी समुदायों की ग्रामीण महिलाओं में यौन-संचारित संक्रमण के प्रति संवेदनशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान करने के लिए स्वास्थ्य तथा मानवाधिकार व्यवस्थाओं का प्रयोग किया गया है, और यह तर्क देने का प्रयास किया गया है कि व्यक्तियों के अधिकारों का आदर करने, उन्हें सुरक्षित रखने और उन्हें उनके अधिकार प्राप्त करने से यौन-संचारित संक्रमणों के प्रति लोगों की संवेदनशीलता और जोखिम को कम किया जा सकता है।

जयश्री, ऐ.के.[13] ने अपने अध्ययन में समस्या भारत के केरल राज्य में, यौनकर्मियों द्वारा विपरीत परिस्थितियों में काम करते हुये, स्वयं के लिये न्याय की खोज के प्रयास के रूप में उक्त विषय का चयन किया था। प्रस्तुत अध्ययन यौन कर्मियों की समस्याओं, यौन कार्य, यौनिक अधिकार, महिलाओं का अवैध व्यापार, महिलाओं के प्रति हिंसा व स्वास्थ्य से संबंधित है। भारत के केरल राज्य में यौनकर्मी विपरीत परिस्थितियों में रहते हैं तथा उन्हें पुलिस और अपराधियों की हिंसा का शिकार होना पड़ता है। उन्हें आश्रयहीनता, अपने बच्चों की देखभाल, सुविधाओं के अभाव तथा अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह लेख, यौनकर्मियों द्वारा बताये गये स्वयं के अनुभवों, परिस्थितियों के विश्लेषण और फाउंडेशन फॉर इंटीग्रेटेड रिसर्च इन मैन्टल हैल्थ (फर्म) द्वारा किये गये आवश्यकता आंकलन अध्ययन पर आधारित है।

कपूर, इन्दू एवं सोनल मेहता[14] ने प्रस्तुत अध्ययन में समस्या 'भारत में किशोरों के लिये आयोजित स्वास्थ्य मेलों मे प्रेम और सेक्स के विषय पर बातचीत' के रूप में उक्त विषय का चयन कर किशोरों के प्रेम प्रसंग और उनकी सेक्स के विषय पर जागरूकता का स्तर क्या है जानने का प्रयास किया है। भारत जैसे देश में जहाँ विवाहित दम्पत्तियों के बीच भी सेक्स के विषय पर खुलकर बात नहीं की जाती वहाँ किशोरों को सैक्स-शिक्षा

देने के विषय पर बात करना भी कठिन होता है। बढ़ती उम्र के किशोरों के लिये किसी भी स्रोत से सैक्स के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाना काफी कठिन होता है और ऐसे में असुरक्षित यौन-संबंधों के बढ़ने का खतरा रहता है।

सिंह, विक्रम[15] ने प्रस्तुत शोध-पत्र 'सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ प्रोस्टिट्यूशन, एचआईवी/एड्स एण्ड इट्स इम्प्लीकेशन्स अमंग फीमेल सेक्स वर्करस इन बिलासपुर' में बिलासपुर की महिला सेक्स कर्मचारियों (मलीन बस्तियों में रहने वाली) का चुनाव किया गया है। इन वैश्याओं में एचआईवी/एड्स के बारे में कितनी समझ है और क्या वे यौन-जनित रोगों के द्वारा होने वाले एचआईवी संक्रमण से परिचित हैं, क्या वह उसके विषय में जागरूक हैं? और उनके स्वास्थ्य पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है? शोधपत्र में इस बात को भी परिभाषित किया गया है कि ऐसे कौन से कारण हैं जो इन महिलाओं को अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए इस तरह की गतिविधियों में संलिप्त होना पड़ता है। जो भी महिलाएं इस व्यवसाय में संलिप्त हैं वे एचआईवी/एड्स से अपने स्वास्थ्य और सुरक्षा को लेकर हमेशा संशय की स्थिति में बनी रहती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य : युवाओं का यौन-जनित संक्रमण एवं यौन-जनित रोग के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना : छात्र-छात्राओं में यौन-जनित संक्रमण एवं यौन-जनित रोग के प्रति जागरूकता का स्तर समान है, उसमें कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध पद्धति : वर्तमान अध्ययन वर्णनात्मक शोध पर आधारित है। अध्ययन का क्षेत्र हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय का बिड़ला परिसर है जो पौड़ी जनपद के श्रीनगर शहर में स्थित है। अध्ययन का समग्र बिड़ला परिसर श्रीनगर (गढ़वाल) के दो स्कूलों में अध्ययनरत छात्र-छात्राएँ हैं। बिड़ला परिसर जिसमें अध्ययन का समग्र विद्यमान है, इसमें 10 स्कूल तथा 48 विभाग हैं अर्थात् यूनिट के तौर पर चुने गये छात्र-छात्राएँ इस विश्वविद्यालय के बिड़ला परिसर में अध्ययनरत थे। **अध्ययन** हेतु बिड़ला परिसर श्रीनगर का चयन गैर-सम्भावना प्रतिर्शन की सुविधात्मक निदर्शनविधि से किया गया। छात्र-छात्राओं की संख्या के आधार पर समस्त स्कूलों में से सुविधात्मक निदर्शन (Convenience Sampling) विधि से दो स्कूलों (स्कूल ऑफ साइंस एवं स्कूल ऑफ ह्यूमेनीट्रीज एण्ड सोशल साइंस) का चयन किया गया है। इन चुने गये स्कूलों में से प्रत्येक स्कूल के विभागों में अध्ययनरत अंतिम सेमेस्टर के छात्र-छात्राओं की कुल संख्या का 20 प्रतिशत छात्र-छात्राओं का चयन सम्भावना प्रतिदर्शन की नियमित अंकन प्रणाली के आधार पर प्रत्येक पाँचवें छात्र/छात्रा का चयन किया गया।

अध्ययन का न्यादर्श :

स्कूल ऑफ ह्यूमेनीट्रीज एण्ड सोशल साइंस

कक्षा	कुल संख्या	20 प्रतिशत संख्या
बी.ए. छात्र	172	34.4
बी.ए. छात्राएं	366	73.2
एम.ए. छात्र	88	17.6
एम.ए. छात्राएं	168	33.6
स्कूल ऑफ साइंस		
बी.एस-सी. छात्र	288	57.6
बी.एस-सी. छात्राएं	248	49.6
एम.एस-सी. छात्र	119	23.8
एम.एस-सी.छात्राएं	153	30.6
कुल योग	1602	320.4

न्यादर्श हेतु चयनित 320 छात्र-छात्राएं विश्वविद्यालय के दोनों स्कूलों में अध्ययनरत सभी छात्र-छात्राओं का सही प्रतिनिधित्व करते हैं।आयु के आधार पर इन छात्र-छात्राओं के चार स्तर बनाये जाते हैं-18 से 22 वर्ष, 22 से 26 वर्ष, 26 से 30 वर्ष एवं 30 से ऊपर आयु वर्ग के। प्रतिदर्श के रूप में इन चारों आयु समूहों में से प्रत्येक से 80 (40 छात्र एवं 40 छात्राएं) छात्र-छात्राओं का अध्ययन करते हैं।

विश्लेषण तथा परिणाम

सारणी संख्या-1

यौन संक्रमण क्या है के बारे में उत्तरदाताओं की राय

यौन संक्रमण क्या है?	आवृत्ति	प्रतिशत
एक रोग	161	50.32
एक विषाणु	159	49.68
योग	320	100.00

सारणी संख्या-1 से ज्ञात होता है कि इस अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 50.32 प्रतिशत ऐसे हैं जो ये मानते हैं कि यौन संक्रमण एक रोग है और 49.68 प्रतिशत मानते हैं कि यह एक विषाणु है। इस अध्ययन में ऐसे उत्तरदाताओं की बहुलता है जो यह

मानते हैं कि यह एक विषाणु है।

सारणी संख्या-2

यौन संक्रमण एवं यौन रोग के लक्षणों के बारे में जानकारी का स्तर

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	211	65.94
नहीं	109	34.06
योग	320	100.00

सारणी संख्या-3 से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 65.94 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो यौन संक्रमण एवं यौन रोग के लक्षणों के विषय में जानते हैं लेकिन 34.06 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इन संक्रमणों एवं रोगों के विषय में नहीं जानते हैं। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-3

बिना लक्षणों के यौन-संक्रमित रोगों के बारे में जानकारी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	88	27.5
नहीं	232	72.5
योग	320	100.00

उपर्युक्त सारणी संख्या-4 से यह तथ्य उजागर होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 27.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो बिना लक्षणों के होने वाले यौन-संक्रमित रोग के बारे में जानकारी रखते हैं लेकिन 72.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं को ऐसे लक्षणों के बारे में कोई जानकारी नहीं हैं। इस अध्ययन में जानकारी नहीं रखने वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-4

एसटीआई के पूरे नाम की जानकारी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	46	14.37
नहीं	274	85.63
योग	320	100.00

सारणी संख्या-5 से यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्ययन में सम्मिलित 14.37 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो एसटीआई की फुलफॉर्म जानते हैं और 85.63 प्रतिशत उत्तरदाता इसका पूरा नाम नहीं जानते हैं। इस अध्ययन में नहीं वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-5

यौन-जनित संक्रमण का यौन-जनित रोग में परिवर्तित होना

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	222	68.37
नहीं	98	30.63
योग	320	100.00

सारणी संख्या-6 के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं में से 68.37 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इस बात से भली-भाँति परिचित हैं कि यौन-संक्रमण ही बाद में यौन-जनित रोग में परिवर्तित हो जाता है और 30.63 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इस विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-6

एसटीडी की फुलफॉर्म के बारे में जानकारी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	83	25.94
नहीं	237	74.06
योग	320	100.00

सारणी संख्या-7 से उजागर होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 25.94 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो एसटीडी का पूरा नाम जानते हैं और 75.06 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इसका पूरा नाम सही से लिखने में भी असमर्थ रहे लेकिन यह सोचनीय स्थिति है कि वह इस बीमारी की जानकारियों से अपरिचित हैं।

सारणी संख्या-7

यौन-संक्रमित रोग और एचआईवी का परस्पर संबंध

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	169	52.82
नहीं	151	47.18
योग	320	100.00

सारणी संख्या-8 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 52.82 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो यौन-संक्रमित रोग और एचआईवी के संबंध को जानते हैं और 47.18 प्रतिशत इसके विषय में कोई जानकारी नहीं रखते हैं। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है जो इस बात का संकेत है कि युवाओं में इस बीमारी के प्रति समझ है।

सारणी संख्या-8
यौन-संक्रमित रोगी को एचआईवी के संक्रमण का खतरा

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	245	76.57
नहीं	75	23.43
योग	320	100.00

सारणी संख्या-9 से ज्ञात होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 76.57 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इस तथ्य के विषय में जानते हैं और 23.43 प्रतिशत इस तथ्य से अपरिचित हैं। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-9
यौन-संक्रमित रोगों की रोकथाम के तरीके और उनके इलाज की जगहों के विषय में जानकारी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	141	44.06
नहीं	179	55.94
योग	320	100.00

प्रस्तुत सारणी के तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 44.06 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो यौन-संक्रमित रोग व इनके इलाज की जगहों के विषय में जानते हैं और 55.94 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इसके विषय में नहीं जानते हैं।

सारणी संख्या-10
कण्डोम के उपयोग द्वारा यौन-संक्रमित रोगों की रोकथाम

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	284	88.75
नहीं	36	11.25
योग	320	100.00

सारणी संख्या 11 से उजागर होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 88.75 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो ये मानते हैं कि कण्डोम के प्रयोग द्वारा यौन-संक्रमित रोगों को रोका जा सकता है जबकि 11.25 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनको इस विषय में कोई जानकारी नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-11
यौन संक्रमण के लिए केवल पुरुषों का ही इलाज होना चाहिए या महिलाओं का भी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	207	64.69
नहीं	113	35.31
योग	320	100.00

सारणी संख्या-12 से ज्ञात होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 64.69 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो यह मानते हैं कि यौन संक्रमण के लिए महिला व पुरुष दोनों का इलाज होना चाहिए और 35.31 प्रतिशत ऐसे हैं जिनको इस विषय में जानकारी नहीं है। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-12
यौन-संक्रमित रोगों की रोकथाम से काफी हद तक एचआईवी के संक्रमण को रोका जा सकता है

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	278	86.88
नहीं	42	13.12
योग	320	100.00

सारणी संख्या-14 से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 86.88 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो यह मानते हैं कि यौन-संक्रमित रोगों की रोकथाम से काफी हद तक एचआईवी के संक्रमण को रोका जा सकता है और 13.12 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनकों इस विषय में कोई जानकारी नहीं है। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-13
स्त्री व पुरुषों में यौन रोग के लक्षण कभी-कभी दिखाई नहीं देते हैं

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	216	67.5
नहीं	104	32.5
योग	320	100.00

प्रस्तुत अध्ययन के तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 67.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो इस बात का समर्थन करते हैं कि स्त्री व पुरुषों में यौन रोग के लक्षण कभी-कभी दिखाई नहीं देते हैं लेकिन 32.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे भी हैं जिनकों इस विषय में कोई जानकारी नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

सारणी संख्या-14

एड्स के अलावा दूसरे यौन-संक्रमित रोगों का इलाज हो सकता है

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	258	80.63
नहीं	62	19.37
योग	320	100.00

प्रस्तुत अध्ययन के तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि अध्ययन में सम्मिलित सभी उत्तरदाताओं में से 80.63 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो ये मानते हैं कि एड्स के अलावा दूसरे यौन-संक्रमित रोगों का इलाज हो सकता है और 19.37 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनकों इस विषय में कोई जानकारी नहीं है। इस अध्ययन में हाँ वाले उत्तरदाताओं की बहुलता है।

परिकल्पना परीक्षण : अध्ययन की परिकल्पना को उत्तरदाताओं की एसटीआई एवं एसटीडी के बारे में क्या राय है? के आधार पर विश्लेषित किया गया है।

शून्य परिकल्पना : छात्र-छात्राओं में यौन-जनित संक्रमण एवं यौन-जनित रोग के प्रति जागरूकता स्तर समान है, उसमें कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

वैकल्पिक परिकल्पना : छात्र-छात्राओं में यौन-जनित संक्रमण एवं यौन-जनित रोग के प्रति जागरूकता स्तर समान नहीं है, उसमें सार्थक अन्तर है।

काई वर्ग परीक्षण (Chi-square (x2) Test)

अवलोकित आवृत्ति की तालिका (Table of Observed Frequency)

एसटीआई एवं एसटीडी के बारे में उत्तरदाताओं की राय

लिंग	हाँ	नहीं	योग
छात्र	98	35	133
छात्राएं	113	74	187
योग	211	109	320

(पाँच प्रतिशत सार्थकता स्तर पर स्वतंत्र संख्या के लिए काई वर्ग परीक्षण सारणी का मूल्य 3.84 है)

प्रत्याशित आवृत्ति (Expected Frequency)

एसटीआई एवं एसटीडी के बारे में राय

लिंग	हाँ	नहीं
छात्र	87.69	45.30
छात्राएं	123.30	63.69

Calculation of X2

Observed Values (O)	Expected Values (E)	(O &E)	$(O \& E)^2$	$\frac{(O \& E)^2}{E}$
98	87.69	10.31	106.29	1.21
35	45.30	-10.3	106.09	2.34
113	123.30	-10.3	106.09	2.34
74	63.69	10.31	106.29	1.21
			X^2 calculated	7.1

Calculation of X2

Degree of freedom	= (columns-1)(rows-1)
	= (2-1) (2-1)
	= 1
Table Value	= 3.84
X2	= 7.1
P Value	= $p < 0.05$
	= $0.05 < p < 0.1$

5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर स्वतंत्र संख्या 1 के लिए काई वर्ग सारणी का मूल्य 3.84 है जबकि काई वर्ग परीक्षण का मूल्य 7.1 है जो काई टेबल मान से ज्यादा है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है। छात्र-छात्राओं में यौन-जनित संक्रमण एवं यौन-जनित रोग के प्रति जागरूकता स्तर समान नहीं है।

निष्कर्ष : यौन संक्रमण एक ऐसी बीमारी है जो विशेषकर यौनांगों के आस-पास उत्पन्न होती है और अज्ञानतावश यौन संक्रमण यौन बीमारी में परिवर्तित हो जाता है। यह सहभागी द्वारा एक-दूसरे को हस्तांतरित भी हो जाता है। इस अध्ययन में ऐसे छात्र-छात्राओं की बहुलता है जो यह मानते हैं कि यह विषाणु के द्वारा होता है लेकिन जागरूकता स्तर के मामले में छात्र-छात्राओं की जानकारी का स्तर अलग-अलग है।

यौन-जनित संक्रमण एवं रोग अक्सर यौन जननांगों (लिंग अथवा योनि) के आस-पास दिखाई देते हैं।

छात्र-छात्राएं इन बीमारियों के प्रति सजग हैं और पहले की अपेक्षा जागरूक हुए हैं लेकिन दोनों के जागरूकता स्तर में अन्तर है। ऐसे छात्र-छात्राओं की बहुलता है जो 18 से 22 वर्ष आयु वर्ग के हैं। कुछ यौन रोग बिना लक्षणों के भी होते हैं इस बारे में उत्तरदाताओं का जागरूकता स्तर निम्न है लेकिन अलग-अलग राय है।
किस तरह यौन-जनित रोग एचआईवी में परिवर्तित हो सकता है। यह प्रश्न सभी छात्र-छात्राओं के लिए सोचनीय था। यदि कोई व्यक्ति ऐसे किसी व्यक्ति के साथ जिसे यौन-रोग है और उसके साथ सम्पर्क में आता है तो यह उसको भी हो सकता है। इस बारे में छात्राओं की राय छात्रों की अपेक्षा अलग थी लेकिन जानकारी की दृष्टि से जागरूकता स्तर अधिक है। अधिकतर उत्तरदाता ऐसा मानते हैं कि यौन-संक्रमण से बचाव के लिए स्त्री और पुरुष दोनों का ही इलाज होना चाहिए, तभी इन संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है। ऐसी राय व्यक्त करने वाले छात्र-छात्राओं की बहुलता है।
यौन संक्रामक रोगों से ग्रस्त रोगियों की संख्या भारत में अधिक है ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा सकती है क्योंकि शर्म का दायरा और लांछन का डर इस विषय में विचार-विमर्श करने में बाधा उत्पन्न करता है। अनेक शोध पत्रों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि यौन-संक्रामक रोगों की रोकथाम से काफी हद तक एचआईवी संक्रमण को रोका जा सकता है। युवाओं में संक्रामक रोगों के लक्षण कभी-कभी दिखाई नहीं देते हैं इस विषय पर अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है कि ऐसी स्थिति में उनको कैसे जागरूक किया जा सकता है। एड्स के अलावा दूसरे संक्रामक रोगों का इलाज हो सकता है लेकिन एड्स का नहीं; क्योंकि इसका कोई भी कारगर टीका अभी तक उपलब्ध नहीं है। अंततः यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि हम जिस तरह के वातावरण में रह रहे हैं उसमें नित नए रोग जन्म लेते हैं जिसके लिए बहुत से कारणों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। ऐसे में यदि युवा यौन-जनित संक्रमण एवं यौन-जनित रोगों के विषय में जागरूक हो जाता है या उसके ज्ञान का स्तर बढ़ जाता है तो वह समाज के लिए एक बेहतर सकारात्मक पक्ष होगा।

सन्दर्भ

1. प्रकाश, भगबान; 'युवा छात्रों के लिए एड्स शिक्षा : एक प्रशिक्षण संहिता, यूनिवर्सिटीज टॉक एड्स, राष्ट्रीय सेवा योजना', युवा कार्यक्रम एवं खेल विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2006, पृ.70।
2. आहूजा, राम, 'सामाजिक समस्याएं', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2008, पृष्ठ संद्र : 456-470।
3. भट्ट, सुनील कुमार एवं जयश्री एस. भट्ट, 'एड्स : प्रक्रिया एवं सामाजिक प्रतिमान', विज्ञान प्रगति, वर्ष : 55, अंक : 12, नई दिल्ली, 2006, पृ. 41-47।
4. स्वर्णकार, प्रेमचंद्र, 'संक्रामक रोगों से सुरक्षा', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, 2014, पृ.10।
5. वही., पृ. 91
6. पालीवाल, दीपक, 'स्वास्थ्य और चिकित्सा का समाजशास्त्र', एम.एस.ओ.-603, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, 2020, पृ. 4-61
7. WHO, 'The Constitution of the World Health Organisation', WHO, Geneva
8. वही, पृ.169।
9. वही, पृ 167-175।
10. पाण्डेय, गणेश, 'भारतीय सामाजिक समस्याएँ', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2007, पृ.376।
11. कुमार, मनोज, 'एड्स तथा सेक्सुअलिटी-संवेदनशील वर्ग का एक अध्ययन', भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संध, नई दिल्ली, 1999, पृ. 22-26।
12. एस्टल, स्मिथ एलिसन एवं सोफिया ग्रस्किन, 'एचआईवी/यौन-संचारित संक्रमणों के प्रति नेपाल के प्रवासी समुदायों की ग्रामीण महिलाओं की संवेदनशीलता : स्वास्थ्य और मानवाधिकार से जुड़ा एक विषय', रिप्रोडक्टिव हैल्थ मैटर्स, नई दिल्ली, 2001, पृ. 60-75।
13. जयश्री, ऐ.के., 'भारत के केरल राज्य में, यौनकर्मियों द्वारा विपरीत परिस्थितियों में काम करते हुये, स्वयं के लिये न्याय की खोज के प्रयास', रिप्रोडक्टिव हैल्थ मैटर्स, सीआरईए पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2004, पृ.72-90।
14. कपूर, इन्दू और सोनल मेहता, 'भारत में किशोरों के लिये आयोजित स्वास्थ्य मेलों में प्रेम और सैक्स के विषय पर बातचीत', रिप्रोडक्टिव हैल्थ मैटर्स, सीआरईए पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2006, पृ. 91-100।
15. सिंह, विक्रम, 'सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ प्रोस्टिट्यूशन, एचआईवी/एड्स एण्ड इट्स इम्प्लीकेशन्स अमंग फिमेल सेक्स वर्कर्स इन बिलासपुर', जरनल ऑफ ह्यूमैनीटीज एण्ड सोशल साइंसेज, वॉल्यूम 04, इश्यू 02, 2014, पृ. 116-142।

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भूमिका समायोजन के संदर्भ में कार्यशील महिलाओं की प्रस्थिति : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ. राजश्री मठपाल

सूचक शब्दः कार्यशील महिला, भूमिका समायोजन, कॉल सेन्टर्स

औद्योगिक क्रांति एवं नारी मुक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति में अत्यंत तीव्र गति से परिवर्तन आया है। 1914 से 1950 के मध्य महिलाओं में रोजगार को लेकर होने वाले उत्साह के आधार पर महिला की प्राथमिक भूमिका (गृहिणी) को कार्यशील महिला की भूमिका के साथ स्वीकारा जाने लगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति काफी परिवर्तित हो चुकी है। शिक्षित स्त्रियों द्वारा रोजगार करने की जो लहर आई है, उसका उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर तथा पारिवारिक संबंधों पर भी प्रभाव पड़ा है। सामान्यतः कार्यशील महिलाओं की दो भूमिकायें एवं रूप हैंः पहली, कार्यशील महिला की भूमिका इस स्थिति में महिलायें आर्थिक दृष्टि से पारिवारिक स्तर में बढ़ोतरी करती हैं दूसरी, वैयक्तिक एवं पारिवारिक स्तर पर गृहिणी की भूमिका। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में महिलायें शिक्षा प्राप्त कर अनेक नवीन कार्यक्षेत्रों में सम्मिलित हो रही हैं तथा अपनी भूमिकाओं का निर्वहन कर रही हैं। विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत रहते हुये महिलाओं को कार्यस्थल एवं परिवार संबंधी दोनों भूमिकाओं के साथ समायोजन करना पड़ता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भूमिका समायोजन में कार्यशील महिला की भूमिका एवं पारिवारिक वातावरण का अध्ययन करना तथा भूमिका समायोजन को प्रभावित करने वालें कारकों का अध्ययन करना है। शोध अध्ययन में राजस्थान राज्य की राजधानी जयपुर शहर के इंफोसिस एवं जेनपैक्ट कॉल सेंटर्स में कार्यरत् कुल 280 उत्तरदात्रियों से गैर संभावना निदर्शन पद्धति के स्नोबॉल निदर्शन विधि द्वारा सूचना व तथ्य प्राप्त किये हैं।

औद्योगिक क्रांति एवं नारी मुक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति में अत्यंत तीव्र गति से परिवर्तन आया है। एन. ओकले के अनुसार "औद्योगीकरण के फलस्वरूप महिला की जिस आधुनिक भूमिका का उद्भव हुआ है, वह है परिपक्व प्रभुत्वशाली महिला की भूमिका (Dominant Mature Feminine Role)।[1] बीसवीं शताब्दी के आरंभ में औद्योगीकरणके द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति में मुख्य रूप से परिवर्तन आया, उनकी पहचान अब एक अर्जक के रूप में भी होने लगी। 1914 से 1950 के मध्य महिलाओं में रोजगार को लेकर होने वाले उत्साह के आधार पर महिला की प्राथमिक गृहिणी को कार्यशील महिला की भूमिका के साथ स्वीकारा जाने लगा। औद्योगीकरण का प्रभाव मुख्य रूप से महिला पर तीन प्रकार से पड़ा, पहला "घरेलू जीवन के दैनिक कार्यों में महिला एवं पुरूष की भागीदारी बढ़ी।" दूसरा "महिला की पुरूष पर आर्थिक निर्भरता कम हुई" व तीसरा "अन्य कार्यों के साथ गृहकार्य का पृथक्करण हुआ।"[2] इस प्रकार 20वीं शताब्दी में औद्योगीकरण के कारण महिला की एक नवीन भूमिका, कार्यशील महिला की भूमिका का उदय हुआ।

इस संदर्भ में भूमिका समायोजन के विषय को सैद्धांतिक दृष्टि से यदि नारीवादी विचारकों के आधार पर विश्लेषित करें तो स्पष्ट होता है कि महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए निजी संपत्ति, पूँजीवादी संरचना तथा पितृसत्ता उत्तरदायी है। लिंग तथा वर्ग की शक्ति की नींव मुख्यतः पितृसत्तात्मक संरचना में निहित है। नारीवादी लेखों में भी महिलाओं की स्थिति के उचित विश्लेषण हेतु वर्ग तथा पितृसत्तात्मक संरचना में पाये जाने वाले अन्तर्संबंधों को समझना आवश्यक माना है। नारीवादी विचारकों के अनुसार घरेलू श्रम विभाजन भी पितृसत्तात्मक संरचना का मुख्य आधार है। इसी क्रम में औद्योगीकरण के युग में सामाजिक नारीवादी विचारकों ने लैंगिक भूमिकाओं में श्रम विभाजन हेतु औद्योगिक पूंजीवाद को उत्तरदायी माना है। इनके अनुसार महिलाओं की शक्तिहीन स्थिति चार आधारभूत संरचना (उत्पादन, पुनरूत्पादन, लैंगिकता तथा समाजीकरण) की प्रक्रिया पर निर्भर है। सामाजिक नारीवादी विचारकों ने वर्गीय संरचना के अन्तर्गत लैंगिक भूमिकाओं की संस्तरणात्मक व्यवस्था को विश्लेषित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। "1950–60 के दशक के मध्य होने वाले नारीवादी आंदोलन में प्रसिद्ध नारीवादी विचारक सिमॅान द बाउवार ने अपनी पुस्तक 'द सैकण्ड सेक्स' में दर्शनशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और मानवशास्त्र की सहायता से महिला की भूमिकाओं को प्रकृति की देन न मानकर

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

संस्कृति एवं पितृसत्ता की उपज माना है।"[3] इनके अनुसार "औरत पैदा नहीं होती अपितु बनाई जाती है अर्थात् स्त्री-सुलभ गुण-दोष या व्यक्तित्व लिंग भेद के प्राकृतिक आधार पर नहीं बल्कि संस्कार एवं सीख के आधार पर बनते हैं।"[4]

इस संदर्भ में यदि सामाजिक नारीवादी विचारकों जैसे- सेंट साइमन, फरियर तथा रॉबर्ट ओवेन की विचारधाराओं का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि इन सभी ने अपने चिंतन के एक केन्द्रीय विषय के रूप में स्त्री-पुरूष संबंधों तथा परिवार को अपनाया था एवं लैंगिक असमानता से संबंधित अनेक विचार प्रस्तुत किए, जो इस तथ्य को इंगित करते हैं कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्री एवं पुरूष को समान अधिकार नहीं मिल सकते। इसके लिए एक नये समाज की संरचना करनी होगी जो कि महिलाओं को आर्थिक एवं कानूनी दृष्टि से स्वतंत्रता प्रदान करेगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति काफी परिवर्तित हो चुकी है। वे महिलायें जो अपनी परंपरागत भूमिकाओं में बंधकर बाह्य कार्यक्षेत्रों में कार्य करने का विचार नहीं करती थीं, वे अब पारंपरिक भूमिकाओं के साथ प्रशासनिक पदों पर कार्यरत हैं। इस समय विशेषकर शहरी समाज में अधिकांश महिलायें शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त किसी न किसी व्यवसाय में अपने को व्यस्त रखना चाहती हैं जिसे नवीन परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था का परिणाम माना जा सकता है। शिक्षा के प्रसार के कारण प्रशिक्षण युक्त व्यवसायों में भी स्त्रियों के प्रवेश की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। सरकार की ओर से भी महिलाओं की उच्च शिक्षा की दिशा में व्यापक कदम उठाये जा रहे हैं। सरकारी तथ्यों से स्पष्ट है कि "1882 में भारत में 2054 स्त्रियां ऐसी थीं जो कुछ लिख पढ़ सकती थीं परन्तु 1971 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार साक्षर स्त्रियों की संख्या बढ़कर लगभग 4.93 करोड़ से भी अधिक हो गई है। 2011 की जनगणना रिपोर्ट के आधार पर महिला साक्षरता दर 65.46 प्रतिशत हो गई है।" महिलाओं में शिक्षा के कारण ही जीवनवृत्ति का विकास संभव हो पाया है। माथुर (1992), चटर्जी (1993) के अनुसार "उच्च शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण ही महिलाओं में जीवनवृत्ति के प्रति जागरूकता संभव हो पाई है।"[5] शिक्षित स्त्रियों द्वारा रोजगार करने की जो लहर आई है, उसका उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर तथा पारिवारिक संबंधों पर भी असर पड़ा है। विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत रहते हुये महिलाओं को कार्यस्थल एवं परिवार संबंधी दोनों भूमिकाओं के साथ समायोजन करना पड़ता है। भूमिका सिद्धांत को प्रसिद्ध सामाजिक मानवशास्त्री रॉल्फ लिंटन ने सामाजिक व्यवस्था के संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य से संबंधित कर विकसित किया है। लिंटन के अनुसार "सामाजिक संरचना में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका के साथ उसकी प्रस्थिति जुड़ी हुई होती है। इस प्रस्थिति के साथ एक स्तर के आदर्श कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन व्यक्ति को करना पड़ता है।"[6] अर्थात् मानव समाज प्रत्येक व्यक्ति से उसकी प्रस्थिति के अनुसार कुछ सामाजिक अपेक्षायें रखता है जिन्हें व्यक्ति विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं के द्वारा निभाता है। जब कभी ये समस्त अपेक्षायें अव्यवस्थित हो जाती हैं अर्थात पूरी नहीं हो पातीं तब उस स्थिति को समाजशास्त्रियों ने "भूमिका संघर्ष" या "भूमिका तनाव" की संज्ञा दी है।

इस प्रकार व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से एक प्रबुद्ध कार्यशील महिला पर दोहरी भूमिकाओं का निर्वहन करने के लिये दबाव डाला जाता है। कार्यस्थल प्रबंधन एवं गृहकार्य प्रबंधन की दोहरी भूमिकायें सदैव संघर्ष को उत्पन्न नहीं करती अपितु कई बार परम्परागत एवं आधुनिक मूल्यों, व्यवहारों, विश्वासों तथा नियमों में टकराव अथवा द्वन्द्व के कारण भी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं जो किसी भी कार्यशील महिला के व्यक्तित्व को प्रभावित कर सकती है। उचित रूप से समय प्रबंधन, व्यावसायिक कर्तव्य, गृहकार्य प्रबंधन, बच्चों की देखभाल का उत्तरदायित्व, माता-पिता अथवा सास-ससुर एवं पति के प्रति उत्तरदायित्व तथा व्यक्तिगत रूप से स्वयं के प्रति संतुष्ट होना ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हैं, जो कि सदैव समायोजन की माँग करती है।

साहित्य समीक्षा : अनीसा साफी[7] एवं पूनम अरोड़ा[8] ने अध्ययन कर यह स्पष्ट किया कि जहां एक ओर महिला अध्यापकों में भूमिका तनाव व संघर्ष की स्थिति अधिक सक्रिय होती है वहीं अन्य व्यवसायों जैसे- बैंकिंग, नर्सिंग, चिकित्सा आदि में संलग्न कार्यशील महिलाओं की भूमिकाओं को तथा उनके कार्यकारी जीवन को उनका व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन अत्यंत सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

सरोज नूर; नाजिया माद[9] द्वारा पाकिस्तान में किये गए अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि मार्केटिंग एक्जीक्यूटिव्स के कार्य तनाव एवं कार्यकारी जीवन तथा पारिवारिक संघर्षों

का संगठन के टर्नओवर से सकारात्मक संबंध होता है। यदि कार्यरत् व्यक्ति के कार्यतनाव एवं पारिवारिक संघर्षों का स्तर निम्न होता है, तो कम्पनी का टर्नओवर अधिक होगा तथा जब कार्यशील व्यक्ति में कार्यतनाव एवं संघर्ष का स्तर उच्च होता है तो संगठन का टर्नओवर निम्न होगा।

हैमड अयो[10] ने नाइजीरिया की कार्यशील महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया जिसके अन्तर्गत उनके कार्य दबाव, सामाजिक सहयोग एवं पारिवारिक संघर्ष जैसे चरों के मध्य संबंधों को ज्ञात किया गया। अध्ययन में यह तथ्य सामने आये कि कम उम्र वाली और अधिक उम्र वाली महिलाओं के तनाव अनुभव में सार्थक अंतर पाया जाता है, परन्तु कनिष्ठ एवं वरिष्ठ कार्यशील महिलाओं में भूमिका संघर्ष, कार्य/पारिवारिक तनाव अनुभव में कोई भी सार्थक अंतर नहीं पाया जाता। इसी प्रकार अविवाहित एवं विवाहित कार्यशील महिलाओं के तनाव एवं भूमिका संघर्ष का अनुभव अधिक पाया जाता है।

अस्मतउल्लाह खान, अनुबरीन खान[11] ने पाकिस्तान की कार्यशील नर्सेस के तनाव एवं कार्य संतुष्टि का अध्ययन किया जिसके अन्तर्गत उन्होंने पारिवारिक वातावरण, कार्य संस्कृति, कार्य का समय, पारिवारिक भूमिका के मध्य संबंधों का अध्ययन किया। प्राप्त तथ्यों द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि पारिवारिक वातावरण एवं कार्यक्षेत्र के वातावरण का सकारात्मक प्रभाव कार्यशील महिलाओं की भूमिका समायोजन पर पड़ता है।

एलेक्स रोशन एनी[12] ने कामकाजी और गैर-कामकाजी महिलाओं में तनाव सहनशीलता और समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया जिसके परिणामों से यह ज्ञात होता है कि कामकाजी और गैर-कामकाजी महिलाओं के तनाव सहनशीलता और समायोजन के स्तर में काफी अंतर होता है। गैर-कामकाजी महिलाओं को की तुलना में कामकाजी महिलाओं में अधिक तनाव सहनशीलता पायी गई। साथ ही कामकाजी महिलाओं ने गैर-कामकाजी महिलाओं की तुलना में बेहतर समायोजन दिखाया। अध्ययन से पता चला है कि, तनाव सहनशीलता पर रोजगार का बहुत प्रभाव पड़ता है।

मूर्ति और शास्त्री[13] कार्य और पारिवारिक जीवन संतुलन को पूरा करने के लिए उच्च स्तर के समय और ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कार्यकारी-पारिवारिक जीवन के उत्तरदायित्वों के कारण संघर्ष होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। काम और पारिवारिक आवश्यकताओं को प्रबंधित करने के लिए महिलाओं को अपने व्यक्तिगत समय, स्वास्थ्य और पारिवारिक बंधनों का त्याग करने की आवश्यकता होती है।

पाटिल[14] ने कामकाजी और गैर-कामकाजी महिलाओं के बीच तनाव पर अध्ययन किया। यह अनुमान लगाया गया था कि कामकाजी महिलाओं में गैर-कामकाजी महिलाओं की तुलना में अधिक तनाव होता है। उपरोक्त परिकल्पना को सत्यापित करने के लिए 90 महिलाओं के निदर्श लिए गए जिसमें से कामकाजी महिलाएं (45) और गैर-कामकाजी महिलाएं (45) चयनित की गई। तनाव को मापने के लिए, सिंह (2002) द्वारा विकसित तनाव पैमाने को व्यक्तिगत रूप से विषयों पर प्रशासित किया गया था। तथ्यों को 'टी' विश्लेषण के अधीन किया गया था और अध्ययन के प्रमुख निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि कामकाजी महिलाओं में गैर-कामकाजी महिलाओं की तुलना में अधिक तनाव होता है।

श्रीलक्ष्मी के[15] अनुसार विवाहित जीवन समझौते के कुछ पहलुओं पर जोर देता है। उदाहरण के लिए समय और अन्य संसाधनों को साझा करते हुए परिवार के सदस्य (पति-पत्नी और बच्चे), विभिन्न प्रकार के लाभ को अर्जित करते हैं। विवाहित जीवन उपलब्धियों और कठिनाइयों को साझा करने का एक भावनात्मक बंधन होता है। अतः कामकाजी और गैर-कामकाजी महिलाओं के वैवाहिक समायोजन में एक महत्वपूर्ण अंतर होता है। परिणामस्वरुप अध्ययन में यह ज्ञात हुआ कि कामकाजी महिलाओं नें गैर-कामकाजी महिलाओं की तुलना में बेहतर वैवाहिक समायोजन प्रदर्शित किया ।

उपर्युक्त अध्ययनों के पुनरावलोकन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कार्यशील महिलाओं पर शोध कार्य करना अनेक शोधकर्ताओं के लिए एक रूचिकर विषय रहा है। इन अध्ययनों में अधिकांश में उन्हीं कार्यशील महिलाओं को चयनित किया गया जो कि या तो अध्यापन के क्षेत्र से जुड़ी थीं या फिर अन्य परम्परागत सरकारी नौकरियाँ करती थीं, जैसे- डॉक्टर, इंजीनियर, बैंकिंग, नर्स इत्यादि। इसी क्रम में कॉल सेंटर्स व्यवसाय के क्षेत्र में एक नवीन कार्यस्थल हैं जहाँ कार्य करने की पद्धति, कार्य संस्कृति एवं कार्य समय सीमा पारम्परिक व्यवसायों से भिन्न है। कार्यशील युवतियों को इस नवीन कार्यक्षेत्र की संस्कृति एवं समय सीमा में रहकर कार्य करना होता है, जिसके लिये पारिवारिक सहयोग एवं समायोजन की महती आवश्यकता होती है।

अतः समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में कॉल सेंटर्स की कार्यशील महिलाओं का अध्ययन करना वर्तमान नवीन सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण है। विकास की प्रवृत्ति के संदर्भ में मौलिक प्रश्न यह है कि "कार्यशील महिलाओं में भूमिका समायोजन की स्थिति सक्रिय करने में उनके परिवार की क्या सहभागिता रहती है?"

अध्ययन के उद्देश्य

1. भूमिका समायोजन में कार्यशील महिला की भूमिका एवं पारिवारिक वातावरण का अध्ययन करना।
2. भूमिका समायोजन को प्रभावित करने वालें कारकों का अध्ययन।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन में निदर्श हेतु जनसंख्या की वास्तविक जानकारी न प्राप्त हो पाने के कारण तथ्यों के संकलन हेतु गैर संभावना निदर्शन पद्धति के स्नोबॉल निदर्शन विधि का उपयोग किया है। इस विधि में अनुसंधानकर्ता कम उत्तरदाता जो कि उसके परिचित होते हैं और उपलब्ध भी होते हैं, उनको लेकर अनुसंधान शुरू करता है बाद में यही लोग कुछ अन्य उत्तरदाताओं के नाम देते हैं, जो अनुसंधान की कसौटी पर सही होते हैं। उसे अध्ययनकर्ता अपने निदर्शन में सम्मिलित कर लेता है। उसके पश्चात् वे उत्तरदाता फिर कुछ नये नाम दे देते हैं, जिन्हे भी अध्ययन में सम्मिलित कर लिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है, जब तक अनुसंधानकर्ता को पर्याप्त संख्या में निदर्श मिल जाते या जब तक कि और उत्तरदाता मिलने बंद न हो जाएं। इस विधि का प्रयोग तब तक किया जाता है, जब लक्षित समग्र जन अज्ञात हों या फिर अन्य किसी तरीके से उत्तरदाता तक पहुँचना कठिन हो। इस निदर्शन का सबसे बड़ा लाभ अध्ययन निदर्श का छोटा आकार व कम लागत है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन में समय सीमा एवं धन की लागत को ध्यान में रखते हुए राजस्थान राज्य की राजधानी जयपुर शहर के इंफ़ोसिस एवं जेनपेक्ट कॉलसेंटर्स में कार्यरत् महिलाओं से सूचना व तथ्य प्राप्त किये हैं। प्रकार प्रस्तुत शोध में कुल 280 उत्तरदात्रियों को सम्मिलित किया गया है। तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक स्त्रोत प्रश्नावली पद्धति का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक 1

सास-ससुर या माता-पिता के साथ रहने के आधार पर उत्तरदात्रियों का वर्गीकरण

सास-ससुर या माता-पिता आपके साथ रहते हैं-	विवाहित उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत	अविवाहित उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
हां	64	53.78	63	39.13
नहीं	55	46.22	98	60.87
कुल योग	119	100	161	100

उपर्युक्त वर्णित आंकड़ों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि 53.78 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ अपने सास-ससुर के साथ रहती हैं जबकि 46.22 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ अपने सास-ससुर के साथ नहीं रहती हैं। तथ्यों द्वारा यह पता चलता है कि सास-ससुर के साथ रहने वाली एवं साथ नहीं रहने वाली उत्तरदात्रियों की संख्या में कोई विशेष अंतर नहीं है। परन्तु नवीन परिवर्तित कार्यक्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों को अधिकतर माता-पिता या सास-ससुर से दूर रहकर कार्य करना पड़ता है जिसका मुख्य कारण कम्पनियों (कार्य संगठनों) का बड़ें शहरों में स्थापित होना है। परिणामस्वरूप प्रवसन एवं एकल परिवार की अवधारणा का विकास हो रहा है, जो कि परम्परागत भारतीय पारिवारिक व्यवस्था से विलग व्यवस्था है।

अविवाहित उत्तरदात्रियों में से 39.13 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ परिवार के साथ निवास करती हैं, परन्तु 60.87 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ अपने परिवार से अलग रहकर कार्य करती हैं। प्रस्तुत तथ्य यह संकेत करते हैं कि, कार्यक्षेत्रों के नये-नये आयाम खुलने के बाद भारतीय परिवारों ने भी पारम्परिक विचारों जैसे- लड़कियों का घर से बाहर निकल कर कार्य करना, दूसरे शहरों में नौकरी हेतु गमन आदि का परित्याग करना प्रारम्भ कर दिया है। ऐसा न केवल उच्च वर्गीय परिवारों में होता है, जबकि मध्यम वर्गीय परिवारों की लड़कियां भी अब दूसरे शहरों में उसी उत्साह के साथ इन नवीन व्यवसायों से जुड़ रहीं हैं।

सारणी क्रमांक 2

पति व पत्नी का नौकरी का स्थान

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
एक ही शहर	92	77.31
अलग-अलग शहर में	27	22.69
कुल योग	119	100

उपर्युक्त सारणी के तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि विवाहित उत्तरदात्रियों में से 77.31 प्रतिशत एवं उनके पति एक ही शहर में नौकरी करते हैं जबकि 22.69 प्रतिशत के पति अन्यत्र नौकरी करते हैं। तथ्यों से स्पष्ट होता है कि, एक ही शहर में अपने पति के साथ नौकरी करने वालों की संख्या अधिक है।

सारणी क्रमांक 3

बच्चों का पालन पोषण

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
सामान्य माँ की तरह	53	44.54
प्रश्न मान्य नहीं	34	28.57
नहीं	32	26.89
कुल योग	119	100

नोटः-34 विवाहित उत्तरदात्रियाँ नवविवाहित हैं, अतः उनकी अभी संताने नहीं हैं। इसी कारण उक्त विषय में यह प्रश्न उनके लिए मान्य नहीं है।

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि 44.54 प्रतिशत कार्यशील मातायें यह मानती हैं कि, वे अपने बच्चों का पालन-पोषण साधारण माँ की तरह कर पाती है जबकि 26.89 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का इस संबंध में यह मानना है कि, कॉल सेंटर्स में कार्यरत् होने के तथा कार्यावधि शिफ्ट के आधार पर होने के कारण व अपनी संतानों की देखभाल एक साधारण माँ की तरह नहीं कर पाती हैं। इसी संदर्भ में 28.57 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ नवविवाहित हैं जिनके लिए उक्त प्रश्न का सार्थक उत्तर दे पाना संभव नहीं था। इस प्रकार उक्त तथ्य यह प्रदर्शित करते हैं कि, आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप से सुदृढ़ होने के बावजूद अधिकांश उत्तरदात्रियाँ यह स्वीकार करती हैं कि आमतौर पर वे अपनी संतानों की परवरिश एवं देखभाल एक साधारण माता की तरह नहीं कर पाती हैं।

सारणी क्रमांक 4

पारिवारिक विषयों की निर्णयन प्रक्रिया में सहभागिता

निर्णयन भूमिका	विवाहित उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत	अविवाहित उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
स्वयं का निर्णय ही मान्य	4	3.36	64	39.75
मिलजुल कर निर्णय लेते हैं	115	96.64	97	60.25
कुल योग	119	100	161	100

उपर्युक्त सारणी के आधार पर यह ज्ञात होता है कि, कुल विवाहित उत्तरदात्रियों में से मात्र 3.36 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ ही ऐसी हैं जिनके परिवार में उनके द्वारा लिए गए निर्णय ही मान्य होते हैं, जबकि 96.64 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवार संबंधी निर्णय उनकी सहमति से मिलजुलकर लिये जाते हैं। इन तथ्यों से यह इंगित होता है कि, सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में भारतीय परिवारों में जहाँ महिलाओं को उनके जीवनवृत्ति विकास हेतु अवसर प्रदान किये जा रहे हैं वहीं आधुनिकीकरण के इस युग में महिलायें मात्र घर का कामकाज करने वाली गृहिणी न होकर परिवार की निर्णयन् प्रक्रिया में भी अपनी भागीदारी प्रदान कर रही हैं।

चयनित अविवाहित उत्तरदात्रियों में से 39.75 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को उनके परिवार के कुछ निर्णयों में सम्मिलित किया जाता है, इसी प्रकार 60.25 प्रतिशत उत्तरदात्रियों से उनके परिवारों में सभी विषयों पर राय ली जाती है। इन आंकड़ों से यह संकेत मिलता है कि, शिक्षा एवं नवीन आधुनिक व्यवसायों में वृद्धि के कारण आज महिलायें पारिवारिक विषयों में निर्णय लेने हेतु भी सशक्त हो रही हैं।

सारणी क्रमांक 5

ससुराल वालों द्वारा दैनिक गृहकार्यों में सहायता

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
सदैव	45	37.82
अक्सर	23	19.33
आवश्यकता पड़ने पर	38	31.93
कभी नहीं	13	10.92
कुल योग	119	100

उक्त सारणी से प्रदर्शित होता है कि विवाहिताओं में से 37.82 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को अपने दैनिक गृहकार्यों को पूर्ण करने में ससुराल वालों की सहायता सदैव प्राप्त होती है, जबकि 19.33 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को अक्सर सहायता प्राप्त होती है तथा 31.93 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को आवश्यकता पड़ने पर ससुराल वालों द्वारा सहायता प्राप्त होती है। मात्र 10.92 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को दैनिक गृहकार्यों को पूर्ण करने में ससुराल वालों से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं होती है।

सारणी क्रमांक 6

पति द्वारा दैनिक गृहकार्यों में सहयोग

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हां, पूर्ण रूप से	83	69.75
हां, आंशिक रूप से	27	22.69
नहीं	9	7.56
कुल योग	119	100

विवाहित कार्यशील महिलाओं में से 69.75 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के पति पूर्ण रूप से उनके दैनिक गृहकार्यों में सहयोग प्रदान करते हैं तथा 22.69 प्रतिशत के पति आंशिक रूप से सहयोग करते हैं। जबकि 7.56 प्रतिशत ही ऐसी कार्यशील महिलायें हैं जिनके पति उनको किसी भी दैनिक गृहकार्य में सहयोग प्रदान नहीं करते। इससे स्पष्ट होता है कि अब पुरूष वर्ग भी अपनी पत्नियों का दैनिक गृहकार्य में हाथ बंटाने में कोई संकोच नहीं करते हैं।

सारणी क्रमांक 7

दोहरी भूमिकाओं का सफलतापूर्वक निर्वहन

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हां, पूर्ण रूप से	77	64.71
हां, आंशिक रूप से	23	19.32
नहीं	19	15.97
कुल योग	119	100

उपर्युक्त सारणी के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कुल विवाहित कार्यशील महिलाओं में से 64.71 प्रतिशत महिलायें यह मानती हैं कि, वे दोहरी भूमिकाओं का सम्पादन पूर्ण रूप से सफलतापूर्वक कर पाती हैं, 19.32 प्रतिशत आंशिक रूप से दोहरी भूमिकाओं का निर्वहन करती हैं जबकि 15. 97 प्रतिशत कार्यशील विवाहितायें कार्यस्थल एवं गृहकार्य की दोनों भूमिकाओं में वे उचित प्रकार से समायोजन नहीं कर पाती हैं। स्पष्ट हैं कि, नवीन परिवर्तित युग में अधिकांश महिलायें गृहकार्य एवं कार्यस्थल दोनों स्थानों पर सामंजस्य स्थापित करते हुए दोहरी भूमिकाओं का सम्पादन कर रही हैं, जिसका मूल कारण परिवार एवं पति द्वारा सहयोग एवं समर्थन प्राप्त होना है। समाज में हो रहे इस बदलाव का सकारात्मक प्रभाव महिलाओं की प्रस्थिति पर भी देखने को मिल रहा है। एल. उग्वू[16] के अनुसार, द्वि–अर्जक परिवारों में महिलाओं के तनाव को दूर करने में परिवार एवं मित्रों के द्वारा प्राप्त होने वाला सहयोग महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा भूमिका संघर्ष की संभावना को कम करता है।

सारणी क्रमांक 8

रात्रि पारी में कार्य करना

रात्रि पारी में कार्य	विवाहित उत्तरदात्रियाँ	प्रतिशत	अविवाहित उत्तरदात्रियाँ	प्रतिशत
हां	72	60.50	88	54.66
नहीं	47	39.50	73	45.34
कुल योग	119	100	161	100

उपर्युक्त तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि विवाहित उत्तरदात्रियों में से 60.50 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ रात्रि पारी में भी कार्य करती हैं जबकि 39.50 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ रात्रि पारी में कार्य नहीं करती हैं। स्पष्ट है कि इस नवीन कार्य प्रणाली में जितनी महिलायें कार्यरत् हैं, उन्हें रात्रि पारी में भी कार्य करने में कोई संकोच नहीं होता है।

अविवाहित कार्यशील उत्तरदात्रियों में से 54.66 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ रात्रि की पारी में कार्य करती हैं, 45.34 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ फिलहाल रात्रि पारी में कार्य नहीं कर रही हैं। तथ्यों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि, अधिकांश परिवारों में घर की बेटियों द्वारा रात्रि में अथवा देर रात तक कार्य करने की प्रवृत्ति को स्वीकारा जा रहा है ताकि उनके जीवनवृत्ति (कैरियर) विकास में किसी भी प्रकार की बाधा ना आए और वे सफलता के पथ पर अग्रसर हों।

सारणी क्रमांक 9

विवाह के पश्चात् नौकरी करना

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हां	103	63.97
नहीं	17	10.56
पता नहीं	41	25.47
कुल योग	161	100

उपर्युक्त आंकड़ों के द्वारा यह इंगित होता है कि, अविवाहित महिलाओं में से 63.97 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ विवाह के

पश्चात् भी इस व्यवसाय में संलग्न रहना चाहती हैं जबकि मात्र 10.56 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ नहीं चाहती कि, वे विवाह के पश्चात् भी इस व्यवसाय से जुड़ी रहें। उल्लेखनीय है कि 25.47 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को पता ही नहीं है कि, वे इस नौकरी को कर पायेंगी या फिर नहीं इसलिए इस विषय में उन्होंने कोई भी राय नहीं दी।

सामाजिक परिवर्तन के वर्तमान दौर में परिवारजनों ने भी आधुनिक विचारों को स्वीकारा है और अब वे स्वयं चाहते हैं कि उनके परिवार की बहू-बेटियां विवाह के पश्चात् भी व्यवसायरत् रहें तथा जीवनवृत्ति विकास की ओर अग्रसर रहें। उपर्युक्त विचार समाज एवं परिवारों के बदलते हुए सकारात्मक व्यवहारों के द्योतक हैं।

सारणी क्रमांक 10

नौकरी के प्रति परिजनों की संतुष्टि

उत्तर	विवाहित	प्रतिशत	अविवाहित	प्रतिशत
संतुष्ट	75	63.02	93	57.76
तटस्थ	26	21.85	43	26.71
असंतुष्ट	18	15.13	25	15.53
कुल योग	119	100	161	100

सारणी से यह स्पष्ट होता है कि, विवाहित उत्तरदात्रियों में से 63.02 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवारजन इस नवीन कार्यप्रणाली एवं संस्कृति में उनके कार्य के प्रति संतुष्ट हैं, जबकि 21.85 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवारजन इस संबंध में अपनी तटस्थ राय रखते हैं, जबकि 15.13 प्रतिशत के परिवार जन उनके इस कार्य से असंतुष्ट हैं। प्रस्तुत आंकड़े यह संकेत करते हैं कि, वर्तमान समाज ने अन्य परिवर्तनों के साथ-साथ इस परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था को स्वीकृति दी है। जिसके कारण महिलायें पश्चिमी संस्कृति से जुड़े इस नये व्यवसाय में कार्यरत् हो रही हैं। **अविवाहित** महिलाओं में से 57.76 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिजन उनकी इस नौकरी से संतुष्ट हैं। 26.71 प्रतिशत के परिजन इस संबंध में तटस्थ राय रखते हैं, जबकि 15.53 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिजन अपनी बेटियों की इस नौकरी से संतुष्ट नहीं हैं। इस प्रकार प्रस्तुत तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि, नवीन कार्य प्रणाली एवं पर्यावरण वाले इस कार्यक्षेत्र (कॉल सेंटर) को भारतीय परिवारों द्वारा स्वीकृत किया जा रहा है, चूंकि इस कार्यक्षेत्र में कार्यावधि रात्रिकालीन भी होती है, फिर भी पारम्परिक परिवारों की लड़कियां इसमें कार्यरत् हैं जो यह इंगित करता है कि, भारतीय परिवारों में लड़कियों के लिए किसी व्यवसाय विशेष को करने की बाध्यता अब समाप्त हो रही है वे स्वेच्छा से अपने व्यवसायों का चयन करती हैं, जिसमें परिवार वालों का भी पूरा सहयोग रहता है।

सारणी क्रमांक 11

व्यवसाय करने का कारण

व्यवसाय का कारण	संख्या	प्रतिशत
परिवार की सहायता करने हेतु	59	21.07
समाज में अपनी भूमिका सुनिश्चित करने हेतु	178	63.57
मात्र समय व्यतीत करने हेतु	43	15.36
कुल योग	280	100

उपर्युक्त से यह ज्ञात होता है कि 21.07 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ इसलिए व्यवसायरत् हैं क्योंकि वे अपने परिवार को आर्थिक सहयोग करना चाहती हैं, 63.57 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ समाज में अपनी भूमिका सुनिश्चित करने या प्रस्थिति स्थापित करने हेतु इस व्यवसाय से जुड़ी हुई हैं; परन्तु 15. 36 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ केवल समय व्यतीत करने हेतु इस व्यवसाय से जुड़ी हुई हैं। प्रदर्शित तथ्यों से यह संकेत मिलते हैं कि, वर्तमान दौर में युवा महिलायें भी उच्च पदों पर आसीन होने से जुड़े अपने सपनों एवं आकांक्षाओं को पूरा करने की दौड़ में आगे है।

सारणी क्रमांक 12

सुरक्षा की दृष्टि से जयपुर एवं अन्य महानगरों के मध्य अंतर मानना

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हां	198	70.71
नहीं	82	29.29
कुल योग	280	100

उपर्युक्त आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि कुल 280 उत्तरादात्रियों में से 70.71 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का यह मानना है कि सुरक्षा की दृष्टि से जयपुर शहर अन्य महानगरों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है, जबकि 29.29 प्रतिशत यह मानती हैं कि, महिला सुरक्षा के संबंध में जयपुर शहर एवं अन्य महानगरों के मध्य कोई विशेष अंतर नहीं हैं। तथ्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि, आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण के कारण होने वाले परिवर्तनों के बावजूद जयपुर जैसे पारम्परिक शहर में नैतिक मूल्यों की सुदृढ़ता देखी जा सकती है। पाश्चात्य कार्यप्रणाली से संबंधित व्यवसाय होने व आधुनिक परिवेश को धारण करने के उपरान्त भी महिलायें अन्य महानगरों

की अपेक्षा जयपुर में स्वयं को अधिक सुरक्षित महसूस करती हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि विवाहित तथा अविवाहित महिलाओं की भूमिकाओं व उत्तरदायित्वों में अंतर तो होता है परन्तु पारम्परिक मूल्यों एवं धारणाओं वाले भारतीय परिवारों में महिलाओं के कार्य करने के उत्साह के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखा जा रहा है। विवाहित महिलाओं के कार्यशील होने पर उनका सहयोग करने के प्रति आंशिक रूप से ही सही परन्तु परिवर्तन आ रहा है। पति व परिवारजनों द्वारा दैनिक गृहकार्यों को करने में सहायता तो मिलती ही है साथ ही रात्रि पारी में कार्य करने पर भी अब परिवारजन कार्य संस्कृति की महत्ता को समझते हुए अपेक्षाकृत अधिक समर्थन प्रदान कर रहे हैं। परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य कार्य समायोजन कर पाने के संबंध में ज्ञात होता है कि महिलायें परिवार के सहयोग के कारण कार्य समायोजन तो कर रही है परन्तु अभी भी पूर्ण सहयोग न मिल पाने के कारण सामंजस्य स्थापित कर पाने में उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अतः प्राप्त तथ्यों द्वारा यह संकेत मिलते हैं कि परिवार एवं जीवनसाथी के सहयोग (चाहे वह आंशिक ही हो) द्वारा महिलाओं को भूमिका संघर्ष एवं असंतुष्टि का अपेक्षाकृत कम सामना करना पड़ता है। **इस प्रकार** मानवशास्त्री रॉल्फ लिंटन के भूमिका संघर्ष के सिद्धांत को उक्त तथ्यों के साथ विश्लेषित किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक औद्योगिक युग में महिलायें परम्परागत भूमिकाओं के साथ-साथ कार्यक्षेत्रों की भूमिकाओं का भी निर्वहन कर रही हैं। दोनों भूमिकाओं के निर्वहन में अनेक बार भूमिका संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है परन्तु परिवार के सहयोग एवं साझेदारी से कार्यशील महिलायें कुछ सीमा तक भूमिका समायोजन में सफल हो रही हैं जो यह इंगित करता है कि आधुनिक युग में परिवर्तन न केवल महिलाओं की प्रस्थिति में आया है अपितु परिवार की परम्परागत संकीर्ण मानसिकता में भी आंशिक रूप से बदलाव आया है।

सन्दर्भ

1. Haralambos, M., Heald, R.M., 'Sociology Themes and Perspectives', Oxford University Press,New Delhi,2003, pp. 398-99.
2. Ibid, p. 325 .
3. Ibid, p.398.
4. Ibid, p. 399.
5. जैन, मंजू, 'कार्यशील महिलाएं व सामाजिक परिवर्तन', प्रिंटवेल प्रकाशन, जयपुर,1994
6. https://www.encyclopedia.com/social-sciences-and-law/sociology-and-social-reform/sociology-general-terms-and-concepts/role-theory
7. Shafi, Aneesa, 'Working women in Kashmir: Problem and Prospects', APH Publishing Corporation, New Delhi, 2002.
8. Arora,Poonam, 'Professional Women Family Conflicts & Stress', Manak Publication Private Ltd., New Delhi, 2003.
9. Ayo, Hammed, 'A Intractive Effect of Stress-Social Support and Work Family Conflict on Nizerian Women's Mental Health', Euoperian Journal of Social Sciences, Vol. 7(2), 2008, pp. 53-65.
10. Noor, Saroj; Maad, Nazia, 'Examining the Relationship Between Work Life Conflict, Stress and Turnover Intentions Among Marketing Executives in Pakistan', International Journal of Business and Management, Vol-3(2),2009, pp. 93.
11. Khan, Asmat Ullah, Khan, Anubareen, 'The Effects of Working Women Conflict and Job Satisfaction', Journal of Applied Environmental and Biological ScienceVol-4(7S), 2014, pp. 318-330.
12. Alex Roshan Anie, 'Stress Tolerance and Adjustment Among Working and Non-Working Women: A Comparative Study', Journal of Research: The Bede Athenaeum, Vol-6(11), 2015, pp. 7-12.
13. Murthy, M., & Shastri, S., 'A Qualitative Study on Work Life Balance of Employees Working in Private Sector', International Journal of Recent Scientific Research, Vol-6 (7), 2016, pp. 5160-5167.
14. Patil M., 'Stress Level of Working and Non-Working Women', The International Journal of Indian Psychology, Vol-3(2), 2016, pp. 31-37.
15. Shreelakshmi. K., 'Marital Adjustment among Working and Nonworking Mothers', The International Journal of Indian Psychology, Vol- 9(2), 2021, pp. 232-238.
16. Ugwu, L. 'Dual-Career Couples: Coping with Multiple Role Stress', Gender and Behavior,Vol- 7, 2009, pp. 2238-2255.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

राजस्थान की बहुआयामी गरीबी का तुलनात्मक अध्ययन

❑ हितेष कुमार सुथार
❖ डॉ. नेहा पालीवाल

सूचक शब्द : गरीबी, अल्कायर फोस्टर विधि, बहुआयामी गरीबी, कुपोषण, जीवन स्तर

परंपरागत रूप से गरीबी को केवल आय की कमी के रूप में समझा गया हालांकि समय के साथ यह अनुभव किया गया कि गरीबी एक जटिल एवं बहुआयामी घटना है जो निम्न जीवन स्तर से जुड़ी हुई है। बहुआयामी गरीबी से सामान्य आशय उस स्थिति से है जिसमें समाज का निर्धन वर्ग अपने जीवन–यापन हेतु प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने के लिए मजबूर होता है। यह प्रतिकूल परिस्थितियाँ खराब स्वास्थ्य, कुपोषण, स्वच्छ पेयजल का अभाव, अपर्याप्त विद्युत आपूर्ति, प्रतिकूल वातावरण में कार्य करना हो सकती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान में बहुआयामी गरीबी का भारत की कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत रखने वाले अन्य 6 राज्यों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। इस हेतु चयनित अन्य 6 राज्य हैं– मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, गुजरात, झारखण्ड एवं महाराष्ट्र। इन राज्यों में बहुआयामी गरीबी का विश्लेषण अलकायर–फोस्टर विधि द्वारा परिकलित बहुआयामी गरीबी सूचकांक द्वारा किया गया है। इस विधि में बहुआयामी गरीबी सूचकांक की गणना तीन आयामों (शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन स्तर) तथा 10 सूचकों द्वारा की गई है। साथ ही इस शोधपत्र में 2005–06 तथा 2015–16 की अवधि के उपलब्ध नवीनतम समंकों के आधार पर इन राज्यों में बहुआयामी गरीबी में हुए परिवर्तन का भी विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि चयनित सभी राज्यों में उक्त अवधि में बहुआयामी गरीबी में कमी आई है। बहुआयामी गरीबी में सर्वाधिक कमी झारखण्ड राज्य में तथा सबसे कम कमी गुजरात राज्य में आई है।

गरीबी उन वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति का अभाव है जो व्यक्ति एवं उसके परिवार के स्वास्थ्य और कुशलता को बनाये रखने हेतु आवश्यक हैं। परम्परागत रुप से गरीबी को प्रायः आय की कमी के रूप में परिभाषित किया गया है। हालांकि समय के साथ यह अनुभव किया गया कि गरीबी एक जटिल, व्यापक एवं बहुआयामी घटना है। इसके बाद गरीबी का मापन विविध आयामों को लेकर किया जाने लगा। बहुआयामी गरीबी से सामान्य आशय उस स्थिति से है जिसमें समाज का निर्धन वर्ग अपने जीवन–यापन हेतु प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने के लिए मजबूर होता है। ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ खराब स्वास्थ्य, कुपोषण, स्वच्छ पेयजल का अभाव, अपर्याप्त विद्युत आपूर्ति, प्रतिकूल वातावरण में कार्य करना हो सकती हैं। बहुआयामी गरीबी से अभिप्राय केवल मौद्रिक गरीबी से नहीं है। यह विभिन्न आयामों जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य व जीवन स्तर आदि सभी पहलुओं को सम्मिलित कर गरीबी का मापन करती है। गरीबी के बहुआयामी माप हेतु संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम एवं ऑक्सफोर्ड गरीबी एवं मानव विकास पहल द्वारा 2010 में अल्कायर–फोस्टर की पद्धति का अनुसरण करते हुए पहली बार बहुआयामी गरीबी सूचकांक जारी किया गया। बहुआयामी गरीबी सूचकांक तीन बुनियादी आयामों शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन स्तर में एक परिवार के अभावों के आधार पर मूल्यांकन करता है।

विश्व के कई देशों में गरीबी एक मुख्य समस्या है जिनमें भारत भी एक है। वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक 2021 के अनुसार 1.3 अरब लोग बहुआयामी रूप से गरीब हैं, इनमें लगभग आधे लोग 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे हैं। लगभग 67 प्रतिशत से अधिक बहुआयामी रूप से गरीब मध्यम आय वाले देशों में निवास करते हैं।[1] 2011–12 के आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल 21.92 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन यापन कर रहे हैं। वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक 2021 की रिपोर्ट में भारत 109 देशो में 66 वें स्थान पर रहा। भुखमरी सूचकांक में भारत अपने पड़ोसी देशों श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश और पाकिस्तान से भी काफी पीछे है। नीति आयोग द्वारा जारी राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक 2021 के अनुसार भारत में सर्वाधिक 51.9 प्रतिशत लोग बिहार

❑ शोध अध्येता, अर्थशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
❖ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

में बहुआयामी रूप से गरीब पाए गये जबकि सबसे कम गरीब केरल में 0.7 प्रतिशत पाए गये। राजस्थान में बहुआयामी रूप से गरीब लोगों का प्रतिशत 29.5 है।[2] प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान की बहुआयामी गरीबी के गहन तुलनात्मक विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

साहित्य समीक्षा : पूर्व में गरीबी को सिर्फ आय की कमी के रुप में देखा गया। गरीबी का सबसे व्यापक रुप से इस्तेमाल किया जाने वाला माप आय या कैलोरी पर आधारित होने के कारण गरीबी एक पक्षीय धारणा बनी रही। लेकिन समय के साथ-साथ इसके मापन में परिवर्तन आये। वर्तमान में इसे बहुआयामी रुप में मापा जाने लगा है। सर्वप्रथम 1979 में अमर्त्यसेन[3] ने मानव कल्याण पर एक बहु-आयामी परिप्रेक्ष्य प्रदान करने वाली 'क्षमता अवधारणा' प्रस्तावित की थी जो संयुक्त राष्ट्र के मानव विकास कार्यक्रम द्वारा विकसित मानव विकास सूचकांक आधारित है। ऑक्सफोर्ड गरीबी और मानव विकास पहल (OPHI) ने मानव विकास रिपोर्ट के 20वीं वर्षगांठ संस्करण के लिए 2010 में गरीबी मापन के लिए 'बहुआयामी गरीबी सूचकांक' (MPI) के नाम से एक नया अंतरराष्ट्रीय मापक विकसित किया जो एक गरीब व्यक्ति की बहु वंचनाओं को आय से परे शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर के माध्यम से प्रतिबिंबित करता है।[4] 2010 के बाद OPHI प्रतिवर्ष वैश्विक स्तर पर बहुआयामी गरीबी के विश्लेषण हेतु राष्ट्रों के MPI की गणना कर रहा है। इसके पश्चात् कई शोधकों ने इसके और अन्य मापकों के प्रयोग से बहुआयामी गरीबी को अलग-अलग स्थानों पर मापने के प्रयास किए। **मुहम्मद इमरान निआजी एवं अत्ता उल्लाह खान**[5] पंजाब में बहुआयामी गरीबी का विश्लेषण करने का प्रयास किया। इन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि आय के अलावा शिक्षा की कमी, खराब स्वास्थ्य एवं आवास की कमी आदि गरीबी को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं।

सुप्रवत बागली[6] ने पश्चिम बंगाल के बंकुरा जिले में बहुआयामी गरीबी की स्थिति और तीव्रता के बारे में जानने का प्रयास किया। इस हेतु वैश्विक मापदंड के अनुरूप तीन आयामों; शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन-स्तर सहित इनके विभिन्न दस संकेतकों द्वारा बहुआयामी गरीबी को मापा।

नागेस्वर राव डारा एवं आर. रामकृष्ण[7] ने बहुआयामी गरीबी सूचकांक को स्वास्थ्य, शिक्षा, जीवन स्तर एवं घरेलू वातावरण के आयामों के आठ संकेतकों और अल्कायर-फोस्टर प्रविधि से मापा और उन्होंने अध्ययन में पाया कि आंध्रप्रदेश के सभी जिलों में गरीबी की बड़ी घटनाओं के साथ एससी एवं एसटी में उच्च आय असमानता है।

इरफाना उन्जुम एवं पी.के.मिश्रा[8] ने तमिलनाडु एवं श्रबंती मैती[9] ने असम में बहुआयामी गरीबी को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाने का प्रयास किया और अध्ययन में पाया कि इस पिछड़े क्षेत्र में शिक्षा एवं स्वास्थ्य ने बहुआयामी गरीबी को अधिक प्रभावित किया है। इरफाना उन्जुम[10] ने ग्रामीण कश्मीर में बहुआयामी गरीबी के विस्तार एवं प्रकृति की जाँच करने का प्रयास किया। इस हेतु अध्ययन में शिक्षा, स्वास्थ्य, संपत्ति, कार्य व रोजगार और सामाजिक सहभागिता आदि आयाम प्रयुक्त किये। उन्होंने अलकायर-फोस्टर विधि का प्रयोग कर विश्लेषण में पाया कि अध्ययन क्षेत्र के लोग मौद्रिक एवं गैर-मौद्रिक दोनों रूप से वंचित हैं।

एम. सरवन एवं वी. बबिता[11] ने तमिलनाडु में बहुआयामी गरीबी तथा बहुआयामी गरीबी सूचकांक में राज्य के शीर्ष एवं निचले पांच जिलों की स्थिति जानने का प्रयास किया और पाया कि अन्य राज्यों की तुलना में तमिलनाडु के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बहुआयामी गरीबी कम हुयी।

साहित्य पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि गरीबी की अवधारणा में समय के साथ बदलाव आया है। आय के साथ- साथ इसे शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे अन्य कई पहलूओं के रूप में भी देखा जा रहा है। वास्तव में यदि गरीबी का उन्मूलन करना है तो इसे बहुआयामी मानकर ही इसका मापन किया जाना चाहिए एवं आय बढ़ाने के साथ-साथ इसके उन्मूलन हेतु बहुपक्षीय उपायों की बात की जानी चाहिए। राजस्थान की बहुआयामी गरीबी पर अभी बहुत अधिक शोध नहीं किए गए हैं। यह शोध पत्र इस दिशा में एक सार्थक प्रयास है और राजस्थान की बहुआयामी गरीबी का कुछ अनुसूचित जनजाति बहुल राज्यों के साथ एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। साथ ही इस शोध पत्र में यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि बहुआयामी गरीबी के विभिन्न आयामों में से राजस्थान किस आयाम में अधिक पिछड़ा हुआ है, ताकि गरीबी उन्मूलन हेतु सार्थक सुझाव दिए जा सकें ।

अध्ययन के उद्देश्य

1. राजस्थान की बहुआयामी गरीबी का चयनित राज्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. राजस्थान की बहुआयामी गरीबी का सूचकांक के आयामों के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण करना।

4. शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध विवरणात्मक है एवं द्वितीयक समंकों पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु भारत के सात राज्यों का एक प्रतिदर्श चयनित किया गया है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का प्रतिशत जिन राज्यों में अधिक था उन सात राज्यों को चयनित किया गया है जिसमें मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात, झारखण्ड एवं छत्तीसगढ़ सम्मिलित हैं। बहुआयामी गरीबी की तुलना करने के लिये द्वितीयक समंक OPHI की नवीनतम 2021 की रिपार्ट[1] से लिये गये हैं जो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) के 2015-16 के सर्वेक्षण पर आधारित हैं। इन समंको की तुलना 2005-06 के समंकों से की गई है। 2005-06 के समंकों का मापन भी 2015-16 की विधि अनुसार ही किया गया है। बहुआयामी गरीबी के विभिन्न आयामों के विभिन्न सूचकों के निरपेक्ष एवं सापेक्ष मान दोनों का प्रयोग विश्लेषण हेतु किया गया है। गरीबी के बहुआयामी माप हेतु OPHI द्वारा प्रयुक्त बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) का प्रयोग किया गया है जो अलकायर-फोस्टर प्रविधि पर आधारित है जिसमें तीन आयामों- शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन स्तर तथा इनके विभिन्न सूचकों- स्कूली शिक्षा के वर्ष, विद्यालय में उपस्थिति, पोषण, बाल मृत्यु दर, खाना पकाने का ईंधन, स्वच्छता, पीने का पानी, बिजली, आवास एवं संपत्ति आदि का प्रयोग किया गया है।

5. राजस्थान में बहुआयामी गरीबी एवं उसका तुलनात्मक विश्लेषण : राजस्थान का दक्षिणी भाग जनजाति बहुल है जो शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन स्तर में काफी पिछड़ा हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में राजस्थान के साथ अन्य चयनित राज्यों के बहुआयामी गरीबी सूचकांक को प्रदर्शित किया गया है। इसमें अलकायर-फोस्टर द्वारा परिकलित बहुआयामी गरीबी सूचकांक द्वारा राजस्थान का अन्य अनुसूचित जनजाति आधिक्य प्रतिशत वाले राज्यों के साथ भी तुलनात्मक अध्ययन एवं बहुआयामी गरीबी में परिवर्तन का विश्लेषण सारणी 1 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 1

राजस्थान एवं चयनित राज्यों में बहुआयामी गरीबी सूचकांक

राज्य	भारत की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का प्रतिशत	बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI)		बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) परिवर्तन	
		2005-06	2015-16	निरपेक्ष परिवर्तन	सापेक्ष परिवर्तन (%)
मध्य प्रदेश	14.7	0.366	0.182	-0.184	-50.27
महाराष्ट्र	10.1	0.186	0.071	-0.115	-61.83
उड़ीसा	9.2	0.336	0.156	-0.180	-53.57
राजस्थान	8.8	0.332	0.145	-0.187	-56.33
गुजरात	8.5	0.185	0.092	-0.093	-50.27
झारखण्ड	8.3	0.429	0.208	-0.221	-51.56
छत्तीसगढ़	7.5	0.355	0.153	-0.202	-56.90
भारत	**8.6**	0.283	0.123	-0.160	-56.54

स्त्रोत - MPI 2021[1]

सारणी 1 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि राजस्थान में 2005-06 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक 0.332 था जो 2015-16 में कम होकर 0.145 हो गया। इस अवधि में निरपेक्ष परिवर्तन -0.187 हुआ जो कि देश के निरपेक्ष परिवर्तन से अधिक है। इसी प्रकार अध्ययन अवधि में बहुआयामी गरीबी सूचकांक में सापेक्ष कमी 56.33 प्रतिशत हुई जो कि देश के सापेक्ष परिवर्तन के लगभग बराबर प्रतीत होता है। उक्त कमी के बावजूद यह देश के 2015-16 के बहुआयामी गरीबी सूचकांक -0.123 की अपेक्षा अधिक है जो पिछड़ेपन को प्रदर्शित करता है।

राजस्थान बहुआयामी गरीबी की दृष्टि से चयनित राज्यों में झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश से बेहतर स्थिति में है। साथ ही MPI में निरपेक्ष परिवर्तन की दृष्टि से राजस्थान इन राज्यों में झारखंड एवं छत्तीसगढ़ के पश्चात् तीसरे स्थान पर है तथा सापेक्ष परिवर्तन की दृष्टि से भी यह महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़ के पश्चात् तीसरे स्थान पर है।

6. राजस्थान में बहुआयामी गरीबी का MPI के विविध आयामों के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन : MPI के तीन आयामों - शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवनस्तर एवं उनके सूचकों के आधार पर राजस्थान की बहुआयामी गरीबी का तुलनात्मक विश्लेषण सारणी 2, 3 एवं 4 के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 2

एम.पी.आई. के शिक्षा आयाम के सूचकों का मान एवं उनमें परिवर्तन

राज्य	स्कूली शिक्षा के वर्ष		वार्षिक परिवर्तन	विद्यालय में उपस्थिति		वार्षिक परिवर्तन
	2005-06	2015-16		2005-06	2015-16	
मध्य प्रदेश	30.3	14.9	−0.15	24.6	7.8	−1.7
महाराष्ट्र	11.2	4.9	−0.06	11.0	3.1	−0.8
उड़ीसा	30.9	15.1	−0.16	16.0	4.6	−1.1
राजस्थान	29.9	14.6	−0.15	25.7	7.6	−1.8
गुजरात	15.6	7.3	−0.08	11.3	5.1	−0.6
झारखण्ड	34.0	17.6	−0.16	34.3	7.6	−2.7
छत्तीसगढ़	31.0	12.4	−0.19	20.2	4.7	−1.5
भारत	24.0	11.7	−0.12	19.8	5.5	−1.4

स्त्रोत - MPI 2021[1]

सारणी 2 में चयनित राज्यों के लिए MPI के शिक्षा आयाम के विभिन्न सूचकों के 2005-06 एवं 2015-16 में मान एवं इस अवधि में उनमें औसत वार्षिक परिवर्तन दर्शाया गया है। MPI के शिक्षा आयाम के दो सूचक विद्यालयी शिक्षा के वर्ष एवं विद्यालय में उपस्थिति हैं। विद्यालयी शिक्षा के वर्ष सूचक के अनुसार वह व्यक्ति गरीब माना जाता है जो ऐसे परिवार में रहता है जिसके किसी भी पात्र सदस्य ने स्कूली शिक्षा के छह साल पूरे नहीं किए हैं। विद्यालय में उपस्थिति सूचक ऐसे परिवार में रहने वाले को गरीब मानता है जिसमें कोई भी स्कूली उम्र का बच्चा उस उम्र तक स्कूल नहीं जा रहा है जिस उम्र में वह कक्षा 8 पूरी करेगा। इस आधार पर स्पष्ट है कि इन दो सूचकों के मान जिस राज्य के लिए अधिक होंगे वह राज्य शिक्षा की दृष्टि से उतना ही अधिक पिछड़ा होगा।

सारणी 2 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि राजस्थान में शिक्षा आयाम के अंतर्गत स्कूली शिक्षा के वर्ष सूचक को देखें तो 2005-06 में 29.9 था जो 2015-16 में 14.6 हो गया। इस अवधि में निरपेक्ष परिवर्तन देखे तो -0.15 वार्षिक रहा जो कि महाराष्ट्र एवं गुजरात के अलावा अन्य सभी चयनित राज्यों एवं देश के औसत वार्षिक परिवर्तन से अधिक है। उक्त कमी के बावजूद यह भारत के 2015-16 सूचक 11.7 की अपेक्षा अधिक है जो स्कूली शिक्षा के वर्ष में पिछड़ेपन को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार यदि विद्यालय में उपस्थिति सूचक पर दृष्टि डालें तो राजस्थान में परिवर्तन सर्वाधिक हुआ है। इस सूचक में राजस्थान 2005-06 में 25.7 पर था जो 2015-16 में 7.6 हो गया है फिर भी वर्तमान में देश के औसत एवं मध्यप्रदेश के अलावा अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक है जो इस सूचक में राज्य की पिछड़ी स्थिति को दर्शाता है। विद्यालयी शिक्षा सूचक के आधार पर चयनित राज्यों में गुजरात, महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़ की स्थिति राजस्थान से बेहतर है जबकि विद्यालय में उपस्थिति के आधार पर इनके साथ ही उड़ीसा भी राजस्थान से आगे हैं।

सारणी 3

एम.पी.आई. के स्वास्थ्य आयाम के सूचकों का मान एवं उनमें परिवर्तन

राज्य	पोषण		वार्षिक परिवर्तन	बाल मृत्यु दर		वार्षिक परिवर्तन
	2005-06	2015-16		2005-06	2015-16	
मध्य प्रदेश	54.9	31.4	-2.4	6.1	3.2	-0.3
महाराष्ट्र	34.5	13.8	-2.1	2.2	1.0	-0.1
उड़ीसा	50.0	26.8	-2.3	4.4	1.9	-0.2
राजस्थान	47.3	23.7	-2.4	5.9	2.4	-0.3
गुजरात	32.1	17.5	-1.5	3.3	1.7	-0.2
झारखण्ड	59.5	36.6	-2.3	7.4	3.1	-0.4
छत्तीसगढ़	56.4	28.4	-2.8	6.1	2.9	-0.3
भारत	44.3	21.2	-2.3	4.5	2.2	-0.2

स्त्रोत - MPI 2021[1]

MPI के स्वास्थ्य आयाम के पोषण सूचक के अनुसार 70 वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति जो अल्पपोषित है वंचित माना जाता है और बाल मृत्यु दर के अनुसार सर्वेक्षण से पहले की पांच साल की अवधि में घर में 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चे की मृत्यु हो गई है तो उसे भी वंचित की श्रेणी में ही रखा जाता है। अतः इन दोनों सूचकों का मूल्य जिन राज्यों के लिए अधिक है वे स्वास्थ्य की दृष्टि से उतने ही अधिक पिछड़े माने जाएँगे ।

सारणी 3 में चयनित राज्यों के लिए MPI के स्वास्थ्य आयाम के सूचकों के 2005-06 एवं 2015-16 में मान एवं इस अवधि में उनमें औसत वार्षिक परिवर्तन दर्शाया गया है। सारणी 3 से स्पष्ट है कि राजस्थान में स्वास्थ्य आयाम के पोषण सूचक का मान 2005-06 में 47.3 था जो 2015-16 में 23.7 हो गया। इस अवधि में निरपेक्ष परिवर्तन -2.4 वार्षिक रहा जो कि महाराष्ट्र, गुजरात एवं देश के औसत वार्षिक परिवर्तन से भी अधिक है किन्तु उक्त कमी के बावजूद भी इसका मान भारत के 2015-16 सूचक की अपेक्षा अधिक है जो यह दर्शाता है कि राजस्थान की पोषण सम्बन्धी स्थिति में सुधार तो बहुत हुआ है किन्तु अभी भी यह अन्य राज्यों से पिछड़ा हुआ है। किन्तु चयनित राज्यों में इसकी स्थिति महाराष्ट्र एवं गुजरात के बाद तीसरे स्थान पर है। इसी प्रकार यदि बाल मृत्यु दर सूचक पर दृष्टि डालें तो राजस्थान में परिवर्तन देश के औसत वार्षिक परिवर्तन तथा महाराष्ट्र, गुजरात एवं उड़ीसा की अपेक्षा अधिक रहा। राजस्थान के लिए इस सूचक का मान 2005-06 में 5.9 था जो 2015-16 में 2.4 हो गया है जो वर्तमान में देश के औसत तथा झारखण्ड, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के अलावा अन्य चयनित राज्यों की अपेक्षा अधिक है जो इस सूचक में राज्य की पिछड़ी स्थिति को दर्शाता है। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से भी राजस्थान वर्तमान में बहुत बेहतर स्थिति में नहीं कहा जा सकता है।

MPI के जीवनस्तर आयाम के छः विभिन्न सूचक हैं - खाना पकाने का ईंधन, स्वच्छता, पेय जल, बिजली, आवास एवं सम्पत्तियाँ। 'खाना पकाने का ईंधन' सूचक के अनुसार उस घर में रहने वाले वंचित माने जाते हैं जहाँ ठोस ईंधन जैसे- गोबर, कृषि फसल, झाड़ियाँ, लकड़ी, लकड़ी का कोयला, या कोयले का उपयोग करके खाना बनाया जाता है। 'स्वच्छता' सूचक के अनुसार घर में बेहतर या कोई स्वच्छता सुविधा नहीं होने या बेहतर किन्तु अन्य परिवारों के साथ साझा की जाने वाली स्वच्छता सुविधाएँ होने पर व्यक्ति वंचित की श्रेणी में आएगा। 'पेय जल' सूचक के आधार पर घर में पेय जल का सुरक्षित स्रोत नहीं होने या घर से 30 मिनट या उससे अधिक की पैदल दूरी पर होने पर वंचित कहलाएँगे। घर में बिजली नहीं होने पर 'बिजली' सूचक के अनुसार व्यक्ति वंचित माना जाएगा। 'आवास' सूचक के अनुसार घर में फर्श, छत, या दीवार तीनों में से किसी एक में भी अपर्याप्त आवास सामग्री प्रयुक्त होने पर वंचित कहा जाएगा। 'संपत्ति' सूचक के अनुसार परिवार के पास रेडियो, टीवी, टेलीफोन, कंप्यूटर, पशु गाड़ी, साइकिल, मोटरबाइक, रेफ्रिजरेटर, और कार या ट्रक में से एक से अधिक संपत्ति नहीं होने पर उसे वंचित गरीब माना जाएगा। अतः जीवनस्तर आयाम के इन सभी सूचकों के मान अधिक होने का तात्पर्य गरीबी का अधिक होना है।

सारणी 4
एम.पी.आई. के जीवनस्तर आयाम के सूचकों का मान एवं उनमें परिवर्तन

राज्य	खाना पकाने का ईंधन		वार्षिक परिवर्तन	स्वच्छता		वार्षिक परिवर्तन	पेय जल		वार्षिक परिवर्तन
	2005-06	2015-16		2005-06	2015-16		2005-06	2015-16	
मध्य प्रदेश	66.7	39.5	-2.7	65.7	38.1	-2.8	41.3	18.9	-2.2
महाराष्ट्र	36.5	15.0	-2.1	37.5	14.8	-2.3	11.1	6.3	-0.5
उड़ीसा	63.7	35.4	-2.8	62.6	33.6	-2.9	27.6	11.1	-1.7
राजस्थान	60.5	30.3	-3.0	59.5	27.7	-3.2	31.0	14.6	-1.6
गुजरात	35.6	20.2	-1.5	35.2	18.6	-1.7	12.5	5.6	-0.7
झारखण्ड	74.4	45.7	-2.9	72.3	44.1	-2.8	48.0	18.9	-2.9
छत्तीसगढ़	69.0	36.0	-3.3	68.4	34.1	-3.4	29.9	11.0	-1.9
भारत	52.9	26.2	-2.7	50.4	24.6	-2.6	16.6	6.2	-1.0
राज्य	बिजली		वार्षिक परिवर्तन	आवास		वार्षिक परिवर्तन	संपत्ति		वार्षिक परिवर्तन
	2005-06	2015-16		2005-06	2015-16		2005-06	2015-16	
मध्य प्रदेश	25.7	7.0	-1.9	62.5	37.4	-2.5	25.7	7.0	-1.9
महाराष्ट्र	14.1	3.6	-1.1	32.0	12.4	-2.0	14.1	3.6	-1.1
उड़ीसा	44.5	9.5	-3.5	54.5	31.2	-2.3	44.5	9.5	-3.5
राजस्थान	31.0	7.1	-2.4	43.7	21.4	-2.2	31.0	7.1	-2.4
गुजरात	8.9	3.0	-0.6	26.5	14.2	-1.2	8.9	3.0	-0.6
झारखण्ड	55.7	14.2	-4.1	64.7	40.9	-2.4	55.7	14.2	-4.1
छत्तीसगढ़	23.9	2.9	-2.1	65.4	34.2	-3.1	23.9	2.9	-2.1
भारत	29.1	8.6	-2.0	44.9	23.6	-2.1	29.1	8.6	-2.0

स्त्रोत - MPI 2021[1]

सारणी 4 में चयनित राज्यों के लिए MPI के जीवन स्तर आयाम के सूचकों के 2005-06 एवं 2015-16 में मान एवं इस अवधि में उनमें औसत वार्षिक परिवर्तन दर्शाया गया है। सारणी 4 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि जीवन स्तर आयाम के बिजली एवं आवास सूचक के अलावा अन्य सभी सूचकों में राजस्थान की 2015-16 में स्थिति राष्ट्रीय औसत की तुलना में ख़राब है। पेयजल सूचक के लिए राजस्थान का मान (14.6) है जो राष्ट्रीय औसत (6.2) के दोगुने से भी अधिक है। राजस्थान के स्वच्छता एवं संपत्ति सूचक के मान में 2005-06 से 2015-16 में आधे से भी अधिक कमी आई है। लेकिन फिर भी इन सूचकों के लिए राजस्थान का मान राष्ट्रीय औसत से बहुत अधिक है। अतः जीवनस्तर आयाम के आधार पर भी राजस्थान की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। इन सभी सूचकों में से एक में भी राजस्थान का प्रदर्शन चयनित राज्यों में सर्वश्रेष्ठ नहीं है। खाना पकाने के ईंधन, स्वच्छता एवं आवास में महाराष्ट्र एवं गुजरात के बाद राजस्थान चयनित राज्यों में तीसरे स्थान पर है किन्तु इन दो राज्यों के अलावा बिजली में मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ तथा पेयजल एवं संपत्ति में उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ की स्थिति राजस्थान से बेहतर है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : राजस्थान बहुआयामी गरीबी की दृष्टि से एक पिछड़ा राज्य है जिसके बहुआयामी गरीबी सूचकांक (2015-16) का मान राष्ट्रीय औसत से अधिक है। चयनित राज्यों में यह महाराष्ट्र एवं गुजरात के बाद तीसरे स्थान पर है। राजस्थान की बहुआयामी गरीबी में अध्ययन अवधि में निरपेक्ष कमी देश की औसत कमी से थोडा अधिक दर्ज की गई जबकि सापेक्ष कमी देश की औसत कमी के लगभग बराबर दर्ज की गई है। यदि MPI (2015-16) के तीनों आयामों की दृष्टि से देखा जाए तो शिक्षा एवं जीवनस्तर आयाम में राजस्थान चयनित राज्यों में अधिक पिछड़ा है क्योंकि शिक्षा के दोनों आयामों में तथा जीवन स्तर के छः में से तीन आयामों में यह चयनित सात राज्यों में तीसरे से भी नीचे स्थान पर

है। महाराष्ट्र एवं गुजरात सभी आयामों की दृष्टि से चयनित राज्यों में श्रेष्ठ पाए गए हैं। साथ ही इनके लिए प्रत्येक सूचक का मान राष्ट्रीय औसत से काफी कम है जो यह दर्शाता है कि इन दोनों राज्यों में बहुआयामी गरीबी का स्तर कम है। छत्तीसगढ़ ने एक नया एवं अनुसूचित जनजाति बहुल राज्य होते हुए भी कई सूचकों में राजस्थान से बेहतर प्रदर्शन किया है जो प्रेरणास्प्रद है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि 2005-06 से 2015-16 की अवधि में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवनस्तर के सभी सूचकों में राजस्थान में वार्षिक निरपेक्ष कमी राष्ट्रीय औसत से अधिक है। यह इंगित करता है कि राजस्थान में बहुआयामी गरीबी में कमी आ रही है और इसे कम करने की कई संभावनाएँ हैं। विश्लेषण यह सुझाव देता है कि राजस्थान में यदि बहुआयामी गरीबी को कम करना है तो शिक्षा और जीवनस्तर में अधिक सुधार किए जाने की आवश्यकता है और इस हेतु विद्यालयी शिक्षा के वर्ष, विद्यालयी उपस्थिति, पेयजल की उपलब्धता, आवास एवं बिजली की सुविधा बढ़ाने पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. UNDP and OPHI. Global Multidimensional Poverty Index 2021 - Unmasking disparities by ethnicity, caste and gender. United Nations Development Programme and Oxford Poverty and Human Development Initiative, 2021, p.4.
2. NITI Aayog, India National Multidimensional Poverty Index: Baseline Report. NITI Aayog, Government of India, New Delhi, 2021, p. 34
3. Amartya Sen's Capability Approach. Studies in Choice and Welfare, 2005, pp. 59-74. https://doi.org/10.1007/3-540-28083-9
4. Alkire, S. and Santos, M.E., 'Multidimensional Poverty Index. The Oxford Poverty and Human Development Initiative (OPHI), Department of International Development, Oxford University, UK, 2010, p. 1.
5. Niazi, M.I., & Khan, A.U., 'The Impact of Education on Multidimensional Poverty across the regions in Punjab, Journal of Elementary Education', 21(1), 2014, pp. 77-89.
6. Bagli, S., 'Multidimensional Poverty : An Empirical Study in Bankura District West Bengal', Journal of Rural Development, 2015, 34(3), 327-342.
7. Dara, N.R., & Ramakrishna, R., 'Determinants of Income Inequalities and multidimensional Poverty among SC/STs in Andhra Pradesh: Micro-level Evidence, Journal of Economics and Finance, 2016, 7(3), pp. 42-54.
8. Unjum, I. & Mishra, P.K., 'Multidimensional poverty in Uttar Pradesh trends and patterns, Journal of Economics and Development,2017, 5(11), pp. 1-6.
9. Maity, S., 'Multidimensional Poverty Status of Bodo Tribes of Udalguri District, Assam', Journal of Economic Development, 2018, 43(1), pp. 29-47.
10. Unjum, I., 'Multidimensional poverty in Rural Kashmir Extent Determinants and Policy Options', Unpublished Thesis, Central University of Panjab, 2018
11. Saravanan, M. & Babitha, V., 'Multidimensional Poverty Index an Overview of Tamilnadu, International Journal of Research and Analytical Reviews, 2019, 6(1), pp. 916-918.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में मानवाधिकारों की दशा

❑ डॉ.बी.डी.बारहठ

सूचक शब्दः मानवाधिकार, पाक अधिकृत कश्मीर, लोकतंत्र, प्राकृतिक संसाधन, गिलगिट-बालटिस्तान, सीपीईसी

मानवाधिकार 21वीं सदी का एक ज्वलंत प्रश्न है जिसके आधार पर किसी राज्य के लोकतांत्रिक स्वरूप का निर्धारण होता है। लेकिन पाक अधिकृत कश्मीर व गिलगिट-बालटिस्तान दुनिया के उन कदाचित क्षेत्रों में सम्मिलित है जहां मानवाधिकार नाममात्र के लिए ही हैं। यहां के लोगों को राजनीतिक-आर्थिक अधिकारों से तो वंचित किया ही जा रहा है उनका सांस्कृतिक-धार्मिक शोषण भी हो रहा है। वहां की पचास लाख की आबादी तीन पीढ़ी से बुनियादी अधिकारों से वंचित है। विरोधाभास यह है कि प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों के होते हुए भी यहां दुनिया की सबसे गरीब आबादी का हिस्सा निवासरत है। प्रस्तुत आलेख विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिवेदनों, स्वयं सेवी संगठनों के प्रतिवेदनों आदि के आधार पर पाक अधिकृत कश्मीर (POK) में मानवाधिकारों की दशा पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है। साथ ही उन कारणों व घटकों को जानने का प्रयास भी होगा जिनके कारण आज भी वहां यह स्थिति है।

मानवाधिकारों का मुद्दा इक्कीसवीं सदी में वैश्विक स्तर के प्रमुख मुद्दों में सम्मिलित है। संविधानवाद, लोकतंत्र एवं सुशासन के एक मापदण्ड के रूप में न केवल वैश्विक संगठनों की अपितु नागरिक समाज की भी मानवाधिकारों को लेकर विशेष रूचि है। यद्यपि एक तरफ जहां इनकी परिभाषा एवं स्वरूप को लेकर मतभेद है, वहीं दूसरी तरफ विश्व के कुछ हिस्से ऐसे हैं जहां अनवरत रूप से लोगों को उनके बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है। पाकिस्तान द्वारा गैर-कानूनी तरीके से कब्जाया हुआ ''पाक अधिकृत कश्मीर'' (POK) ऐसा ही एक क्षेत्र है जहां मानवाधिकारों व लोकतंत्र की इस सदी में भी करीब पचास लाख की आबादी वर्षो से बिना संविधान, बिना लोकतंत्र व बिना अधिकारों के रहने को बाध्य है। यह विदित ही है कि 1947 में जम्मू-कश्मीर महाराजा द्वारा अपनी रियासत के भारत में विलय के बावजूद पाकिस्तान ने इस पर हमला कर दिया था तथा जनवरी 1948 में UN प्रस्ताव द्वारा जो युद्ध विराम समझौता हुआ जिसके फलस्वरूप जम्मू कश्मीर राज्य का लगभग 35 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में ही रह गया। इस POK को हम दो भागो में बांट सकते हैं- जम्मू कश्मीर एवं गिलगिट बालटिस्तान।

पाक अधिकृत कश्मीर (POK) का करीब 15 प्रतिशत क्षेत्र जम्मू कश्मीर में है जिसे पाकिस्तान 'आजाद' कश्मीर कहता है। इसका क्षेत्रफल करीब 13000 वर्ग किमी है। मुज्जफराबाद को इसकी राजधानी घोषित कर रखा है तथा इसे आठ जिलों में बांट रखा है। पाकिस्तान ने POK में किसी संवैधानिक प्रावधानों के स्थान पर ''रूल्स ऑफ बिजनैस'' से शासन करना उचित समझा जिसके अंतर्गत एक संयुक्त सचिव स्तर के अदने से अधिकारी के पास सारी शक्तियां निहित थीं जो वहां की जनता के स्थान पर पाकिस्तान की सरकार के प्रति उत्तरदायी था। 1974 में वहां नई व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें विधानसभा, प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति की व्यवस्था की गई। पांच वर्ष के कार्यकाल वाली विधानसभा में कुल 53 सदस्य होने की व्यवस्था है परन्तु चुनावी कानून किस तरह से राजनीतिक अधिकारों का हनन करते है, इसका उदाहरण यह है कि वही व्यक्ति चुनाव लड़ सकता है जो पाकिस्तान के प्रति वफादारी की शपथ लेता है। यदि कोई व्यक्ति कश्मीर के पाकिस्तान में विलय पर प्रश्न उठाता है तब वह व्यक्ति चुनाव लड़ने से अयोग्य हो जाएगा।[2] ऐसे शपथ पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करने की वजह से जम्मू एण्ड कश्मीर लिब्रेशन फ्रण्ट व ऑल पार्टीज नेशनलिस्ट अलायंस जैसे दल चुनावों में भाग ही नहीं ले पाये हैं। POK का कोई व्यक्ति पाकिस्तान मे विलय के विरूद्ध न बोल सकता है और न ही इस बारे में कोई विरोध प्रदर्शन, सम्मेलन या संगठन कर सकता है। ऐसा करना ''देश विरोधी व आंतकी कृत्य'' माना जाता है। वास्तव में इस तरह के प्रावधान

❑ सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर (राजस्थान)

मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का सीधा उल्लंघन है।

साहित्य समीक्षा : ''काश्मीर दहकते अंगारे'' नामक अपनी पुस्तक में जगमोहन[3] ने मूलतः भारतीय जम्मू कश्मीर के विभिन्न प्रश्नों को उठाया है। लेकिन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जनसांख्यिकी स्वरूप व आतंकी गतिविधियों के संदर्भ मे अखण्ड जम्मू कश्मीर के अनेक प्रसंगों का पुस्तक में उल्लेख है। जगमोहन विशेषतः उन अफवाहों और गलत सूचनाओं की ओर ध्यान दिलाते हैं जिसके कारण घाटी में POK के प्रति विशेषतः युवाओं में आकर्षण पैदा होता है।

रविन्द्र जुगरान[4] की ''रक्तरंजित जम्मू कश्मीर'', पुस्तक संपूर्ण जम्मू कश्मीर के राजनीतिक व भौगोलिक इतिहास के साथ-साथ इसके सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डालती है। साथ ही, कश्मीर मुद्दे पर भारत की नीति, पाकिस्तान के षडयंत्र और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियाओं का भी विस्तार से वर्णन किया है।

कुलदीप अग्निहोत्री, ''जम्मू कश्मीर की अनकही कहानी'' पुस्तक में लेखक ने अन्य बातों के साथ-साथ विशेषतः गिलगिट-बालटिस्तान के बारे में विस्तार से लिखा है। पुस्तक गिलगिट-बालटिस्तान पर कश्मीर महाराजा के नियंत्रण, गिलगिट स्काउट की स्थापना, स्वाधीनता के समय वहां नियुक्त अंग्रेज सेनापति की पाकिस्तान के प्रति समर्पण भावना आदि पहलूओं पर विस्तार से प्रकाश डालती है।

नरेन्द्र सहगल[6] कृत ''व्यथित जम्मू कश्मीर'' पुस्तक विशेषतः स्वाधीनता के समय कश्मीर में घटित घटनाओं पर आधारित है। सन्दर्भवश अनुच्छेद 370 के प्रभाव, लद्दाख की सभ्यता व संस्कृति पर आसन्न खतरों, आतंकी गतिविधियों से प्रभावित विकास कार्यो आदि का वर्णन किया है। साथ ही कश्मीर में प्रजा परिषद की भूमिका का भी विस्तार से वर्णन है।

शर्मा, हसन, बेहुरिया[7], "पाकिस्तान ऑक्युपाईड कश्मीर पॉलिटिक्स, पार्टीज एंड पर्सनेलीटीज'' पुस्तक पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर व गिलगिट-बालटिस्तान की सम्पूर्ण राजनीति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। इसमें वहां के संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ जनआंदोलन एवं प्रदर्शनों का भी विस्तृत वर्णन है। पुस्तक के अनुसार पाकिस्तान के शासकों ने दिखावे के लिए स्थानीय लोगों को शासन में भागीदारी दी है लेकिन वास्तविक सत्ता आज भी पाकिस्तान सरकार के पास ही है।

देवाषर तिलक[8], "पाकिस्तान द बलूचिस्तान कुण्ड्रम" यह पुस्तक मूलतः बलूचिस्तान के इतिहास, वहां प्रारम्भ हुए असंतोष व उग्र आंदोलन का सम्पूर्ण लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। लेकिन संदर्भवश पूरे पाकिस्तान में मानवाधिकार हनन, जनआंदोलनों को कुचलने में पाकिस्तानी सेना व गुप्तचर संस्थाओं की भूमिका, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की गतिविधियों आदि को भी रेखांकित करती है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। विषय के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने के लिए द्वितीयक स्त्रोतों का सहारा लिया गया है जिसमें आलोचित विषय पर विभिन्न पुस्तकें, आलेख, मीडिया रिपोर्ट व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिवेदन सम्मिलित हैं। साथ ही इण्टरनेट के माध्यम से स्थानीय लोगों के विचारों को समझने का प्रयास भी किया गया है।

उद्देश्य

1. वर्तमान सदी में मानवाधिकारों की उपादेयता पर प्रकाश डालना।
2. मानवाधिकारों को लेकर विभिन्न राज्यों व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के दोगलेपन को प्रश्नांकित करना।
3. पाक अधिकृत कश्मीर व गिलगिट बालटिस्तान में राज्य प्रायोजित मानवाधिकार हनन पर प्रकाश डालकर बौद्धिक बहस को आगे बढ़ाना।

POK की सरकार किस तरह से पाकिस्तानी सरकार की दया पर निर्भर है कि उसे किसी भी समय बिना कारण बताये बर्खास्त किया जा सकता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान के संविधान के अनुसार कश्मीर पाकिस्तान का न ही भू-भाग है और न ही वहां का प्रांत है। इतना ही नहीं इस तथाकथित ''आजाद कश्मीर'' की वास्तविक सत्ता ''आजाद जम्मू कश्मीर कांउसिल'' के पास है जिसमें कुल 21 सदस्य होते हैं तथा पाकिस्तान का प्रधानमंत्री इसका पदेन अध्यक्ष होता है। यह काउंसिल सर्वोच्च सत्ता है जिसके पास अपरिमित अधिकार हैं। कांउसिल जम्मू कश्मीर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त व बर्खास्त करने का अधिकार भी रखती है।[9] वास्तव में यह संस्थागत भ्रष्टाचार का बड़ा उपकरण है लेकिन लोगों के भारी असंतोष व विरोध के बावजूद यह ''तानाशाही संगठन'' पूर्ववत कार्यरत है। यही नहीं इस POK के राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री की शपथ का दूसरा पैरा कहता है, ''आजाद जम्मू कश्मीर के राष्ट्रपति या

प्रधानमंत्री के रूप में मैं देश के प्रति तथा जम्मू-कश्मीर के पाकिस्तान के साथ विलय के प्रति निष्ठावान रहूंगा।'' स्पष्ट है, 'पी.ओ.के.' की आजादी तथा जनमत भ्रम मात्र है', वास्तविकता में वहां ऊपर से थोपी हुई अलोकतांत्रिक कठपुतली सरकारें कार्यरत रही हैं। ऐसी सरकार से शासित होकर लोग राजनीतिक दमन के शिकार होकर अपने बुनियादी राजनीतिक-अधिकारों से वंचित हो रहे हैं। यह कैसे राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री हैं जिन्हें राज्य का मुख्य सचिव ही बर्खास्त कर दे? वास्तव में यह सरकार ''पाकिस्तान द्वारा पाकिस्तानियों के लिए बनाई सरकार है न कि कश्मीर के लोगों की प्रतिनिधि सरकार।''[10]

वास्तव में पाक अधिकृत कश्मीर में मानवाधिकार हनन का एक संस्थागत स्वरूप है जैसा कि OHCHR ने अपनी 2018 की रिपोर्ट में इंगित किया है। पाकिस्तानी सेना, आईएसआई, आंतकी संगठन व स्थानीय पुलिस इसके मुख्य पात्र है। POK में अनेक गुट व राजनीतिक दल कश्मीर की आजादी के समर्थक हैं। ऐसे संस्थागत स्वरूप के समक्ष इनके लिए अपनी गतिविधियों का संचालन करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। न केवल स्वयं उनको अपितु बच्चों सहित उनके परिजनों को पुलिस व इंटेलीजेंसी एजेसियों द्वारा धमकाया जाता रहा है। नवबंर, 2018 में ''जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट'' ने पाकिस्तान सरकार से कश्मीर को सैन्य मुक्त करने की मांग को लेकर एक रैली का आयोजन किया। इस आधार पर फ्रण्ट के 19 कार्यकर्ताओं पर राजद्रोह का मुकदमा दर्ज कर जेल में डाल दिया था। इसी तरह, मार्च 2019 में जम्मू कश्मीर नेशनल स्टूडेंट फेडरेशन द्वारा रावलपिण्डी प्रेस क्लब के सामने किए प्रदर्शन के आधार पर उसके 30 सदस्यों को बाहरी संपर्क से विहीन कर हिरासत मे ले लिया गया था।[11] इस प्रकार की अनेक घटनाएं वहां के नागरिक जीवन का हिस्सा हो चुकी हों, तब समझा जा सकता है कि वहां के मानवाधिकारों की क्या स्थिति है?

जनसंचार के साधन लोकतंत्र के वाहक भी हैं और इसका पैमाना भी। लेकिन POK में आज भी समाचार पत्रों में किसी खबर को प्रकाशित करने से पूर्व कश्मीर काउंसिल व पाकिस्तानी सरकार मे कश्मीरी मामलों के विभाग से पूर्वानुमति लेनी होती है। मीडिया कर्मियों को एक तरह से स्वयं पर सेंसरशिप रखनी होती है ताकि वे शोषण से बच सकें। यदि उन्हें सरकारी विज्ञापन चाहिए तब उन्हें पाकिस्तान के विरूद्ध होने वाले आंदोलनों व सरकारी एंजेसियों द्वारा हो रहे अत्याचारों की खबरों को उपेक्षित करना होता है। इस तरह से सरकार विज्ञापनों का उपयोग ''गाजर और डण्डे की नीति'' के रूप में करती है।[12] वास्तव में POK के पत्रकार अपनी व्यावसायिक जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए अनेक दबावों व धमकियों का सामना कर रहे हैं। गिलगिट बालटिस्तान के एक पत्रकार शाबिर सिहम को मानहानि, छलरचना, अदालती कार्यवाही से फरारी आदि के आरोप लगाकर 22 वर्षों की सजा व पांच लाख पाकिस्तानी रूपयों के जुर्माने से दण्डित किया गया जबकि उनका वास्तविक अपराध यह था कि उन्होने ''डेली टाइम्स'' न्यूज पेपर हेतु आलेख लिखा था। इसी तरह नवबंर 2018 में गिलगिट बालिस्टान में एक पत्रकार मोहम्मद कसीम को गिरफ्तार कर उन पर आपराधिक भय, शांतिभंग करने वाला नियोजित षडयंत्र, मानहानि, सरकारी कार्यो में हस्तक्षेप आदि के आरोप लगा दिये गये जबकि वास्तव में उसने स्थानीय प्रशासन के भ्रष्टाचार पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी।[13] इंटरनेशनल क्राइसिस ग्रुप के अनुसार पाकिस्तानी गुप्तचर संस्थान के अधिकारी गिलगिट के पत्रकारों को चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे (CPEC) के विरूद्ध समाचार प्रकाशित करने पर धमकाते रहते है।[14] जब जनमत निर्माण के प्रमुख उपकरण समाचार पत्रों की यह स्थिति है तब आम नागरिकों की विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की क्या स्थिति होगी, समझा जा सकता है।

पाक अधिकृत कश्मीर प्राकृतिक संसाधनों से भरा है इन संसाधनों का उपयोग स्थानीय लोगों के लिए न होकर इस पर पाकिस्तानी संघीय सरकार का नियत्रंण है। वास्तव में इन संसाधनों का दोहन पाकिस्तानी सरकार अपने हित में ही करती है जबकि स्थानीय लोग बड़े पैमाने पर गरीबी व अभाव का जीवन जीने को विवश हैं। अपने प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग का अधिकार होता तो यह क्षेत्र संपूर्ण पाकिस्तान का सर्वाधिक सम्पन क्षेत्र होता लेकिन आज यह क्षेत्र आर्थिक पिछड़ेपन, बेरोजगारी, निम्न कृषि उत्पादकता, उद्योग धंधों की कमी आदि के कारण पूर्णतया पाकिस्तान की सहायता पर निर्भर हैं। मंगला डैम इस क्षेत्र के जल संसाधनों के दुरूपयोग का एक बड़ा उदाहरण है। पाकिस्तान ने 1967 में मीरपुर में झेलम नदी पर ''मंगला डैम'' का निर्माण करवाया। यह बांध पाकिस्तान के लिए सिंचाई व विद्युत का सबसे बड़ा स्त्रोत है लेकिन मीरपुर के लिए एक श्राप समान है। जब इसका निर्माण हुआ तब

लगभग 250 गांव डूबे थे और हजारों एकड़ कृषि योग्य भूमि नष्ट हो गई।[15] लेकिन स्थानीय लोगों को न मुआवजा मिला और न ही मुफ्त बिजली। बांध से पैदा होने वाली बिजली पर रॉयल्टी न देने के लिए बहाना बनाया कि यह केवल पाकिस्तान के प्रान्तों को ही दी जा सकती है। आश्चर्यजनक है कि पाकिस्तान पाक अधिकृत कश्मीर पर बांध तो बना सकता है लेकिन उससे पैदा होने वाली बिजली पर 'आजादी' के कारण रायल्टी नहीं दे सकता।[16] भारी विरोध प्रदर्शन के बावजूद 2013 में पाकिस्तानी सरकार ने इस बांध की ऊंचाई 454 फीट की जगह 1213 फीट कर दी है जिसने पूरे क्षेत्र में पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित किया है।[17]

धार्मिक स्तर पर देखा जाए तो पूरे पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के बुनियादी अधिकारों की वास्तविकता से तो सभी अवगत हैं। एक वास्तविकता यह भी है कि, ''सच्चे मुसलमान'' की परिभाषा से अहमदिया मुस्लिम भी बाहर हैं। पूरे पाकिस्तान के समान ही 'पाक अधिकृत कश्मीर' के अहमदिया शोषण के शिकार हैं। पाकिस्तान के ईशनिंदा के कानूनों की UN सहित अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में आलोचना हो रही है क्योंकि ईशनिंदा के यह कानून विशेषतः अल्पसंख्यकों के अधिकारों के हनन का कारण बनते हैं। इसी तरह, पाकिस्तान में पंजाबी व उर्दू को विशेष महत्व के कारण स्थानीय भाषा व बोलियों का विकास भी अवरूद्ध है। कश्मीर की आजादी की प्रमुख आवाज रहे गुलाम नबी गिलकर भाषायी उत्पीड़न का उल्लेखनीय उदाहरण हैं जिन्होने किसी से कश्मीरी भाषा में बात करने को तरसते हुए जुलाई 1973 में अंतिम सांस ली।[18] स्पष्ट है कि पाक अधिकृत कश्मीर राजनीतिक आर्थिक आधार पर ही नहीं अपितु धार्मिक व सांस्कृतिक आधार पर भी शोषण का शिकार है।

इसके अतिरिक्त मानवाधिकार संगठन इस बारे में भी चिंता व्यक्त कर रहे हैं कि 'पाक अधिकृत कश्मीर' से अनेक लोग नियमित रूप से और नियोजित तरीके से गायब हो रहे हैं। ऐसे अनेक लोग जो पाकिस्तानी सेना या गुप्तचर संस्थाओं के लिए काम कर रहे थे, वे लंबे समय से गायब हैं।[19] अनेक ऐसे लोग जो राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय है, उन्हें पाकिस्तानी सेना द्वारा संचालित शिविरों में भेज दिया गया है। ऐसे सैकड़ो लोग या तो यातना शिविरों में हैं अथवा वे जीवन के अधिकार से वंचित कर दिए गए हैं लेकिन स्वतंत्र मीडिया व मानवाधिकार संगठनों के अभाव के कारण ऐसे सारे प्रकरण सामने नहीं आ पाये हैं। यह आश्चर्यजनक है कि पाकिस्तान मानवाधिकार आयोग के जूरिस्डिक्शन में POK सम्मिलित ही नहीं है और NGO'S को वहां काम करने का अधिकार नहीं है। भारत में आंतकी गतिविधियों हेतु इस 'पाक अधिकृत कश्मीर' में अनेक आतंकी ट्रेनिंग शिविरों के अस्तित्व को अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों व वैश्विक मीडिया ने भी स्वीकारा है। यह आतंकी कैम्प स्वाभाविक ही वहां के लोगों के मानवीय अधिकारों के हनन के उपकरण हैं।

जैसी स्थिति 'पाक अधिकृत कश्मीर' की है, मानवाधिकारों के उल्लंघन के संदर्भ में वैसी ही स्थिति में गिलगिट-बालटिस्तान का क्षेत्र भी है। पन्द्रह लाख के करीब की आबादी का यह क्षेत्र पाक अधिकृत कश्मीर से करीब छः गुना बड़ा है। इसका कुल क्षेत्रफल करीब 73000 वर्ग किमी है जिसमें से 5800 वर्ग किमी का क्षेत्र पाक द्वारा गैर-कानूनी तरीके से चीन को सौंप दिया है। प्रशासनिक रूप से GB प्रयोग का क्षेत्र रहा है, जहां पाक में शासन परिवर्तन के साथ ही व्यवस्था परिवर्तन होता रहा है। 2020 में इमरान सरकार ने इसे पाकिस्तान का पांचवा प्रांत बनाने की घोषणा की है जिसका भारत सरकार ने तो विरोध किया ही स्थानीय लोग भी इसके विरूद्ध हैं।[20] अभी दिखावे के रूप में यहा 33 सदस्यीय विधानसभा है तथा मुख्यमंत्री व गवर्नर की व्यवस्था भी कर रखी है लेकिन ''कश्मीर कौंसिल'' के समान ही यहां की भी सारी शक्तियां पाकिस्तान के प्रधानमंत्री की अध्यक्षता से गठित परिषद् के पास ही है। स्पष्ट है, यहां के लोग स्वशासन व लोकतंत्र से वंचित ही हैं।

गिलगिट बालटिस्तान का यह क्षेत्र परम्परागत रूप से शिया बहुल रहा है। पाकिस्तान ने नियोजित तरीके से यहां की जनसांख्यकी को बदलकर सुन्नी प्रभुत्व को स्थापित करने का प्रयास किया है। 1948 में GB में शियाओं की जनसंख्या 85 प्रतिशत थी जो इस समय घटकर 50 प्रतिशत रह गई है। जब काराकोरम हाइवे का निर्माण हुआ तब भुट्टो तथा बाद में जिया के काल में व्यावसायिक हितों के कारण पंजाब से बड़ी संख्या में लोगों को GB में बसाया गया।[21] परिणामस्वरूप क्षेत्र में शिया-सुन्नी संघर्ष आम हो गया है। 1988 व 1992 में पाक सेना की चुप्पी के कारण सुन्नी समुदाय ने भयंकर रक्तपात किया। शियाओं के विरूद्ध यहां सिपह-ए-सहबा

व लश्कर-ए-झांगवी नामक सशस्त्र संगठन कार्यरत हैं। पाकिस्तान के शरिया आधारित शासन में शियाओं की मान्यताओं को कोई स्थान नहीं था। स्कूल के पाठ्यक्रम सुन्नी मान्यताओं के अनुरूप करने का विरोध करने वाले शिया नेता जिया-उद-दीन रिजवी की 2005 में गोली मारकर हत्या कर दी गई। इस धार्मिक सांस्कृतिक हमले से आहत होकर स्थानीय लोगों ने ''बलवारिस्तान नेशनल फ्रण्ट'' का गठन किया जो एक स्वतंत्र ''बलवारिस्तान'' की मांग पर आधारित है जिसे व्यापक जन समर्थन भी प्राप्त है।[22]

यह शोषण जितना धार्मिक है उतना ही आर्थिक भी है। सामरिक महत्व के काराकोरम हाइवे का पाकिस्तान ने भरपूर फायदा उठाया है लेकिन स्थानीय लोगों को कोई लाभ नहीं हुआ है। पूरे इलाके में लगभग डेढ़ हजार उच्च गुणवत्तायुक्त सोने की खानें हैं लेकिन उसका फायदा भी स्थानीय लोगों को नहीं मिल रहा है। अन्य अनेक कीमती खनिज पदार्थों की प्रचुरता के बावजूद यह क्षेत्र दक्षिण एशिया के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। यहां की साक्षरता दर मात्र 14 प्रतिशत है, जबकि महिलाओं के संदर्भ में यह केवल 3 प्रतिशत है। क्षेत्र में 1500 लोगों पर अस्पताल का एक बिस्तर उपलब्ध है। 15 लाख की आबादी पर मात्र दो कॉलेज हैं जबकि मात्र 12 हाई स्कूल हैं। लोगों को बिजली, पानी, सड़क जैसी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं हैं। उद्योगों के नाम पर कुछ ईंट भट्टे मात्र हैं, परिणामस्वरूप 85 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन जी रही है। पूरे पाकिस्तान के लिए यह क्षेत्र घरेलू नौकरों की आपूर्ति का केन्द्र है अथवा सेना में निचले स्तरों पर नौकरी करने को अभिशप्त है। यही कारण है कि कारगिल युद्ध के दौरान मारे गए पाकिस्तानी सैनिको में से सबसे बड़ा हिस्सा इसी इलाके के सैनिकों का था।[23]

पाकिस्तान व चीन की महत्वाकांक्षी परियोजना ''चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारे (CPEC) का गिलगिट बलटिस्टान प्रवेश द्वार है। इसका 600 किमी का क्षेत्र बालटिस्तान के अन्तर्गत आता है लेकिन इससे होने वाले लाभों में स्थानीय निवासी हिस्सेदार नहीं हैं। निचले स्तर के श्रमिकों को छोड़कर प्रोजेक्ट में कार्यरत लोग बाहरी ही हैं। परियोजना के क्रियान्वयन के बारे में स्थानीय लोगों से कोई विमर्श नहीं किया गया। पर्यावरण पर इस परियोजना के दुष्प्रभावों का परिणाम भी केवल स्थानीय लोगों को ही भोगना है, क्योकि यह सारे बांध नियोजित तरीके से शिया बहुल क्षेत्र में डिजाइन किए हैं । यही कारण है कि प्रोजेक्ट के अंतर्गत प्रस्तावित पांच बांधों का स्थानीय लोगों द्वारा व्यापक विरोध किया गया।[24] लोगों में इस बात का भी असंतोष है कि CPEC द्वारा भी क्षेत्र की जनसांख्यिकी में बदलाव किया जा रहा है। इस परियोजना के कारण पुलिस, सेना, इंटेलीजेंस एजेंसियों आदि का हस्तक्षेप व दबाव भी स्थानीय निवासियों पर बढ़ गया है।[25] स्पष्ट है प्राकृतिक संसाधनों पर न पाक अधिकृत कश्मीर के लोगों का नियंत्रण है और न ही गिलगिट-बालटिस्तान के लोगों का। वास्तव में यह दोनों क्षेत्र पाकिस्तान के उपनिवेश की तरह है जिनका प्रत्येक संभव तरीके से पाकिस्तान शोषण कर रहा है। जिस तरह से अंग्रेजों ने भारत में अपने शोषण को ''श्वेत जाति के उत्तरदायित्व'' की आड़ में छिपाने का प्रयास किया था उसी तरह पाकिस्तान ''इस्लामिक आबादी के प्रति जिम्मेदारी'' की आड़ में इस क्षेत्र का शोषण कर रहा है।

पाकिस्तान के आंतकवाद विरोधी कानून की मार सबसे अधिक कहीं पड़ रही है तो वह पाक अधिकृत कश्मीर के साथ-साथ बालटिस्तान हैं। प्रमुख कार्यकर्ता बाबा जान और अन्य चालीस कार्यकर्ताओं पर उनके पर्यावरणीय सक्रियता के लिए आंतकवाद विरोधी अधिनियम के अंतर्गत मुकदमा चलाकर चालीस साल की सजा सुना दी गई।[26] आश्चर्यजनक है कि CPEC का विरोध या आलोचना करना भी आंतकी गतिविधियों में सम्मिलित है और ऐसा करने पर ''राष्ट्र विरोधी व जन विरोधी गतिविधियों के आधार पर कार्यवाही की जाती है।[27] आतंकवाद विरोधी कानून मानवधिकारों पर करारी चोट करता है जिसमे बिना वारण्ट गिरफ्तारी से लेकर महीने भर तक का रिमाण्ड सम्मिलित है। स्पष्टतः यह पाकिस्तान का दुरंगीपन ही है जो भारत के अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों के तथाकथित उल्लंघन के विरूद्ध तो बोलता है लेकिन स्वयं पाक अधिकृत कश्मीर व बालटिस्तान के मानवाधिकारों का हनन करता है। कभी संपूर्ण कश्मीर के लिए कहा जाता था कि ''गर फिरदौस बर रू-ए-जमीं अस्त, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो हमी अस्त'' (धरती पर स्वर्ग यदि कहीं है, तो यहीं है, यहीं है यहीं है) आज मानवाधिकारों के उल्लंघन के संदर्भ में POK व GB के लिए कहा जा सकता है कि ''गर दोजख बर रू-ए जमीं अस्त, हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमी अस्त'' (धरती पर अगर नरक

जैसी स्थिति कहीं है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।)

स्पष्ट है कि न केवल पाकिस्तान की सरकार अपितु वहां का नागरिक समाज भी मानवता के विरूद्ध हो रहे इस अपराध का अपराधी है। मानवाधिकार हनन के प्रत्येक प्रकार से आज यह क्षेत्र अभिशप्त है। यहां की आबादी स्वशासन के अभाव, राजनीतिक अधिकारों के अभाव, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन, बुनियादी सुविधाओं की कमी व सांस्कृतिक संहार की मार झेलने को मजबूर है। लेकिन अब उपयुक्त समय है कि हम इतिहास को न्याय करने दे। वास्तव में इतिहास बहूत क्रूर निर्णायक होता है, इसीलिए वे किरदार भी सामने आने चाहिए जिनके कारण महाराजा हरी सिंह का विलय पत्र पूर्ण नहीं हो पाया, जिनके कारण 1948 का हमला हुआ, जिन्होंने भारतीय सेना को अपना कार्य पूर्ण करने से पहले ही रोक दिया और जिनकी अदूरदर्शिता ने भारत भू-भाग के लाखों लोगों को अभिषप्त जीवन जीने को मजबूर कर दिया, इसलिए क्योंकि हमारा इतिहास एक है, हमारे पुरखे साझा है और इसलिए हमारा दर्द भी साझा है-

''हम दिखते हैं भूगोल की तरह लेकिन
बस खुरचो हमें
और बहने लगता है इतिहास ...।''[28]

संदर्भ

1. स्नेडेन क्रिस्टोफर द्वारा 'कश्मीर : द अनरिटेन हिस्ट्री' मे एक रिफ्यूजी को उद्धत।
2. पाण्डेय, अशोक कुमार, कश्मीरनामा इतिहास और समकाल, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृ. 337
3. जगमोहन 'कश्मीर दहकते अंगारे', एलाइड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994
4. जुगराम रवीन्द्र, 'रक्त रंजित जम्मू कश्मीर', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2009
5. अग्निहोत्री कुलदीप चंद, 'जम्मू कश्मीर की अनकही कहानी', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2013
6. सहगल नरेन्द्र, 'व्यथित जम्मू कश्मीर', सुरूचि प्रकाशन, दिल्ली, 2010
7. शर्मा सुरेन्द्र कुमार, 'याकुल-उल-हसन और अशोक के बेहुरिया पाकिस्तान आक्युपाईड कश्मीर पालिटिक्स, पार्टीज एण्ड पर्सनैलिटीज', पेंटागन प्रेस, दिल्ली, 2019
8. देवाशर तिलक, 'पाकिस्तान द बलूचिस्तान कुण्ड्रम', इंडियनल कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, हारपर कालिंस पब्लिशर्स, दिल्ली, 2019
9. पाण्डेय अशोक कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 340
10. वही, पृ. 342
11. https://www.ohchr.org>kashmir
12. https://www.ohchr.org>kashmir
13. https://www.ohchr.org>kashmir
14. htttps://cpj org/data/peopleǐashmir
15. महापात्रा देवीदत्ता, शेखावत सीमा, 'कश्मीर अक्रॉस एल.ओ. सी.', ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2008, पृ. 30-31
16. वही, पृ. सं. 31
17. https://tribune.com.pk/story
18. https://sudhan/wordpress/com
19. https://www.amnesty.nl/content
20. https://www.bbc.com>world,नवंबर 23, 2020
21. https://www.bbc.com>world, नवंबर 23, 2020
22. पाण्डेय, अशोक कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 350
23. पाण्डेय, अशोक कुमार, पूर्वोक्त,, पृ. 350-351
24. https://www.ohchr.org>kashmir
15. https://www.ohchr.org>kashmir
26. https://www.ohchr.org>kashmir
27. ICG, 'china-pakistan Economic corrdor opportunition
28. पाण्डेय अशोक कुमार, पूर्वोक्त, पुस्तक की भूमिका से।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022 UGC-CARE List-Social Sciences

किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

❑ दिनेश चन्द्र पाण्डे
❖ प्रोफेसर दीपा वर्मा

प्रस्तुत अध्ययन में किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन किया गया है। प्रतिदर्श के रूप में उत्तराखंड के नैनीताल जनपद के 15-18 वर्ष की आयु के 100 किशोरों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया, जिसमें राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 12वीं में अध्ययनरत 50 किशोर बालक एवं 50 किशोर बालिकाओं को सम्मिलित किया गया है। अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु उपकरण के रुप में रेखा गुप्ता द्वारा विकसित आत्मविश्वास मापनी तथा जगदीश एवं ए.के. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य मापनी का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुआ कि किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है। किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में सार्थक सहसंबंध होता है। किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि के साथ उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

सूचक शब्द : किशोर, आत्मविश्वास, मानसिक स्वास्थ्य

किशोरावस्था को मनुष्य के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था माना जाता है क्योंकि जीवन की इस अवस्था में किशोरों का शारीरिक, मानसिक एवं सांवेगिक विकास बहुत तीव्रता से होता है। इस अवस्था में किशोरों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों एवं रुचियों में अत्यधिक परिवर्तन होने के कारण इस अवस्था को परिवर्तन की अवस्था भी कहा जाता है और यह अत्यधिक ऊर्जा सर्जनात्मकता एवं उत्साह से भरपूर होती है। यदि इस अवस्था में किशोरों को उचित मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त न हो तो वे विपरीत दिशाओं में भटक जाते हैं एवं उनमें नकारात्मक लक्षण पैदा होने लगते हैं, फलस्वरूप उनका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होने लगता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किशोरावस्था 10 वर्ष से 19 वर्ष की आयु तक बाल्यावस्था एवं युवावस्था के मध्य जीवन का एक अनूठा चरण होता है और अच्छे स्वास्थ्य की नींव रखने का एक सर्वोत्तम समय होता है। इस अवस्था में शारीरिक संज्ञानात्मक एवं मनोसामाजिक विकास अत्यंत तीव्रता से होने के कारण इसे विकास की सर्वोत्तम अवस्था माना जाता है।[1] इस समय सांवेगिक विकास की गति तीव्र होती है और लगभग सभी प्रकार के संवेग इस अवस्था में विकसित हो चुके होते हैं।

वर्तमान समय में बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण किशोरों का जीवन अधिक जटिल एवं तनावपूर्ण होता जा रहा है। अत्यधिक दबाव एवं तनावपूर्ण जीवनशैली के चलते कई बार जब किशोर अपने समक्ष आने वाली चुनौतियों का सामना करने में असफलता का अनुभव करते हैं तो उनमें निराशा की भावना और आत्मविश्वास में कमी के साथ तनाव, चिंता, कुंठा, क्रोध, विषाद, जैसे अनेक मानसिक लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं इन्हीं कारणों के चलते किशोर स्वयं को असहाय एवं अकेला अनुभव करने लगते हैं और आत्महत्या जैसे घातक कदम तक उठा लेते हैं।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। अपने विचारों एवं अभिव्यक्ति को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करना और स्वयं की पूर्ण क्षमता का उचित उपयोग करना ही आत्मविश्वास है। बसवन्ना के अनुसार आत्मविश्वास से तात्पर्य व्यक्ति की किसी परिस्थिति विशेष में बाधाओं का सामना करने तथा सब कुछ ठीक करने की योग्यता से है।[2] आत्मविश्वास की कमी के कारण किशोर अपने जीवन में अन्य कार्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति में अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं, फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व एवं सामाजिक

❑ शोध अध्येता, मनोविज्ञान विभाग, एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल (उत्तराखण्ड)
❖ विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय दोषापानी (उत्तराखण्ड)

व्यवहारों में परिवर्तन होने लगता है जिससे उनकी उत्पादकता भी प्रभावित हाने लगती है।

यदि मनुष्य का मस्तिष्क स्वस्थ है तो उसका जीवन सुखी होता है अन्यथा जीवन में दुःख ही दुःख होते हैं। स्वास्थ्य के दो आयाम-शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य हैं और ये दोनों ही एक दूसरे से संबंधित होते हैं यदि मनुष्य का मानसिक स्वास्थ्य उत्तम है तो वह जीवन का भरपूर आनंद प्राप्त करता है।

मानसिक स्वास्थ्य से अभिप्राय मन के स्वास्थ्य से होता है। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ शरीर के अंगों के सुचारू रूप से कार्य करने से होता है ठीक उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ मन के उचित रूप से कार्य करने से होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, 'स्वास्थ्य, पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है, न कि केवल बीमारी या दुर्बलता की अनुपस्थिति' अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक विकारों या अक्षमताओं की अनुपस्थिति से कहीं अधिक है।[3] लैडेल के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य की योग्यता से है।[4] मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति उसे कहा जाएगा जो प्रत्येक परिस्थिति में समायोजन एवं संतुलित व्यवहार करता है अर्थात् समायोजन करने की क्षमता ही मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति की सर्वप्रथम विशेषता है।

साहित्य समीक्षा : रोहतास कुमार वर्मा एवं सरोज कुमारी[5] ने अपने अध्ययन में पाया कि प्राथमिक विद्यालय के छात्रों के आत्मविश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं होता है।

रितु किशोर[6] ने पटना जिले के 200 सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया। इन्होंने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम-भावनात्मक स्थिरता, सम्पूर्ण समायोजन, स्वयत्ता, सुरक्षा-असुरक्षा की भावना, बुद्धि और सम्पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य, गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक उत्तम है।

वीरेन्द्र सिंह यादव[7] ने माध्यमिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया और पाया कि क्षेत्र भिन्नता (शहरी एवं ग्रामीण), लिंग भिन्नता एवं शैक्षिक वर्ग भिन्नता (कला और विज्ञान वर्ग) के आधार पर छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य में अंतर पाया जाता है।

एस. सिंधुजा एवं जे. वनिता[8] ने अपने अध्ययन में पाया कि बी.एड. के छात्रों में आत्मविश्वास में लिंग के आधार पर सार्थक अंतर पाया जाता है एवं छात्रों के आत्मविश्वास एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सार्थक संबंध होता है।

सपना शर्मा, राधारानी सक्सेना एवं मीनाक्षी[9] ने अपने अध्ययन में पाया की कला और विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा शैक्षिक उपलब्धि में कोई सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

विवेक कुमार एवं हरिशंकर सिंह[10] ने अपने अध्ययन में पाया की उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के संपूर्ण मानसिक स्वास्थ्य और उनकी विमाओं-सांवेगिक स्थिरता, संपूर्ण समायोजन, स्वायत्ता, सुरक्षा-असुरक्षा एवं आत्मप्रत्यय में सार्थक अंतर है, जबकि मानसिक स्वास्थ्य की विमा-बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

गौरव प्रशांत त्रिपाठी[11] ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

वर्तमान समय में समाज में बढ़ती मानसिक स्वास्थ्य से संबंधी समस्याओं एवं बढ़ते हुए आत्महत्या के प्रयासों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुत तीव्र गति से कार्य करने की आवश्यकता है। सन्दीप कुमार श्रीवास एवं अरुण कुमार[12] ने माध्यमिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया गया कि मानसिक स्वास्थ्य के अत्यधिक उच्च स्तर पर 0.8 प्रतिशत ही छात्र हैं तथा 62 प्रतिशत छात्रों का ही मानसिक स्वास्थ्य औसत है जो उनके समुचित विकास हेतु उपयुक्त नहीं है। किशोरों में बढ़ती मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं आत्महत्या एवं बाल-अपराध समाज और राष्ट्र के लिए एक गंभीर समस्या है क्योंकि आज के किशोर की भविष्य के राष्ट्र निर्माण में मुख्य भूमिका होती है। ऐसे में किसी भी समाज और राष्ट्र के किशोरों का मानसिक रूप से स्वस्थ होना नितांत आवश्यक है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या किशोरों का मानसिक स्वास्थ्य एवं उनके आत्मविश्वास में कोई संबंध होता है? क्या किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में उनके लिंग का कोई प्रभाव पड़ता है? क्या किशोरों के आत्मविश्वास में उनके लिंग का कोई प्रभाव पड़ता है?

अध्ययन के उद्देश्य :

1. किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर उनके लिंग के प्रभाव

का अध्ययन करना।

2. किशोरों के आत्मविश्वास पर उनके लिंग के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. किशोर बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।
4. किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं :

1. किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।
2. किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।
3. किशोर बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता।
4. किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाएगा।

शोध पद्धति : इस अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रतिदर्श के रूप में उत्तराखंड के नैनीताल जनपद के 15-18 वर्ष की आयु के कुल 100 किशोरों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया, जिसमें राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 12वीं में अध्ययनरत 50 किशोर बालक एवं 50 किशोर बालिकाओं को सम्मिलित किया गया है। अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु आत्मविश्वास के मापन के लिए रेखा गुप्ता[13] द्वारा विकसित आत्मविश्वास मापनी तथा जगदीश एवं ए. के. श्रीवास्तव[14] द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन में आंकड़ों के संकलन के पश्चात् मूल्यांकन के लिए सांख्यिकी प्रविधि के रूप में मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण एवं पीयर्सन सहसंबंध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का विशलेषण :

परिकल्पना क्रमांक 1 : किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।

तालिका क्रमांक - 1

किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य के मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की तुलना

लिंग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	स्वतंत्रता स्तर (df)	टी-मूल्य (t)	सार्थकता स्तर
किशोर बालक	50	158.700	16.628	98	0.250	असार्थक
किशोर बालिकाएं	50	157.880	16.221			

उपर्युक्त तालिका 1 से स्पष्ट है कि किशोर बालकों तथा किशोर बालिकाओं के समूहों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान क्रमशः 158.700 तथा 157.880 है एवं मानक विचलन क्रमशः 16.628 तथा 16.221 है अर्थात् किशोर बालकों की विचलनशीलता किशोर बालिकाओं की तुलना में अधिक है। अंतर की सार्थकता के लिए टी-मूल्य 0. 250 है जो कि 0.05 विश्वास के स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूहों के मध्यमानों में सांख्यिकीय दृष्टिकोंण से सार्थक अंतर नहीं है। अतः शोधकर्ता द्वारा बनाई गयी निराकरणीय परिकल्पना 'किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता', को स्वीकार किया जाता है।

परिकल्पना क्रमांक 2. : किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।

तालिका क्रमांक - 2

किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास के मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की तुलना

लिंग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	स्वतंत्रता स्तर (df)	टी-मूल्य (t)	सार्थकता स्तर
किशोर बालक	50	22.940	9.767	98	0.634	असार्थक
किशोर बालिकाएं	50	24.260	11.007			

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट है कि किशोर बालकों तथा किशोर बालिकाओं के समूहों के आत्मविश्वास का मध्यमान क्रमशः 22.940 तथा 24.260 है एवं मानक विचलन क्रमशः 9.767 तथा 11.007 है अर्थात् किशोर बालकों की विचलनशीलता किशोर बालिकाओं की तुलना में अधिक है। अंतर की सार्थकता के लिए टी मूल्य 0.634 है जो कि 0.05 विश्वास के स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों समूहों के मध्यमानों में सांख्यिकीय दृष्टिकोंण से सार्थक अंतर नहीं है। अतः शोधकर्ता द्वारा बनाई गयी निराकरणीय परिकल्पना 'किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता', को स्वीकार किया जाता है। परिकलित मध्यमान के संदर्भ में यह पाया गया कि किशोर बालकों के समूह के आत्मविश्वास का मध्यमान किशोर बालिकाओं के समूह के आत्मविश्वास के मध्यमान से कम है। परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में अधिक आत्मविश्वास प्राप्तांक का अर्थ कम आत्मविश्वासी और कम आत्मविश्वास प्राप्तांक का अर्थ अधिक आत्मविश्वासी होने से है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि किशोर बालिकाओं की तुलना में किशोर बालक अधिक आत्मविश्वासी होते हैं।

परिकल्पना क्रमांक 3 : किशोर बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता।

तालिका क्रमांक - 3

किशोर बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध गुणांक

चर	संख्या (N)	सारणी मान	सहसंबंध-गुणांक (r)	सार्थकता स्तर
मानसिक स्वास्थ्य	50	0.3575	−0.441	0.01 स्तर पर सार्थक
आत्मविश्वास				

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट है कि किशोर बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध गुणांक (r) 0.441 है जो कि 0.01 विश्वास के स्तर के लिए निर्धारित सारणी मान 0.3575 से अधिक है अर्थात् सांख्यिकीय दृष्टिकोंण से मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध सार्थक है। अतः शोधकर्ता द्वारा बनाई गयी निराकरणीय परिकल्पना 'किशोर बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता', को अस्वीकार किया जाता है। परिकलित सहसंबंध-गुणांक (r) का ऋणात्मक परिमाण दर्शाता है कि आत्मविश्वास के प्राप्तांक में वृद्धि होने पर मानसिक स्वास्थ्य के प्राप्तांक में कमी होती है और इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के प्राप्तांक में वृद्धि होने पर आत्मविश्वास के प्राप्तांक में कमी होती है। परन्तु अध्ययन में प्रयुक्त आत्मविश्वास मापनी के अनुसार अधिक आत्मविश्वास प्राप्तांक का अर्थ कम आत्मविश्वासी और कम आत्मविश्वास प्राप्तांक का अर्थ अधिक आत्मविश्वासी होने से है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि किशोर बालकों के आत्मविश्वास में वृद्धि के साथ उनके मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होगी और इसके विपरीत उनके मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि के साथ उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होगी।

परिकल्पना क्रमांक 4 : किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता।

तालिका क्रमांक - 4

किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध गुणांक

चर	संख्या (N)	सारणी मान	सहसंबंध-गुणांक (r)	सार्थकता स्तर
मानसिक स्वास्थ्य	50	0.3575	−0.625	0.01 स्तर पर सार्थक
आत्मविश्वास				

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 4 से स्पष्ट है कि किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध गुणांक (r) 0.625 है जो कि 0.01 विश्वास के स्तर के लिए निर्धारित सारणी मान 0.3575

से अधिक है अर्थात् सांख्यिकीय दृष्टिकोंण से मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास के मध्य सहसंबंध सार्थक है। अतः शोधकर्ता द्वारा बनाई गयी निराकरणीय परिकल्पना 'किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता', को अस्वीकार किया जाता है। परिकलित सहसंबंध-गुणांक (r) का ऋणात्मक परिमाण दर्शाता है कि आत्मविश्वास के प्राप्तांक में वृद्धि होने पर मानसिक स्वास्थ्य के प्राप्तांक में कमी होती है और इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के प्राप्तांक में वृद्धि होने पर आत्मविश्वास के प्राप्तांक में कमी होती है। परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त आत्मविश्वास मापनी के अनुसार अधिक आत्मविश्वास प्राप्तांक का अर्थ कम आत्मविश्वासी और कम आत्मविश्वास प्राप्तांक का अर्थ अधिक आत्मविश्वासी होने से है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि किशोर बालकों के आत्मविश्वास में वृद्धि के साथ उनके मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होगी और इसके विपरीत उनके मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि के साथ उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होगी।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन में प्राप्त परिणामों के अवलोकन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है जबकि किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मविश्वास में सार्थक सहसंबंध होता है। किशोर बालक एवं किशोर बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि के साथ उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह होती है कि वह अपने जीवन में आने वाली चुनौतियों को स्वीकार करता है और उनका सामना करने के लिए पूर्ण आत्मविश्वास के साथ निरंतर प्रयास करता है। वह अपने जीवन की व्यक्तिगत और सामाजिक गतिविधियों में अपना सकारात्मक योगदान देता है। आज के किशोर ही भविष्य के राष्ट्र निर्माता होते हैं। यदि उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है तो वे अपने जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी पूर्ण क्षमता का प्रयोग कर सकते हैं और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर एक अच्छे समाज और राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Adolescent mental health, https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/adolescent-mental-health 2020, September 28
2. Gupta R 'Manual for the Self Confidence Inventory', National Psychological Corporation, Agra, 1971, p.3
3. Mental Health: Strengthening Our Response, https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/mental-health-strengthening-our-response, 2018, March 30
4. Jagdish and Srivastava AK 'Manual for Mental Health Inventory', Manovaigyanik Parikchhan Sansthan, Varanasi, 1983, p.2
5. Verma Rohtas Kumar & Kumari Saroj, 'Effect of Self-Confidence on Academic Achievement of Children at Elementary Stage', Paripex - Indian Journal of Research, Vol.5, issue 1, 2016, pp.181-183
6. किशोर रितु, 'सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन', राधाकमल मुखर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 23 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर, 2021, पृ. 119-125
7. यादव सिंह वीरेंद्र, 'माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन', जर्नल ऑफ एजुकेशनल एण्ड साइकोलॉजिकल रिसर्च, वॉल्यूम 8, अंक 1, 2018, पृ. 117-121
8. S. Sindhuja and J. Vanitha, 'A Study on the Mental Health and Self Confidence of B.Ed Students in Coimbatore District', International Journal of Trend in Scientific Research & Development (IJTSRD), vol.3 issue 4, 2019 pp.1290-1292, https://www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd25131.pdf
9. शर्मा सपना, राधा रानी सक्सेना, एवं मीनाक्षी, 'उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन', रिव्यू ऑफ रिसर्च, वॉल्यूम 8 अंक 9, 2019, पृ. 01-04, www.lbp.world
10. कुमार विवेक एवं हरिशंकर सिंह, 'उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन', इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च, वॉल्यूम 6 अंक 10, 2020, पृ. 679-682, www.allresearchjournal.com
11. त्रिपाठी प्रशान्त गौरव, 'उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन', अकैडमिक सोशल रिसर्च, वॉल्यूम 7, अंक 2, 2021, पृ. 28-29, https://asr.academicsocialresearch.co.in/index.php/ASR/article/view/530
12. श्रीवास संदीप कुमार, एवं कुमार अरुण, 'माध्यमिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन', इण्डियन स्ट्रीम रिसर्च जर्नल, वॉल्यूम 6 अंक 11, 2016, पृ. 01-05
13. Gupta R 'Self Confidence Inventory', National Psychological Corporation, Agra, 1971
14. Jagdish and Srivastava AK, op.cit., p.1

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

पुलिस सुधार एवं अपराध नियंत्रण : सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैश्वीकरण के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ सुश्री ज्योति भारद्वाज
❖ प्रोफेसर दिवाकर सिंह राजपूत

सूचक शब्द : पुलिस सुधार, अपराध नियंत्रण, सूचना प्रौद्योगिकी, पुलिस सुधार

वैश्वीकरण के इस दौर में एक ओर जहाँ विकास के नये आयाम स्थापित हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर अपराधों की दर और जटिलता बढ़ती जा रही है। ऐसे में अपराध नियंत्रण के लिए पुलिस बल का अधिक बेहतर प्रशिक्षण, तकनीकी तथा संसाधनों की आवश्यकता अनुभव होना स्वभाविक है। प्रस्तुत शोध पत्र तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के कारण बढ़ते अपराधों और उनसे निपटने के लिए हो रहे पुलिस सुधारों पर केन्द्रित है। इस हेतु मध्य प्रदेश में पुलिस प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं नवीन संसाधनों पर प्राथमिक तथ्य केन्द्रित शोध कार्य किया गया है। तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा के इस दौर में अपराधों के स्वरूप में कई परिवर्तन देखे जा सकते हैं जैसे साइबर अपराध, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, ड्रग एडिक्शन, मानव तस्करी आदि। इनकी रोकथाम के लिए त्वरित व पारदर्शी कार्यवाही हेतु सीसीटीएनएस प्रशिक्षण, आनलाइन एफआईआर दर्ज करना, एवं अपराधी डाटा बैंक आदि अपराधी खोज एवं अपराध नियंत्रण में सहायक हो रहे हैं।

पुलिस सुधार एक ऐसी अवधारणा हैं, जो अपराध नियंत्रण के लिए एक दिशा और ठोस आधार देने में सहयोगी भूमिका का निर्वाह करती है। ''सर्वप्रथम पुलिस सुधार की प्रक्रिया औद्योगीकरण की क्रांति के फलस्वरूप प्रारंभ हुई, जिसके अंतर्गत पेशेवर पुलिस बल का गठन हुआ, जिसके कारण शहरों में कारखानों का विस्तार एवं जनसंख्या का जमाव तीव्रता से बढ़ने लगा, जिससे शहरों में अपराध का ग्राफ अचानक से बढने लगा। अपराधों की रोकथाम के लिए रॉबर्ट पील ने सन् 1829 में मेट्रोपोलिटिन पुलिस एक्ट लागू किया था। इस एक्ट के अंतर्गत पुलिस को पूर्णकालिक रोजगार तथा शांति एवं कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण दिए गए, ताकि वह समाज में अपराध का स्तर कम कर सके। इन पुलिसकर्मियों को बॉबी कहा गया।[1]

भारतीय संदर्भ में अपराध नियंत्रण के लिए दो तरह के नियंत्रणकारी अभिकरण काम करते हैं। औपचारिक नियंत्रण और अनौपचारिक नियंत्रण। पुलिस औपचारिक नियंत्रणकारी अभिकरणों में से एक हैं। सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैश्वीकरण के इस दौर में पुलिस सुधार की दिशा में निरंतर प्रयास जारी है। जैसे - साइबर अपराध के अन्वेषण एवं रोकथाम के लिए साइबर सेल की स्थापना। पुलिस सुधार की प्रक्रिया हेतु समय-समय पर कई समितियों का गठन किया गया है

सर्वप्रथम 1977 में श्री धर्मवीर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन किया गया इस समिति ने 4 वर्षो में आठ रिपोर्ट सौपीं। इसकी प्रमुख सिफारिशें[2]

1. प्रत्येक राज्य में एक राज्य सुरक्षा आयोग का गठन
2. जाँच कार्यो के शांति व्यवस्था संबंधी कार्य से अलग रखा जाए
3. पुलिस प्रमुख की नियुक्त के लिए एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाएँ
4. पुलिस प्रमुख का कार्यकाल तय किया जाए
5. एक नया पुलिस अधिनियम बनाया जाए

''अंततः 2006 में सोली सोराबजी की अध्यक्षता में मॉडल पुलिस एक्ट का प्रारूप तैयार किया गया''[3] ''पुलिस सुधार के लिए प्रकाश सिंह पुलिस उपमहानिरीक्षक ने सुप्रीमकोर्ट में याचिका दायर की जिसके अंतर्गत सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र के लिए कुछ दिशानिर्देश जारी किये।[4]

1. पुलिस पर राज्य सरकार का प्रभाव कम करने के लिए राज्य सुरक्षा आयोग का गठन करना।

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
❖ प्रोफेसर समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

2. पुलिस महानिदेशक, पुलिस महानिरीक्षक और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों का न्यूनतम कार्यकाल 2 साल तय करना।
3. जांच और कानून व्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व अलग-अलग पुलिस इकाइयों को सौंपना।

सेवा संबंधी तमाम मामलों पर फैसले के लिए एक पुलिस स्थापना बोर्ड का गठन करने और पुलिस अफसरों के खिलाफ शिकायतों की जांच के लिये पुलिस शिकायत प्राधिकरण का गठन करने जैसे दिशा निर्देश सम्मिलित थे।

अपराध : कानूनी दृष्टिकोण से कानून का उल्लंघन ही अपराध है।[5] ''अपराध कोई भी वह क्रिया है जिससे कानून का उल्लघंन होता है।''[6]

अपराध नियंत्रण : अपराध नियंत्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अपराध घटित होने से पहले ही इस तरह का वातावरण या चौकन्ना हो जाना जिससे कि अपराध घटित ही न हो, अपराध नियंत्रण प्रक्रिया हमेशा असामाजिक तत्वों से आगे सोच रखने पर वचनबद्ध होती है, जिससे कि एक सुरक्षित समाज को पल्लवित किया जा सके।

पुलिस सुधार एक ऐसी अवधारणा हैं, जो अपराध नियंत्रण के लिए एक दिशा और ठोस आधार देने में सहयोगी भूमिका का निर्वाह करती है।

अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क एवं सिस्टम : अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क एवं सिस्टम (CCTNS) एक प्लान स्कीम है जो एक नॉन-प्लान स्कीम कॉमन इंटेग्रेटेड पुलिस एप्लीकेशन (CIPA) के अनुभव से विकसित हुआ है। (CCTNS) भारत सरकार के राष्ट्रीय ई-गर्वनेंस प्लान के अधीन एक मिशन मोड परियोजना है। अपराध की जाँच एवं अपराधियों की पहचान से संबंधित आईटी आधारित स्टेट ऑफ आर्ट ट्रैकिंग प्रणाली के विकास हेतु ई-गर्वनेस के सिद्धांत को अपनाते हुए तथा राष्ट्रव्यापी नेटवर्किंग आधारित संरचना के निर्माण द्वारा पुलिस की कार्यकुशलता तथा प्रभाव को बढ़ाने के लिए एक व्यापक एवं समेकित प्रणाली का निर्माण करना इसका उद्देश्य है। इस परियोजना के लिए भारत सरकार द्वारा 2000 करोड़ रू. का आवंटन किया गया है। आर्थिक मामलों की केबिनेट समिति (CCEA) ने इस परियोजना को दिनांक 19.06.2009 को अनुमोदित कर दिया था।[7]

इस योजना के उद्देश्य विस्तारपूर्वक निम्न प्रकार से सूचीबद्ध किये जा सकते हैं :-

1. पुलिस के कार्यों को नागरिक केन्द्रित बनाना और पुलिस थानों में कार्यों को स्वचालित करके पारदर्शी बनाना।
2. ICT के प्रभावी प्रयोग द्वारा नागरिक केन्द्रित सेवाओं के वितरण में सुधार करना।
3. सिविल पुलिस के जाँच अधिकारियों को टूल्स, तकनीकी तथा अपराध की जाँच एवं अपराधियों की पहचान को सरल बनाने के लिए सूचना प्रदान करना।
4. अन्य क्षेत्रों जैसे कानून एवं व्यवस्था, यातायात प्रबंधन इत्यादि में पुलिस की कार्यप्रणाली में सुधार करना।
5. पुलिस थानों, जिलों, प्रदेश मुख्यालयों तथा अन्य पुलिस एजेंसियों में परस्पर संवाद को सरल बनाना।
6. पुलिस बलों के बेहतर प्रबंधन में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों की सहायता करना।
7. न्यायालयों के मामलों सहित अन्य सभी मामलों की प्रगति का कार्य जारी रखना।
8. नियमावली तथा अनावश्यक रिकॉर्ड के रख-रखाव को कम करना।
9. वैज्ञानिक तथा तकनीकी संगठनों जैसे फिंगर प्रिंट ब्यूरो, फोरेंसिक लैब इत्यादि सहित पुलिस के पद सोपान में 6000 उच्च कार्यालयों जैसे कि मंडल, उपमंडल, जिला, रेंज, जोन, पुलिस मुख्यालयों राज्य अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो जिनके पास जाँच एवं अन्य उद्देश्यों हेतु सहायता एवं सूचना प्रदान करने के लिए अपेक्षित डाटाबेस है, इनके अतिरिक्त CCTNS परियोजना के अधीन देशभर में लगभग 14000 पुलिस थानों को स्वचालित किये जाने का प्रस्ताव है।[8]

अपराध व आपराधिक खोज तंत्र एवं सिस्टम[9] (सीसीटीएनएस) को सभी उपयोगकर्ताओं के साथ विस्तृत विचार-विमर्श कर गृह मंत्रालय के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इनके हितधारकों में राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (NCRB), राज्य सरकार, सूचना तकनीकी विभाग (D.I.T.) भारत सरकार तथा राष्ट्रीय सूचना केंद्र (N.I.C.) सम्मिलित हैं। इसे ''मिशन मोड परियोजना (M.M.P.) ''के रूप में कार्यान्वित किया जाता है तथा यह राष्ट्रीय ई-गर्वनेंस योजना (N.E.G.P.)- के दिशा-निर्देशों का अनुसरण करेगा।

इस प्रोजेक्ट का उद्देश्य एक बुनियादी ढाँचे का निर्माण करना है जो उच्च स्तरीय स्वचालित सिस्टम को योजनाबद्ध रूप से पुलिस थानों एवं उससे ऊपर के स्तर के सभी व्यवस्थापकों एवं नागरिकों को सुविधा प्रदान करेगी।

यह प्रोजेक्ट पुलिस इकाइयों से सीधा संपर्क प्रदान करता है। (राज्यों, पुलिस स्टेशन, जिला पुलिस कार्यालयों, राज्य मुख्यालय, राज्य अपराध अभिलेख ब्यूरो तथा 'अन्य' पुलिस संगठनों को विविध स्तरों पर जोड़ता है तथा भारत सरकार के स्तर पर (N.C.R.B.) के लिए तथा राज्य मुख्यालय के (S.C.R.B.) माध्यम से राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों को भी जोड़ता है। बाहरी एजेंसियों को केंद्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर पुलिस विभागों से जोड़ता है। यह नागरिकों को मूल सेवाएँ प्रदान करने के लिए नागरिक इंटरफेस भी प्रदान करता है।

साहित्य सर्वेक्षण : इन्द्रराज सिंह[10] (पुलिस स्टेशन कंट्रोल रूम/सूचना कक्ष) 2019 के अनुसार - पुलिस स्टेशन कंट्रोल रूम को आधुनिक युग के अनुसार सर्वसुविधायुक्त होना चाहिए उसमें उचित संचार पद्धति, लैंड लाइन तथा मोबाइल फोन, टेलीविजन डी.टी.एच. की सुविधा, क्षेत्र के स्केच, अपराधियों/आतंकवादियों की सूची से, संदिग्ध इलाके और भूतकाल में हुए दंगो/घटनाओं की पूर्ण जानकारी से युक्त होना अत्यंत आवश्यक है।

दिवाकर सिंह राजपूत एवं ज्योति भारद्वाज[11] के अनुसार (अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क एवं सिस्टम एक समाजशास्त्रीय अध्ययन) CCTNS भारत सरकार के राष्ट्रीय ई-गर्वनेस स्थान के अधीन एक मिशन मोड परियोजना है। CCTNS पुलिस के जांच अधिकारियों के टूल्स, तकनीकी तथा अपराध की जांच एवं अपराधियों की पहचान को सरल बनाने के लिए सूचना प्रदान करने में वरिष्ट पुलिस अधिकारियों की सहायता करता है। CCTNS पुलिस की कार्यक्षमता को बढ़ाता है, क्योंकि पुलिस बल किसी भी राज्य का जितना अधिक सक्षम, प्रशिक्षित, जागरूक व सक्रिय एवं संसाधन युक्त होगा उसकी कार्यप्रणाली और परिणाम उतने ही बेहतर और सार्थक होंगे।

अदिति मिश्रा[12] (स्मार्ट पुलिसिंग) के अनुसार अपराधों पर नियंत्रण पाने के लिए नई तकनीकों और संसाधनों का भी विकास आवश्यक है। इस दिशा में किए गए अनुसंधानों में देखा गया कि अपने संसाधनों का बेहतर उपयोग करके, पुलिस की गश्त बढ़ाकर नागरिकों को आश्वस्त किया जा सकता है 'परंतु इसके ठोस प्रमाण नहीं पाये गए कि गश्त से अपराध करने में भय उत्पन्न होता है। अपराध की रोकथाम के लिए समाज में घटित अपराधों के अध्ययन से समझा जाये अपराध के कारण व अपराध अनुकूल क्षेत्र को चिन्हित कर पुलिस की गतिविधिया केंद्रित की जानी चाहिए।"

कमला शर्मा एवं रविकांत कुमार[13] के अनुसार प्रगतिशील भारतीय समाज में बढ़ता अपराध और पुलिस-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन जनपद उधमसिंह नगर के विशेष संदर्भ में पुलिस प्रशासन सामाजिक नियंत्रण का एक औपचारिक साधन है। सामाजिक प्रगति के साथ ही सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों के टूटते बंधनों ने औपचारिक साधनों को महत्वपूर्ण बना दिया है। समाज में अपराध का बढ़ता ग्राफ आज पुलिस प्रशासन के लिए गंभीर चुनौती बन गया है। समाज के समक्ष उत्पन्न इस प्रकार की परिस्थिति के लिए अन्य अनेक कारकों के साथ ही पुलिस प्रशासन की कार्यप्रणाली और उनमें व्याप्त कमियाँ भी बहुत हद तक उत्तरदायी हैं समाज में बढ़ती आपराधिक प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए पुलिस जनता संबंध, पुलिस प्रशासन की कार्यप्रणाली और उनमें व्याप्त कमियों को दूर करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लक्ष्मी कुशवाह[14], (पुलिस विज्ञान) के अनुसार - किसी भी चीज में पारंगत होने के लिए हमें सबसे पहले प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। कुछ सीखना है तो उसके लिए ट्रेनिंग लेना अनिवार्य है वरना हमारे सीखने का क्या महत्व। प्रशिक्षक भी सरल नहीं, कठोर होना चाहिए, यानि पूरी मेहनत और शिद्दत से सीखना और सिखाया जाना चाहिए, उसके लिए कितना ही कठोर परिश्रम शिक्षक और प्रशिक्षु को क्यों न करना पड़े। बिना प्रशिक्षण के आप किसी भी विद्या में दक्ष नहीं हो सकते।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. ICT (Information Communication Technology) के कारण अपराधों के बदलते स्वरूपों को अध्ययन करना।
2. अपराध नियंत्रण में CCTNS की भूमिका का अध्ययन करना।
3. औद्योगीकरण के कारण पुलिस व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन की जानकारी प्राप्त करना।
4. वैश्वीकरण का पुलिस पर प्रभाव।

अध्ययन क्षेत्र एवं अध्ययन पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के सागर जिले का चयन किया गया है। मध्य प्रदेश का सागर क्षेत्र अध्ययन एवं अनुसंधान की विभिन्न रिपोर्ट्स के आधार अपेक्षाकृत - सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से ग्रामीण जीवन को परिलक्षित करता है। सागर पुलिस रेंज में सागर जिला एवं दमोह जिला सम्मिलित हैं।

मध्यप्रदेश के उत्तर मध्य और देश के मध्य भाग में स्थित जिला सागर है के उत्तर में झाँसी, दक्षिण में नरसिंहपुर और रायसेन पश्चिम में विदिशा तथा पूर्व में दमोह जिला की सीमाएँ लगती हैं। यह जिला बुंदेलखण्ड का प्रमुख गतिशील जिला है औद्योगिक स्थिति, आधारभूत, संरचना, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सागर जिला काफी सम्पन्न है।

सागर जिले में कुल 34 पुलिस थाना है, जिसमें 7 नगरीय एवं 27 ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। कुल चौकियाँ 23 हैं। कुल स्वीकृत पद संख्या 2322 है, जिसमें कार्यरत् 1973 हैं और रिक्त 349 हैं। संख्या के आधार पर पुलिस बल की संख्या क्रमशः 1863 पुरूष एवं 110 स्त्री हैं।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। द्वितीयक स्रोतों हेतु पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, विभिन्न अधिनियम, संबंधित शोध इंटरनेट, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ आदि का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु साक्षत्कार एवं संरचित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। मिश्रित निदर्शन के माध्यम से सागर जिले में कार्यरत कुल 1973 पुलिस कर्मियों में से 30 उत्तरदाताओं का चयन किया उत्तरदाताओं से विश्लेषण एवं निर्वचन हेतु विभिन्न सांख्यिकीय एवं शोध विधियों का प्रयोग किया।

उत्तरदाताओं का सामान्य परिचय

तालिका क्रमांक 1

लिंग

लिंग	आवृत्ति	प्रतिशत
स्त्री	12	40
पुरूष	18	60
योग	30	100

प्राप्त आँकड़ों से यह कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं में से 40 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी/अधिकारी हैं, जबकि 60 प्रतिशत पुरूष पुलिसकर्मी/अधिकारी हैं।

तालिका क्रमांक 2

आयु

आयु	आवृत्ति	प्रतिशत
30 वर्ष से कम	4	13.33
31 से 40	11	36.67
41 से अधिक	15	50
योग	30	100

उत्तरदाताओं में 41 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के लोगों की संख्या 50 प्रतिशत है जबकि सबसे कम 13.33 प्रतिशत 30 वर्ष से कम आयु वर्ग के हैं।

तालिका क्रमांक 3

शिक्षा

शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
स्नातक	23	76.67
स्नातकोत्तर	7	23.33
योग	30	100

प्रस्तुत तालिका में प्राप्त आँकड़ों से यह कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं में से स्नातक पुलिसकर्मी 76.67 प्रतिशत है तथा स्नातकोत्तर 23.33 प्रतिशत हैं।

तालिका क्रमांक 4

पद

पद	आवृत्ति	प्रतिशत
आरक्षक	04	13.34
प्रधान आरक्षक	10	33.33
उपनिरीक्षक	10	33.33
निरीक्षक	06	20
योग	30	100

प्राप्त आँकड़ों से यह कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं में से आरक्षक 13.34 प्रतिशत, प्रधान आरक्षक 33.33 प्रतिशत, उपनिरीक्षक 33.33 प्रतिशत, निरीक्षक 20 प्रतिशत हैं।

तालिका क्रमांक 5

सेवा की अवधि

सेवा की अवधि	आवृत्ति	प्रतिशत
10 वर्ष तक	12	40
10 वर्ष से 20 वर्ष	10	33.33
20 वर्ष से अधिक	8	26.67
योग	30	100

तालिका 7
प्रौद्योगिकी एवं आधुनिकता का अपराध के स्वरूप पर प्रभाव

प्रभाव	आवृत्ति हॉं	आवृत्ति नही	प्रतिशत
अपराध का आधुनिकीकरण हुआ है	30	00	100
अपराध के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन आया है	30	00	100
सायबर अपराध, फ्रॉड, ड्रग एडिक्शन में वृद्धि हुई है	30	00	100
व्यवसायिक एवं संगठित अपराध बढ़े हैं	30	00	100

सभी 100 प्रतिशत उत्तरदाता प्रौद्योगिकी एवं आधुनिकता का अपराध के स्वरूप पर प्रभाव मानते हैं। प्रोद्योगिकी बढ़ने से जहाँ हमें सुविधाएँ व उन्नति प्राप्त हुई हैं वहीं वह एक चुनौती कि तरह भी कार्य कर रही है। तालिका से यह ज्ञात होता है कि अपराध का आधुनिकीकरण हुआ है यह 100 प्रतिशत पुलिस कर्मी मानते हैं जिससे की अपराध के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन आया है। यह भी सभी पुलिस कर्मी मानते हैं कि अपराध के आधुनिकीकरण के कारण साइबर अपराध, फ्राड ड्रग एडिक्शन आदि में वृद्धि हुई है।

तालिका क्रमांक 8
प्रशिक्षण से अपराध नियंत्रण

प्रशिक्षण से अपराध नियंत्रण	आवृत्ति	प्रतिशत
सहायक है	28	94
सहायक नहीं है	02	06
योग	30	100

प्रस्तुत ऑकड़े दर्शाते हैं कि 94 प्रतिशत पुलिस अधिकारी/कर्मचारी यह मानते हैं कि पुलिस प्रशिक्षण अपराध पर नियंत्रण में सहायक हैं। 06 प्रतिशत पुलिस अधिकारी/कर्मचारी यह मानते हैं कि पुलिस प्रशिक्षण में और सुधार की आवश्यकता है।

तालिका क्रमांक 9
अपराध नियंत्रण के लिए संसाधन

संसाधन	आवृत्ति	प्रतिशत
संसाधन पर्याप्त हैं	18	60
संसाधन बढाना चाहिये	12	40
योग	30	100

प्रस्तुत ऑकड़े दर्शाते हैं कि 60 प्रतिशत पुलिस अधिकारी/कर्मचारी यह मानते हैं कि पुलिस अनुसंधान एवं विकास संबंधी योजनाओं से अपराध पर नियंत्रण हेतु संसाधन पर्याप्त हैं। 40 प्रतिशत पुलिस कर्मी का यह मानना है कि जो उपलब्ध संसाधन हैं उसमें वृद्धि होनी चाजिए जिससे की पुलिस बल और सशक्त हो सके।

तालिका क्रमांक 10
अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क एवं सिस्टम से लाभ

	समय की बचत	श्रम की बचत	अधिक विश्वसनीय	पारदर्शिता	पु. कार्य. वृद्धि
संख्या	30	30	30	30	30
प्रतिशत	100	100	100	100	100

सभी 100 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि CCTNS अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवक्र एवं सिस्टम पुलिस के लिये अत्यंत लाभकारी है। इससे समय, श्रम, विश्वसनीयता, पारदर्शिता एवं कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

निष्कर्ष : प्रत्येक समाज की कुछ मूलभूत आवश्यकता होती है, जिसमें से एक समाज की सुरक्षा भी एक आवश्यकता है। लोकतंत्र व्यवस्था में समाज में सुरक्षा व अपराध नियंत्रण के लिए पुलिस नामक संस्था की व्यवस्था की गई है। पुलिस पर एक ही समय में ढ़ेरों काम होते हैं, जिसे वह अपने प्रशिक्षण एवं कौशल दक्षता से पूरे करने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार प्रशिक्षण से पुलिस की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है, जिससे कि वह समाज के लोगों की सहायता कर सके तथा उनकी सुरक्षा कर सके। CCTNS के पूर्व आधे से ज्यादा पुलिसकर्मी कार्यालय कार्य में इतने व्यस्त हो जाते थे, जैसे कि Criminals record, इत्यादि को एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी तक भेजने व record इकट्ठा करने, जिससे कि वह जनता की समस्याओं को सुलझाने में अपना समय नहीं दे पाते थे, जिससे कि जनता एवं पुलिस में परस्पर सहयोग में बहुत बड़ा अंतर उत्पन्न हो गया था। किन्तु CCTNS से कुछ हद तक यह दृष्टिकोण

खत्म हुआ है। इससे लोगों के अंदर पुलिस के प्रति विश्वास जागा है क्योंकि इससे से अपराधी को उचित सजा मिलने की संभावना बहुत बढ़ गई है। इससे एक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना की जा सकती है।

अध्ययन से प्राप्त आँकड़े दर्शाते हैं कि पुलिस अधिकारी/कर्मचारी यह मानते हैं कि पुलिस अनुसंधान एवं विकास संबंधी योजनाओं से अपराध पर नियंत्रण करना आसान होता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक जानकारी से अपराध अन्वेषण में सहायता मिलती है। मानव व्यवहार, सामाजिक मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के ज्ञान से अपराध अन्वेषण में सहायता मिलती है। **सभी 100** प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि CCTNS पुलिस के लिये अत्यंत लाभकारी है। इससे समय, श्रम, विश्वसनीयता, पारदर्शिता एवं कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

प्रशिक्षण से पुलिसकर्मी में एक तो बेसिक कम्प्यूटर का ज्ञान बढ़ा है। साथ ही वह Globalised World में धीरे-धीरे अद्यतन हो रहे हैं।

अध्ययन से प्राप्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा के इस दौर में जहाँ अपराध के नये-नये तरीके और स्वरूप देखे जा रहे हैं जैसे सायबर अपराध, अंतराष्ट्रीय आंतकवाद, ड्रग स्मगलिंग, मानव तस्करी इत्यादि। इस तरह के अपराधों पर नियंत्रण के लिए पुलिस को सक्षम बनाने हेतु नवीन प्रौद्योगिकी, पर्याप्त संसाधन और ज्ञान की आवश्यकता हैं, सीसीटीएन एस और आई सी जे एस जैसे महत्वपूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से पुलिस सुधार और अपराध नियंत्रण के नये आयाम स्थापित हो रहे हैं। ऑनलाईन एफ आई आर और क्रिमिनल डेटा बैंक जैसे कदम अपराधी खोज में शीघ्रता लाने के निए उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। साइबर अपराध की रोकथाम के लिए पुलिस कर्मियों को सायबर सुरक्षा का प्रशिक्षण एवं सायबर सेल का गठन इस दिशा में एक सहायक कदम है।

सन्दर्भ

1. https://socialchangecourse.wardpress.com, 09-02-2022, 21:49 PM
2. https://www.mha.gov.in, 11-01-2022, 01:39 PM
3. https://www.mha.gov.in, 25-01-2022, 12:00 AM
4. https://bprd.nic.in, 30-01-2022, 08:29 PM
5. Haikerwall B S, (1935) "Economic & Social Aspect of Crime in India", George Allen and Unwin, London, p.17
6. Mowrer E R, Disorganization: Personal and Social p. 99
7. www.ncrb.gov.in/../cctns.htm 5-5-17 6%22 PM
8. mppolice.gov.in/static/aboutus.aspx 9.5.17 1:06 am
9. अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क एवं सिस्टम मध्यप्रदेश पुलिस उपयोगकर्ता पुस्तिका (C.C.T.N.S.) पृ. 2.4
10. सिंह इन्द्रराज, 'पुलिस स्टेशन कंट्रोर रूम सूचना कक्षा पुलिस विज्ञान', पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, जनवरी- जून, 2019, पृ. 34.35
11. राजपूत दिवाकर सिंह, ज्योति भारद्वाज, 'अपराध तथा अपराधी ट्रैकिंग नेटवर्क एवं सिस्टम-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', पुलिस विज्ञान, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, जुलाई-दिसम्बर 2017, पृ. 37-42
12. मिश्रा अदिति, 'स्मार्ट पुलिसिंग' पुलिस विज्ञान, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो नई दिल्ली (जनवरी-जून 2017) पृ. 32- 35
13. कुमार रविकांत, कमला शर्मा, 'प्रगतिशील भारतीय समाज में बढ़ता अपराध और पुलिस एक समाजशास्त्रीय अध्ययन जनपद उधमसिंह नगर के विशेष संदर्भ में', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, जनवरी-जून, 2015 पृ. 10-14
14. कुशवाहा लक्ष्मी, 'पुलिस विज्ञान', पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, अक्टूबर-दिसम्बर, 2013

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महिलाओं में विधिक जागरूकता : जनपद देहरादून की ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं का एक तुलनात्मक अध्ययन

❑ डॉ. सविता राजपूत

सूचक शब्द : महिलाएं, विधिक अधिकार, जागरूकता

मानव एक स्वतन्त्र प्रकृति का प्राणी है जिसको अपने सम्पूर्ण विकास, स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करने तथा अपने विचारों को प्रकट करने के लिए अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है, अधिकार ही मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रबलता प्रदान करते हैं। महिला अधिकार इसी क्रम की एक सीढ़ी है, जिसके योगदान से होकर नारी अबला से सबला तक का रास्ता तय करती है। समाज के जागरूक वर्ग का यह दायित्व है कि वह महिलाओं के इस वर्ग को उनके अधिकारों के प्रति उन्हें जागरूक एवं सजग बनाएं। महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सजग बनाने में सबसे महत्वपूर्ण स्थान भारतीय संविधान का है। भारतीय संविधान में नागरिकों के अधिकारों प्रत्याभूति दी गयी है। कानून की दृष्टि में सभी समान है। महिलाओं को सशक्त बनाने का सबसे महत्वपूर्ण आधार है उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना, महिलाओं को अपने अधिकारों को जानने के लिए शिक्षा सर्वोपरी है। वे शिक्षित हों तभी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो पायेंगी। प्रस्तुत अध्ययन हेतु उत्तराखण्ड के देहरादून जिले के ग्रामीण–नगरीय क्षेत्र से कोटा निदर्शन प्रणाली के द्वारा सूचनादात्रियों का चयन कर साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा सूचनाओं को संकलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षा, आय, आयु एवं विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता का स्तर संविधान में समान अधिकारों की जानकारी एवं अधिकारों की जानकारी की आवश्यकता इत्यादि का परीक्षण करता है।

मनुष्य को जीवित रहने के लिए अनेक प्रकार की चीजों को आवश्यकता होती है, जिनमें से रोटी, कपड़ा और मकान हमारी महत्वपूर्ण दैनिक आवश्यकताएँ हैं। किन्तु हमारे सामाजिक जीवन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है "अधिकार", जिसके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। वस्तुतः अधिकारों के बगैर मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना निराधार प्रतीत होती है। यही कारण है कि वर्तमान में प्रत्येक राज्य के द्वारा अधिकाधिक विस्तृत अधिकार प्रदान किये जाते हैं।

मनुष्य को प्रकृति ने अनेक प्रकार की शक्तियाँ दी हैं, परन्तु इन शक्तियों का स्वयं अपने और समाज के हित में उचित रूप से प्रयोग करने के लिए कुछ बाहरी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। किसी भी राज्य का प्रथम लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास है जिसके लिए राज्य द्वारा व्यक्ति को कुछ सुविधायें प्रदान की जाती हैं। राज्य के द्वारा व्यक्ति को दी जानी वाली इन बाहरी सुविधाओं का नाम ही 'अधिकार' है। अधिकार का अर्थ राज्य द्वारा व्यक्ति को दी गयी कुछ कार्य करने की स्वतन्त्रता अथवा सकारात्मक सुविधा प्रदान करना है जिससे व्यक्ति स्वयं की मानसिक शारीरिक एवं नैतिक शक्तियों का सम्पूर्ण विकास कर पाये।

लॉस्की के अनुसार – "अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं, जिनके अभाव में सामान्यतः कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता है।"[1]

वाइल्ड के अनुसार – "अधिकार कुछ विशेष कार्यों को करने की स्वाधीनता की उचित माँग है।"[2]

इस प्रकार अधिकार का अभिप्राय राज्य द्वारा व्यक्ति को दी गई कुछ कार्य करने की स्वतंत्रता अथवा सकारात्मक सुविधा प्रदान करना है जिससे व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक शक्तियों का पूर्ण विकास कर सके। अधिकार समाज के सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व के उच्चतम विकास हेतु आवश्यक हैं। वे सामान्य सामाजिक परिस्थितियाँ हैं जिन्हें समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करने की व्यवस्था करता है।

भारतीय महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सजग बनाने में सर्वप्रथम स्थान भारतीय संविधान का है, भारतीय संविधान में नागरिकों के अधिकारों की प्रत्याभूति दी गयी है, क्योंकि कानून की दृष्टि में सभी बराबर हैं। महिलाओं की स्थिति को सशक्त बनाना वर्तमान समय में सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। उन्हें सशक्त बनाने का सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका

❑ एसोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

है, उन्हें उनके कानूनी अधिकारों की जानकारी देना है। ताकि वे समझ सकें कि कानून उन्हें कितनी सुरक्षा प्रदान कर रहा है, वे कानून के द्वारा कौन-कौन से अधिकारों को प्राप्त कर सकती हैं।

संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिये गये हैं। इसके साथ ही समय-समय पर और भी कानून बनाए गये हैं जिससे कानूनी दृष्टि से महिलाओं की स्थिति निरन्तर मजबूत हुई है। भारतीय संविधान द्वारा न्याय दो प्रकार से लागू किया गया है। साधारणतः अधिकार दो प्रकार के होते हैं।

1. नैतिक अधिकार - नैतिक अधिकारों का सम्बन्ध मनुष्य के नैतिक आचरण से होता है। अनेक विचारकों के द्वारा इन्हें अधिकार के रूप में ही स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि ये अधिकार राज्य द्वारा रक्षित नहीं होते हैं। इन्हें धर्मशास्त्र, जनमत अथवा आत्मिक चेतना द्वारा स्वीकृत किया जाता है और राज्य द्वारा बनाये गये कानूनों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

2. कानूनी अधिकार - कानूनी अधिकार वे अधिकार हैं, जिनकी व्यवस्था राज्य के द्वारा की जाती है और जिनका उल्लंघन कानून में दण्डनीय होता है। कानून का संरक्षण प्राप्त होने से इन अधिकारों को लागू करने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाती है।

भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार दिये गये हैं। उनको शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति, समाज सेवा आदि सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हुए हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त हमारे देश के विचारशील राजनेताओं ने महिलाओं को सभी क्षेत्रों में समान अधिकार देने की बात को भी ध्यान में रखा। वह पुरुषों के समान ही सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकृत की गईं। परन्तु कुछ सामाजिक कुरीतियों के कारण अभी तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं हो पाया है। वर्तमान समय में भी अधिकांश महिलाएँ यह नहीं जानती कि उनके कल्याण के लिए कौन-कौन से कानून बने हैं? और उन्हें कौन-कौन से अधिकार दिये गये हैं? भारतीय संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक न्याय, समता एवं प्रतिष्ठा बिना किसी भेदभाव के प्रदान करता है। भारतीय संविधान में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर विभेद नहीं करेगा। परन्तु वास्तविकता यह है कि महिलाओं पर अत्याचार, बलात्कार, लैंगिक उत्पीड़न में कमी नहीं आयी है, विशेषतः सार्वजनिक एवं कार्य स्थल पर भेदभाव व लैंगिक उत्पीड़न बढ़ता जा रहा है। महिलाओं के अधिकारों को वास्तव में विशेष स्थान नहीं मिला पाया है। अधिकांशतः इन अधिकारों का उल्लंघन ही होता रहा है।

सरकार ने महिलाओं के स्तर को ऊपर उठाने के लिए समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। महिलाओं की उन्नति के लिए और उन्हें समुचित न्याय दिलाने हेतु सरकार ने अनेक कानून बनाये हैं। परन्तु वर्तमान स्थिति को देखकर लगता है कि महिलायें अधिकांशतः उन सभी प्रयासों से लाभान्वित नहीं हो पायी हैं। इसके अनेक कारण हैं जैसे- शिक्षा की कमी, रूढ़िवादिता, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था आदि। शिक्षा की कमी के कारण महिलाएं सरकार व समाज द्वारा उनके हितों की सुरक्षा के लिए बनाए गए कानूनों को पूर्णतः नहीं जान पाती है। वर्तमान में आवश्यकता है कि महिलाओं को उनके हित सम्बन्धी कानूनी जानकारी देना और सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने की।

साहित्य का पुनरावलोकन - बृजमोहन सिंह रावत[3] ने "नारी समानता एवं सशक्तीकरण : 1990 के दशक में उत्तरांचल के सामाजिक एवं राजनीतिक परिपेक्ष्य में एक अध्ययन" में नारी समानता एवं सशक्तीकरण व सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पर्यावरणीय सशक्तीकरण का अध्ययन किया है। अपने शोध निष्कर्ष में उन्होंने कहा कि उत्तरांचल की ग्रामीण महिलाओं विशेषकर 40 वर्ष से अधिक की महिलाओं में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं पर्यावरण के सम्बन्ध में जानकारियों का नितान्त अभाव पाया गया। मात्र कार्यशील, अविवाहित एवं उच्च शिक्षित महिलाओं में ही इन क्षेत्रों से सम्बन्धित थोड़ी बहुत जागरूकता देखी गयी।

नीरा देसाई एवं उषा ठाकुर[4] ने अपनी पुस्तक 'वुमेन इन इन्डियन सोसायटी' में लिखा है कि फैमिनिस्ट (नारीवादी) विचारकों को यह सोचना होगा कि मात्र कानून बनाने से सामाजिक परिवर्तन नहीं आ सकता है इसके लिए निरन्तर एवं सतत् प्रयास करना होगा। इसके लिये समाज में प्रचलित असमानता एवं नारी विरोधी रूढ़िवादिता को चुनौती देनी होगी जिसके लिये महिलाओं में जागरूकता उत्पन्न करनी होगी।

शान्ति एवं वीणा[5] ने अपने शोध पत्र "कानून, राजनीति

तथा औरतें" में राजकोट महिला समाख्या द्वारा दी जाने वाली कानूनी सलाह एवं मदद के प्रभाव को दर्शाया गया है। उन्होंने अध्ययन से पाया कि इन कानूनी जागरूकता शिविरों एवं कार्यक्रमों से महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा हुआ है। अब वे अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों की शिकायत पुलिस से करने लगी हैं।

मुकुल मुद्गल[6] ने अपने शोध पत्र "नेशनल लीगल लिटरेसी मिशन - इम्पलीमेन्टेशन स्ट्रेटजीज" में लिखा है कि हमारे देश की ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभी भी अपने अधिकारों और शासकीय प्रावधानों से अनभिज्ञ है जो उनके सशक्तीकरण के लिये बने हैं। इन कानूनी प्रावधानों का पूर्ण लाभ महिलाओं को मिल सके इसलिए महिलाओं में इन प्रावधानों के लिए जागृति में वृद्धि और संचेतना विकास की आवश्यकता है।

आर. पी. तिवारी एवं डी. पी. शुक्ला[7] द्वारा सम्पादित पुस्तक "भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें एवं भावी समाधान'' में कमला जैन ने अपने लेख 'महिला सम्बन्धी कानून एवं विधिक सहायता' में लिखा है कि महिलाओं के प्रति विभेद का उन्मूलन करने हेतु नीति, वैधानिक और विशेष उपाय हेतु कार्यक्रम-योजना (एक्शन प्लान) बनाये गये हैं जिससे समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने हेतु अनेक विधियों को समेकित किया गया है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तराखण्ड की राजधानी देहरादून जिले के नगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों का चयन किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र से 150 उत्तरदात्रियों का चुनाव किया गया है। ग्रामीण क्षेत्र में बालावाला, नकरौंदा, मसन्दवाला, जूलों, बालावाला, रामसावाला से सूचनादात्रियों का चुनाव किया गया है। वहीं नगरीय क्षेत्र से देहरादून शहर की कॉलोनियों, चमन विहार, सारथी विहार, चन्दरनगर (मलिन बस्ती), अमरनाथ कॉलोनी (मलिन बस्ती) कौलागढ़, मेहूँवाला क्षेत्र का चयन अध्ययन क्षेत्र के रूप में किया गया है।

प्रस्तुत शोध में सूचनादाताओं के प्रतिचयन हेतु चयनित नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों की कुल वयस्क महिलाओं की जनसंख्या को अध्ययन के समग्र के रूप में लिया गया है। कुल ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों के समग्र से कोटा निदर्शन प्रणाली के प्रयोग द्वारा 150 सूचनादात्रियों का चयन ग्रामीण क्षेत्र से व 150 सूचनादात्रियों का चयन नगरीय क्षेत्र में किया गया है।

अध्ययन हेतु आंकडों का संकलन प्राथमिक स्रोतों से किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाओं को संकलित किया गया है। सूचनादात्रियों से प्राथमिक तथ्यों के संकलन के दौरान अवलोकन के माध्यम से भी तथ्यों को समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र 'महिलाओं में विधिक जागरूकता अर्थात् ग्रामीण व नगरीय महिलाओं में विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता की स्थिति क्या है का पता लगाने का प्रयास करना है।

तालिका संख्या 01

सूचनादात्रियों का आयु के आधार पर वितरण

आयु वर्ग (वर्षों में)	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
21.30	50	33.34	27	18.00	77	25.67
31.40	43	28.66	57	38.00	100	33.34
41.50	36	24.00	36	24.00	72	24.00
51.60	16	10.66	27	18.00	43	14.33
61.70	05	3.34	03	2.00	08	2.66
कुल योग	150	100	150	100	300	100.00

आयु के आधार पर महिला सूचनादात्रियों को 10 वर्ष के आयु वर्गों के अन्तराल में रखा गया है, जिसमें 21 से 30 आयु वर्ग की कुल 77 (25.67 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ हैं जिनमें से 50 (33.34 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 27 (18.00 प्रतिशत) नगरीय महिला सूचनादात्रियाँ हैं। 31 से 40 आयु वर्ग की कुल 100 (33.34 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ

हैं, जिनमें से 43 (28.66 प्रतिशत) ग्रामीण परिवेश से एवं 57 (38.0 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियाँ हैं। 41 से 50 आयु वर्ग में कुल 72 (24.00 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ हैं जिनमें से 36 (24.00 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 36 (24.00 प्रतिशत) नगरीय परिवेश की सूचनादात्रियाँ हैं। 51 से 60 आयु वर्ग में कुल 43 (14.33 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ हैं जिनमें से 16 (10.66 प्रतिशत) ग्रामीण और 27 (18.00 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियाँ हैं। 61 से 70 वर्ग की कुल 08 (2.66 प्रतिशत) सूचनादात्रियों में से 05 (3.34 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 03 (2.00 प्रतिशत) नगरीय परिवेश की सूचनादात्रियाँ हैं।

तालिका संख्या 02
सूचनादात्रियों का शैक्षणिक स्थिति के आधार पर वितरण

शैक्षिक योग्यता	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षत	19	12.66	13	8.66	32	10.66
जूनियर हाईस्कूल	24	16.00	15	10.00	39	13.00
हाईस्कूल	26	17.34	16	10.66	42	14.00
इण्टर	41	27.33	32	21.34	73	24.34
स्नातक	22	14.66	41	27.34	63	21.00
स्नातकोत्तर	12	8.00	23	15.33	35	11.66
अन्य	06	4.00	10	6.66	16	5.33
कुल योग	150	100.00	150	100	300	100

शिक्षा के आधार पर महिला सूचनादात्रियों को अशिक्षित, जूनियर हाईस्कूल, हाईस्कूल, इण्टर, स्नातक, स्नातकोत्तर तथा अन्य (अन्य के अन्तर्गत उन सूचनादात्रियों को सम्मिलित किया गया है, जिनके पास कोई अन्य उपाधि या डिप्लोमा है) सात वर्गों के अन्तराल पर शैक्षिक योग्यता का वर्गीकरण किया गया है। अशिक्षित सूचनादात्रियाँ कुल 32 (10.66 प्रतिशत) हैं जिनमें से 19 (12.66 प्रतिशत) ग्रामीण तथा 13 (8.66 प्रतिशत) नगरीय परिवेश से हैं। जूनियर हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त सूचनादात्रियाँ कुल 39 (13.0 प्रतिशत) हैं जिनमें 24 (16.0 प्रतिशत) ग्रामीण तथा 15 (10.0 प्रतिशत) महिलाएं नगरीय हैं। हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त सूचनादात्रियाँ कुल 42 (14.00 प्रतिशत) हैं जिनमें से 26 (17.34 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 16 (10.66 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ नगरीय परिवेश से हैं। बारहवीं तक शिक्षा प्राप्त कुल सूचनादात्रियाँ 73 (24.34 प्रतिशत) हैं। जिनमें 41 (27.33 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 32 (21.34 प्रतिशत) नगरीय परिवेश से हैं। स्नातक सूचनादत्रियों की कुल संख्या 63 (21.00 प्रतिशत) हैं जिनमें 22 (14.66 प्रतिशत) ग्रामीण सूचनादात्रियाँ एवं 41 (27.34 प्रतिशत) नगरीय परिवेश से हैं। स्नातकोत्तर महिलाओं की कुल संख्या 35 (11.66 प्रतिशत) है जिनमें से 12 (8.00 प्रतिशत) ग्रामीण परिवेश से एवं 23 (15.33 प्रतिशत) नगरीय महिलाएं हैं। अन्य महिला सूचनादात्रियों में डिप्लोमा प्राप्त पीएच.डी., बी.एड., बी.टी.सी. आदि प्राप्त महिला सूचनादात्रियों को रखा गया है जो कुल 16 (5.33 प्रतिशत) है, जिनमें से 6 (4.00 प्रतिशत) ग्रामीण तथा 10 (6.66 प्रतिशत) नगरीय महिला सूचनादात्रियां हैं।

तालिका संख्या 03
परिवार की कुल मासिक आय के आधार पर सूचनादात्रियों का वितरण

आय सीमा (रूपयो में)	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
10000 तक	9	6.00	2	1.33	11	3.67
10001 से 20000	21	14.00	10	6.67	31	10.33
20001 से 30000	57	38.00	54	36.00	111	37.00
30001 से 40000	38	25.33	48	32.00	86	28.67
40000 से अधिक	25	16.67	36	24.00	61	20.33
कुल योग	150	100	150	100	300	100.00

परिवार की मासिक आय के आधार पर सूचनादात्रियों को पाँच वर्गों में बाँटा गया है। दस हजार रुपए तक की मासिक आय वाली सूचनादात्रियां कुल 11 (3.67 प्रतिशत) हैं, जिनमें से 09 (6.0 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 2 (1.33 प्रतिशत) नगरीय परिवेश से हैं। दस हजार एक से बीस हजार रुपये तक मासिक आय वाली कुल सूचनादात्रियाँ 31 (10.33 प्रतिशत) है जिनमें से 21 (14.00 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 10 (6.67 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियाँ हैं। बीस हजार एक से तीस हजार रुपये तक परिवार की मासिक आय वाली 111 (37.00 प्रतिशत) हैं, जिनमें से 57 (38.00 प्रतिशत) ग्रामीण तथा 54 (36.00 प्रतिशत) नगरीय परिवेश से हैं। तीस हजार एक से चालीस हजार रुपये मासिक पारिवारिक आय वाली सूचनादात्रियों की कुल सं0 86 (28.67 प्रतिशत) है जिनमें से 38 (25.33 प्रतिशत) ग्रामीण तथा 48 (32.00 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियाँ हैं। ऐसी सूचनादात्रियाँ जिनकी पारिवारिक मासिक आय चालीस हजार से अधिक है कुल 61 (20.33 प्रतिशत) है जिनमें से 25 (16.67 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 36 (24.00 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियाँ हैं।

विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता में शिक्षा एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इस संदर्भ में नगरीय व ग्रामीण परिवेश की महिलाओं से उनके शैक्षणिक स्तर के बारे में प्राप्त जानकारी से स्पष्ट है कि ग्रामीण परिवेश की महिलाओं की तुलना में नगरीय क्षेत्र की महिलाएं अधिक संख्या में शिक्षित हैं, उच्च शिक्षा का स्तर ग्रामीण परिवेश की महिलाओं की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों की महिलाओं में अधिक पाया गया। किन्तु विधिक अधिकारों प्रति प्रत्येक शैक्षिक स्तर की महिलाऐं में किसी न किसी रूप में जागरूक पायी गयी।

आयु वर्ग के अनुसार बहुसंख्यक सूचनादात्रियाँ 21-50 वर्ष तक की आयु वर्ग की हैं, क्योंकि यह वर्ग अपेक्षाकृत अधिक जागरूक एवं विधिक अधिकारों के विषय में जानकारी रखने वाला हो सकता है।

मासिक आय के अनुसार बहुसंख्यक सूचनादात्रियों की मासिक आय 20001 से 40000 के मध्य पाई गई। जिनमें से अधिकांश ग्रामीण सूचनादात्रियाँ कृषि अथवा कृषि से सम्बन्धित कार्यों में संलग्न हैं एवं नगरीय सूचनादात्रियाँ नौकरी पेशा हैं। ये आंकड़ें ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश की सूचनादात्रियों की आर्थिक स्थिति को प्रदशित करते हैं।

तालिका संख्या 04
सूचनादात्रियों की विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता

विधिक अधिकारों के प्रति जागरूकता	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	129	86.00	126	84.00	255	85.00
नहीं	21	14.00	24	16.00	45	15.00
कुल योग	150	100.00	150	100.00	300	100.00

तालिका संख्या 04 को देखने से स्पष्ट है कि कुल 255 (85.0 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें से 129 (86.0 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 126 (84.0 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों हैं जो अपने विधिक अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। जबकि 45 (15.0 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ जिनमें 21 (14.0 प्रतिशत) ग्रामीण परिवेश एवं 24 (16.0 प्रतिशत) नगरीय परिवेश की सूचनादात्रियाँ अपने विधिक अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं। सूचनादात्रियों से विधिक और अन्य अधिकार कहाँ से प्राप्त होते हैं? यह जानने का प्रयास सूचनादात्रियों से तालिक संख्या 05 के द्वारा किया गया।

तालिका संख्या 05

सूचनादात्रियों को विधिक और अन्य अधिकारों की जानकारी के स्त्रोत

अधिकारों की प्राप्ति कहाँ से होती है	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
संविधान	40	26.66	42	28.00	82	27.34
कानून	30	20.0	10	6.66	40	13.33
उपर्युक्त दोनों	80	53.34	98	65.34	178	59.33
कुल योग	150	100.0	150	100.0	300	100.0

तालिका 05 के अनुसार कुल 178 (59.33 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें 80 (53.34) ग्रामीण एवं 98 (65.34 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि संविधान व कानून दोनों से ही विधिक अधिकारों की प्राप्ति होती है। 82 (27.34 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें 40 (26.66 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 42 (28.0 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि विधिक अधिकारों की प्राप्ति केवल संविधान से होती है। जबकि 40 (13.33 प्रतिशत) सूचनादात्रियाँ जिनमें 30 (20.0 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 10 (6.66 प्रतिशत) नगरीय महिलाओं ने विधिक अधिकारों की प्राप्ति कानून द्वारा होती है। तालिका से ज्ञात होता है कि लगभग 60 प्रतिशत महिलाएं कानून एवं संविधान दोनों के द्वारा विधिक अधिकारों की प्राप्ति मानती हैं।

हमारा संविधान स्त्री-पुरुष में किसी भी आधार पर अन्तर नहीं करता है। दोनों को समान अधिकार प्रदान करता है। धर्म, जाति, लिंग, जन्मस्थान एवं वंश के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। इसी संदर्भ में अध्ययन क्षेत्र में सूचनादात्रियों से प्रश्न पूछा कि 'क्या संविधान में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार प्रदान किए गये हैं?

तालिका संख्या 06

सूचनादात्रियों का स्त्री-पुरुष को संविधान में समान अधिकार सम्बन्धी जानकारी

स्त्री-पुरुष का समान अधिकार	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	32	21.33	34	22.66	66	22.0
नहीं	30	20.0	60	40.00	90	30.0
ज्ञात नहीं	88	58.67	56	37.34	144	48.0
कुल योग	150	100.00	150	100.00	300	100.00

तालिका क्रमांक 06 के अनुसार कुल 66 (22.0 प्रतिशत), सूचनादात्रियों जिनमें से 32 (21.33 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 34 (22.66 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गये हैं। 90 (30.0 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें से 30 (20.0 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 60 (40.0 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि स्त्री-पुरुष को संविधान में समान अधिकार प्राप्त नहीं है। जबकि 144 (48.0 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें ग्रामीण 88 (58.67 प्रतिशत) एवं 56 (37.34 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थता दिखायी। तालिका के आँकड़े देखकर ज्ञात होता है कि आज भी हमारे देश की

अधिसंख्यक महिलाओं को अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जानकारी नहीं है। अध्ययनरत क्षेत्र में सूचनादात्रियों से पूछा गया कि क्या महिलाएँ पुरुषों के समान अपने अधिकार प्राप्त कर रही है?

तालिका संख्या 07

सूचनादात्रियों का विधिक अधिकारों की जानकारी का स्तर

विधिक अधिकारों की जानकारी का स्तर	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	130	86.6	135	90.0	265	88.4
उच्च	20	13.4	15	10.0	35	11.6
कुल योग	150	100.00	150	100.00	300	100.00

तालिका क्रमांक 07 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कुल 265 (88.4 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें 130 (86.6 प्रतिशत), ग्रामीण एवं 135 (90.0 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि महिलाओं में विधिक जानकारी का कम से कम सामान्य स्तर तो होना ही चाहिए जबकि 35 (11.6 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें 20 (13.4 प्रतिशत), ग्रामीण एवं 15 (10.0 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने ऊच्च स्तर की विधिक अधिकारों की जानकारी को उचित माना है। उनका कहना था कि प्रत्येक महिला को अपने अधिकार संबंधी कानूनों की सामान्य जानकारी होनी चाहिए ताकि वह अपने अधिकारों को समझ सकें। विधिक अधिकारों की जानकारी होने से अधिकार नहीं मिल सकते। उसके लिए कानूनों द्वारा प्रदान किए गये अधिकारों का पालन करवाना अत्यन्त आवश्यक है।

तालिका संख्या 08

सूचनादात्रियों का सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकारों का पूर्ण लाभ मिल रहा है

प्रदत्त अधिकार का पूर्ण लाभ मिल रहा है	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	28	18.66	83	55.3	111	37.00
नही	101	67.34	51	34.0	152	50.66
ज्ञात नहीं	21	14.00	16	10.7	37	12.34
कुल योग	150	100.00	150	100.00	300	100.00

तालिका संख्या 5.8 के अवलोकन से स्पष्ट है कि कुल 111 (37.0 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें से 28 (18. 66 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 83 (55.3 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि महिलाओं को सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकारों का पूर्ण लाभ मिल रहा है। जबकि 152 (50.66 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें 101 (67.34 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 51 (34 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकारों का महिलाओं को पूर्ण लाभ नहीं मिल पा रहा है। शेष 37 (12.34 प्रतिशत) सूचनादात्रियों जिनमें से 21 (14 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 16 (10.7 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने प्रश्न का उत्तर ज्ञात नहीं है होना बताया। तालिका के आँकड़ों से स्पष्ट है कि लगभग 50 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ मानती हैं कि सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकारों का महिलाओं को पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता है। महिलाओं को पूर्ण लाभ न मिलने के कारणों को सूचनादात्रियों से जानना चाहा, तो उन्होनें बताया कि अज्ञानता, अशिक्षा, रूढ़िवादिता एवं अधिकारों के प्रति जानकारी न होने के कारण महिलाएँ अपने अधिकारों का पूर्ण लाभ लेने से वंचित रह जाती है।

तालिका संख्या 09
विधिक अधिकारों का पालन करवाना आवश्यक है

कानून द्वारा विधिक अधिकारों का पालन करवाना आवश्यक	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सहमत	141	94.00	147	98.00	288	96.00
असहमत	09	06.00	03	2.00	12	4.00
कुल योग	150	100.00	150	100.00	300	100.00

कुल 288 (96.0 प्रतिशत) सूचनादात्रियों में से 141 (94.0 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 147 (98.0 प्रतिशत) नगरीय परिवेश की सूचनादात्रियों ने माना कि विधिक अधिकारों की जानकारी होने मात्र से अधिकार नहीं मिल जाते बल्कि उसके लिए कानून द्वारा प्रदान किए गये अधिकारों का पालन करवाना आवश्यक है, जबकि 12 (4.0 प्रतिशत) जिनमें 09 (06 प्रतिशत) ग्रामीण एवं 3 (02 प्रतिशत) नगरीय सूचनादात्रियों ने इस प्रश्न के उत्तर पर अपनी असहमति दर्शायी। आँकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि अधिकांश महिलाऐं इस प्रश्न पर सहमत दिखीं।

निष्कर्ष : उत्तराखण्ड के देहरादून जिले की ग्रामीण-नगरीय महिलाओं में विधिक अधिकारिता सम्बन्धी जागरूकता के विविध पहलुओं को केन्द्र में रखकर इस अध्ययन के सम्बन्ध में संकलित प्राथमिक तथ्यों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार हैं-

ग्रामीण महिलाओं की तुलना में नगरीय महिलाओं में शिक्षा का स्तर उच्च है। शिक्षा का स्तर महिलाओं की विधिक अधिकारिता सम्बन्धी जागरूकता से सम्बन्ध रखता है। शोध में पाया गया कि लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण एवं नगरीय महिलाऐं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। परन्तु कुछ महिलाओं के अतिरिक्त ग्रामीण व नगरीय महिलाएं यह नहीं जानती कि उनके कौन-कौन से अधिकार हैं और उन्हें कैसे प्राप्त किया जाता है। अधिकांश महिलाओं में स्त्री-पुरुष के समान अधिकारों की जानकारी का अभाव पाया गया। इस सम्बन्ध में नगरीय महिलाओं में अधिक जागरूकता पायी गयी। जिन महिलाओं में जानकारी पायी गयी उनका स्तर भी संतोषजनक था। 50 प्रतिशत से अधिक सूचनादात्रियों ने माना कि सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकारों का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता है। विधिक अधिकारों की जानकारी का सामान्य स्तर ग्रामीण महिलाओं की तुलना में नगरीय सूचनादात्रियों में अधिक पाया गया। गहन स्तर की जानकारी न तो नगरीय और ग्रामीण सूचनादात्रियों को थी। सूचनादात्रियों ने माना कि प्रत्येक महिला को अपने अधिकार सम्बन्धी कानूनों की सामान्य जानकारी होनी चाहिए ताकि व अपने अधिकारों के प्रति सजग रह पायें। अध्ययन में सम्मलित सूचनादात्रियों ने माना कि उन्हें विधिक अधिकारों की जानकारी की आवश्यकता है। 80 प्रतिशत सूचनादात्रियों ने माना कि स्त्री-पुरुष की समाज में स्थिति एक समान नहीं है। यह आंकडा शोचनीय स्थिति दिखाता है। ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा का स्तर निम्न होने के कारण विधिक अधिकारिता के प्रति जागरूकता में कमी दिखायी देती है। ग्रामीण एवं नगरीय सूचनादात्रियों ने माना कि महिलाओं को उनके विधिक अधिकारों के प्रति समय-समय पर सरकार जानकारी उपलब्ध करवायी जानी चाहिए ताकि वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रह पायें।

सन्दर्भ

1. माहेश्वरी अविनाश, 'महिला अधिकार और कानून', प्रिज्म बुक्स, जयपुर, 2011, पृ. 2
2. वही, पृ. 2
3. रावत, बृजमोहन सिंह, 'नारी समानता एवं सशक्तीकरण : 1990 के दशक में उत्तराँचल के सामाजिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन', हे0न0ब0ग0वि0वि0, श्रीनगर (गढ़वाल) में प्रस्तुत शोध प्रबंध अप्रकाशित, 2004
4. Desai Nara and Usha Thakkar, 'Women in Indian Society', National Book Trust, 1996
5. शान्ति एवं वीणा, 'प्रौढ़ शिक्षा' भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
6. Mudgal, Mukul, 'Nyaydeep', National Legal Service Authority, Vol VI Oct. 2005
7. तिवारी, आर0 पी0 एवं शुक्ला, डी0 पी0, 'भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान' (सम्पादित), ए0पी0एच0 पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 161

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

विस्थापित कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास का सवालः जम्मू और कश्मीर राज्य पुनर्गठन अधिनियम के विशेष संदर्भ में अध्ययन

❑ डॉ. सर्वेश कुमार

सूचक शब्दः चरमपंथ, तुष्टिकरण, यायावर, विस्थापन, पुनर्वास

जम्मू और कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाले संविधान के अनुच्छेद 370 में संशोधन और 35 'अ' के निष्प्रभावी किए जाने के बाद विस्थापित कश्मीरी पंडितों में पुनर्वास की आस बंधी थी। किन्तु दो वर्ष से अधिक समय गुजर जाने के बाद भी पुनर्वास की कहीं कोई कोशिश नहीं दिख रही है। उल्टा दो वर्ष की खामोशी के बाद घाटी में चरमपंथ फिर से सर उठा रहा है। अल्पसंख्यकों की टारगेट किलिंग की घटनाओं के बाद विस्थापन की खबरें फिर सामने आ रही हैं। घाटी में बदले राजनीतिक और संवैधानिक हालात में पुनर्वास के मुद्दे का क्या भविष्य है इस पर विविध मतों का विश्लेषण करने से पूर्व हमें इतिहास के उस कठिन दौर पर भी विहंगम दृष्टि डालनी आवश्यक है, जहाँ से कश्मीरी पण्डितों के उत्पीड़न और विस्थापन की कहानी का आरंभ होता है। 19 जनवरी एक ऐसी तिथि है जो कश्मीरी पंडितों के विस्थापन से जुड़ी हर चर्चा में घूम-फिर कर आ जाती है। वस्तुतः वर्ष 1990 में इसी दिन लाखों कश्मीरी पंडितों को रातों-रात घाटी से पलायन करना पड़ा था। तेजी से घटे इस घटनाचक्र ने लाखों पंडितों के जीवन का विनाश कर दिया। हाल ही में प्रदर्शित फिल्म 'कश्मीर फाईल्स' इसी दौर के दर्द और विस्थान को दिखाती है। कोई भी घटना भले ही एक क्षण में घटित होती है किंतु उसके पीछे दशकों का इतिहास होता है। कश्मीरी पंडितों के विस्थापन को हम सिर्फ 19 जनवरी की तिथि से नहीं समझ सकते। दो समुदायों में अविश्वास और असुरक्षा के इस माहौल का आरंभ डोगरा शासनकाल (1846–1947) से देखा जा सकता है। डोगरा शासन के आरम्भिक दौर में कश्मीरी पंडितों की स्थिति काफी मजबूत थी। पंडितों की स्थिति जहाँ एक ओर भू-स्वामी की थी, तो दूसरी ओर शासन में तेज-तर्रार नौकरशाह की थी। दूसरी ओर मुस्लिम जनसंख्या अधिक थी किंतु अशिक्षित, गरीब, भूमिहीन किसान, मजदूर और बुनकर थे। घाटी में पंडितों की जनसंख्या भले ही साढ़े चार फ़ीसद के करीब थी किंतु पूरे क्षेत्र में बिखरी हुई थी। धर्म अलग था किंतु साझी संस्कृति थी। मिलजुल कर त्योहार मनाते थे, कश्मीर में शिवरात्रि (हेरात) के अगले दिन 'सलाम महारा' आता है, जिसमें मुस्लिम लोग पंडितों के यहाँ अभिवादन के लिए जाते थे। इसी तरह बकरीद के अगले दिन पंडितों के घर कच्चा मटन पहुँचाया जाता था। हालात तब बदलने लगे, जब वर्ष 1925 के आस-पास कश्मीर में मुस्लिम समुदाय से पढ़े-लिखे लोगों की पहली पीढ़ी का आना हुआ। ये लोग या तो विदेश से पढ़े थे या फिर अलीगढ़ और लाहौर

> व्यक्ति कोई नट-बोल्ट नहीं है जो एक स्थान से खोलकर दूसरे स्थान पर कस दिया जाए। व्यक्ति सामाजिक प्राणी है जिसकी जड़ें अपने परिवेश में बहुत गहराई तक होती हैं। परिवेश से विस्थापित व्यक्ति उसी तरह तड़पता है, जैसे पानी से बाहर मछली तड़पती है। इसीलिए गौरव ग्रंथों में जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी ऊपर माना गया है। कश्मीर तो सचमुच ही धरती का स्वर्ग है, ऐसे में विस्थापित कश्मीरी पंडितों के दर्द का तो अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। यह दर्द न तो सिनेमा के पर्दे पर समा सकता और न ही साहित्य की किसी विधा में। हिंसा और विस्थापन कश्मीर की नियति बन चुकी है। जम्मू-कश्मीर में बड़े संवैधानिक बदलाव के बाद भी हिंसा और विस्थापन थम नहीं रहा है। प्रकृति के सुकुमार आज यायावर का जीवन जीने के लिये मजबूर हैं। अध्ययन में सामने आया है कि पंडितों के विस्थापन की समस्या एक बहुआयामी समस्या है, इसे सिर्फ कानून में संशोधन से हल नहीं किया जा सकता और न ही इस समस्या को कश्मीर की समग्र समस्या से अलग करके समझा जा सकता। घाटी में शान्ति पुनर्वास की पहली शर्त है। कश्मीर में शान्ति और समृद्धि के लिए दोहरी रणनीति पर काम करना होगा, पहला-चरमपंथ के खिलाफ सख्ती से पेश आना होगा, दूसरा युवाओं को भटकाव से रोकने के लिए रोजगार के नए अवसर सृजित करने होंगे।

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर बी.एन.डी. राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा, जयपुर (राजस्थान)

विश्वविद्यालय से। मुस्लिमों के इस शिक्षित वर्ग ने वर्ष 1930 में कश्मीरी मुसलमानों के लिए नौकरियों सहित अन्य अधिकारों के लिए एक आन्दोलन चलाया। इसके लिए ग्लेन्सी कमीशन का गठन भी हुआ। कश्मीर पंडितों के लिए दूसरा मुश्किल समय उस समय आया जब शेख अब्दुल्ला सरकार भूमि सुधार क़ानून ले कर आई, इससे काफी पंडितों की जमींदारी चली गई। यद्यपि जमींदारी अकेले कश्मीरी पंडितों की ही नहीं गई थी अपितु कुछ मुस्लिम और राजपूत जमींदारों की जमींदारी भी गई थी। उसी तरह भूमि केवल भूमिहीन मुस्लिमों को ही नहीं मिली थी, अपितु भूमिहीन दलितों और पण्डितों को भी भूमि आवंटित हुई थी। हाँ! जमींदारी का बड़ा हिस्सा पंडितों के पास था।[1] इस तरह सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा का प्रारंभ आजादी के बाद से ही हो गया था जिसके चलते कश्मीर से पण्डितों का रोजगार की तलाश में धीरे-धीरे पलायन चलता रहा है। वर्ष 1989-90 में पाक प्रायोजित चरमपंथ के कारण यह स्थिति विस्फोटक होकर अस्तित्व के संकट में बदल गई।

शोध के उद्देश्य

1. विस्थापित कश्मीरी पंडितों के जीवन की चुनौतियों को जानना और समझना।
2. विस्थापितों को किस प्रकार का राजकीय सहयोग मिल रहा है। सरकारी सहायता को लेकर विस्थापितों की प्रतिक्रिया और अनुभव को जानना।
3. विस्थापितों की पीड़ा, दुश्चिंताओं और अपेक्षाओं को उन तमाम पक्षों तक ले जाना जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इनके पुनर्वास में भूमिका निभाने वाले हैं।
4. पुनर्वास योजना पर अनुच्छेद 370 में संशोधन और अनुच्छेद 35 'अ' के समाप्त होने के प्रभाव का अध्ययन।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध हेतु प्राथमिक और द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक समंकों के संकलन के लिए पत्र-पत्रिकाएँ, प्रतिवेदन, पूर्व शोध और पुस्तकों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक समंकों हेतु अवलोकन और साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में जम्मू के पुरखू, जगती, नगरोटा व पुथी क्षेत्र के अलावा उद्यमपुर, बड़गाँव और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में रह रहे विस्थापित परिवारों को सम्मिलित किया गया है। दैव निदर्शन विधि द्वारा 300 विस्थापित कश्मीरी पंड़ितों से साक्षात्कार अनुसूची भरी गई है।

साहित्य समीक्षा : जहाँगीर शेख खालिद 'व्हाई आर्टिकल 370 हैड टू गो' पुस्तक में उन कारणों एवं परिस्थितियों का विश्लेषण करते हैं जिनके चलते अनुच्छेद 370 को संशोधित होना पड़ा। लेखक मानते हैं कि अनुच्छेद-370 और 35 'अ' अपने अन्तर्निहित दोष के चलते लंबे समय से विधि विशेषज्ञों, नारीवादी विचारकों और दक्षिणपंथी राजनीति के निशाने पर थे। इस कानून में कश्मीर से बाहर विवाहित स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से बे दखल करने का प्रावधान सामाजिक न्याय की बुनियादी मान्यताओं के विरुद्ध था। विशेष दर्जे के चलते कश्मीर का भला नहीं हो पाया। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, प्रतिव्यक्ति आय और सुशासन की दिशा में कश्मीर में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। इसके विपरीत विशेष दर्जे का दुरुपयोग हुआ और कश्मीर की राजनीति में भ्रष्टाचार और परिवारवाद ने जगह बनाई। इन सब कारणों के चलते अनुच्छेद 370 को संशोधित और 35'अ' को जाना पड़ा।[2]

राजदान, रजनीश अपने अध्ययन 'अनुच्छेद 370 में संशोधन और 35'अ' का निरसनः एक कानूनी परिप्रेक्ष्य' में कश्मीर को विशेष संवैधानिक स्थिति प्राप्त होने से समाप्ति तक की घटनाओं का कालक्रम और तात्कालिक परिस्थितियों के साथ विश्लेषण करते हैं। शोधकर्ता स्पष्ट करते हैं कि अनुच्छेद 370 समाप्त नहीं हुआ है अपितु संशोधित हुआ है। अनुच्छेद 35 'अ' समाप्त हुआ है। अनुच्छेद 370 में यह पहला संशोधन नहीं था अपितु अलग-अलग दौर की सरकारों ने इस अनुच्छेद में संशोधन कर इसके प्रभाव को कम किया है। 5 अगस्त 2019 के संशोधनों ने इस अनुच्छेद को प्रतीकात्मक बना दिया।[3]

राजपूत, उदय सिंह अपने शोध-पत्र 'बदले कानूनी एवं संवैधानिक हालात में कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास की संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ' में अगस्त 2019 के बाद घाटी में विस्थापित कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास की दिशा में नई संभावनाएँ भी विकसित हुई हैं तो दूसरी ओर कुछ चुनौतियाँ भी उभरी हैं। विशेष राज्य की समाप्ति के बाद कश्मीर में केन्द्र सरकार की पहुँच अधिक हुई है। अब केन्द्र की किसी योजना अधिनियम को लागू करने के लिए प्रान्तीय सरकार की सहमति की बाधा नहीं रही। अब एक खूबसूरत कश्मीर के निर्माण के लिए केन्द्र के हाथ खुले हैं। चुनौती इस रूप में उभरी है कि अगस्त 2019 के बाद से घाटी की बहुसंख्यक आबादी में चिंता, डर और

शक का माहौल है। अगस्त, 2019 में जम्मू और कश्मीर का विशेष राज्य का दर्जा समाप्त होने के बाद से 14 हिन्दू अल्पसंख्यकों की घाटी में हत्या कर दी गई है। ऐसे में पुनर्वास से पूर्व कश्मीरी आवाम को भरोसे में लेना वर्तमान दौर की सबसे बड़ी चुनौति है।[4]

माधवन, जय का आलेख 'द कश्मीर फाईल्सः कहानी उस रात की जब कश्मीरी पंडितों को अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी' हाल ही में प्रदर्शित फिल्म 'द कश्मीर फाईल्स' के संदर्भ में इतिहास के काले दौर पर प्रकाश डालता है। जब नब्बे के दशक की शुरूआत में सुनियोजित हिंसा के बीच कश्मीरी पंडितों ने अपने घर और कारोबार को छोड़कर विस्थापित होना पड़ा था। आलेख में घाटी में हिन्दू अल्पसंख्यकों के विस्थापन में उस समय की सरकारों को भी उत्तरदायी ठहराया है। कश्मीर और कश्मीरी पंडितों के संघर्ष की कहानी बहुत लंबी है। फिल्म में चयनित घटनाओं को दिखाया गया है किंतु 3 घंटे की फिल्म में संघर्ष के हर पहलू को दिखा पाना संभव भी नहीं है।[5]

पाण्डेय, अशोक कुमार 'कश्मीर और कश्मीरी पंडितः बसने और बिखरने के पन्द्रह सौ साल' पुस्तक में कश्मीर के उथल-पुथल भरे इतिहास में कश्मीरी पंडितों की स्थिति की तलाश करते हुए उन सामाजिक-राजनीतिक हालात की विवेचना करते हैं जिसके चलते कश्मीर में हिन्दू समुदाय और बहुसंख्यक मुस्लिम समुदाय में टकराव पूर्ण हालात पैदा हुए और बाद में अल्पसंख्यक समुदाय को बेघर होना पड़ा। साथ ही, यह पुस्तक राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान विकसित हुए उन अन्तर्विरोधों की भी पहचान करती है जिनसे स्वतंत्र भारत में कश्मीर और शेष भारत के बीच बने तनावपूर्ण सम्बन्धों और इस रूप में कश्मीर घाटी के भीतर पंडित-मुस्लिम सम्बन्धों ने आकार लिया। नब्बे के दशक में पंडितों के विस्थापन के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों की विस्तार से विवेचना करते हुए यह पुस्तक अगस्त 2019 के संवैधानिक बदलाव पर भी प्रकाश डालती है। लेखक अनुच्छेद 370 को विस्थापित कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास में बाधा मानते ही नहीं है अपितु देश की साम्प्रदायिक राजनीति ने घाटी में माहौल बिगाड़ा है।[6]

विश्लेषण : कश्मीरी पंडितों की समस्या को कश्मीर की समग्र समस्या से अलग करके नहीं समझा जा सकता। पाकिस्तान प्रायोजित सीमा पार आतंकवाद ने कश्मीर समस्या को अधिक उलझा दिया है जिसका परिणाम सम्पूर्ण कश्मीर के साथ-साथ कश्मीरी पंडित भी भुगत रहे हैं। वास्तव पाकिस्तान कश्मीर में साम्प्रदायिकता, कट्टरवाद और चरमपंथ को फैलाने की तो कोशिश हमेशा से ही करता रहा है किंतु वर्ष 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत संघ के सैन्य हस्तक्षेप ने पाकिस्तान के लिए उन अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया जिसमें पाक कश्मीर में चरमपंथ को हवा दे सका। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप से अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य उपजे तनाव ने कश्मीर को अपनी चपेट में लिया। वियतनाम संकट से सबक लेकर अमेरिका ने अफगानिस्तान में सीधे हस्तक्षेप की बजाय स्थानीय लड़ाकों का इस्तेमाल सोवियत सेना के विरूद्ध किया। उस दौर में पाकिस्तान न केवल अमेरीकी गुट का सदस्य था अपितु सैन्य गुट सीटो और सेण्टो का सदस्य भी था। अतः पाक अधिकृत कश्मीर को चरमपंथ प्रशिक्षण क्षेत्र के रूप में चुना गया। यहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त चरमपंथी अफगानिस्तान में सोवियत सैनिकों के विरूद्ध छापामार युद्ध लड़ते थे। अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं के पलायन के बाद उन्हीं चरमपंथियों का प्रयोग कश्मीर में किया गया। अस्सी के दशक में घाटी में नारे लगते थे-'अफगानिस्तान में बाजी मारी है, अब कश्मीर की बारी है।'[7] यद्यपि हम बाहरी हालात और पाकिस्तान का नाम लेकर अपनी नाकामी से नहीं बच सकते। यह हमारे खुफिया तंत्र और श्रीनगर व दिल्ली में बैठी सरकारों की लापरवाही भी थी जो कश्मीर के हालात को ठीक से संभाल नहीं सकी। उस दौर में हम बदलती वैश्विक परिस्थिति और सीमा पार आतंकवाद के विरूद्ध प्रभावी रणनीति नहीं अपना सके। परिणाम यह हुआ कि कश्मीर की हवाओं में बारूद घुल गया और अल्पसंख्यक दहशत में आ गए। जमात-ए-इस्लाम, जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट और इण्डियन मुजाहीदीन जैसे चरमपंथी संगठनों ने अखबारों में पंडितों के कश्मीर छोड़कर जाने के विज्ञापन जारी किए। मस्जिदों से पंडितों के लिए घाटी छोड़ने की चेतावनियाँ जारी की गई। भय के इस काल में हिन्दू अल्पसंख्यक शासन से संरक्षण की उम्मीद पाले बैठे थे किंतु शासन ठीक से राजधर्म नहीं निभा पाया। यह वह दौर था, जब स्टेट नामक संस्था अल्पसंख्यक हिन्दुओं की जिंदगी से गायब हो गई थी।[8] जम्मू और कश्मीर में फारूख अब्दुल्ला के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देने के बाद राज्यपाल शासन लागू हो गया, अर्थात् पूरा दारोमदार केन्द्र पर आ गया। वर्ष 1989-90 में केन्द्र में प्रधानमंत्री

वी.पी. सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की गठबंधन सरकार थी जिसे भाजपा और वामदलों का बाहर से समर्थन प्राप्त था। हालात से निपटने के लिए केन्द्र ने माननीय जगमोहन अग्निहोत्री को राज्यपाल बनाकर कश्मीर भेजा। जगमोहन अग्निहोत्री, दूसरी बार राज्यपाल बनकर कश्मीर गए थे। इससे पहले राजीव गांधी सरकार में भी जगमोहन जम्मू-कश्मीर के गवर्नर रहे थे। किंतु राज्यपाल महोदय हालात को काबू करने में नाकामयाब रहे। कश्मीरी पण्डितों के साथ हिंसा, बलात्कार और आगजनी की घटनाएँ बढ़ती गई और लाखों पण्डित घाटी से विस्थापित हो गए।

उत्तर भारत में विस्थापित कश्मीरी पंडितों के बारे में एक सामान्य धारणा है कि कश्मीर घाटी की बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी ने अल्पसंख्यक पण्डितों को मारा जिससे अल्पसंख्यक जान बचाकर भाग आए। यह धारणा अर्द्धसत्य है। घाटी में पण्डितों और मुसलमानों का साथ सदियों से है, इनका धर्म भले ही अलग है किंतु संस्कृति एक है और संस्कृति का स्थान धर्म से बड़ा होता है। यद्यपि बहुत से कश्मीरी युवा कुछ समय के लिए कट्टरवाद की तरफ बह गए थे और वहशी भीड़ का हिस्सा भी बन गए थे। किंतु यदि नब्बे प्रतिशत मुस्लिम आबादी यह ठान लेती कि पण्डितों को मारना है तो एक भी अल्पसंख्यक का बच पाना संभव नहीं था और ना ही वे आठ सौ कश्मीरी पंडित परिवार घाटी में रह पाते जो आज भी रह रहे हैं। विस्थापित पण्डितों ने यह सोच कर घाटी नहीं छोड़ी थी कि वे कभी लौट कर नहीं आयेंगे। विस्थापितों को लग रहा था कि जब कानून व्यवस्था बहाल होगी तब घर वापसी हो जाएगी। इसीलिए बहुत से कश्मीरी पंडित अपने घर या प्रतिष्ठान के ताला लगा कर चाबी अपने मुस्लिम पड़ोसियों को दे कर आए थे। दरअसल यह दौर ऐसा था जिसमें घाटी की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था ध्वस्त हो गई थी, कानून से भरोसा उठ गया था, समस्या समाधान में लोकतांत्रिक राजनीति विफल हो गई थी और चरमपंथ हावी था। अतः एक समूह के अपवित्र प्रयास को घाटी की बहुसंख्यक समुदाय के साथ जोड़ना ठीक नहीं है। आम आदमी तो आम ही होता है। इन्हें कितना भी जाति और मजहब में बांटा जाए किंतु जीवन की साझी चुनौतियाँ इन्हें एक साथ ला खड़ा करती हैं। वास्तव में कश्मीरी पंडितों के विस्थापन की मुख्य वजह बढ़ती हत्याएँ थीं। चरमपंथ ने उन तमाम लोगों को अपने निशाने पर लिया जो घाटी में भारत का प्रतिनिधित्व करते थे। जनवरी 1990 से अक्टूबर 1990 के बीच 1585 लोगों की हत्या हुई, उसमें मुस्लिम 982, हिन्दू 218, सिक्ख 23 और सुरक्षाबल के 363 लोग थे। कश्मीरी पण्डितों में असुरक्षा तो तब बढ़ी, जब हिन्दू समुदाय की बड़ी हस्तियों को निशाना बनाया गया जिनमें भाजपा नेता पं. टीकालाल टपलू, रिटायर्ड जज नीलकंठ गंजू, श्रीनगर दूरदर्शन के निदेशक लासा कौल, एच.टी.एम.एल. के जनरल मैनेजर एच.एल. खेरा जैसे बड़े नाम थे।

गत तीन दशक में हिंसा के आंकड़े[9]

वेन आरेख-1

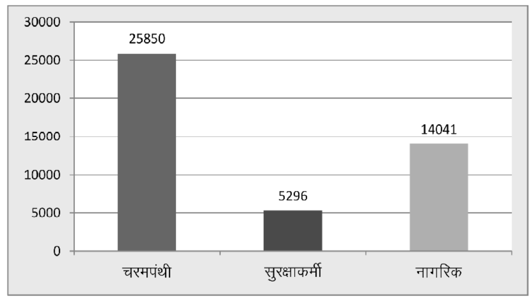

वेन आरेख 1 से स्पष्ट होता है कि घाटी में हिंसा का दौर आज भी जारी है। गत तीन दशक में कुल 45187 जानें चरमपंथी हिंसा में गई हैं। इसके 5296 सुरक्षाकर्मी और 14041 आम नागरिक भी सम्मिलित हैं। चरमपंथी हिंसा में सर्वाधिक 25850 जानें चरमपंथियों की गई हैं। घाटी में औसतन प्रतिदिन 4 लोग चरमपंथी हिंसा में जान गंवा रहे हैं। पिछले तीन दशक में हिंसा और पलायन नियमित रूप से जारी रहा है।

विस्थापितों के लिए सरकारी सहायता : कश्मीर से विस्थापित परिवारों के लिए केन्द्र सरकार ने समय-समय पर कई आर्थिक पैकेज जारी किए हैं। वर्ष 2004 में प्रधानमंत्री आर्थिक पैकेज के अंतर्गत जम्मू में चार स्थानों पुरखू, नगरोटा, और मुठी में दो कमरे के 5242 मकानों का निर्माण कराया गया। बड़गांव जिला में शेखपुरा स्थान पर 200 फ्लैटों का निर्माण कराया गया। वर्ष 2008 में केंद्र सरकार द्वारा विस्थापित कश्मीरी पंडितों की सहायता के लिए 1618.40 करोड़ रू का आर्थिक पैकेज जारी किया गया। इसमें विस्थापित पंड़ितों के लिए 6000 नौकरियां दी गईं और 9000 युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वरोजगार प्रशिक्षण दिया गया। प्रवासी कर्मचारियों के लिए घाटी में 505 ट्रांजिट आवासों का

निर्माण कराया गया। वर्ष 2015 में केन्द्र सरकार ने कश्मीरी विस्थापितों के लिए 2000 करोड़ रू. की लागत से कश्मीर घाटी में 6000 ट्रांजिट आवासों का निर्माण किया गया। प्रत्येक परिवार को मिलने वाली मासिक सहायता राशि को 6600 रू. से बढ़ाकर 10000 रू. प्रति परिवार की गई। वर्ष 2018 से यह राशि 10000 रू. से बढ़ाकर 13000 रू. प्रति परिवार प्रतिमाह कर दिया गया।

विस्थापितों को सरकारी सहायता[10]

तालिका-1

रोजगार		आवास		राहत राशि	राशन (प्रति व्यक्ति प्रति माह)		
सरकारी नौकरी	स्वरोजगार प्रशिक्षण	फ्लैट	ट्रांजिट आवास	(प्रति परिवार प्रति माह)	चावल (कि.ग्रा.)	गेहूं (कि.ग्रा.)	चीनी (कि.ग्रा.)
13500	**28000**	**5242**	**10460**	**13000**	**9**	**2**	**1**

तालिका में स्पष्ट है कि विगत तीन दशक में केन्द्र सरकार द्वारा विस्थापित कश्मीरी पंडितों के लिए लगभग 13500 सरकारी नौकरी उपलब्ध कराई हैं। करीबी 28000 युवाओं को स्वरोजगार प्रशिक्षण दिया गया है। अभी तक करीब 5542 फ्लैट और 10460 ट्रांजिट आवासों का निर्माण किया गया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से प्रत्येक विस्थापित कश्मीरी पंडितों को 9 किग्रा. चावल, 2 किग्रा. आटा और 1 किग्रा चीनी प्रतिमाह वितरित किया जा रहा है। यह सच है कि विस्थापित कश्मीरी पंडित परिवारों को जितनी आर्थिक सहायता सरकार द्वारा प्राप्त हुई है उतनी आर्थिक सहायता भारत में किसी भी शरणार्थी समूह को प्राप्त नहीं है किंतु आर्थिक सहायता पुनर्वास का विकल्प नहीं हो सकता। विस्थापित कश्मीरी पंडितों की समस्या का अंतिम हल तो पुनर्वास ही है।

विस्थापितों की वर्तमान स्थिति : सरकार ने समय समय पर आर्थिक पैकेज के माध्यम से कश्मीरी पंडितों को राहत देने की कोशिश की है किंतु इन तमाम प्रयासों के बावजूद विस्थापितों का दर्द कम नहीं हुआ है। किसी समय बड़े घरों, खेतों और बागानों के मालिक विस्थापित कश्मीरी पंडित आज शरणार्थी शिविरों में खानाबदोश का जीवन जीने के लिए विवश हैं। धरती के स्वर्ग कश्मीर में रहने वाले पंडित आज अपने ही देश में तिनकों की तरह इधर-उधर बिखर गये हैं। जीवन की बुनियादी सुविधाओं से वंचित होकर सरकारी मदद पर जीवन बसर कर रहे हैं। घाटी में हिंसा और चरमपंथ के चलते कश्मीर से विस्थापित होने वाले परिवारों की संख्या 62000 है। यद्यपि यह संख्या पंजीकृत परिवारों की है। इसमें से 40668 पंजीकृत विस्थापित परिवार जम्मू में रह रहें हैं। 19338 पंजीकृत परिवार दिल्ली में हैं तथा लगभग 2000 परिवार भारत के अन्य हिस्सों में रह रहे हैं। यद्यपि आज भी 808 कश्मीरी पंडित परिवार घाटी में निवास कर रहें हैं किंतु इन परिवारों का जीवन भी विस्थापितों के जीवन से कम मुश्किल भरा नहीं है।

विस्थापित परिवार घाटी से बाहर भारत के विविध हिस्सों में रह रहें हैं। विस्थापित कश्मीरी पंडितों का बड़ा हिस्सा जम्मू में रहता है किंतु जम्मू के अलावा उद्यमपुर, लद्याख, शिमला, नैनीताल, हरिद्वार, दिल्ली और भारत के दूसरें बड़े शहरों में भी विस्थापित परिवार रह रहे हैं। वर्ष 1989-90 में लगभग सभी विस्थापित परिवार जम्मू में पुरखू स्थिति टेंट के आशियानें वाले शरणार्थी शिविर में ही पहुंचे थे उसके बाद रोजगार की तलाश में भारत के दूसरें हिस्सों में विस्तृत हो गए। कुछ साल बाद पुरखू शिविर में टेंट के स्थान पर टीन की छत वाले मकान बनाए गए जो मुर्गियों के दबड़ेनुमा हैं। अवलोकन में सामने आया है कि कुछ परिवारों के लिए सरकार ने जम्मू से पच्चीस किलोमीटर दूर जगती टाऊनशिप बनाई है जिसमें पक्के मकान हैं। शेष विस्थापित अभी भी पुरखू शरणार्थी कैंप में अमानवीय हालात में रह रहे हैं। यहाँ एक-एक दबड़ेनुमा मकान में दस-दस लोग रहते हैं। निजता का कोई स्थान नहीं। सबसे ज्यादा मुश्किल का सामना महिलाओं को करना पड़ रहा है। नित्य कर्म के लिए बाहर जाना पड़ता है। अस्थायी स्नानघरों में नहाना पड़ता है। साफ-सफाई की समुचित व्यवस्था नहीं होने से कैंप के अंदर और आस-पास गंदगी व्याप्त है जिसके कारण एक ओर जहाँ गंदगी जनित बीमारियों का सामना करना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर साँप आदि जहरीले जीव-जंतुओं का सामना करना पड़ता है। कैंप में कुछ

मौतें तो सर्पदंश से हो चुकी हैं। शिविर में रह रही नई पीढ़ी अपनी मूल भाषा संस्कृति खोती जा रही है। जीवन के संघर्षों ने युवा पीढ़ी को अवसाद में धकेल दिया है जिसके चलते युवाओं में नशाखोरी की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इन अमानवीय दशाओं में विस्थापितों की मुख्य मांग घाटी में अपने घर-परिवेश में पुनर्वास की है।

राज्य पुनर्गठन के बाद पुनर्वास का सवाल : 5 अगस्त, 2019 का दिन जम्मू और कश्मीर के लिये बड़े बदलाव का दिन था। एक ही दिन में सरकार द्वारा संसद में इतने संशोधन पेश किये गए कि सांय होते-होते विशेष दर्जा प्राप्त जम्मू और कश्मीर राज्य दो संघ शासित प्रदेशों में विभक्त हो गया। राज्य का संवैधानिक राजनीतिक और भौगोलिक नक्शा ही बदल गया। संविधान के अनुच्छेद 370 में संशोधन और अनुच्छेद 35 'अ' को निष्प्रभ कर जम्मू और कश्मीर का विशेष राज्य होने का दर्जा समाप्त किया गया। इसके बाद जम्मू और कश्मीर राज्य पुनर्गठन अधिनियम-2019 अस्तित्व में आया जिससे जम्मू और कश्मीर को विधानसभा युक्त केन्द्र शासित प्रदेश बनाने के साथ साथ लद्दाख को भी जम्मू और कश्मीर से पृथक कर केन्द्रशासित प्रदेश बनाया गया। इस पूरे बदलाव पर देश का बडा हिस्सा खुशी और उत्सव में सरोबार दिखा। इस खुशी में विस्थापित कश्मीरी पंडितों की आंखों में भी घर वापसी की उम्मीद दिखी। किन्तु दो वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद भी कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास का सवाल जस का तस खड़ा है। विस्थापितों में खुशी और उम्मीद का स्थान अब निराशा और अनिश्चितता ले रही है। बदले हालात में घर वापसी के सवाल पर उधमपुर, लद्दाख, शिमला, नैनीताल, नई दिल्ली और जम्मू में विस्थापित कश्मीरी पण्डितों के पुरखु कैंप, मुठी कैंप, शेखपुरा, नगरोटा कैंप और जगती टाऊनशिप सहित शहर के विविध क्षेत्रों में रह रहें लोगों से साक्षात्कार किया। राज्य का विशेष दर्जा समाप्त होने के बाद के हालात में घर वापसी के सवाल पर विस्थापित पण्डितों में एक राय नहीं है। मौटे तौर पर तीन तरह का दृष्टिकोण उभर कर आया।

पुनर्वास के सवाल पर उत्तरदाताओं की राय

उत्तरादाताओं की राय	प्रत्युत्तर (प्रतिशत में)
पुनर्वास का रास्ता खुला है	68
यथास्थिति कायम रहेगी	18
पुनर्वास की राह मुश्किल हुई है	14

अध्ययन में 68 प्रतिशत लोगों ने माना है कि अनुच्छेद 370 में संशोधन और अनुच्छेद 35'अ' की समाप्ति से कश्मीर में विस्थापित कश्मीरी पण्डितों के पुनर्वास का रास्ता खुला गया है। इसकी पुष्टि में प्रमुख रूप से दो तर्क अध्ययन में सामने आये हैं। पहला तर्क है कि जम्मू और कश्मीर को केन्द्र शासित प्रदेश बनाने से कश्मीर में केन्द्र सरकार की शक्तियाँ बढ़ गई हैं। पुनर्वास के मार्ग में आ रही कानूनी और संवैधानिक बाधाएँ भी हट गई हैं। अब केन्द्र सरकार को कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास के लिये जम्मू और कश्मीर की विधानसभा से नहीं पूछना पड़ेगा। दूसरा तर्क है कि अनुच्छेद 370 में संशोधन के बाद घाटी में बाहरी आर्थिक निवेश संभव होगा क्योंकि पहले बाहरी व्यक्ति या कारोबारी के लिये कश्मीर घाटी में भूमि खरीद पाना संभव नहीं था। आर्थिक निवेश से घाटी में युवाओं के लिये रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे। रोजगार मिलने से युवा पत्थरबाजी और चरमपंथी गतिविधियों से दूर हो कर शान्ति के मार्ग पर चलेंगे। जब घाटी में अमन होगा तो विस्थापित पण्डितों के लिये अपने घर जाना भी संभव होगा। दो साल से अधिक समय बीत जाने के बाद भी पण्डितों के पुनर्वास के सवाल पर सरकार की खामोशी पर इनका तर्क है कि केन्द्र सरकार कोरोना प्रबंधन सहित कई अहम बदलावों में व्यस्त है। थोड़ा वक्त लगेगा किन्तु मोदी सरकार में उनकी घर वापसी का मसला हल होगा क्योंकि यह मुद्दा सत्ताधारी दल के एजेंडे का हिस्सा है।

अध्ययन में 18 प्रतिशत विस्थापितों ने माना है कि जम्मू और कश्मीर की विशेष स्थिति समाप्त करने और राज्य पुनर्गठन से कश्मीरी पण्डितों की घर वापसी पर कोई असर नहीं पड़ने वाला है। यथास्थिति कायम रहेगी। जम्मू और कश्मीर मे बदले हालात का पुनर्वास से कोई संबंध नहीं है। इसके पीछे इनके दो तर्क यह हैं कि 5 अगस्त, 2019 को संसद में अनुच्छेद 370, 35 'अ' और राज्य पुनर्गठन की बहस मे कहीं भी विस्थापित कश्मीरी पण्डितों के पुनर्वास की बात नहीं उठी। दूसरा तर्क यह है कि अनुच्छेद 370 में संशोधन के बाद एक लम्बा वक्त गुजर गया हैं किन्तु पुनर्वास की दिशा में सरकार की ओर से कोई पहल नहीं दिखी और ना ही कोई ठोस आश्वासन मिला।

अध्ययन में 14 प्रतिशत विस्थापितों ने माना है कि कश्मीर से विशेष राज्य का दर्जा छीन लेने के बाद

कश्मीरी पंडितों के लिए घर वापसी की राहें और अधिक कठिन हो गई हैं। इनका तर्क है कि अनुच्छेद 370 और 35 'अ' पण्डितों के पुनर्वास में कभी कोई बाधा नहीं रहे। उल्टा इन प्रावधानों का लाभ कश्मीरी पण्डितों को आजादी के बाद नौकरियों में मिला है। अनुच्छेद 35'अ' ने कश्मीर की नौकरियों में उत्तर भारत के युवाओं की पहुंच को रोका है। दूसरी ओर बहुसंख्यक मुस्लिम समुदाय में शिक्षा और नौकरियों के प्रति रूझान सीमित था, इस तरह कश्मीरी पण्डितों को आजादी के बाद कई दशक तक इन प्रावधानों का लाभ सरकारी सेवाओं में मिलता रहा। कश्मीरी पण्डित घाटी के मूलवासी हैं और संविधान के अनुच्छेद 370 और 35 'अ' के माध्यम से जो प्रावधान किए गए थे, उनका उद्देश्य केवल राज्य सरकार को ही अधिक अधिकार संपन्न बनाना नहीं था अपितु मूल वासियों को संरक्षण देना भी था। अतः अनुच्छेद 370 और 35 'अ' से कश्मीर के लोगो को नौकरियाँ आदि में जो लाभ मिल रहा था, पुनर्वास के बाद उस लाभ में कश्मीरी पण्डित भी साझेदार बनने वाले थे। अतः कश्मीरी पण्डितों के पुनर्वास की राह में सबसे बड़ी बाधा कानून नहीं हैं अपितु चरमपंथ, असुरक्षा और अविश्वास है। 5 अगस्त 2019 के घटनाक्रम ने घाटी में अविश्वास की दीवार को अधिक ऊंचा कर दिया है। कश्मीर के नेतृत्व और आवाम को भरोसे में लिए बिना उठाए गए इस कदम ने कश्मीर की भारत के साथ भावात्मक दूरी को बढ़ा दिया है। इन हालातों में कश्मीरी पण्डितों की घर वापसी दीर्घकाल के लिए टल गई है। पण्डितों की घर वापसी के लिये घाटी में शांति और सौहार्द के माहौल का होना पहली शर्त है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : विस्थापित कश्मीरी पण्डितों के शिविरों का अवलोकन, विस्थापितों से साक्षात्कार और सरकारी योजनाओं की प्रभावशीलता का अध्ययन करने के बाद जो निष्कर्ष और समाधान उभरकर आये हैं वे बिन्दुवार प्रस्तुत हैं-

1. पुनर्वास के सवाल पर शासन की चुप्पी ने कश्मीरी पंडितों में आशंकाओं को जन्म दिया है। यही कारण है कि कश्मीर में बदली संवैधानिक स्थिति के बाद भी पुनर्वास के प्रश्न पर विस्थापितों में विविध राय है।
2. विस्थापितों में खासतौर पर युवा पीढ़ी बेरोजगारी, नशाखोरी आदि समस्याओं के साथ-साथ सांस्कृतिक पहचान के संकट से गुजर रही है।
3. विस्थापन के बाद घाटी में कश्मीरी पंडितों के धार्मिक स्थल और सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक धीरे-धीरे नष्ट हो रहे हैं।
4. कश्मीरी पंडितों के विस्थापन को सिर्फ धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं देखा जाना चाहिए। इस घटना का एक वर्गीय चेहरा भी है। आज घाटी में 800 के करीब कश्मीरी पंडित परिवार रह रहे हैं, वे आर्थिक रूप से बहुत कमजोर हैं।
5. राहत योजनाओं के माध्यम से हर दौर की सरकारों ने विस्थापितों को आर्थिक सहायता दी है किंतु विस्थापित समूह आर्थिक मदद को पुनर्वास का विकल्प नहीं मानते हैं।
6. राजनीतिक दलों को तुष्टीकरण की राजनीति से ऊपर उठना होगा। किसी का दर्द राजनीतिक लाभ-हानि का विषय नहीं हो सकता। दुर्भाग्य से अभी तक विस्थापितों के दर्द का राजनीतिकरण ही ज्यादा हुआ है, किसी ने खामोश रहकर किया है तो किसी ने मुखर होकर किया।
7. पुनर्वास की कोई भी योजना बनाते समय सरकार को विविध पक्षों से जिसमें जम्मू और कश्मीर के राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों, विपक्ष, विस्थापितों के प्रतिनिधियों और कश्मीर मामलों की समझ रखने वाले नागरिक समाज के लोगों को सम्मिलित किया जाए।
8. घाटी में आतंकवाद से निपटने के लिए एक ओर जहाँ पाकिस्तान पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव को बढ़ाने की रणनीति पर तेजी से काम करना होगा, दूसरी ओर राजकीय तंत्र को मजबूत करना होगा। साथ ही सेना को नागरिक अधिकारों का ध्यान रखते हुए अधिक पेशेवर अंदाज में काम करना होगा।
9. कश्मीर में बड़े पैमाने पर आर्थिक निवेश को बढ़ाना होगा, ताकि युवाओं को रोजगार और बेहतर जीवन देकर अलगाव और चरमपंथ से विमुख किया जा सके।
10. आज भी घाटी में रह रहे 808 कश्मीरी पण्डित परिवारों के उत्थान पर विशेष ध्यान देना होगा। इन परिवारों की खबर न तो केन्द्र ने ली और न ही राज्य सरकार ने ली। विस्थापित परिवारों को तो आर्थिक पैकेज मिलते रहे हैं किन्तु घाटी में स्थित

पण्डित परिवार गहरे आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं।

11. विस्थापित कश्मीरी पंडितों को भी स्वर्णिम भविष्य के निर्माण के लिए इतिहास की टकराव पूर्ण स्मृतियों को पीछे छोड़ना होगा। साथ ही स्वयं को सर्वाधिक शोषित बताने के कथानक से बाहर आना होगा।
12. घाटी में पंडितों की घर वापसी का एक ही मतलब है, जहाँ से आए थे, वहीं पुनः बसाना। सभी को एक साथ टाऊनशिप में बसाने का मतलब है, जम्मू के शरणार्थी कैंपों को उठाकर घाटी में स्थापित कर देना। जहाँ सुरक्षा बलों का कड़ा पहरा होगा। यह भारत के विचार (Idea of India) के विरूद्ध भी होगा। यदि हम कश्मीर में अल्पसंख्यक हिन्दुओं को बहुसंख्यक मुस्लिमों के बीच सुरक्षित नहीं समझते तो फिर कश्मीर के लोग भारत में बहुसंख्यक हिन्दुओं के बीच स्वयं को सुरक्षित कैसे समझें?
13. सरकार को चाहिए कि वह घाटी में विस्थापित पंडित परिवारों की स्थायी सम्पत्ति का रिकार्ड तैयार करे। पता लगाए कि कितने परिवारों की सम्पत्ति सुरक्षित है? कितने परिवारों की सम्पत्ति पर अतिक्रमण हो गया? और कितने लोग अपनी सम्पत्ति बेच चुके हैं?
14. जिन-जिन गाँव, कस्बों और शहरों से विस्थापित जुड़े हैं, वहाँ विभिन्न धर्म के गणमान्य लोगों को मिलाकर साम्प्रदायिक सद्भाव समिति का गठन किया जाना चाहिए। आपसी विश्वास बहाली में ये समितियाँ महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती हैं।
15. मीडिया को भी समाज के निर्माण में अपनी भूमिका समझनी होगी। वह प्राइम टाइम में जो जहर उगलता है, वह समस्याओं को और अधिक उलझा देता है।

घर वापसी की कल्पना एक ऐसी सोच में होनी चाहिए जिसमें हर कश्मीरी के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित हो। इंसानियत, ज़म्हूरियत और कश्मीरियत, ये वे मूल्य हैं जिस पर कश्मीरी समाज खड़ा है। अतः पुनर्वास की कोई भी योजना तभी धरातल पर कामयाब होगी जब उसका निर्माण इंसानियत और कश्मीरियत के दायरे में होगा।

सन्दर्भ

1. पाण्डेय अशोक कुमार, 'कश्मीरनामा : इतिहास व समकाल', राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, 2018, पृ. 323-327
2. Jehangir Sheikh Khalid, 'Whhy Article 370 had to go' Vitasta Publishing, New Delhi, 2022, pp. 86-89.
3. राजदान, रजनीश, 'अनुच्छेद 370 में संशोधन और 35'अ' का निरसन : एक कानूनी परिप्रेक्ष्य', कुरूक्षेत्र, वर्ष 65, अंक 11, सितम्बर, 2019, पृ. 35-38
4. राजपूत, उदयसिंह, 'बदले कानूनी एवं संवैधानिक हालात में कश्मीर पडितों के पुनर्वास की संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ' मूल प्रश्न, वर्ष-13, अंक 35, जुलाई-सितम्बर 2021, पृ. 24-26.
5. माधवन, जय, 'द कश्मीर फाइल्सः कहानी उस रात की जब कश्मीरी पंडितों को अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी' रिसर्च एनालिसिस टुडे, वर्ष 8, अंक 17, जनवरी-मार्च 2022, पृ. 54-59.
6. पाण्डेय, अशोक कुमार, 'कश्मीर और कश्मीरी पंडित : बसने और बिखरने के पन्द्रह सौ साल' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2020, पृ. 163-171
7. मिश्रा, नवीन कुमार, 'कश्मीर का सच' देहली ऑन बुक्स, 2022, पृ. 253-259.
8. Koul, Rakesh, 'Forgotten Warriors: History of Kashmir and Kashmiri Pandits', Notion Press, New Delhi, 2021, pp.131-134.
9. 5 अगस्त, 2019 को राज्यसभा में अनुच्छेद 370 पर बहस के दौरान गृह मंत्री द्वारा प्रस्तुत आंकड़े।
10. तिवारी राम शरण, 'विस्थापित कश्मीरी पंडित : मानवाधिकार के सरोकार, मानव अधिकार', नई दिशाएँ, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली, अंकः 15, वर्ष 2018, पृ.176-178.
11. कंधारी मोहित, 'कश्मीरी पंडितों की घाटी में अपने घरों में वापसी कितनी आसान?' बीबीसी हिंदी के लिए, 7 फरवरी 2020.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

चेरो जनजातियों का जीवन एवं समस्याएँ : समाजशास्त्रीय अध्ययन
(उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद के विशेष संदर्भ में)

❑ डॉ. विमल कुमार लहरी

सूचक शब्दः वैचारिकी, परंपरा, आधुनिकता, सभ्यता, सार्वभौमिक, संग्रहण, पुनर्वास, धार्मिक अलगाव।

प्रस्तुत शोध-पत्र चेरों जनजातियों के जीवन एवं उनसे जुड़ी समस्याओं पर आधारित है। उत्तर आधुनिकता के पायदान पर सरकारी, गैर सरकारी एवं वैयक्तिक प्रयासों के बावजूद जनजातीय समाज विविध समस्याओं का सामना कर रहा है। फलस्वरूप चेरो जनजातियां स्वतंत्रता के 7 दशक बाद भी समाज की मुख्यधारा से पूरी तरह जुड़ नहीं पाई हैं। आज चेरो जनजातियां परंपरा एवं आधुनिकता की वैचारिकी के साथ जीवन को गति दे रही हैं।

आज मानव सभ्यता की यात्रा काफी आगे बढ़ चुकी है। कहीं आधुनिकता तो कहीं उत्तर आधुनिकता के पायदान पर लोग अपनी प्रस्थिति एवं भूमिका को स्वीकार कर रहे हैं। भारत के संदर्भ में हम देखें तो भारतीय समाज में भी आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक होने की दलीलें दी जा रही हैं। लेकिन उन्हीं के बीच जनजातीय समाज का एक बड़ा वर्ग रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवं चिकित्सा जैसी मौलिक आवश्यकताओं से वंचित दृष्टिगोचर होता है। वैसे सरकारी एवं कुछ गैर-सरकारी संगठनों द्वारा ढेर सारे कार्यक्रम एवं योजनाएँ संचालित किये जा रहे हैं। इन सबके बाद भी उनकी मौलिक आवश्यकताओं की उपलब्धता पर प्रश्न चिन्ह बना हुआ है। स्वतंत्रता से पहले जनजातीय समाज को आदिम जातियों के रूप में जाना जाता था। गिलीन एवं गिलीन कहते हैं कि ''स्थानीय जनजातीय समूहों का ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी सामान्य संस्कृति है।''[1]

रिवर्स जनजातीय समाज को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ''यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।''[2]

इसी समाज के बीच चेरो जनजाति भी दृष्टिगोचर होती है, जो भारत के विविध राज्यों में पायी जाती है। उत्तर प्रदेश में इनकी जनसंख्या सोनभद्र एवं मीरजापुर जनपद में बहुतायत से देखी जा सकती है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा इंस्टीट्यूशन ऑफ एमिनेंस के अंतर्गत लेखक को एक शोध परियोजना प्रदान की गई है, जिसका अध्ययन क्षेत्र मीरजापुर एवं सोनभद्र है। यह अध्ययन जनजातियों के जीवन पर आधारित है। इस शोध परियोजना के कारण ही लेखक ने जनजातीय समाज को बहुत निकटता से देखा। इनसे बात करने के साथ-साथ इनके बीच सहभागी होने का अवसर भी मिला। इनसे मिलने, सहभागी होने एवं साक्षात्कार से इनके जीवन के बारे में काफी कुछ जानकारी मिली जिससे दृष्टिगत होता है कि चेरो जनजाति का इतिहास काफी पुराना है। भारत के विविध राज्यों में चेरो जनजातियाँ पाई जाती हैं। इनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अधिकांश राज्यों की चेरो जनजातियाँ आज भी मुख्यधारा से अलग-थलग हैं जिसके कारण उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी इन्हें ढेर सारी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। चेरो जनजाति के जीवन एवं उनकी समस्याओं को कुछ पन्नों में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। इनके जीवन एवं समस्याओं से जुड़े सभी पक्ष एक पुस्तक की पूरी विषयवस्तु की मांग करते हैं। अस्तु, शोध आलेख की शब्द सीमा को देखते हुए इनके जीवन एवं समस्याओं से जुड़े पक्षों को संक्षिप्त रूप में अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-

चेरो जनजाति : जीवन एवं भौगोलिक परिदृश्य

❑ सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं सदस्य सलाहकार समिति, डॉ. अंबेडकर चेयर, एवं पी.आई., इंस्टीट्यूशन ऑफ एमिनेंस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

चेरो जनजातियां अपने को क्षत्रिय होने के दावे के साथ-साथ 'च्यवन ऋषि' के वंशज होने का भी दावा करती हैं। चेरो जनजातियां मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के सोनभद्र एवं मिर्जापुर जनपद के साथ-साथ बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा में भी पाई जाती हैं। चेरों जनजातियों को बाराहजारी, तेरहहजारी, पच्चासी, रौतिया, चारवा या चिरू एवं चेरो जैसे नाम से भी जाना जाता है। यह अपने को नागवंशी क्षत्रिय भी मानते हैं। चेरो जनजातियों का मुख्य धर्म "सरना" है, लेकिन इधर कुछ दशकों में हम देखें तो ये हिंदू देवी-देवताओं की भी पूजा-आराधना करते दिखते हैं। चेरो जनजातियों की कई उपजातियां भी हैं जैसे- राय, साय रौतिया, महतो एवं सिंह।

साहित्य समीक्षा

मधुसूदन त्रिवेदी[3] की पुस्तक 'सामाजिक नृ-विज्ञान' कुल 13 अध्यायों में विभक्त करके पूर्ण की गई है। उन्होंने जनजातियों का अध्ययन करने वाले विज्ञान 'मानवशास्त्र' का परिचय एवं उनका अन्य विज्ञानों से संबंध, जनजाति संस्कृति, उनकी संरचना के साथ-साथ जनजातीय समाज के बीच विवाह, परिवार एवं नातेदारी से जुड़ें पक्षों की गंभीर विवेचना की है। इसके अतिरिक्त पुस्तक में भारत में जनजातीय समाज की समस्याओं का भी वर्णन किया है।

डी.एन.मजूमदार एवं टी.एन.मदन[4] की पुस्तक 'सामाजिक मानवशास्त्र परिचय' मानवशास्त्र और जनजातीय समाज का एक प्रमाणिक दस्तावेज है। इस पुस्तक को लेखक द्वय ने कुल 16 अध्यायों में विभक्त करके पूर्ण किया है। इस पुस्तक में लेखक द्वय ने जनजातियों की संस्कृति, विवाह, परिवार एवं नातेदारी के साथ उनके आर्थिक संगठन एवं उनके बीच धर्म, जादू और कला के साथ जनजातीय सामाजिक संगठन का तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत किया है।

हरिश्चन्द्र उप्रेती[5] की पुस्तक 'भारतीय जनजातियाँः संरचना एवं विकास' भारत में जनजातियों की संरचना एवं उनके विकास पर एक तथ्यपरक परिप्रेक्ष्य रखती है। पुस्तक जनजातीय समाज के बीच उनकी सामाजिक संरचना, विवाह प्रणाली, नातेदारी, गोत्र व्यवस्था, वंश परंपरा, वसीयत, उत्तराधिकार एवं आवास व्यवस्था के साथ साथ उनके बीच राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था का विवेचन तथ्यपरक ढंग से किया गया है।

जियाउद्दीन अहमद[6] की पुस्तक की पुस्तक 'बिहार के आदिवासी' बिहार की समस्त जनजातियों के बीच धर्म, जादू, टोटम, युवागृह के साथ-साथ विवाह, परिवार एवं नातेदारी जैसे पक्षों का गंभीर एवं तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक खासतौर से उरांव, मुंडा, संथाल, हो, बिरहोर, खरिया, जनजातियों की संस्कृति के साथ-साथ आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनके बीच अर्थव्यवस्था एवं उनके विभिन्न संगठनों को बेहतर ढंग से प्रदर्शित करती है।

योगेश अटल एवं यतीन्द्र सिंह सिसोदिया[7] की पुस्तक 'आदिवासी भारत' विविध जनजातीय समाजों के तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में लेखक द्वय ने आदिवासी भारत के परिचयात्मक विश्लेषण के साथ-साथ आदिवासियों की बदलती जनसंख्यात्मक स्थिति का भी विश्लेषण किया है। पुस्तक यह भी निश्चित करती है कि आज जनजातीय समाज अपने परंपरागत जीवन शैली से दूर हिंदुत्व के द्वार पर कदम रख चुका है।

बृजकिशोर शर्मा[8] की पुस्तक 'राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आंदोलन' को लेखक ने कुल 10 अध्यायों में विभक्त करके पूर्ण किया है। जिसमें मुख्य रुप से 19वीं सदी के आदिवासी प्रतिरोध के रूप में विद्रोह, भील विद्रोह एवं मीणा विद्रोह की तथ्य परक विवेचना की गई है।

पी.आर. नायडू[9] की पुस्तक 'भारत के आदिवासी' जनजाति समाज की विवेचना प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक कुल 15 अध्यायों में विभक्त करके पूर्ण की गई है। जिसमें मुख्य रुप से भारत की आदिवासियों का परिदृश्य एवं उनकी जन संस्कृति के साथ आदिवासी जीवन, वन, जंगल की भी तथ्यपरक विवेचन की गई है। पुस्तक आदिवासी समाज की शिक्षा और उनसे जुड़ी समस्याओं का भी चित्रण प्रस्तुत करती है।

धर्मराज सिंह[10] की पुस्तक 'अरुणाचल की आदि जनजाति का समाजभाषिकी अध्ययन' कुल 7 अध्यायों में विभक्त करके पूर्ण की गई है। पुस्तक के अंतर्गत समाजभाषिकी का सैद्धांतिक स्वरूप, अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों एवं आदि जनजाति का परिचय, आदि जनजाति की सामाजिक संरचना एवं उससे जुड़ी शब्दावली का तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य : प्रस्तुत शोध आलेख की समस्त विषय-वस्तु चेरो जनजातियों के जीवन एवं उनकी समस्याओं पर आधारित है। शोध आलेख में महत्वपूर्ण अवधारणा के

रूप में जनजातीय समस्याओं को देखा जा सकता है। जनजातियों की समस्याओं के संदर्भ में के. एल. शर्मा कहते हैं कि ''जनजातीय स्थिति भारत के सब भागों में समान नहीं है। उत्तर-पूर्व भारत में कई वर्षों से स्थिति बिगड़ी हुई है और मध्यभारत में गरीबी, बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता, पिछड़ापन और अज्ञानता आदि की समस्या तीक्ष्ण बनी हुई है।''[11]

जनजातियों की समस्याओं के संदर्भ में डी.एन. मजूमदार एवं टी.एन. मदन कहते हैं कि ''संपूर्ण जनजातीय भारत आज संक्रमण के कठिन दौर से गुजर रहा है। प्रत्येक जनजाति या जनजातियों के समूह की इसके प्रति समान प्रतिक्रिया नहीं है। यह बात इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि विभिन्न जनजातियों की जनसंख्या वृद्धि प्रवृत्तियों में कोई एकरूपता नहीं है। एक तरफ भील, गोंड एवं कुछ अन्य जनजातियां हैं जो शेष भारत के अनुरूप तीव्र गति से अपनी जनसंख्या वृद्धि कर रही हैं तो दूसरी तरफ कोरवा और टोडा भी हैं, जिनकी संख्या गंभीर रूप से कम होती जा रही है।''[12]

जनजातियों की समस्याओं के संदर्भ में मधुसूदन त्रिवेदी कहते हैं कि- ''जनजातियां वर्तमान में अत्याधुनिक संकटमय अवस्था में से होकर गुजर रही हैं। विशेषकर भारतीय जनजातियां इस समय तेजी से परिवर्तन के नाजुक दौर से या कहें संक्रमण काल से गुजर रही हैं। एक ओर प्रत्येक जनजातीय समूह अपने परंपरागत सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की मुख्य धारा में स्वयं को एकीकृत भी कर लेना चाहता है।''[13]

वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर जनजातीय समाज के दर्द का विश्लेषण करते हैं हुए ज्यां द्रेज़ एवं अमर्त्य सेन लिखते हैं कि- ''हमारी बात कोई नहीं मानेगा- हम लोग लाठी चलाने वाले नहीं हैं।'' यह कहना था छत्तीसगढ़ में सरगुजा जिले के दूर-दराज के गांव झापर की एक आदिवासी महिला का। यह 2001 के अक्टूबर महीने की बात है। वह अपने इलाके में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) की निष्क्रियता को लेकर नाराज थी। राशन की दुकान वहां से पैदल 3 घंटे दूरी पर थी। केवल यह दूरी ही वहाँ के लोगों की परेशानी का कारण नहीं थी।''[14]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर देखा जाय तो जनजातीय समाज विविध समस्याओं के साथ जीवन को गति दे रहा है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-आलेख के अधोलिखित उद्देश्य हैं :

1. चेरो जनजातियों की जीवन संस्कृति का तथ्यपरक अध्ययन करना।
2. चेरो जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करना।
3. चेरो जनजातियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना।
4. चेरो जनजातियों के स्वास्थ्य से जुड़े निदान के पक्षों को प्रस्तुत करना।

उपकल्पना

प्रस्तुत शोध-आलेख को अधोलिखित परिकल्पना के आधार पर परिसीमित किया गया है :

1. चेरो जनजातियाँ उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी गरीबी की समस्या से जूझ रही हैं।
2. चेरो जनजातियाँ के बीच स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या के साथ जीवन को गति दे रही हैं।
3. चेरो जनजातियों के बीच सरकारी नौकरी एवं रोजगार की समस्या बड़े स्तर पर विद्यमान हैं।
4. चेरो जनजातियाँ भाषा एवं सामाजिक सम्पर्क की समस्या से बड़े स्तर पर प्रभावित हैं।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र सोनभद्र जनपद है। 2011 की जनगणना के अनुसार वर्तमान समय में सोनभद्र जनपद में कुल चेरो जनजातीय लोगों की संख्या 56833 हैं। यही जनसंख्या प्रस्तुत शोध के समग्र रूप में है। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत न्यादर्श के रूप में सम्पूर्ण समग्र में से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से कुल 50 लोगों को चयनित किया गया है। शोध की प्रकृति वर्णानात्मक है। इसमें साक्षात्कार विधि के माध्यम से तथ्यों का चयन किया गया है। शोध को पूर्ण करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण : चयनित उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के उपरान्त प्राप्त तथ्यों के आधार पर विश्लेषण, उसके परिणाम एवं प्रतिवेदन को अधोलिखित बिन्दुओं पर प्रस्तुत किया गया है:

गरीबी की समस्या : भारत ही नहीं, वरन् वैश्विक पटल पर गरीबी को सार्वभौमिक अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है। जनजातीय समाज भी आर्थिक स्तर पर बहुत

सम्पन्न नहीं हैं। चेरो जनजातियाँ भी आर्थिक स्तर पर कमजोर हैं। अस्तु, इसी संदर्भ में चेरो जनजातियों के गरीबी सम्बन्धित समस्या को अधोलिखित तालिका के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है :

तालिका संख्या 1

गरीबी की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	40	80.00
नहीं	6	12.00
अनुत्तर	4	8.0
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका को देखें तो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है कि 80 प्रतिशत चेरो लोगों ने स्वीकार किया है कि उनके जीवन में गरीबी एक प्रमुख समस्या के रूप में हैं। जबकि 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में नकारात्मक उत्तर दिया। शेष 8 प्रतिशत उत्तरदाता अनुत्तर रहे। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनजातीय समाज खासतौर से चेरो समाज गरीबी की समस्या से बड़े स्तर पर जूझ रहा है। तथ्य के आधार पर हमारी उपकल्पना संख्या 1 सत्य सिद्ध होती है।

शिक्षा की समस्या : भारत की प्रमुख समस्या के रूप में शिक्षा की समस्या को देखा जा सकता है। भारत के कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकांश राज्यों में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग शिक्षा से वंचित है। जनजातीय समाज के बीच शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनजातीय शिक्षा का प्रतिशत 59 प्रतिशत रहा है।[15] तुलनात्मक रूप में हम देखें तो अन्य की अपेक्षा यह प्रतिशत बहुत ही कम है। शिक्षा के अभाव के कारण जनजातीय समाज मुख्यधारा में जुड़ने में असमर्थ दिखता है। साथ ही विभिन्न अवसरों को प्राप्त करने में भी असमर्थ हैं। आनन्द मूर्ति मिश्रा ने अपने शोध आलेख 'हल्वा जनजाति में स्वास्थ्य जागरूकता का अध्ययन बस्तर के संदर्भ' से निष्कर्ष निकाला कि 40.67 प्रतिशत हल्वा परिवार अशिक्षित हैं। अर्थात् इनके बीच शिक्षा की समस्या बनी हुई है।[16] चेरो जनजातियां शिक्षा के अभाव को एक समस्या के रूप में स्वीकार कर रही हैं अथवा नहीं? इसी पक्ष का तथ्यपरक विश्लेषण अधोलिखित तालिका में दर्शाया गया है :

तालिका संख्या 2

शिक्षा की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	41	82.00
नहीं	05	10.00
अनुत्तर	04	8.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में प्रदर्शित तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 82 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि जनजातीय समाज की सबसे बड़ी समस्या शिक्षा का अभाव है। 10 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षा को एक समस्या के रूप में स्वीकार नहीं करते जबकि 8 प्रतिशत उत्तरदाता इस संदर्भ में अनुत्तरित रहे। अस्तु, अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि जनजातीय समाज की एक प्रमुख समस्या शिक्षा की एक समस्या है, शिक्षा के अभाव में वे उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी समाज के मुख्यधारा से अलग-थलग पड़े हुए हैं।

चिकित्सा की समस्या : मानव सभ्यता की यात्रा परम्परागत चिकित्सा से समृद्ध रही है। लेकिन आज आधुनिक चिकित्सा पद्धति का बोलबाला है। इसके पीछे का मूल कारण यह है कि प्रकृति से दूर होते हुए लोग प्रकृति का अंधाधुंध दोहन और विविध स्तरों पर होने वाले प्रदूषण ने रोगों को जन्म दिया है। लोग आधुनिक जनित रोगों से परेशान दृष्टिगोचर होते हैं। जनजातीय समाज भी बड़े स्तर पर स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से परेशान हैं। सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों के विभिन्न आँकड़ें बताते हैं कि चिकित्सा के अभाव में जनजातीय समाज में मृत्यु का प्रतिशत अन्य के अपेक्षा कहीं अधिक है। इसके अलावा चिकित्सा तंत्र की कमी, गरीबी भी उनके खराब स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी है। अस्तु, इसी परिप्रेक्ष्य में चेरो जनजातियों से प्राप्त तथ्यों को अधोलिखित तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या 3

चिकित्सा सम्बन्धी समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	45	90.00
नहीं	00	00.00
अनुत्तर	05	10.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में 90 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वास्थ्य

सम्बन्धी समस्याओं और चिकित्सा सुविधा की अनुपलब्धता को स्वीकार किया है, जबकि शेष 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया। इस तथ्य के आधार पर कहा जा सकता है कि जनजातीय समाज स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना कर रहा है। इसमें अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह भी स्वीकार किया कि इन्हें बहुतायत स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ नहीं होती। परन्तु सामान्य प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं के लिए भी दवा उपलब्ध नहीं होती। सामान्य समस्याओं के लिए सरकारी अस्पताल में जाना दुष्कर है, क्योंकि इनके आवास से सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र काफी दूर हैं और इन लोगों के पास इतनी पूँजी नहीं है कि निजी चिकित्सकों से दवा ले सकें। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि चेरो जनजातीय समाज की एक बड़ी समस्या स्वास्थ्य एवं उससे सम्बन्धित तंत्र भी हैं।

जल की समस्या : मानव सभ्यता की विकास यात्रा में प्रकृति के अंधाधुंध दोहन के कारण आज पीने के लिए स्वच्छ जल की समस्या वैश्विक समस्या बन गयी है। भूमिगत जलस्तर निरन्तर नीचे जा रहा है तो दूसरी तरफ पहाड़ी क्षेत्र में जल के अभाव के कारण जनसंख्या का एक बड़ा भाग दूषित जल पीने के लिए मजबूर है। पहाड़ी क्षेत्रों में जल के अभाव में सभी प्रकार की खेती भी नहीं हो पा रही है, जिसके कारण उन्हें भुखमरी का भी सामना करना पड़ रहा है। चेरो समाज भी इससे अछूता नहीं है। चेरो समाज की संरचना को हम देखें तो यह समाज तालाबों, जलाशयों एवं झरनों से जल का संग्रहण करता रहा है और इसी जल से उसका जीवन भी गतिमान रहा है। अस्तु, इसी संदर्भ में चेरो जनजातियों के बीच जल की समस्या को अधोलिखित तालिका के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या 4

जल की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	40	80.00
नहीं	00	00.00
अनुत्तर	10	20.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका के माध्यम से स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाता जल की समस्या से जूझ रहे हैं, जबकि 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में कोई उत्तर नहीं दिया। अतः निष्कर्षतः क हा जा सकता है कि जनजातीय समाज पीने के साथ-साथ कृषि के लिए भी जल की समस्या से जूझ रहा है।

उपजाऊ भूमि की समस्या : उत्तर प्रदेश का सोनभद्र जनपद पहाड़ों से ही घिरा है जिसके कारण वे उस पर अच्छी खेती नहीं कर पाते हैं। साथ ही साथ पत्थर होने के कारण पानीदार फसलें नहीं उगाई जाती हैं। जैसे- गेहूं, धान की फसलें बहुत ही कम हो पाती हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में चेरो लोगों से प्राप्त तथ्यों को अधोलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका संख्या 5

उपजाऊ भूमि की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	45	90.00
नहीं	01	02.00
अनुत्तर	04	08.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका का मूल्यांकन किया जाए तो 90 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि जनजातीय समाज की सबसे बड़ी समस्या उपजाऊ भूमि की है। जबकि 02 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक उत्तर दिया। शेष 8 प्रतिशत उत्तरदताओं ने इस संदर्भ में कोई भी मत नहीं दिया। सर्वाधिक 90 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि सोनभद्र की चेरो जनजातियों की सबसे बड़ी समस्या उपजाऊ भूमि की है।

स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या : स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या विकासशील देशों की प्रमुख समस्या है। भारत के संदर्भ में हम देखें तो यहाँ के एक बड़े हिस्से में स्वास्थ्य की समस्याओं के साथ-साथ उससे जुड़ी पोषण की समस्या बड़े स्तर में हैं। जनजातीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। चेरो जनजातियों में स्वास्थ्य एवं पोषण के संदर्भ में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण तालिका 6 के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है :

तालिका संख्या 6

स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	40	80.00
नहीं	07	14.00
अनुत्तर	03	06.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में देखा जाय तो 80 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने इस बात को स्वीकार किया है कि आज चेरो जनजातियों में स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या बड़े स्तर में है। 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में नकारात्मक उत्तर दिया। शेष 6 प्रतिशत उत्तरदाता अनुत्तर रहे। इस तथ्य से यह अवधारणा निर्मित होती है कि जनजातीय समाज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्याओं से जूझ रहा है। प्रस्तुत तथ्य के आधार पर हमारी उपकल्पना संख्या 2 सत्य सिद्ध होती है।

सामाजिक सम्पर्क की समस्या : जनजातीय समाज आज भी विविध स्तरों पर समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ा हुआ है। सुदूर जंगलों, पहाड़ों, दुर्गम स्थानों पर इनकी संख्या बहुतायत देखी जा सकता है। ऐसे स्थानों पर आज भी बिजली, पानी, यातायात और संचार के साधनों की अनुपलब्धता देखी जा सकती है। इसी तथ्य के परीक्षण हेतु चेरो लोगों से साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों को इस तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या 7

सामाजिक सम्पर्क की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	43	86.00
नहीं	02	04.00
अनुत्तर	05	10.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में 86 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि जनजातीय समाज की प्रमुख समस्या सामाजिक सम्पर्क न होना है। जबकि 4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में नकारात्मक उत्तर दिया। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में कोई उत्तर नहीं दिया। इस तथ्य से यह अवधारणा निर्मित होती है कि चेरो जनजातियाँ आज भी समाज के मुख्यधारा में सामाजिक सम्पर्क न होने के कारण पूरी तरह से नहीं जुड़ पायी है। इस निष्कर्ष से हमारी उपकल्पना संख्या 4 सत्य सिद्ध होती है।

ऋणग्रस्तता की समस्या : जनजातियों की एक प्रमुख समस्या ऋणग्रस्तता की भी दृष्टिगोचर होती है। आज भी जनजातीय समाज का एक बड़ा भाग आर्थिक कुलीनों एवं साहूकारों के ऋण के बोझ तले दबा हुआ है। भारत में सम्बन्धित विविध घटनाओं को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सोशल मीडिया एवं प्रिंट मीडिया के माध्यम से बखूबी देखा जा सकता है। चेरो जनजातियों के बीच ऋणग्रस्तता की स्थिति को अधोलिखित तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है:

तालिका संख्या 8

ऋणग्रस्तता की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	30	60.00
नहीं	15	30.00
अनुत्तर	05	10.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि जनजातीय समाज ऋणग्रस्तता जैसी समस्या से प्रभावित है जबकि 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऋणग्रस्तता को स्वीकार नहीं किया है। शेष 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में उत्तर नहीं दिया है। इस तथ्य से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चेरो जनजातियों का एक बड़ा भाग ऋणग्रस्तता के साथ-साथ जीवन को गति दे रहा है।

रोजगार एवं सरकारी नौकरी की समस्या : जनजातीय समाज के बीच रोजगार एवं सरकारी नौकरी की समस्या अभी भी दृष्टिगोचर होती है। रोजगार के अभाव में इनकी मौलिक आवश्यकताएं अच्छे ढंग से पूरी नहीं हो पाती हैं। चेरो जनजातियों के बीच रोजगार सम्बन्धी समस्या को अधोलिखित तालिका के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या : 9

रोजगार एवं सरकारी नौकरी की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	40	80.00
नहीं	04	08.00
अनुत्तर	06	12.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में वर्णित तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि जनजातीय समाज अच्छे रोजगार से वंचित हैं। साथ ही सरकारी क्षेत्रों में इनका प्रतिनिधित्व जनसंख्या के अनुरूप सुनिश्चित नहीं है, जबकि 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में नकारात्मक उत्तर दिया। शेष 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उत्तर नहीं दिया। अस्तु, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जनजातीय

समाज स्वयं के रोजगार एवं सरकारी क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व को भी पूरा नहीं कर पा रहा है। इस निष्कर्ष से हमारी उपकल्पना संख्या 3 सत्य सिद्ध होती है।

पर्याप्त कैलोरीयुक्त भोजन की समस्या : पर्याप्त कैलोरीयुक्त भोजन की उपलब्धता मानव की मौलिक आवश्यकता है जिसको सुनिश्चित कराना सरकारों की जिम्मेदारी होती है। लेकिन आज पर्याप्त कैलोरी की समस्या से कुछ देशों को छोड़कर पूरी दुनियां जूझ रही है। आज यह एक वैश्विक समस्या के रूप में दृष्टिगोचर है। जनजातीय समाज भी इस समस्या से अछूता नहीं है। इसी तथ्य का प्रदर्शन अधोलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका संख्या 10

पर्याप्त कैलोरीयुक्त भोजन की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	48	96.00
नहीं	00	00.00
अनुत्तर	02	04.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में वर्णित तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि 96 प्रतिशत उत्तरदाता स्वास्थ्य एवं पोषण की समस्या को स्वीकार करते दिखते हैं, शेष 4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में कोई उत्तर नहीं दिया। इस तथ्य के आधार पर निष्कर्षतः जनजातीय समाज आज भी निर्धारित कैलोरीयुक्त भोजन से वंचित है।

भाषा की समस्या : भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। भाषा अर्थात अभिव्यक्ति से ही एक सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। आज अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा का बोल-बाला हैं। आधुनिक शिक्षा एवं व्यवसाय में परंपरागत भाषा की बजाय इन दोनों भाषाओं की अनिवार्यता वैधानिक रूप से सुनिश्चित हुई है। आधुनिक भाषा के प्रचार-प्रसार एवं भाषायी द्वंद के बीच जनजातीय समाज काफी पिछड़ गया। आज भाषा के पिछड़ाव को लेकर जनजातीय समाज मुख्यधारा से अलग-थलग दिखाई पड़ता है। अस्तु, इस तथ्य के परीक्षण हेतु जनजातियों से प्राप्त तथ्यों को अधोलिखित तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया गया है।

तालिका संख्या 11

भाषा की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	30	60.00
नहीं	15	30.00
अनुत्तर	05	10.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में वर्णित तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि 60 प्रतिशत उत्तरदाता जनजाजीय समाज के बीच भाषा की समस्या को स्वीकार करते दिखते हैं, जबकि 4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने भाषा को समस्या के रूप में स्वीकार नहीं किया है। शेष 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में कोई उत्तर नहीं दिया। अस्तु, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत में जनजातीय समाज भाषा की समस्या से प्रभावित है। क्षेत्रीय भाषा की प्राथमिकता के कारण विविध क्षेत्रों में जनजातीय सामाज का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। इन तथ्यों के आधार पर हमारी उपकल्पना संख्या 4 सत्य सिद्ध होती है।

नशाखोरी और मद्यपान की समस्या : नशाखोरी और मद्यपान की समस्या आज एक वैश्विक समस्या के रूप में दृष्टिगोचर होती है। जनजातीय समाज के बीच हम बात करें तो यह भी नशाखोरी एवं मध्यपान जैसी वृत्ति से प्रभावित दिखता है। नशाखोरी एवं मध्यपान के प्रभाव के रूप में सामाजिक विघटन के साथ-साथ अपराध की बढ़ती प्रवृत्ति को भी देखा जा सकता है। अस्तु, जनजातीय समाज में इस तथ्य के विश्लेषण अधोलिखित तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या 12

नशाखोरी और मद्यपान की समस्या

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	40	80.00
नहीं	07	14.00
अनुत्तर	03	06.00
योग	50	100.00

उपर्युक्त तालिका में वर्णित तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाता नशाखोरी और मद्यपान को समस्या के रूप में स्वीकार करते दिखते हैं, जबकि 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे समस्या के रूप में स्वीकार नहीं किया है। शेष 6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में कोई उत्तर नहीं दिया। अस्तु, निष्कर्षतः

कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत में जनजातीय समाज नशाखोरी और मद्यपान की समस्या से प्रभावित है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध आलेख के निष्कर्ष के संदर्भ में कहा जा सकता है कि भारत में जनजातीय समाज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी मुख्यधारा से पूरी तरह जुड़ नहीं पाया है, जिसके कारण उनको विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जनजातीय समाज का शैक्षणिक स्तर आज भी बहुत अच्छा नहीं है। उच्च शिक्षा में इनकी सहभागिता बहुत ही कम है तो दूसरी ओर आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण ये आधुनिक चिकित्सा पद्धति से भी काफी दूर हैं। आज चेरों जनजातियां स्वच्छ जल की समस्या से भी जूझ रही हैं। सोनभद्र की बहुतायत जमीनें या तो पहाड़ों से घिरी हैं, या तो पत्थरों से भरी पड़ी हैं, जिसके कारण ज्वार-बाजरा अर्थात मोटे अनाज की ही खेती हो पाती है, अन्य फसलों के उत्पादन से भी वे वंचित हैं। क्षेत्र कार्य के दौरान एवं साक्षात्कार के आधार पर पाया गया कि चेरों जनजातियां सामाजिक संपर्क, ऋणग्रस्तता एवं धार्मिक अलगाव जैसी वैचारिकी से भी जूझ रही हैं। आज जनजातीय समाज के बीच सबसे विकट समस्या रोजगार की समस्या है। रोजगार के अभाव में वे अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित दृष्टिगोचर होते हैं। नशाखोरी, मद्यपान एवं भाषा की समस्या भी जनजातीय समाज के पैरों को जकड़े हुए हैं। इस तरह हम देखें तो उत्तर प्रदेश की चेरों जनजाति का एक बड़ा भाग विविध समस्याओं के बीच जीवन को गति दे रहा है। आज एक बार फिर आवश्यकता है इन्हें मुख्यधारा से जोड़कर उनके पुनर्वास करने की। तभी इनके प्रति वास्तविक न्याय हो पाएगा। सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों को नए ढंग से नीति निर्माण करने की आवश्यकता है। योजनाओं का एक ऐसा खाका तैयार करना होगा जिससे जनजातीय समाज का अंतिम व्यक्ति भी लाभान्वित हो सके।

संदर्भ

1. उत्प्रेती, हरिश्चन्द्र, 'भारतीय जनजाजियाँ : संरचना एवं विकास', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ.1
2. वही, पृ.1
3. त्रिवेदी, मधुसूदन, 'सामाजिक नृ-विज्ञान', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
4. मजूमदार, डी. एन. एवं टी. एन. मदन, 'सामाजिक मानवशास्त्र परिचय', मयूर पेपर बैक्स, नोयडा, 2008
5. उत्प्रेती, हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त
6. अहमद, जियाउद्दीन, 'बिहार के आदिवासी', मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 1992
7. अटल, योगेश एवं यतीन्द्र सिंह सिसोदिया, 'आदिवासी भारत', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011
8. शर्मा, बृजकिशोर, 'राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आंदोलन', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007
9. नायडू, पी.आर., 'भारत के आदिवासी', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1997
10. सिंह, धर्मराज, 'अरुणाचल की आदी जनजाति का समाजभाषिकी अध्ययन', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
11. शर्मा, के. एल., 'भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन', रावत पब्लिकेसंस, जयपुर, 2010, पृ. 88
12. मजूमदार, डी. एन. एवं टी. एन. मदन, पूर्वोक्त, पृ. 235
13. त्रिवेदी, मधुसूदन, पूर्वोक्त, पृ. 185
14. द्रेज़, ज्यां एवं अमर्त्य सेन, 'भारत और उसके विरोधाभास', राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ. 188
15. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1527342#:~:text=%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%97%E0%A4%A3%E0%A4%A8%E0%A4%BE
16. मिश्रा, आनन्द मूर्ति : 'हल्वा जनजाति में स्वास्थ्य जागरूकता का अध्ययन बस्तर के संदर्भ में', राधा कमल मुकर्जी : 'चिन्तन परम्परा', जनवरी-जून, 2020, पृ. 107

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

विद्यालय नेतृत्व एवं जेंडर चुनौतियाँ : छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले की महिला प्राचार्यों के सन्दर्भ में एक अध्ययन

❑ डॉ. ज्योति वर्मा

सूचक शब्दः विद्यालय नेतृत्व, जेंडर एवं नेतृत्व चुनौतियाँ एवं महिलाओं हेतु नेतृत्व चुनौतियाँ

विद्यालय नेतृत्व के पदों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम पाया गया है और ज्यादातर समय उन्हें एक विद्यालय नेता के रूप में कमतर आंका जाता है या गलत पहचाना जाता है। एक शिक्षक के रूप में तो, उन्हें स्वीकार किया जाता है, किन्तु नेतृत्व के पदों पर चयन हेतु आने पर उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना होता है। प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में महिला प्राचार्य के नेतृत्व में आने वाली जेंडर चुनौतियों की पहचान कर उनका पता लगाने का प्रयास किया गया है। शोधकर्ता द्वारा तैयार अर्ध-संरचित-साक्षात्कार उपकरण का प्रयोग प्रदत्त संकलन हेतु किया गया तथा छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले की कुल दस महिला प्राचार्यों का चयन सुविधाजनक न्यादर्शन विधि से किया गया था। प्रदत्त विश्लेषण हेतु गुणात्मक विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया एवं इस अध्ययन के प्रदत्त विश्लेषण से पता चलता है कि भले ही विद्यालय नेतृत्व की भूमिकाओं में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है, फिर भी नेतृत्व की पहचान पुरुषों के साथ की जाती है। अध्ययन में भाग लेने वाली सभी महिला प्राचार्यो का मानना था कि मुख्य रूप से उन्हे जेंडर चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। हालांकि, इन सभी महिला प्रचार्यों ने पुरुष प्रचार्यों से अलग अपनी क्षमताओं को प्रभावी ढंग से साबित करने के प्रत्येक अवसर का भरपूर लाभ उठाया था।

शिक्षा की दुनिया में, जहाँ महिलाएं संख्यात्मक रूप से प्रबल होती हैं, यह मान लेना आसान है कि शैक्षिक नेतृत्व में भी उनका प्रतिनिधित्व अधिक होना चाहिए। कोलेमन[1] के अनुसार शैक्षिक नेतृत्व में महिलाओं से संबंधित शोध निष्कर्षों से पता चलता है कि यह सच्चाई से बहुत दूर है, और पुरुषों के साथ नेतृत्व की पहचान होती है और शिक्षा नेतृत्व के क्षेत्र में एक पुरुष स्टीरियोटाइप जैसा अंतर्निहित मानदंड आज भी है। इस विषय पर ईगली एंड कार्ली[2] कहती हैं "पुरुष नेतृत्व की भूमिकाएँ वर्षों से आदर्श रही हैं, इसलिए नेतृत्व को एक मर्दाना डोमेन के रूप में माना जाता रहा है। परंपरागत रूप से मर्दाना गुणों जैसे आत्मविश्वास और प्रभुत्व को नेतृत्व के लिए आवश्यक माना गया है जिसके कारण पुरुषों को नेतृत्व की भूमिका प्राप्त करने में महिलाओं की तुलना में स्पष्ट लाभ मिलता है" कोलेमन[3] के अनुसार, जेंडर केवल एक तरीका है जिसमें व्यक्तियों को नेतृत्व तक पहुँचने और प्रयोग करने में हाशिए पर रखा जा सकता है, लेकिन इसका प्रभाव राष्ट्रीय सीमाओं और समय के प्रभाव के पार व्यापक है। शैक्षिक प्रबंधन और नेतृत्व में यह लैंगिक असमानता न केवल भारत में, बल्कि कई अन्य देशों में भी अनुभव की जाती है।

कई शोधकर्ताओं ने उच्च नेतृत्व की स्थिति में महिलाओं की गैर-भागीदारी के लिए कुछ स्पष्टीकरण खोजने का प्रयास किया है एवं साहित्य समीक्षा से पता चलता है कि महिलाओं की उच्च नेतृत्व की स्थिति में सफलता की कमी के लिए कई अलग-अलग जेंडर चुनौतियाँ एवं बाधाएं हैं। एन. मिताली[4] ने अपनी पुस्तक "वीमेन इन स्कूल लीडरशिप" में भी लिखा है कि 'भारत में महिलाओं को विद्यालय नेतृत्व की स्थिति में कम प्रतिनिधित्व दिया जाता है और ज्यादातर समय उन्हें एक विद्यालय नेता के रूप में गलत पहचान का अनुमान लगाया जाता है। एक शिक्षक के रूप में, उन्हें स्वीकार किया जाता है, लेकिन विद्यालय नेतृत्व के पदों पर आने पर वे चयन के लिए उत्तोलन करते हैं। शोध यह भी बताते हैं कि हम महिलाओं की नेतृत्व भूमिकाओं के अनुभव के बारे में कम जानते हैं कि वे अपनी उच्च स्थिति को कैसे प्राप्त करती हैं, और वे कैसे सफल हुई हैं उनकी सफलता के साथ कौन कौन सी बाधाओं एवं जेंडर चुनौतियों का सामना उनको करना पड़ा था। अगर यह हमें पता होगा तो विद्यालय नेतृत्व के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या और

❑ सहायक प्राध्यापक, गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, (छत्तीसगढ़)

अधिक बढ़ने की संभावना होगी। इसलिए, यह सार्थक है कि आधुनिक शैक्षिक सुधारों के परिदृश्य में नेतृत्व की पारंपरिक परिभाषाओं, नेतृत्व की स्थिति में महिलाओं के अनुभव और उनके नेतृत्व के कामकाज की जांच करना महत्वपूर्ण है। दुनिया भर के कई शोधकर्ताओं ने नेतृत्व में महिलाओं के नेतृत्व अनुभवों पर विशेष ध्यान देने पर विचार किया। हालाँकि, इस संबंध में भारतीय अध्ययनों की आज भी कमी है।

साहित्य समीक्षा : ग्रोगन[5] के अनुसार सत्ता की स्थिति में महिलाओं की अनुपस्थिति से पता चलता है कि महिलाओं को पारंपरिक सैद्धांतिक लेंस के माध्यम से देखा जा रहा है और उन आदर्शों के खिलाफ मापा जा रहा है जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से पुरुषों की सबसे अच्छी सेवा की है। समीक्षा से पता चलता है कि आमतौर पर महिलाओं, पुरुषों और नेताओं के लिए जो विशेषताएँ होती हैं, वे उन चुनौतियों में योगदान करती हैं जिनका सामना महिलाओं को नेतृत्व की भूमिकाएँ प्राप्त करने और उनमें अच्छा प्रदर्शन करने में करना पड़ता है।

लेविट[6] ने इस मुद्दे पर टिप्पणी की और कहा कि महिलाओं के लिए अलग-अलग चुनौतियाँ हैं जो नेतृत्व की स्थिति ग्रहण करना चाहती हैं, या तो अपनी पसंद से या अपनी क्षमताओं के स्वभाव से। वे यह भी सुझाव देते हैं कि नेतृत्व की पारंपरिक परिभाषाओं, नेतृत्व शैलियों और नेतृत्व में जेंडर की भूमिका की जांच इन चुनौतियों को समझने के लिए एक आधार प्रदान करती हैं और सुधार और समर्थन के अवसरों के लिए एक मंच तैयार करती है।

ईगल और कार्ली[7] अपनी किताब "Through the Labyrinth : The Truth About How Women Become Leaders" में महिलाओं हेतु नेतृत्व भूमिका में तीन प्रकार की जेंडर चुनौतियों की व्याख्या करती हैं जो कि महिलाओं की उन्नति में बाधा डालती है। कंक्रीट की दीवार, कांच की छतें और भूलभुलैया। कंक्रीट की दीवार का रूपक एक अभेद्य अवरोध का प्रतिनिधित्व करता है जो स्पष्ट, निरपेक्ष है, और महिलाओं के नेतृत्व की स्थिति में आगे बढ़ने के मार्ग को पूरी तरह से अवरुद्ध करता है। इसके अलावा, शीर्ष नेतृत्व पदों तक महिलाओं की सीमित पहुंच को बाद में ''कांच की छत'' (ग्लास सीलिंग) के रूप में संदर्भित किया जाता है, जो भेदभाव के लिए एक रूपक है जो महिलाओं को नुकसान में डालता है जब उन्हें संगठनात्मक नेतृत्व की स्थिति में उन्नति के लिए माना जाता है। मूल रूप से, ''ग्लास सीलिंग'' शब्द को हाइमोविट्ज और शेलहार्ट[8] द्वारा कॉर्पोरेट महिलाओं पर एक रिपोर्ट में गढ़ा गया था। कांच की छत एक अवधारणा है जो अक्सर उन महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली बाधाओं को संदर्भित करती है जो निगमों, सरकार, शिक्षा और गैर-लाभकारी संगठनों में वरिष्ठ पदों (साथ ही उच्च वेतन स्तर) को प्राप्त करने का प्रयास या आकांक्षा करती हैं। ईगल और कार्ली ने आगे कहा कि एक कठोर, अभेद्य बाधा का कांच की छत का रूपक अब 21 वीं सदी में महिलाओं के लिए एक निश्चित वास्तविकता नहीं है। इसलिए, वे वर्तमान परिदृश्य में कांच की छत की अवधारणा को नकारती हैं और उच्च-स्तरीय पदों की तलाश करने वाली महिलाओं की जटिलता को बेहतर ढंग से समझने के लिए एक वैकल्पिक रूपक की पेशकश करती हैं। भूलभुलैया जटिल यात्रा के विचार को बताती है जिसमें चुनौतियों को अप्रत्याशित और अपेक्षित मोड़ और मरोड़ दोनों सम्मिलित हैं। इसके अलावा, उनका तर्क है कि कांच की छत के प्रतीक स्पष्ट कट जेंडर भेदभाव के बजाय नेतृत्व की तलाश करने वाली महिलाओं के लिए अस्पष्ट और स्पष्ट दोनों तरह की बाधाएं उपस्थिति को बतलाती हैं।

इसी प्रकार से वर्ष 1999 में ग्रोव और मोंटगोमरी[9] ने अपने शोध पत्र 'महिलाएं और नेतृत्व प्रतिमानः लिंग अंतर को पाटना' में महिला नेताओं के कम प्रतिनिधित्व के लिए जेंडर अंतर और तीन जेंडर आधारित मॉडल प्रस्तुत किये थे। उनका पहला मॉडल मेरिटोक्रेसी मॉडल या व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य मॉडल है जो महिलाओं के व्यक्तिगत परिपेक्ष्य को इसका कारण देखता है और समझाता है कि महिलाओं के व्यक्तिगत लक्षण, विशेषताएं, क्षमताएं, या गुण, आत्म-छवि, आत्मविश्वास, प्रेरणा और आकांक्षाओं और व्यक्तिगत दृष्टिकोण भी इसका प्रमुख कारण हैं। इस मॉडल से जुड़ी मान्यता यह है कि महिलाएं पर्याप्त रूप से मुखर नहीं हैं, वे सशक्त नहीं है आत्मविश्वास की कमी है, पदों की आकांक्षा नहीं है, वे खेल खेलने या सिस्टम पर काम करने के लिए तैयार नहीं हैं, और वे ऐसा नहीं करती हैं। उन्हे नौकरियों के लिए आवेदन करना चाहिए। दूसरा मॉडल, संगठनात्मक परिप्रेक्ष्य या भेदभाव मॉडल, शैक्षिक प्रणाली पर केंद्रित है। इस मॉडल में महिलाओं के लिए सीमित अवसरों के प्रभाव के रूप में कैरियर की आकांक्षाओं और पुरुषों और महिलाओं की उपलब्धियों के बीच अंतर का वर्णन किया गया है। इसके अलावा, यह मॉडल बतलाता है कि कैसे संगठनात्मक

ढांचे और शिक्षा में प्रथाओं ने महिलाओं के साथ भेदभाव किया और तीसरा मॉडल जो महिला का स्थान या सामाजिक परिप्रेक्ष्य मॉडल है, सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंडों पर जोर देता है जो भेदभावपूर्ण प्रथाओं को प्रोत्साहित करते हैं।

क्यूबिलो और ब्राउन[10] ने अपने अध्ययन की समीक्षा में, स्कूल नेतृत्व की स्थिति में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व के कारणों का अध्ययन किया और इसकी व्याख्या करने के लिए तीन मॉडलों का सुझाव दिया, घाटे का मॉडल, आंतरिक अवरोध मॉडल, और संस्कृति और परंपराएं। घाटे के मॉडल में, महिलाओं को पुरुषों के स्तर तक प्रशिक्षित और शिक्षित देखा जाता है, न कि उन्हें इस बात के लिए महत्व दिया जाता है कि वे इस क्षेत्र में क्या ला सकती हैं। आंतरिक अवरोध सिद्धांत का तात्पर्य इस धारणा से है कि महिलाओं में आत्मविश्वास, प्रतिस्पर्धात्मकता की कमी होती है और उनमें असफलता का डर होता है, जो महिलाओं पर पुरुषों के ऐतिहासिक प्रभुत्व के कारण होता है। उनका यह भी तर्क है कि आत्मविश्वास की कमी के बजाय क्षेत्र के साथ अपरिचितता के परिणामस्वरूप 'खेल के नियम' के बारे में ज्ञान की कमी होती है जो प्रारंभिक भय को जन्म देती है। लंबे समय तक शैक्षिक प्रबंधन की पुरुष प्रधान दुनिया से महिलाओं के आभासी बहिष्कार को इसी कारण से जिम्मेदार ठहराया गया है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन यह बतलाते हैं कि महिलाओं को नेतृत्व भूमिका में अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालय की महिला प्राचार्यों के सामने आने वाली नेतृत्व बाधाओं की पहचान करना एवं उनका पता लगाने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्यः बिलासपुर जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालय की महिला प्राचार्यो द्वारा सामना की जाने वाली जेंडर चुनौतियों का पता लगाना, विशेष रूप से उनके विद्यालय नेतृत्व के सन्दर्भ में।

शोध पद्धतिः बिलासपुर जिले की महिला प्राचार्यों द्वारा अनुभव की जाने वाली जेंडर चुनौतियों को समझने के लिए प्रस्तुत अध्ययन में केस स्टडी शोध विधि का प्रयोग किया गया एवं कुल दस महिला प्राचार्यों का चयन उदेश्यपूर्ण न्यादर्श चयन विधि से किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए जनसंख्या की पहचान छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले में स्थित सरकारी और निजी उच्च माध्यमिक विद्यालय में कार्यरत सभी महिला प्राचार्यों के रूप में की गई थी। अध्ययन के न्यादर्श का चयन उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि से किया गया था ताकि चयनित शोध प्रकरण पर अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त हो सके। कुछ मामलों के अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श का उपयोग किया जाता है क्योंकि अध्ययन का उद्देश्य कुछ जनसंख्या मूल्य का अनुमान लगाना नहीं है, बल्कि उन मामलों का चयन करना है जिनसे कोई भी सबसे अधिक सीख सकता है। सभी प्रतिभागियों को छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों से लिया गया था।

सभी चयनित विद्यालय के महिला प्राचार्यो के साथ एक गहन अर्ध-संरचित साक्षात्कार आयोजित किया गया था जिसमें महिलाओं के व्यक्तिपरक अनुभवों की जांच एवं खोज करना और निम्नलिखित के बारे में सीखने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। महिलाओं के करियर पथ जिस तरह से वे अपनी नेतृत्व की भूमिका निभाते हैं, उसके लिए आंतरिक और बाहरी प्रेरणा अपनी स्थिति से जुड़े कर्तव्यों का पालन करते समय आने वाली जेंडर चुनौतियाँ उनके प्रशासनिक प्रदर्शन के परिणाम और व्यक्तिगत और पेशेवर पुरस्कार प्रबंधन की विशेषताएं और शैलियाँ और उनकी धारणा है कि वे अपने प्रशासनिक कार्यों और जिम्मेदारियों को कैसे निभाते हैं। अर्ध-संरचित साक्षात्कार नारीवादी आदर्शों के साथ संगत हैं, जिसमें वे महिलाओं को उन मुद्दों पर बोलने का मौका देते हैं जो उन्हें चिंतित करते हैं और शोधकर्ताओं द्वारा उन पर अपने विचार थोपने के बजाय केंद्रीय महत्व के मामलों पर एक एजेंडा बनाने का मौका देते हैं। सभी साक्षात्कार साक्षात्कारकर्ताओं के कार्यालयों में काम के घंटों के दौरान आयोजित किए गए थे, सिवाय एक के जिन्होंने अपने घर पर शाम को साक्षात्कार आयोजित करने का विकल्प चुना था। प्रत्येक साक्षात्कार सत्र लगभग 30-40 मिनट लंबा था। यह मान लिया गया था कि प्रत्येक साक्षात्कारकर्ता के साथ समान मात्रा में साक्षात्कार समय बिताने से निरंतरता सुनिश्चित होती है जिससे अध्ययन की विश्वसनीयता बढ़ती है। इसके अलावा साक्षात्कार में, शोधकर्ता के लिए जितना संभव हो उतना विवरण दर्ज करना महत्वपूर्ण है। इसलिए साक्षात्कार और अवलोकन के दौरान नोट्स के विस्तृत सेट को पकड़ने के लिए एकत्र किए गए डेटा की सटीकता और विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए उपयोग किया गया था। डेटा विश्लेषण के लिए, डेटा को थीम के अनुसार समूहित किया गया।

अर्ध-संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्र किए गए गुणात्मक डेटा का विश्लेषण स्ट्रॉस और कॉर्बिन[11] के आगमनात्मक डेटा विश्लेषण की मदद से किया गया था, क्रमिक रूप से कोडिंग और बाद के कोड को समूहबद्ध करने के लिए शोधकर्ता द्वारा अनुसरण किया गया।

विश्लेषण

न्यादर्श महिला प्राचार्य की विशेषताएंः अध्ययन के लिए चुनी गई सभी दस महिला प्राचार्य पूर्णकालिक स्कूल प्राचार्य के रूप में कार्यरत थीं और कोई भी प्रभारी प्राचार्य के रूप में कार्य नहीं कर रही थी। वर्तमान में दस में से छह महिलाओं की शादी हो चुकी है, तीन विधवा थीं और एक अविवाहित थी। स्कूल के प्रकार की दृष्टि से दस में से सात महिलाएँ सरकारी स्कूल में और तीन निजी स्कूल में कार्यरत थीं। स्कूल के क्षेत्र के संबंध में, दस में से छह महिला उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्र से थीं जबकि केवल चार शहरी क्षेत्र से थीं। जाति के संदर्भ में, दस में से सात अनारक्षित श्रेणी से और तीन सामाजिक रूप से वंचित समूह से थीं। इसके अलावा, उनके पति या पत्नी के प्रकार के संबंध में, सभी छह विवाहित महिला प्राचार्यों के पति कामकाजी थे और उनके परिवार के प्रकार के संदर्भ में, दस में से छह के पास एकल परिवार था जबकि चार का संयुक्त परिवार था। शिक्षा की दृष्टि से दस में से पांच ने बी.एड के साथ पोस्ट ग्रेजुएशन किया था। जबकि अन्य पांच ने एम.एड के साथ स्नातकोत्तर डिग्री किया था। उत्तरदाता महिला प्राचार्यों की आयु 32 वर्ष से 68 वर्ष के बीच थी। जहां तक शिक्षण अनुभव का संबंध है, यह 07 से 23 वर्ष के बीच था। इसी तरह, प्राचार्य के रूप में अनुभव कम से कम दो साल और अधिकतम 30 साल का था।

परिणाम और प्रमुख बिंदुः साक्षात्कार से उत्पन्न सामग्री के विश्लेषण से स्पष्ट रूप से पता चला कि विद्यालय की महिला प्राचार्यो को बहुत सी जेंडर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। उन्होंने जिन बाधाओं का अनुभव किया, उन्हें निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं में वर्गीकृत किया गया है (1) महिलाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण और जेंडर रूढ़ियाँ (2) परिवार के साथ प्रशासनिक जिम्मेदारी के बीच संतुलन का संघर्ष (3) प्रोत्साहन और समर्थन की कमी (4) प्रशासनिक बाधाएं (5) अकेलापन एवं सहयोगियों से दूरी बनाए रखना (6) जेंडर एवं नेतृत्व गुण (7) निरंतर व्यावसायिक विकास और शैक्षिक अवसरों की कमी

1. महिलाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण और जेंडर रूढ़ियाँ : दस में से नौ महिला प्राचार्यों ने व्यक्त किया कि उनके अधीनस्थ कर्मचारी और समुदाय के सदस्य प्राचार्यों के मूल्य और भूमिका की उपेक्षा करते हैं। प्रतिभागियों ने अनुभव किया कि, सामान्य तौर पर, समाज महिलाओं को ऐसे व्यक्तियों के रूप में देखता है जो कुछ कार्यों और स्थितियों का प्रबंधन नहीं कर सकती है कई महिला प्राचार्यो ने उल्लेख किया कि महिलाओं के रूप में उन्हें पुरुष अधीनस्थों पर अधिकार का प्रयोग करना मुश्किल लगता है, खासकर यदि वे पुरुष कट्टरवादी हैं। इन महिला प्राचार्यो द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार थी -

प्राचार्य (7) ''अधिकतम स्कूल में पुरुष प्राचार्य है और अधिकार शिक्षक पुरुष प्राचार्य को ही प्राचार्य मानते हैं और वे महिलाओं की बातों को अनसुना कर देते हैं। मेरे स्कूल के पुरुष शिक्षक भी मेरी बात नहीं सुनते हैं और अपनी बात मनवाने के कोशिश करते हैं। मुझे स्कूल को मैनेज करने के लिए कभी कभी उनकी बात को ना चाहते हुए भी स्वीकार करना पड़ता है''

इसके अलावा, कुछ महिला प्राचार्यों मत था कि महिलाओं के नेतृत्व की भूमिका के लिए उपयुक्त नहीं होने की धारणा उनके सामने अक्सर आने वाली धारणा थी। इन महिलाओं ने विभिन्न अनुभवों का वर्णन किया जो संकेत देते थे कि उन्हें नेतृत्व भूमिका रूप में स्वीकार नहीं किया जा रहा था इस सन्दर्भ में उनके कथन निम्नानुसार थे-

प्रचार्य (3) "मेरे स्कूल में शिक्षक और छात्र हमेशा देर से आते हैं और जब मैं उनसे पूछती हूँ तो वे मुझे नजरअंदाज कर देते हैं''

प्राचार्य (5) सामाजिक पृष्ठभूमि भी नेतृत्व भूमिका को प्रभावित करती है - क्योंकि महिलाएं कई भूमिकाएं निभाती हैं - जैसे पत्नी, माँ, कार्यकर्ता इत्यादि अतः हमारे आदेशों को स्वीकार करने में उन्हे कठिनाई होती है।

प्राचार्य (2) "हम ऐसे परिवार में पले-बढ़े हैं जहां महिलाएं नेता नहीं थीं, इसलिए यह हमें प्रभावित करता है और हमें हमारे स्टाफ मेम्बर सहयोग नहीं करते हैं"

एक आदिवासी महिला प्राचार्य (9) के अनुसार ''महिला अपने स्वभाव में बोल्ड नहीं होती'' उनका कहना था कि महिलायें स्वाभाविक रूप से व्यवहार कुशल होती हैं और वे प्रेमपूर्वक अपना कार्य करवाना चाहती हैं ना कि कोई जोर जबरदस्ती करके अतः उन्हे इस कारण से कई बार कमतर समझ लिया जाता है।

पूर्व अध्ययन से पता चलता है कि कई महिलाओं ने स्वयं को एक महिला नेतृत्व कि भूमिका में अस्वीकार करने की बात बतायी है और बताया कि वे पुरुषों के बराबर ही प्रभावशाली नेतृत्व करती हैं किन्तु इस पुरुष प्रधान समाज में उन्हे हमेशा ही अपने आप को सक्षम सिद्ध करना पड़ता है। क्यूबिलो और ब्राउन[12] ने इसी तरह के निष्कर्ष के बारे में बताया है कि कई समाज केवल पुरुषों को अच्छे नेताओं के रूप में विशेषाधिकार देते हैं और महिलाओं के लिए प्रधानता तक पहुंचना आसान नहीं है क्योंकि वे मानदंडों में फिट नहीं हैं। संक्षेप में, महिलाओं को प्रधान पद के पदों के लिए अनुपयुक्त माना जाता है, न केवल इसलिए कि उन्हें प्रभावी प्रशासन के लिए लक्षणों की कमी है, बल्कि इसलिए भी कि उनके समाज के मानदंड यह मानते हैं कि उनकी पारंपरिक भूमिकाएं उनकी नौकरियों की मांग की आवश्यकताओं के साथ संघर्ष करती हैं। उनके पास कम नौकरी की प्रतिबद्धता होगी। ऊपर दी गई प्रतिक्रियाएं दर्शाती हैं कि कुछ महिलाएं नेतृत्व की भूमिकाओं को कुछ ऐसी चीज के रूप में देखती हैं जो उनके लिए महिलाओं के रूप में नहीं है।

2. परिवार के साथ साथ प्रशासनिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन का संघर्ष

अधिकांश महिला प्राचार्यों द्वारा परिवार के साथ साथ प्रशासनिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन को एक महत्वपूर्ण चुनौती संबोधित किया गया था। इस संबंध में, उत्तरदाताओं ने व्यक्त किया किः

प्राचार्य (4) ''मैं अपने परिवार को उचित समय नहीं दे रही हूँ, मेरा बच्चा अभी 12वीं कक्षा में है और उसे मेरे ध्यान की जरूरत है लेकिन मेरे काम की जिम्मेदारियों के कारण मैं दोषी महसूस करती हूँ" एक अन्य प्रतिवादी ने कहा कि –

प्राचार्य (9) "एक परिवार की जिम्मेदारी हमेशा महिलाओं पर होती हैं पुरुषों पर नहीं.. स्कूल की नौकरी खत्म करने के बाद भी मैं अपने परिवार के लिए खाना बनाती हूँ, कोई मदद नहीं करता मुझे"

उपर्युक्त के विपरीत, लगभग एक तिहाई महिला प्राचार्यो ने कहा कि उन्हें इस प्रकार की समस्याओं का सामना शायद ही कभी करना पड़ता है क्योंकि उनके बच्चों की मदद के लिए उनकी पास उनकी मां और सास हैं। अपने परिवार और विशेष रूप से अपने जीवनसाथी के मजबूत समर्थन के कारण, उनमें से अधिकांश काम और परिवार के बीच एक स्वस्थ संतुलन बनाए रखने में वे सक्षम थीं। स्पष्ट है, अपने पेशेवर और निजी जीवन के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए महिलाओं को समर्थन की जरूरत होती है। अधिकांश विवाहित महिलाएं इस बात से सहमत थीं कि उनके जीवन साथी उनके मुख्य समर्थक थे। उनके द्वारा कहे गए कथन निम्नानुसार है –

प्राचार्य (1) ''मेरे पति बहुत अच्छे हैं जो कि मेरी बहुत सारी परेशानी को दूर कर देते हैं। मुझे लगता है अगर मेरी शादी नहीं होती तो मैं इतनी अच्छी तरह से काम नहीं कर पाती जैसा कि मै अभी कर कर पा रही हूँ"

प्राचार्य (5) ने उल्लेख किया कि उन्हें अपने सहयोगियों से भी समर्थन मिलता है, लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्हें मदद मांगने एवं सहज अनुभव करने में कुछ समय लगा।

इस तथ्य के संबंध में, कोस्मिनी[13] ने भी पाया कि महिलाओं के लिए सबसे महत्वपूर्ण और सहमत बाधाओं में से एक परिवार और काम की जिम्मेदारियों का प्रबंधन करना था। इसके अलावा, जोशी एवं भोगयाता[14] ने पाया कि महिला प्राचार्य शैक्षिक प्रबंधक में दोहरी भूमिका निभाते हैं। उन्हें दो 'मोर्चों' का प्रबंधन करना होता है। परिवार और काम। पुरुष शैक्षिक प्रबंधकों की तुलना में महिलाओं पर अधिक जिम्मेदारियां होती हैं। इसके अलावा, उनके पास परिवार और समाज से अजीबोगरीब प्रकार के प्रतिबंध हैं। शाकेसशाफ्ट[15] ने अपने अध्ययन से ठीक ही निष्कर्ष निकाला था कि ''घर और परिवार की जिम्मेदारियाँ महिलाओं को प्रशासन के लिए दो तरह से बाधाएँ प्रदान करती हैं। पहला कि महिलाओं को अपने सभी कार्यों को प्रभावी ढंग से करना चाहिए एवं दूसरा उन्हे उन पुरुष स्कूल बोर्ड के अध्यक्षों और अधीक्षकों के साथ भी संघर्ष करना पड़ता है जो यह मानते हैं कि केवल पुरुष ही संतुलित एवं प्रभावी प्रबंधन कर सकते हैं महिलाएँ इसमे असमर्थ हैं और उनके लिए इसका प्रयास करना भी अनुचित है।"

3 प्रोत्साहन और समर्थन की कमी : जहां तक प्रोत्साहन और समर्थन का संबंध है, आधी महिला प्राचार्यो ने बताया कि उन्हें नेतृत्व के पदों की तलाश के लिए नगण्य प्रोत्साहन मिला था, जबकि पुरुषों को महिलाओं की तुलना में अधिक मात्रा में प्रशासन में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। उदाहरण के लिए, उत्तरदाताओं ने उल्लेख किया था कि

प्राचार्य (6) "महिलाओं को बड़ी भूमिकाएँ करने के लिए

प्रोत्साहित नहीं किया जाता है"

प्राचार्य (2) ''ने व्यक्त किया कि उन्हें उनके माता-पिता द्वारा प्रोत्साहित किया गया जो या तो स्वयं शिक्षक हैं या जो मानते हैं कि शिक्षण महिलाओं के लिए एक अच्छा काम है''

नेतृत्व की स्थिति में महिलाओं के सामने आने वाली बाधाओं के सन्दर्भ में ईगल और कार्ली ने कहा कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को नेतृत्व के पदों की तलाश के लिए बहुत कम या कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता है। महिलाओं के लिए कुछ सामाजिक नेटवर्क (औपचारिक और अनौपचारिक) भी हैं इन क्लबों में सदस्यता हेतु महिलाओं में झुकाव कम जबकि इन क्लबों के परिणामस्वरूप महिलाओं की उन्नति होती है।

इसके अलावा, उनमें से अधिकांश महिलाओं ने कहा कि करियर के रूप में स्कूल प्राचार्य के रूप में उनका प्रवेश बहाव या भाग्य से हुआ था। महिला प्राचार्यों द्वारा कहे गए ये वाक्यांश हैं.

प्राचार्य (5) ''मैं एक प्राचार्य होने के लिए भाग्यशाली हूँ लेकिन मेरे पास इस पद के लिए कोई योजना नहीं थी''

प्राचार्य (8) ने कहा कि ''मेरे माता-पिता ने मुझे प्रोत्साहित किया कि अध्यापन एक ऐसा पेशा है जिसमें मैं अपने परिवार और नौकरी दोनों को संभाल सकती हूँ। लेकिन, इस पेशे में आने के बाद मुझे लगता है कि यह एक महिला के लिए मुश्किल काम है, इसके लिए एक सुनियोजित करियर निर्णय की जरूरत है।''

हालाँकि, कुछ उत्तरदाताओं ने यह भी व्यक्त किया कि उनके परिवारों ने अधिकांश समय उनके निर्णयों का समर्थन किया, लेकिन उन्हें पदोन्नति प्राप्त करने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित नहीं किया। इन महिलाओं ने स्कूल प्राचार्य बनने का फैसला किया क्योंकि वे बदलाव लाना चाहती थीं, चुनौतियों का सामना करना चाहती थीं, जो आमतौर पर एक शैक्षिक प्रशासक के सामने खड़ी होती हैं। उनमें से कुछ ने यह भी उल्लेख किया कि उन्हें उनके सहयोगियों और प्रशासकों द्वारा प्राचार्य के लिए आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित किया गया था।

प्रोत्साहन और समर्थन के महत्व को चबाया, रेम्बे और वादेसंगो[16] का अध्ययन यह दर्शाता है कि जिन महिलाओं ने प्रशासनिक करियर बनाने का फैसला किया है, उनमें से ज्यादातर सफल हो गई हैं दूसरों का समर्थन और प्रोत्साहन (जैसे पति, माता, पिता, प्राचार्य, कॉलेज के प्राध्यापक आदि)। अपने अध्ययन में, कोस्मिनी[17] ने यह भी पाया कि महिला शिक्षकों को पुरुषों की तुलना में स्कूल के बाहर के लोगों द्वारा प्रोत्साहित किए जाने की अधिक संभावना है और यही प्रवृत्ति अन्य कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं और औद्योगिक देशों में रहने वाले जातीय अल्पसंख्यक समूहों में पाई गई है। इसके विपरीत चबाया, रेम्बे और वादेसंगो[18] ने बताया कि जिम्बाब्वे में पाया गया कि सभी महिलाओं को दूसरों द्वारा प्रिंसिपलशिप में धकेलने का वर्णन किया गया था। इसलिए, अधिकांश महिला प्राचार्यो ने उल्लेख किया और अपनी सहमति व्यक्त की कि महिला शिक्षक के लिए संरचनात्मक समर्थन की अनुपलब्धता उन महिलाओं के लिए एक और बड़ी बाधा है जो स्कूलों में नेतृत्व की भूमिका निभाने की इच्छुक हैं।

4. प्रशासनिक बाधाएं : लगभग आधी महिला प्राचार्यो का मत था कि अत्यधिक प्रशासनिक जिम्मेदारी उनके लिए एक और बाधा है। उदाहरण के लिए, उनके द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रियाएं इस प्रकार हैं-

प्राचार्य (3) ने कहा ''स्कूल में बहुत काम करना होता है, कभी स्टाफ मीटिंग्स तो कभी पेरेंट्स मीटिंग्स साथ ही साथ बहुत सी सरकारी योजनाओं का स्कूल में संचालन करना और उसकी प्रगति को उच्च अधिकारियों को समय समय पर रिपोर्ट करना"

प्राचार्य (10) ने कहा "स्कूलों में कभी-कभी हमें परेशानी होती है कि क्या स्कूल का प्रबंधन करना है या विभिन्न सरकारी योजनाओं की रिपोर्ट उचित तरीके से तैयार करना है।"

उनमें से अधिकांश महिला प्राचार्यो ने यह भी बताया की समय कि कमी स्कूल प्रबंधन के लिए एक अन्य समस्या है। इस संबंध में, दस में से नौ महिला प्राचार्यों ने दावा किया कि समय जैसे मुद्दों ने उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन दोनों में तनाव पैदा कर दिया है। उदाहरण के लिए, उत्तरदाताओं ने कहा कि-

प्राचार्य (7) ''एक स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में, मुझे बैठकों में भाग लेना पड़ता है। कभी-कभी मैं इसके लिए कड़ी मेहनत करती हूँ और कई बार मुझे दूर यात्रा भी करनी पड़ती है जिसके परिणामस्वरूप मुझे स्वयं के लिए एवं अपने परिवार के लिए ज्यादा समय नहीं मिलता है''

इसके अतिरिक्त, अधिकांश महिला प्राचार्यों ने उल्लेख किया था कि शिक्षकों की अनुपस्थिति उनके लिए एक और बड़ी समस्या है। उन्होंने व्यक्त किया कि प्राचार्य (8) ''स्कूल

में शिक्षक बिना किसी पूर्व सूचना के अनुपस्थित रहते हैं, जिसके कारण स्कूल की गतिविधियों के संचालन एवं कक्षा शिक्षण का प्रबंधन करने में समस्या आती है।"

इसी प्रकार लगभग आधी महिला प्राचार्यों का मत था कि नियमित रूप से कक्षा शिक्षण का आयोजन करना दूसरी बड़ी चुनौती थी क्योंकि उनके स्टाफ के सदस्य सहयोगी नहीं थे, स्कूलों में विषय शिक्षकों की कमी थी और अधिकांश छात्र स्कूल के नियमों और नियमावली का पालन नहीं करते थे। इस तथ्य के संबंध में, अधिकतम उत्तरदाताओं ने अपना विचार व्यक्त किये एवं बताया-

प्राचार्य (4) ''मेरे स्कूल में विषय शिक्षकों की कमी है, जिसके कारण कभी कभी मुझे भी कक्षा शिक्षण करना होता है ताकि स्कूल सही संचालन हो सके''

कुछ महिला प्राचार्यों ने यह भी उल्लेख किया कि उन्हें स्कूल की गतिविधियों में छात्रों के दुर्व्यवहार और माता-पिता के असहयोग से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। उदाहरणस्वरुप प्राचार्य (6) के अनुसार "छात्र स्कूल से भाग जाते हैं एवं माता-पिता अपने बच्चे की शिकायतों को गंभीरता से नहीं लेते हैं"

इसके अतिरिक्त, दस में से छह महिला प्राचार्यो ने कहा कि कर्मचारियों और छात्रों का देर से आना उनके लिए एक और बड़ी समस्या थी। उन्होंने व्यक्त किया कि -

प्राचार्य (4) ''मेरे विद्यालय में शिक्षक और छात्र हमेशा देर से आते हैं और जब मैं उनसे पूछती हूँ तो मुझे नजरअंदाज कर देते हैं''

एक अन्य प्राचार्य (2) ने कहा कि "शिक्षक विद्यालय देर से आते हैं और समय से पहले विद्यालय को छोड़ देते हैं। कभी-कभी मैं भी विद्यालय देर से आती हूँ क्योंकि मैं शहर से आती हूँ इसलिए, इस समस्या का सामना मुझे ज्यादातर दिनों में करना पड़ता है।"

5. अकेलापन एवं सहयोगियों से दूरी बनाए रखना

लगभग एक चौथाई महिला प्राचार्यो ने संकेत दिया कि वे कभी-कभी सहकर्मियों, माता-पिता और कर्मचारियों से अलग-थलग अनुभव करती हैं। कई महिलाओं ने स्वयं की स्थिति को गलत समझे जाने की बात भी कही थी। महिला प्राचार्यों द्वारा दी गई निम्नलिखित प्रतिक्रियाएं थीं। प्राचार्य (9) ने कहा "आप नहीं बदलते लेकिन अक्सर आपके प्रति कुछ लोगों की धारणाए बदल जाती हैं जैसे ही आप एक प्रशासक बन जाते हैं। मैंने अपने कर्मचारियों और छात्रों से इस अलगाव को अनुभव किया है। लेकिन यह आमतौर पर एक प्रशासक के प्रति विचारधारा है एवं उन धारणाओं को तोड़ने के लिए मुझे बहुत अधिक अतिरिक्त काम करना होगा।"

कुछ उत्तरदाताओं का यह भी मानना है कि उन्हें अपनी जाति के कारण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए प्राचार्य (9) ने कहा कि ''मेरे स्टाफ सदस्यों का मानना है कि मुझे यह जॉब मेरी जाति की वजह से मिली है एवं प्रशासनिक कार्य हेतु मेरे पास पर्याप्त अनुभव नहीं है उनकी सोच आज भी वही है कि एक महिला एक पुरुष से अच्छा प्रशासनिक कार्य कैसे कर सकती है।"

तीन महिला प्राचार्यों ने शिकायत की थी कि बहुत काम के कारण उन्हें अपने कर्मचारियों से अंतःक्रिया का समय नहीं मिल पता था दो महिला प्राचार्यों (3 व 10) ने बताया कि "वे अपनी नौकरी में स्वयं को अलग-थलग महसूस कर रही हैं। वे अपने समुदाय और स्टाफ सदस्यों से सामाजिक अलगाव और हाशिए पर जाने का भी शिकार भी हो रही हैं।"

6. जेंडर एवं नेतृत्व गुण

प्रस्तुत अध्ययन में अधिकांश महिला प्राचार्यो का मानना था कि महिलाएं पुरुषों की तुलना में बेहतर प्रबंधन करती हैं। यह पाया गया है कि सहकारिता और सहयोग अक्सर महिलाओं द्वारा अपनी प्रबंधन शैली का वर्णन करने के लिए उपयोग किए जाने वाले शब्दों में से एक हैं साथ ही साथ खुद को कर्मचारियों के साथ एक टीम का हिस्सा होने के रूप में देखना एक सेवक होने के नाते छात्र और समुदाय के प्रति उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हैं। कई उत्तरदाताओं ने अनुभव किया कि कर्मचारियों के साथ सकारात्मक, भरोसेमंद और खुले संबंध की आवश्यकता है। इसके संबंध में कुछ उत्तरदाताओं ने निम्नलिखित कथनों का उल्लेख किया-

प्राचार्य (4) "मेरी प्राथमिकता विश्वास का स्तर स्थापित करने के लिए अपने आसपास के लोगों के साथ संबंध बनाना अति महत्वपूर्ण है"

प्राचार्य (1) "मेरे लिए दूसरों का समर्थन करना एवं प्रोत्साहित करना और ऐसा करने के लिए रचनात्मकता का होना मेरी प्राथमिकता होती है"

प्राचार्य (7) ''मैं एक डेस्क के पीछे नहीं छिपती क्योंकि मेरा मानना है कि यह बहुत अधिक अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है और मेरा दरवाजा सदैव सभी के लिए खुला रहता

है।''

प्राचार्य (5) "मैं प्रोत्साहन पर विश्वास करती हूँ। मैं आलोचना के बजाय पुष्टिकरण प्रदर्शन आधारित गतिविधि पर विश्वास करती हूँ।"

दस में से पांच महिलाओं ने अपने नेतृत्व में एक अच्छा स्रोत होने के गुण को बताया। उदाहरण के लिए, प्राचार्य (2) ने उल्लेख किया कि ''मैं एक अच्छी श्रोता हूँ एवं इससे मुझे कर्मचारियों और समुदाय के सदस्यों के साथ संबंध बनाने में मदद मिलती है।

दस में से सात महिलाओं ने सहानुभूति को उनकी नेतृत्व शैली का हिस्सा बताया।

एक अन्य महिला प्राचार्य (8) ने कहा कि सहानुभूति होना कुछ ऐसा था जो उनकी नेतृत्व शैली का भी हिस्सा था इसके अलावा, उसने विशेष रूप से खुद को सकारात्मक, लचीला, देखभाल करने वाला, मुखर और सहायक बताया।

प्राचार्य (6) ''खुद को एक माँ के रूप में देखती हैं और इस बारे में बतलाती हैं कि कैसे लोगों की मदद करने की उनकी इच्छा इस जॉब में आकर वास्तव में बदल गई है क्योंकि वह यहाँ सभी की सहायता कर पा रही थीं'' उन्होने ने बताया कि करुणा और सहानुभूति रखने से उन्हे अपने कर्मचारियों से निपटने के लिए समय निकालने में सहायता मिली है। वह यह भी सोचती है कि उसके पास समान नेतृत्व की स्थिति रखने वाले पुरुषों की तुलना में अधिक सहानुभूति का गुण है।

इसके अतिरिक्त, अधिकांश महिला प्राचार्यो ने स्कूल में प्रमुख निर्णय लेते समय लोकतान्त्रिक शैली का उपयोग किया था। उन्होंने कहा कि प्रशासनिक टीम ने ज्यादातर फैसले लिए। कुछ महिलाओं ने नोट किया कि वे या पूरी प्रशासनिक टीम कर्मचारियों को उस दिशा का संकेत देगी जो वे लेना चाहती हैं लेकिन अंततः निर्णय लेने के लिए एक लोकतांत्रिक पद्धति का इस्तेमाल किया। हालांकि, दो ने उत्तर दिया कि उन्होंने ही सभी निर्णय लिए हैं और कुछ उत्तरदाताओं ने उल्लेख किया है कि यह स्थिति और निर्णय के प्रकार पर निर्भर करता है।

इसके अलावा, जब उनसे पूछा गया कि एक प्रशासक हेतु कौन से गुण आवश्यक हैं तो उन्होंने ये गुण बताये - एक अच्छा श्रोता होना, दयालु होना, अपने कार्य के प्रति लगाव, शिक्षा व समाज सेवा के प्रति समर्पित, समूह में कार्य करना, अभिभावकों, छात्रों एवं शिक्षकों के साथ अच्छा संवाद, ईमानदार, मेहनती होना और सदैव सभी की सहायता हेतु तैयार रहना आदि प्रमुख गुण थे।

7. निरंतर व्यावसायिक विकास और शैक्षिक अवसरों की कमी : ऐसी छह महिलाएं थीं जिन्होंने नेतृत्व की स्थिति के लिए उन्हें तैयार करने के लिए पर्याप्त प्रशासनिक प्रशिक्षण, अनुभव और शैक्षिक अवसर नहीं होने की समस्या की सूचना दी थी। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि हमारी शिक्षा प्रणाली महिलाओं को उनके कैरियर में जल्दी पदोन्नति लेने के लिए प्रोत्साहित करने और प्रेरित करने में विफल रही हैं। इस तथ्य के संबंध में, महिलाओं द्वारा व्यक्त विचार थे -

प्राचार्य (4) ''विद्यालय शिक्षा प्रणाली मैं महिला शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण और कार्यशाला का कार्यक्रम नहीं होता है, जिसके कारण महिलाओं को अधिक समस्या का सामना करना होता है।"

कई अध्ययनों ईगली और कार्ली, होयत[19] एवं शाकेसशाफ्त ने इसी तरह के निष्कर्ष की सूचना दी, जिसमें पुरुषों की तुलना में महिलाओं के पास शिक्षा, प्रशिक्षण और कार्य अनुभव में कम मानव पूंजी निवेश है। इसके अतिरिक्त, गुप्टन और स्लिक[20] का मानना है कि महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व को प्रशासनिक पदों के लिए महिलाओं की आकांक्षा की कमी के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, भले ही वे इन पदों के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए प्रमाणन और डिग्री रखते हों।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष : अधिकांश प्रतिवादी महिला प्राचार्य इस बात से सहमत थीं कि वे अपने विद्यालय का प्रबंधन पुरुष प्राचार्य की तुलना में बेहतर तरीके से कर रही थीं। हालांकि, उनमें से कुछ ने यह भी कहा कि उन्हें अपने स्कूलों की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों के प्रबंधन में कुछ हद तक समस्या का सामना करना पड़ा। उन्होंने जिन जेंडर चुनौतियों का अनुभव किया था, उन्हें निम्नलिखित प्रमुख विषयों में वर्गीकृत किया जा सकता है (1) महिलाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण और जेंडर रूढ़ियाँ (2) परिवार के साथ प्रशासनिक जिम्मेदारी के बीच संतुलन का संघर्ष (3) प्रोत्साहन और समर्थन की कमी (4) प्रशासनिक बाधाएं (5) अकेलापन एवं सहयोगियों से दूरी बनाए रखना (6) जेंडर एवं नेतृत्व गुण (7) निरंतर व्यावसायिक विकास और शैक्षिक अवसरों की कमी इत्यादि थी। हालांकि, इन सभी महिला प्राचार्यो ने पुरुष प्राचार्यो से अलग अपनी क्षमताओं को प्रभावी ढंग साबित करने के प्रत्येक अवसर का भरपूर लाभ उठाया था।

अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिताः विश्लेषण और अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर, अध्ययन के निम्नलिखित शैक्षिक निहितार्थ हैंः

उच्च माध्यमिक विद्यालय की महिला प्राचार्यो के सामने विशेष रूप से उनके लिंग के कारण विशिष्ट चुनौतियाँ हैं। इसलिए, उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्यों के लिए विशेष सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने की आवश्यकता है और महिला प्राचार्यों को वरीयता दी जानी चाहिए।

यह उम्मीद की जाती है कि इस अध्ययन के परिणाम भारत में माध्यमिक विद्यालय नेतृत्व की भूमिकाओं में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व पर प्रकाश डालने और इस असंतुलन को दूर करने के लिए कुछ दिशा-निर्देश प्रदान करने में मदद कर सकते हैं। परिणाम इस बात का भी संकेत दे सकते हैं कि नेतृत्व की भूमिकाओं को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षकों की प्रेरणा को संबोधित करने के लिए कौन से अतिरिक्त कदम उठाने की आवश्यकता है। अधिकारियों के लिए परिणामों का उपयोग भारतीय शिक्षा प्रणाली के भीतर नीति संशोधन के लिए किया जा सकता है।

इस अध्ययन की खोज ने यह भी सुझाव दिया कि महिलाओं को उन चुनौतियों की स्पष्ट समझ होनी चाहिए जिनका वे स्कूल प्रणाली में सामना कर रही हैं एवं उनके हल करने कि उनको स्पष्ट समझ भी होनी चाहिए। इस अध्ययन का लाभ उन महिलाओ को मिलेगा जो शैक्षिक प्रशासन में करियर बनाना चाहती है।

सन्दर्भ

1. Coleman, M. 'Management Style Of Female Head Teachers'. Educational Management And Administration, 1996, 24 (2), pp. 163-174.
2. Eagly, A. H. & Carli, L. L. 'The Female Leadership Advantage: An Evaluation Of Evidence'. The Leadership Quarterly, 2003,14, pp. 807-834.
3. Coleman, M. 'Gender And The Orthodoxies Of Leadership. School Leadership & Management', Formerly School Organization, 2003, 23(3), 325-339. Doi.Org/10.1080/1363243032000112810.
4. Mithali. N. 'Women In School Leadership', Sage Publication, New Delhi, 2019.
5. Grogan, M. 'Equity/Equality Issues Of Gender, Race And Class', Educational Administration Quarterly, 1999, 35 (4), pp. 518-536.
6. Levitt, D. H. 'Women And Leadership: A Developmental Paradox?' Adultspan Journal, 2010, 9(2), pp. 66-75.
7. Eagly, A. H., & Carli, L. L. 'Through The Labyrinth: The Truth About How Women Become Leaders'. Boston: Harvard Business School Press, 2007.
8. Hymowitz, C., & Schellhardt, T.D. 'The Glass Ceiling'. The Wall Street Journal. Special Report On The Corporate Women, 1986, March 24.
9. Grove, R. & Mantgomary, P. 'Women And The Leadership Paradigm: Bridging The Gender Gap 1999', (ERIC Document Reproductive Service No. 452614).
10. Cubillo, L. and Brown, M. 'Women Into Educational Leadership And Management: International Differences?' Journal Of Educational Administration, 2003, 41, 278-291. Http://Dx.Doi.Org/10.1108/09578230310474421
11. Strauss., A. L., & Corbin, J. M. 'Basics Of Qualitative Research: Techniques And Procedures For Developing Grounded Theory'. Thousand Oaks, CA: Sage Publications, 1998.
12. Cubillo, L and Brown M, op.cit. pp. 278-291
13. Cosmini, S. H. 'Female Administrators In Higher Education; Victories, Broken Barriers And Persisting Obstacles'. Published Doctoral Dissertation Of Johnson & Wales University. Dissertation Abstract International, 2011, Vol 72 No. 8 p. 2724-A.
14. Joshi, B., & Bhogayata, C. 'Barriers Faced By Women Educational Managers At Indian University'. Sansodhan E-Journal, 2007, (4). Available Online At Http://Www.Sanshodhan.Net.
15. Shakesshaft, C. 'Women In Educational Administration'. Newbury Park, CA: Crown Press, 1989.
16. Chabaya. O., Rembe, S., & Wadesango, N. 'The Persistence Of Gender Inequality In Zimbabwe: Factors That Impede The Advancement Of Women Into Leadership Positions In Schools'. South Africa Journal Of Education, 2009, 29, 235-251.
17. Cosmini, S.H., op.cit., p. 2724A
18. Chabaya. O., Rembe, S., & Wadesango, N, op.cit., pp. 235-251.
19. Hoyt, C. L. 'Women And Leadership'. In Northouse (Ed.) Leadership: Theory And Practice, (5th Ed. Pp. 301-333). Thousand Oaks, CA: Sage, 2010.
20. Gupton, S., & Slick G. 'Highly Successful Women Administrators And How They Got There'. Thousand Oaks, CA: Corwin Press, 1996.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ग्रामीण उत्प्रवासियों की दशाओं का तुलनात्मक अध्ययन

❑ विजय कुमार शुक्ल

सूचक शब्दः उत्प्रवास, जीविकोपार्जन, कुटीर उद्योग, निर्धनता, व्यावसायिक कृषि।

उत्प्रवास एक वृहद प्रक्रिया प्रवास की उप प्रक्रिया है जिसका अर्थ व्यक्ति या समूहों का अपने मूल स्थान से गंतव्य स्थान तक जाना होता है। उत्प्रवास, आप्रवास की पूरक प्रक्रिया होती है जिसका अर्थ गंतव्य स्थान पर पहुंचना होता है। इस प्रकार की दो उप प्रक्रियाएं होती हैं (1) उत्प्रवास (2) आप्रवास। जिसमें पहले का अर्थ मूल स्थान से बाहर जाना तथा दूसरे का अर्थ गंतव्य स्थान पर जाना होता है। ई.एस.ली.[1] ने प्रवास को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''प्रवास निवास स्थल में एक स्थायी या अर्धस्थायी परिवर्तन का नाम है। पी.एच.रोसी ने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी नये स्थान में जाने की इच्छा रखता है, तो उसे प्रवासी कहा जाना चाहिए।[2] NSSO 64th Round के अनुसार[3], ''प्रवासी परिवार का वह सदस्य है, जिसका पिछला सामान्य निवास स्थल पहले कभी भी गणना के वर्तमान स्थल से भिन्न था, तो उसे परिवार के प्रवासी सदस्य के रूप में मान्यता देनी चाहिए। छन्ना, पठान और शेख[4] के अनुसार प्रवास को मानव के एक जगह से दूसरे जगह गतिशीलता को कहा जाता है, इसमें एक विचारणीय दूरी पर निवास स्थानपरिवर्तित हो जाता है। एक स्थानिक सीमा से लोग दूसरी सीमा में पहुँच जाते है।

> उत्प्रवास वह प्रक्रिया है जिसमें कोई गांव में रहने वाला व्यक्ति या समूह अपने ही देश के अंदर या देश के बाहर किसी नगरीय औद्योगिक केन्द्रों में जीविकोपार्जन के लिए जाता है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में आंतरिक प्रवासियों की संख्या लगभग 45.36 करोड़ है, जो देश की कुल आबादी का लगभग 37 प्रतिशत है। पूरे देश में सबसे अधिक अंतर्राज्यीय प्रवासियों की संख्या उत्तर प्रदेश में ही लगभग 25 प्रतिशत है। इसके बाद बिहार में 14 प्रतिशत राजस्थान में 6 प्रतिशत तथा मध्य प्रदेश में 4 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश में उत्प्रवास की दर सभी जिलों में समान नहीं है। पूर्वी जिले जैसे गोरखपुर देवरिया, बस्ती, गोण्डा तथा बहराइच और बलरामपुर में उत्प्रवास की दर अधिक है। जबकि पश्चिमी जिलों जैसे बरेली, मेरठ, सहारनपुर आदि में उत्प्रवास की दर अत्यधिक न्यून है। यहाँ के लोग व्यावसायिक खेती करने के साथ-साथ कुटीर उद्योगों की तरफ भी ध्यान देते है इसलिए पश्चिमी जिलों में निर्धनता कम है और लोग गाँवों से शहरों की ओर जीविकोपांर्जन के लिए नही जाते हैं।

प्रवास इस समय विश्व की बहुत बड़ी समस्या है। 2015 में लगभग 24 करोड़ लोग उत्प्रवासी थे, जो कि विश्व के लगभग 3.3 प्रतिशत जनसंख्या के बराबर थी। जिसमें से 4.4 करोड़ लोग एशिया से उत्प्रवास किये थे। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार[5] भारत में आंतरिक प्रवासियों की संख्या लगभग 45.36 करोड़ है जो देश की कुल जनसंख्या का लगभग 37 प्रतिशत है। भारत में आंतरिक प्रवास मुख्यतया दो प्रकार का होता है। (1) दीर्घकालीन प्रवास-जिसमें व्यक्ति या परिवार किसी दूसरे जगह पर जाकर बस जाता है। (2) अल्पकालीन प्रवास-जिसमें मूल स्थान व गंतव्य के बीच आना-जाना होता रहता है।

भारत में प्रवास (1) गांव से नगर की ओर (2) नगर से नगर की ओर (3) नगर से गांव की ओर (4) गांव से गांव की ओर होता है। प्रस्तुत अध्ययन में हमारा उत्प्रवास से तात्पर्य गांव से नगर की ओर प्रवास से है।[6] भारत में सबसे अधिक आंतरिक प्रवास उत्तर प्रदेश में होता है, जो कि कुल आंतरिक प्रवास का लगभग 25 प्रतिशत है।[7] उत्तर प्रदेश में उत्प्रवास अधिकतर पूर्वी जिले जैसे गोरखपुर, देवरिया, बलिया गोण्डा, बहराइच तथा बलरामपुर आदि में ही होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकतर व्यक्ति दिल्ली के आजादपुर मण्डी में काम करते देखे जा सकते हैं। यहॉ के अधिकतर व्यक्ति मुम्बई, गुजरात तथा चेन्नई में भी जीविकोपार्जन हेतु जाते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि योग्य

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र,गन्ना उत्पादक स्नातकोन्तर महाविद्यालय बहेड़ी, बरेली (उ.प्र.)

भूमि कम है अभी तक लोग पारम्परिक कृषि ही कर रहे हैं। कुटीर उद्योग धन्धों की कमी है इसलिए जीविकोपार्जन हेतु लोग शहरों को जा रहे हैं। वैसे अभी तक प्रवास कोई समस्या नहीं थी सिर्फ उन्हीं के बारे में सोचा जा रहा था जो विदेशों में जाते थे। जिसे प्रतिभा पलायन कहा जाता था लेकिन कोविड-19 के समय गॉवों से शहरों की तरफ उत्प्रवास एक समस्या बन गई और बहुत से प्रवासी मजदूर साइकिल या पैदल या अन्य साधनों से गॉवों की ओर लौटने को मजबूर हो गए और उसमें से बहुत से लोगों की रास्ते में ही मृत्यु हो गई। इस प्रकार सभी को यह सोचने पर मजबूर होना पड़ रहा है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में लोगों का गॉवों से शहरों की ओर पलयान कैसे रूके। जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिले जैसे बरेली, रामपुर, सहारनपुर, मुरादाबाद आदि जिलों में प्रवास न के बराबर होता है, यदि होता भी हो तो पश्चिम के लोग विदेशों में अधिक जाते हैं, और यदि अपने देश में दिल्ली, मुम्बई आदि शहरों को जाते भी हैं तो अपना व्यवसाय करने जाते हैं मजदूरी करने नहीं।

आखिर क्या कारण है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग अधिक उत्प्रवास करते हैं, जबकि पश्चिम उत्तर प्रदेश के लोग उत्प्रवास नहीं करते हैं।

साहित्य समीक्षाः- भारत में आंतरिक प्रवास पर बहुत शोध हुए हैं जिसका निम्न परिणाम रहा हैं-

दुवे अमरेश, जोन्स पामर, रिचर्ड सेन कुनाल[8] 'सरप्लस लेबर सोशल स्टक्चर एण्ड रूरल टू अरबन माइग्रेशन'- शोध पत्र में भारत में गाँवों से शहरों की ओर प्रवास का मुख्य कारण गाँवों में अतिरिक्त श्रमिकों को बताया गया हैं। गॉवों में अत्यधिक श्रमिकों का होना, कृषि में उत्पादन कम होना तथा व्यक्तियों और भूमि का अनुपात कम होना बताया गया हैं।

बाबू पी, अग्रवाल रमेश, ताशा[9] 'चेंजिंग कंटूर्स ऑफ इन्टरनल माइग्रेशन इन इंडिया सेन्ट्रालिटी ऑफ पावर्टी एण्ड बुलनेराबिल्टी'- शोध पत्र में भारत में आंतरिक उत्प्रवास का मुख्य कारण गरीबी बताया गया है। लोग शिक्षा, अच्छे रोजगार, अपने जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए गाँवों से शहरों की ओर उत्प्रवास करतें हैं।

मल्होत्रा नीना, देवी पुष्पा[10] 'एनालशिस ऑफ फैक्टर्स अफेक्टिंग इन्टरनल माइग्रेशन इन इंडिया' - इस शोध पत्र में यह पाया गया कि भारत में गॉवों में सहभागिता दर और रोजगार की दर में असंतुलन आया है रोजगार की तुलना में श्रमिक बल की अधिकता होने से लोग गॉवों से शहरों को उत्प्रवास करते हैं।

के0 राय, अर्चना, भगत आर0 बी दास, के सी सरोदे, सुनील, आर एस रेशमी[11], 'काजेज एण्ड कान्सीक्वेन्सेज ऑफ आउट माइग्रेशन फ्राम मिडिल गंगा प्लेन' - इस प्रोजेक्ट में उत्प्रवास का मुख्य कारण आने वाले बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना पाया गया है। इसके अलावा गरीबी, बेरोजगारी, भूमि हीनता, खाने को पर्याप्त भोजन न मिलना भी पाया गया हैं।

सान्याल तिलक एण्ड माइटी किंग्शुक[12] 'आन लेबर माइग्रेशन इन इंडिया : टेन्डेंसी काजेज एण्ड इम्पैक्टस' - इस शोध-पत्र में भारत में आंतरिक प्रवास का मुख्य कारण अच्छे रोजगार की तलाश, ऋणों से मुक्ति, भूमिहीनता आदि पाया गया है।

इन सभी शोध पत्रों से यह ज्ञात हुआ कि भारत में आंतरिक प्रवास का मुख्य कारण रोजगार, शिक्षा, भूमिहीनता, श्रमिक बल की अधिकता तथा गरीबी आदि हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कारण है कि उत्तर आदेश के पूर्वी जिलों में आंतरिक आवास की दर अत्यधिक है, पूर्वी उत्तर आदेश में आंतरिक प्रवास एक समस्या बन चुकी है। जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आंतरिक प्रवास की दर बहुत कम है। यदि कुछ लोग जाते भी हैं तो वह विदेशों में विशेषकर मुस्लिम समुदाय के लोग, यदि लोग शहरों को जाते भी हैं तो अपना व्यवसाय करने जाते हैं मजदूरी करने नहीं, शोधकर्ता ने इन्हीं उत्तरों को पाने का प्रयास किया।

उद्देश्य :- इस शोध-पत्र के निम्न उद्देश्य है।

(1) अध्ययन क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करना।
(2) प्रवास, उत्प्रवास और आप्रवास की अवधारणा को स्पष्ट करना।
(3) पूर्वी उत्तर प्रदेश में उत्प्रवास के कारणों का अध्ययन करना।
(4) पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उत्प्रवास की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
(5) उत्प्रवास में कमी लाने के लिए कुछ नीतिगत सुझाव देना।

अध्ययन पद्धति :- प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमुख उद्देश्य पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ग्रामीण उत्प्रवासियों की दशाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना हैं। इस शोध को संपन्न करने के लिए शोधकर्ता ने उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले गोण्डा के एक गाँव सहजनवॉ तथा पश्चिमी जिले बरेली के एक

गाँव गिरधरपुर का चयन किया। सहजनवॉ गांव की जनसंख्या सन् 2011 के अनुसार 2518 हैं। जिसमें 1319 पुरुष तथा 1199 महिलाएं हैं। इस गॉव में अधिकतर पुरुष ही प्रवास करतें है, महिलाएं घर पर ही रहती हैं। विभिन्न शहरों को जाने वाले पुरुषों की संख्या लगभग 400 हैं। शोधकर्ता ने सभी को समग्र मानकर 50 उत्प्रवासियों का यादृच्छिक निदर्शन से चयन किया। इसी प्रकार गिरधरपुर गाँव की जनसंख्या सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 7399 हैं जिसमें 3858 पुरुष तथा 3541 महिलाएं हैं। इस गॉव के कुछ मुस्लिम समुदाय के व्यक्ति विदेशों में जैसे- दुबई, यूनाइटेड अरब अमीरात आदि देशों में कार्य करने जाते हैं। लेकिन भारत के शहरों में मजदूरी करने नहीं जाते हैं यदि जाते भी हैं तो सिर्फ अपना व्यवसाय करने। सूचना एकत्र करने के लिए शोधकर्ता ने साक्षात्कार अनुसूची तथा टेलीफोनिक साक्षात्कार का प्रयोग किया। इसके अलावा द्वितीयक तथ्य प्राप्त करने के लिए सन् 2011 की जनगणना का प्रयोग किया।

उपकल्पनाएँ:- इस शोधपत्र में निम्न उपकल्पनाओं का सत्यापन/परीक्षण किया जाएगा।

(1) पूर्वी उत्तर प्रदेश में जनसंख्या और भूमि का अनुपात असंतुलित हैं ?

(2) पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में पूर्वी उत्तर प्रदेश में निर्धनता अधिक हैं ?

(3) पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोग व्यावसायिक कृषि जबकि पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग पारम्परिक कृषि पर जोर देते हैं ?

(4) पूर्वी उत्तर प्रदेश में लोग धन का अपव्यय अधिक करतें हैं जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लोग धन का अपव्यय कम करते हैं ?

(5) पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोग कम उत्प्रवास करते हैं, जबकि पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग अधिक उत्प्रवास करते है?

तालिका संख्या (1)

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के जातिगत आंकड़ों का तुलनात्मक विवरण

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)

जाति-वर्ग	संख्या	प्रतिशत
सामान्य वर्ग	26	52
अन्य पिछड़ा वर्ग	19	38
अनुसूचित जाति-वर्ग	05	10
अनुसूचित जन-जाति वर्ग	0	00
योगः-	50	100
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर गॉव)		
सामान्य वर्ग	02	04
अन्य पिछड़ा वर्ग	46	92
अनुसूचित जाति-वर्ग	02	04
अनुसूचित जन-जाति	0	00
योगः-	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश के सहजनवॉ गॉव में सामान्य वर्ग विशेषकर ब्राह्मणों की संख्या अधिक है। ब्राह्मणों का जातिगत व्यवसाय पुरोहिताई था। लेकिन इसमें सभी ब्राह्मणों के संलिप्त न होने के कारण तथा गॉवों में या पास के शहरों जैसे गोण्डा में रिक्शा चलाने या किसी दुकानदार के यहाँ काम करने में शर्म महसूस करने से वे शहरों की ओर जाते हैं। सहजनवाँ गाँव के ग्राम प्रधान ने बताया कि यहाँ से बाहर जाने वालों में अधिकतर संख्या ब्राह्मणों की है, जबकि पिछड़े वर्ग तथा अनुसूचित जाति के लोग मनरेगा में तथा अन्य लोगों के यहाँ कृषि कार्य करके जीवन-यापन कर लेते हैं। जबकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के गिरधरपुर गॉव में अधिकतर संख्या अन्य पिछड़ा वर्ग की है और वे गॉव में छोटे-मोटे रोजगार या हाट-बाजारों में सब्जी और कपड़ा बेचकर जीवन-यापन कर लेते हैं। कुछ शहरों को जाते भी हैं तो वे अपना व्यवसाय करने, मजदूरी करने नहीं। कुछ मुस्लिम समुदाय के लोग विदेशों में कमाने जाते हैं।

तालिका संख्या 2

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में मासिक आय की तुलना

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)		
मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
5000 से कम	0	0
5000-10000	18	36
10000-15000	23	46
15000-20000	05	10
20000-25000	04	08
250000 से अधिक	0	00
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर)		
5000 से कम	0	0
5000-10000	02	04
10000-15000	09	18

15000–20000	14	28
20000–25000	19	38
25000 से अधिक	06	12

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के सहजनवॉ गाँव में जहॉ मासिक आय का अत्यधिक प्रतिशत 10000 - 15000 के बीच है वहीं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गिरधरपुर गांव में मासिक आय का अत्यधिक प्रतिशत 20000 - 25000 के बीच हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के सहजनवॉ गाँव में जहां 25000 से अधिक कमाने वालों की संख्या शून्य प्रतिशत है वहीं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गिरधरपुर गाँव में 25000 से अधिक कमाने वालों की संख्या 12 प्रतिशत हैं। इससे यह पता चलता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकतर लोग निर्धनता के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं इसलिए वे शहरों की ओर उत्प्रवास करते हैं।

तालिका संख्या 3

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश उत्प्रवास की स्थिति

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)		
जति-वर्ग	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	30	60
अन्य पिछड़ा-वर्ग	12	24
अनुसूचित जाति	08	16
योग	50	100
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर)		
सामान्य	00	00
अन्य पिछड़ा-वर्ग	05	10
अनुसूचित जाति	02	04
योग	07	14

उपर्यक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के सहजंनवा गॉव में सभी जाति वर्गो के निवासी अधिक उत्प्रवास करते हैं, जबकि गिरधरपुर गॉव के निवासी कम उत्प्रवास करते हैं।

तालिका संख्या 4

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में उत्प्रवास के कारकों का तुलनात्मक अध्ययन

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)		
उत्तरदायी कारक	संख्या	प्रतिशत
मजदूरी	28	56
नौकरी	10	20
व्यवसाय	08	16
अन्य	04	08
योग	50	100
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर गॉव)		
मजदूरी	00	00
नौकरी	05	10
व्यवसाय	08	16
अन्य	04	08
योग	17	34

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के सहजनवा गॉव में बेरोजगारी बहुत अधिक है। इसलिए शहरों में लोग मजदूरी करने अधिक जाते हैं जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गिरधरपुर गॉव में बेरोजगारी कम होने के कारण लोग शहरों में मजदूरी करने नही जाते हैं, सिर्फ नौकरी और व्यवसाय करने ही जाते हैं।

तालिका संख्या 5

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में व्यावसायिक/खेती की प्रवत्ति का तुलनात्मक विवरण

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)		
व्यावसायिक कृषि	संख्या	प्रतिशत
हॉ	16	32
नहीं	32	64
तटस्थ	02	04
योग	50	100
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर गॉव)		
हॉ	45	90
नहीं	03	06
तटस्थ	02	04
योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश के सहजनवॉ गॉव के निवासी आज भी पारम्परिक कृषि कार्य ही कर रहे हैं वे केवल धान, गेहूँ की खेती ही करते हैं, जिसमें उनको लाभ के बजाय हानि उठाना पड़ता है खेती उनके लिए घाटे का सौदा बन कर रह गई है। दूसरी ओर आवारा पुशओं की समस्या भी अधिक है इसलिए कोई भी खेती नही चाहता है और वे शहरों की तरफ उत्प्रवास करते हैं। जबकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के गिरधरपुर गाँव के लोग व्यावसायिक कृषि करते हैं। वे न केवल नकदी फसल बोते हैं बल्कि उसमें कम्पोस्ट, खाद तथा रासायनिक खाद डालते हैं जिससे उनको कृषि में लाभ होता है और वे शहरों की तरफ प्रस्थान के बारे में सोचते ही नही हैं यदि जाते भी हैं,

तो अपना व्यवसाय करने मजदूरी करने नहीं।

तालिका संख्या 6

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में अपव्यय/प्रवृत्ति का तुलनात्मक विवरण

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)		
अपव्यय	संख्या	प्रतिशत
हॉ	43	86
नहीं	05	10
तटस्थ	02	04
योग	50	100
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर गॉव)		
हॉ	02	04
नहीं	46	92
तटस्थ	02	04
योग	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश के सहजनवॉ गाँव के लोग अपव्यय अधिक करते हैं वे मृत्यु भोज, श्राद्ध, मुंडन संस्कार, जन्मदिन आदि में बहुत पैसा व्यय करते हैं। पूर्वी उत्तर-प्रदेश में विभिन्न अवसरों पर अधिक पैसा खर्च करना प्रस्थिति-प्रतीक बन गया है जो जितना अपव्यय करता है उसे समाज में उतनी ही प्रतिष्ठा मिलती है, जबकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के गिरधरपुर गॉव में लोग अपव्यय के बजाए बचत करना अधिक पसन्द करते है वे मृत्यु भोज, श्राद्ध, मुंडन संस्कार में पैसा न व्यय करके अपने व्यवसाय में पैसा लगाते हैं जिससे उनकी व्यवसाय में बढ़ोत्तरी होती है और वे शहरों में मजदूरी करने के लिए जाने के बारे में सोचते भी नहीं हैं।

तालिका संख्या 7

पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के भूमि क्षेत्रफल की तुलना

पूर्वी उत्तर-प्रदेश (सहजनवॉ गॉव)		
भूमि क्षेत्रफल	संख्या	प्रतिशत
भूमिहीन	08	16
1-3 बीघा	27	54
3-5 बीघा	09	18
5-7 बीघा	05	10
7 बीघा से अधिक	01	02
योग	50	100
पश्चिमी उत्तर-प्रदेश (गिरधरपुर)		
भूमिहीन	0	00
1-3 बीघा	08	16
3-5 बीघा	11	22
5-7 बीघा	17	34
7 बीघा से अधिक	14	28
योग	50	100

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश के सहजनवॉ गाँव में जहाँ 16 प्रतिशत लोग भूमिहीन हैं वहीं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के गिरधरपुर गाँव में कोई भी भूमिहीन नहीं हैं। पूर्वी उत्तर-प्रदेश के सहजनवॉ गाँव में जहॉ 7 बीघा से अधिक भूस्वामित्वों का प्रतिशत जहाँ 02 है, वहीं पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के गिरधरपुर गॉव में 7 बीघा से अधिक वालों की संख्या 28 प्रतिशत है। इस प्रकार पूर्वी उत्तर-प्रदेश में कृषि योग्य भूमि कम होने के कारण उनके पास उत्प्रवास करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता, इसलिए पूर्वी उत्तर-प्रदेश के लोग शहरों की ओर उत्प्रवास करते हैं।

निष्कर्ष : पूर्वी उत्तर-प्रदेश के निवासियों में भूमि का क्षेत्रफल प्रतिशत कम है जबकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के निवासियों में भूमि का क्षेत्रफल प्रतिशत अधिक है। इसलिए पूर्वी उत्तर-प्रदेश के लोगों का कृषि से जीवनयापन नहीं हो पाता है फलतः उन्हें आय का अन्य स्रोत ढूंढ़ने के लिए शहरों की ओर प्रस्थान करना पड़ता है।

पूर्वी उत्तर-प्रदेश के निवासियों की मासिक-आय अत्यन्त कम है क्योंकि वे कृषि के अलावा अन्य कोई कार्य नहीं करते हैं जबकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के निवासियों की मासिक-आय अधिक है क्योंकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के निवासी कृषि कार्य के अतिरिक्त कुटीर उद्योग और छोटा-मोटा व्यवसाय भी करते हैं जिससे वे उनकी मासिक-आय बढ़ जाती है। पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में निर्धनता कम है इसीलिए यहाँ के लोग जीविकोपार्जन के लिए शहर नहीं जाते हैं।

पूर्वी उत्तर-प्रदेश के लोग आज भी पारम्परिक खेती करते हैं, वे धान और गेहूँ की खेती ही करते हैं। न वे उन्नतिशील बीजों का प्रयोग करते हैं, न ही खेतों में कम्पोस्ट खाद और रासासनिक खाद डालते हैं जिससे खेतों में प्रति एकड़ पैदावार कम हो रही है। इस लिए वे शहरों की तरफ अधिक उत्प्रवास करते हैं, जबकि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के लोग व्यावसायिक कृषि करते हैं वे नकदी फसल जैसे- गन्ना, सरसों, लहसुन, प्याज आदि बोते हैं जिसमें उनको अधिक लाभ होता है। वे खेतों में कम्पोस्ट खाद तथा रासायनिक खाद दोनों डालते हैं जिससे खेतों की उर्वरा

शक्ति बनी हुई है और प्रति एकड़ उत्पादन अधिक होता है जिससे वे शहरों की तरफ उत्प्रवास नही करते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग मृत्यु भोज, श्राद्ध, मुंडन संस्कार तथा जन्मदिन आदि पर बहुत अधिक अपव्यय करते हैं। पूर्वी उत्तर-प्रदेश में जो जितना अपव्यय करता है वह उतना ही प्रतिष्ठित माना जाता है इससे वे निर्धनता के दुष्चक्र में फॅस जाते हैं और उन्हें शहरों की तरफ उत्प्रवास करना पड़ता है। इसके विपरीत पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के लोग मृत्यु भोज, श्राद्ध, मुंडन संस्कार आदि में बहुत कम खर्च करते हैं। जन्मदिन भी बहुत धूम-धाम से नही मनाते हैं इस लिए उन्हें शहरों की तरफ उत्प्रवास नहीं करना पड़ता है।

यह भी पाया कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश में कुटीर उद्योग हैं ही नही वहाँ के लोग सिर्फ खेती के ऊपर ही आश्रित हैं जब कभी ओला पड़ता है या बाढ़ आती है तो उनकी सारी खेती नष्ट हो जाती है और उन्हें शहरों की तरफ उत्प्रवास करना पड़ता है, इसके विपरीत पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में मछली पालन, कुक्कुट पालन, पापड़ बनाना आदि कुटीर उद्योग अधिक हैं। इसलिए खेती में नुकसान होने पर भी उसकी पूर्ति कुटीर उद्योगों से हो जाती है और उन्हें शहरों की तरफ उत्प्रवास नही करना पड़ता है इस तरह से पंचम उपकल्पना सिद्ध होती है।

पूर्वी उत्तर-प्रदेश के सहजनवॉ गाँव में बेरोजगारी अधिक होने के कारण तथा कुटीर उद्योग और अपव्यय अधिक होने के कारण लोग मजदूरी करने के लिए शहरों में अधिक जाते हैं, जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गिरधरपुर गॉव में बेरोजगारी कम होने के कारण तथा कुटीर उद्योग और उनकी आय अधिक होने के कारण लोग मजदूरी करने शहरों की ओर कम जाते हैं।

कुछ नीतिगत सुझाव

उत्प्रवास में कमी लाने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं।

1. पूर्वी उत्तर-प्रदेश में प्रत्येक गांव में स्वयं सहायता समूह बनाकर कुटीर उद्योगों की स्थापना करके निर्धनता को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
2. पूर्वी उत्तर-प्रदेश में जागरुकता चलाकर मृत्यु भोज, श्राद्व, मुडंन संस्कार आदि पर अपव्यय को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
3. पूर्वी उत्तर प्रदेश में आवारा पशुओं की समस्या को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
4. पूर्वी उत्तर प्रदेश में किसानों को व्यावसायिक खेती के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
5. सरकार द्वारा मनरेगा आदि योजनाओं की सही मानिटरिंग करना चाहिए और 150 दिन के बजाए पूरे वर्ष भर मनरेगा से कार्य करवाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. Lee, Everett S; 'A Theory of Migreation In JJackson Migration', Cambridge: Cambrdge University Press, 1969 PP. 282-97.
2. Rossi, P.H., Why Families Move, Glencoe, Illinois: The Free Press, 1955 P (2-53).
3. NSSO 2010, NSS Report No 533: Migration In India; July, 2007-June, 2008, P (22).
4. Channa, Z, Pathan, P, and Shaikh, Z, (2016) Migration: Concept, Types and Rationale: Printing and Publication Singh University Press Jamsoro, P (1-20).
5. Singh, J.P; Patterns of Rural-Urban Migration in India, New Delhi: Inter, India Publications, 1986. P (1-18).
6. भारत की जनगणना रिपोर्ट, महा रजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2011।

7- http://www.csds.in

8. Dubey, Amresh, Richard, Palmer Jones and Sen Kunal, 'Surplace Labour Social Structure and Rural to Urban Migration', The Eurpeon Journal of Development research volume 18, 2006
9. Bapu P Ramesh, Tasha, Agarwal, 'Changing Contours of Internal Migration in India', Manpower Journal, Vol. LIV No. 3 & 4 July 2020.
10. Malhotra, Neena & Devi, Pushpa 'Analysis of Factors Affecting Internal Migration in India', Amity Journal of Economics, 2017.
11. Ray, K, Archana, Bhagat, R.B, Das, K.C, Sarode Sunil & Reshmi R.S, 'Causes and Consequenses of Out Migration From Midlle Ganga Plaine'. International Institute of Population Sciences, Mumbai, 2021.
12. Sanyal Tilak and Maity Kingsuk, 'On Labour migration In India Trends Causes and Impects', Economics Affairs, Vol. 63, No. 1, March 2018.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन एवं गाँधी दर्शन : वर्तमान आवश्यकता

❑ डॉ वन्दना द्विवेदी
❖ नेहा सविता

सूचक शब्द : कुशल ठोस प्रबंधन, स्वच्छता के प्रति गाँधी विचार

वर्तमान परिदृश्य में बेहतर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन न केवल समय की माँग है बल्कि मानवीय स्वास्थ्य, समाज के विकास तथा पर्यावरणीय दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक समय में ठोस अपशिष्ट की बढ़ती मात्रा किसी एक समुदाय या राष्ट्र के लिए समस्या नही है बल्कि यह पूरे विश्व में एक विकराल समस्या बन चुका है। ऐसे समय में गाँधी जी के स्वच्छता सम्बन्धी विचार अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद वर्ष 1909 में प्रकाशित 'हिन्द स्वराज' में स्वच्छता को लेकर अपने विचारों को साझा किया। गाँधी जी के प्रारंभिक अभियानों में सम्मिलित चम्पारण ग्राम में भी पहले स्वच्छता अभियान को शुरु किया। अतः गाँधी जी के विचारों को आदर्श मानकर प्रस्तुत शोध पत्र में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को पर्यावरण के अनुकूल शून्य अपशिष्ट तक पहुँचाने की कार्यप्रणाली का अध्ययन किया गया है तथा ठोस अपशिष्ट का कुशल प्रबंधन, आवश्यकता तथा उचित उपायों का वर्णन गाँधी दर्शन के आधार पर किया गया है।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन वर्तमान समय में एक सार्वभौमिक मुद्दा बन चुका है जिसका समय रहते ही समाधान करने की आवश्यकता है। ठोस अपशिष्ट का उचित प्रबंधन कर काफी हद तक इस समस्या को कम किया जा सकता है। विकासशील देशों में लगभग 93 प्रतिशत अपशिष्ट को अवैज्ञानिक तरीके से खुले क्षेत्रों में फेंक दिया जाता है या फिर उसे डम्प कर दिया जाता है।[1] अपशिष्ट निस्तारण का यह तरीका अनेक मानवजनित बीमारियों तथा पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ाता है। अपशिष्ट के कुप्रबंधन के कारण यह अपशिष्ट सागरों तथा नदियों तक पहुँच चुका है जिसके गंभीर परिणाम सामने आ रहें हैं। वर्ष 2016 में ठोस अपशिष्ट के खराब प्रबंधन के कारण वैश्विक हानिकारक गैस उत्सर्जन में 5 प्रतिशत इसका हिस्सा रहा है।[2] अपशिष्ट को अनुचित तरीके से प्रबंधित करना जैसे जलाना तथा खुले क्षेत्र में फेंक देना, यह तरीके मानव स्वास्थ्य के साथ पर्यावरण तथा जलवायु पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। कहीं न कहीं ये हानिकारक प्रभाव हमारे आर्थिक विकास को भी बाधित करते हैं। वर्तमान परिदृश्य में हो रही अनेक जलवायु परिवर्तन की घटनायें यह संकेत करती हैं कि अब लोगों को जागरुक हो जाना चाहिए। World Bank की 2018 की रिपोर्ट में यह अनुमान लगाया गया है कि तेज नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के कारण आने वाले 30 वर्षों में वैश्विक अपशिष्ट 30 प्रतिशत तक बढ़ जायेगा तथा प्रतिवर्ष 3.40 बिलियन टन अपशिष्ट उत्पन्न होगा।[3] यदि हम प्लास्टिक की बात करें तो वर्ष 2016 में विश्व में 242 मिलियन टन प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पन्न हुआ जोकि कुल ठोस अपशिष्ट का 12 प्रतिशत है और अधिकांशतः यह प्लास्टिक अपशिष्ट समुद्रों में फेंक दिया जाता है।[4] एक तथ्य यह भी है कि आर्थिक विकास तथा जनसंख्या वृद्धि का अपशिष्ट उत्पादन के साथ धनात्मक सम्बन्ध है। आने वाले समय के साथ विकासशील देशों में अपशिष्ट उत्पादन 2 से 3 गुना तक बढ़ने की संभावना है।[5] लेकिन उपर्युक्त आँकड़े दिखाने का अर्थ यह नहीं है कि विकास या वृद्धि न की जाये बल्कि वैश्विक विकास ऐसा होना चाहिए जिसमें हम एक स्थायी ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की ओर बढ़ सकें तथा शून्य अपशिष्ट के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

महात्मा गाँधी जी की स्वच्छता के प्रति जागरुकता तथा विचार : राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भारत के लिए अनेक रचनात्मक कार्य किये जिनमें से एक कार्य सफाई एवं स्वच्छता पर विशेष बल देना था। गाँधी जी ने प्लेग तथा

❑ एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पी.पी.एन.पी.जी.कॉलेज, कानपुर (उ.प्र.)
❖ शोध अध्येत्री, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

हैजा जैसी बीमारियों को रोकने के लिये स्वच्छता को आवश्यक माना। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुये कहा ''क्या स्वच्छता का अपना प्रतिफल नहीं है? हमें स्वच्छता के मूल्य को जानना चाहिये।''[6] जनवरी 1935 में दिल्ली के सेंट स्टीफंस कॉलेज के प्रोफेसर विनसर के साथ हुई वार्ता में गाँधी जी ने वस्तुओं को पुनःप्रयोग करने, रिसाइकिल करने की शिक्षा तथा सफाई स्वच्छता की विशेष शिक्षा छात्रों को सिखाने की बात कही तथा इन शिक्षाओं को व्यवहारिक जीवन में छात्रों के साथ प्रयोग करने पर विशेष बल दिया। गाँधी जी का स्वच्छता के प्रति दृष्टिकोण व्यापक था। 20 मार्च 1916 को शैक्षणिक संस्थान गुरुकुल कांगड़ी में स्वच्छता को प्राथमिक तथा उच्चशिक्षा के पाठ्यक्रम में शमिल करने पर जोर दिया तथा कहा, ''स्वतंत्रता से ज्यादा महत्वपूर्ण है स्वच्छता''[7]। गाँधी जी ने ''नवजीवन'' तथा ''यंग इंडिया'' में स्वच्छता तथा सफाई के विषय में अनेक लेख लिखे। उन्होंने समग्र स्वच्छता की बात की और सम्पूर्ण विश्व के लिए इसे आवश्यक बताया। समग्र स्वच्छता से तात्पर्य है सम्पूर्ण सामाजिक तथा आन्तरिक स्वच्छता। सामाजिक स्वच्छता अर्थात यदि कोई व्यक्ति अपनी साफ-सफाई के अतिरिक्त दूसरों की साफ-सफाई के प्रति उदासीन है तो ऐसी उदासीनता बेईमानी ही है। उदाहरणार्थ अपशिष्ट को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह पर फेंक देना। गाँधी जी का विचार था कि हम सभी को व्यक्तिगत स्वच्छता के साथ सामूहिक स्वच्छता के उत्तरदायित्वों का भी बोध होना चाहिए। आन्तरिक स्वच्छता का अर्थ गाँधी जी ने आध्यात्मिक स्वच्छता से जोड़ा है। गाँधी जी ने मानव प्रगति के लिए आन्तरिक तथा बाहरी स्वच्छता को आवश्यक माना है। आन्तरिक रुप से साफ मन में अपने राष्ट्र, पर्यावरण तथा विश्व के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का बोध होता है तथा वह ऐसा कोई भी कार्य नही करना चाहेगा जिससे पर्यावरण, राष्ट्र या फिर किसी को व्यक्तिगत रुप से हानि हो। गाँधी जी ने स्वच्छता को आम जनमानस तक ही सीमित नही रखा बल्कि उन्होंने निजी क्षेत्रों तथा सामाजिक कार्यक्षेत्रों में भी स्वच्छता को बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया। गाँधी जी यह मानते थे कि प्रत्येक संगठन में अधिकारी से लेकर कर्मचारी तक प्रत्येक की यह जिम्मेदारी है कि वह अपने पर्यावरण को साफ रखे। सरकार तथा नगरपरिषद् कुछ सीमा तक ही प्रयास कर सकती हैं। सरकारों की अपनी एक सीमा होती है लेकिन यदि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण स्वच्छता को अपना कर्तव्य समझे तो यह समस्या सुलझ सकती है।

गाँधी जी ने स्वच्छता को अपने निजी जीवन में भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। निजी जीवन में उन्होंने कई बार व्यक्तिगत तौर पर खुद सफाई की। वर्ष 1915 में जब गाँधी जी गंगा कुम्भ मेले में गए थे तो वह वहाँ एक सफाईकर्मी स्वयंसेवक के रुप में उपस्थित हुए।[8] गाँधी जी ने स्वराज के स्तम्भ के रुप में स्वच्छता को आधार बनाया। उन्होंने गुजरात में हुए एक राजनीतिक सम्मेलन के दौरान इस विषय पर कहा, ''बाहरी स्वच्छता के मामले मे अभी हमें पश्चिम से बहुत कुछ सीखना है।''[9] गाँधी जी के सहयोगी बबन गोखले ने 6 दिसंबर 1917 को गाँधी जी को पत्र लिखा। इस पत्र के माध्यम से गोखले जी ने अपने यहाँ के ग्रामीण रहन-सहन तथा स्वच्छता के विषय में अवगत कराया एवं स्वच्छता में कितनी प्रगति की गई इस बारे में भी लिखा।[10] अपने सहयोगियों से स्वच्छता की जानकारी लेना तथा उन्हें प्रेरित करना गाँधी जी की स्वच्छता के प्रति जागरुकता को दर्शाता है। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को स्वैच्छिक सहयोग तथा स्वच्छता के लिए श्रमदान को प्रेरित किया।[11]

महात्मा गाँधी तथा शून्य अपशिष्ट संकल्पना : महात्मा गाँधी को शून्य अपशिष्ट के अग्रणी दूरदर्शी के रुप में देखा जा सकता है। उनकी गहन पर्यावरण संवेदनशीलता तथा स्वच्छता के प्रति समर्पण उन्हें शून्य अपशिष्ट के विचारक के रुप में प्रतिस्थापित करती है। शून्य अपशिष्ट एक लक्ष्य है जिसमें अपशिष्ट उत्पादन को शून्य किया जायेगा तथा पर्यावरण के अनुकूल निस्तारित किया जायेगा। महाराष्ट्र में टॉलस्टॉय फार्म, साबरमती आश्रम तथा सेवाग्राम में रहते हुए गाँधी जी स्वयं स्वच्छता का निरीक्षण करते थे एवं अपशिष्ट निस्तारण को सुनिश्चित करते थे। कानपुर के पास महाराजपुर के नर्वल में स्थित सेवाग्राम भी गाँधी जी के स्वच्छता सम्बन्धी विचारों तथा स्वदेशी की अभियान का समर्थक रहा है। वर्ष 1934 में गाँधी जी कानपुर के दौरे पर आये थे, इस दौरान गाँधी जी ने मलिन बस्तियों का सर्वेक्षण किया तथा लोगों को स्वच्छता के लिए प्रेरित किया। इस समय गाँधी जी की धर्मपत्नी कस्तूरबा गाँधी जी को नर्वल सेवा आश्रम काफी पसन्द आया तथा उन्होंने सेवा आश्रम में कुछ दिन प्रवास किया। सेवा आश्रम में महात्मा गाँधी जी से प्रेरणा लेकर कस्तूरबा गाँधी जी ने खादी, स्वदेशी की भावना तथा स्वच्छता के

प्रति लोगों को जागरुक किया।[12] गाँधी जी ने आश्रम तथा सामूहिक रहन-सहन को प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के साथ मिश्रित कर दिया जिसे वर्तमान समय में 'पर्माकल्चर' के नाम से जाना जाता है, यह प्रणाली शून्य अपशिष्ट संकल्पना में अत्यन्त सहायक है। गाँधी जी के यह कार्य शून्य अपशिष्ट संकल्पना की दिशा में उठाये गये प्राथमिक कार्यों में से हैं।

गाँधी जी ने साबरमती आश्रम में मानवीय श्रम, कृषि तथा साक्षरता को केन्द्र में रखकर पाठशाला का निर्माण किया। इस पाठशाला में प्रथम शिक्षा स्वच्छता से शुरु होती थी जिसमें सभी शिक्षार्थियों को स्वच्छता सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। साबरमती आश्रम में गाँधी जी ने स्वदेशी विचारों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कताई का अभ्यास किया तथा खादी को बनाया। उन्होंने जैविक पदार्थों से खाद बनाने की प्रथा को भी बढ़ावा दिया।[13] उपर्युक्त सभी कार्य 'रिसाइकिलिंग प्रक्रिया' की शुरुआत को दिखाते हैं।

शून्य अपशिष्ट संकल्पना की नीति को अपनी दूरदर्शी सोच के साथ गाँधी जी ने बहुत पहले ही शुरु कर दिया था। उस समय उन्होंने अपशिष्ट निस्तारण के लिए मिट्टी के गड्ढ़ों का प्रयोग किया। यहीं से अपशिष्ट प्रबंधन के कुछ नियम निकलकर सामने आये जिन्हें हम निम्नलिखित बिन्दुओं में देख सकते हैं :-

1. अनावश्यक खपत को कम करना : गाँधी जी ने जीवन दर्शन तथा आर्थिक मूल्यों के लिए 'सादा जीवन उच्च विचार' का बुनियादी आदर्श दिया। वह एक साधारण जीवनशैली के पक्षधर थे तथा स्वयं भी वह साधारण जीवन जीते थे। गाँधी जी यह मानते थे कि जीवन में जितनी अधिक आवश्यकताओं की मात्रा को बढ़ाया जायेगा उतनी ही अधिक लालसा बढ़ती चली जायेगी। गाँधी जी को यह भरोसा था कि पश्चिमी उपभोक्तावादी जीवनशैली तथा व्यवसायीकरण के कारण मानवीय इच्छायें बढ़ गई हैं इसलिए वह आवश्यकताओं को कम करने तथा विचारों में श्रेष्ठता लाने की बातें करते थे।[14] आवश्यकताओं को कम करने का यह विचार कहीं न कहीं शून्य अपशिष्ट संकल्पना से सम्बन्धित दिखाई पड़ता है। उनके इस विचार से आरम्भ में ही अपशिष्ट कम मात्रा में उत्पन्न होगा तथा निस्तारण की समस्या में कमी आयेगी। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है भारतीय सीमा से लगे हुए राष्ट्र भूटान की संस्कृति इस कम आवश्यकता के नियम से सम्बन्ध रखती है शायद यह भी एक कारण ही है कि भूटान का कार्बन उत्सर्जन नकारात्मक है साथ ही शून्य अपशिष्ट संकल्पना में पूरे विश्व में प्रथम है।

2. अपशिष्ट की मात्रा को कम करना : गाँधी जी अपशिष्ट को शुरुआत में ही कम करने पर जोर दिया। उनका यह मानना था कि हम वस्तुओं का उचित उपयोग करें तथा साथ ही ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करें जिसका बार-बार प्रयोग किया जा सकता हो एवं जो पर्यावरण को किसी भी तरह से हानि न पहुँचायें।[15] इस प्रकार गाँधी जी ने रिसाइकिलिंग तथा पुनःप्रयोग व्यवस्था को उस समय ही समझ लिया था।

3. अपशिष्ट को उसके निर्धारित स्थान तक सीमित करना : गाँधी जी के लिए अस्वच्छता एक गम्भीर सामाजिक समस्या थी। वर्ष 1895 में दक्षिण अफ्रीका में स्वच्छता के आधार पर ही भेदभाव होने के कारण उन्होंने स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया।[16] गाँधी जी अपशिष्ट के उत्पन्न होने से लेकर उसके निस्तारण तक के कार्यों को पर्यावरण के अनुकूल रखने पर जोर देते थे तथा इस निस्तारण प्रक्रिया के दौरान किसी भी तरह से पर्यावरण को हानि न हो इसका विशेष महत्व दिया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण तब देखने को मिला जब दक्षिण अफ्रीका में प्लेग फैला हुआ था उस समय गाँधी जी ने यह सुनिश्चित किया कि अपशिष्ट को इस तरह से बस्ती से दूर निस्तारित किया जाये जिससे पर्यावरण तथा किसी भी व्यक्ति को कोई हानि न पहुँचे।[17]

4. नदियों तथा झीलों को साफ तथा स्वच्छ रखना : वर्तमान समय में भारतीय नदियों की दशा अत्यन्त दयनीय है और इन नदियों को प्रदूषित करने में हमारा ही योगदान है। गाँधी जी नदियों में अपशिष्ट फेंकने के खिलाफ थे। उस समय अंग्रेजों ने कपड़ों का व्यवसायीकरण कर दिया था तथा सूती मिलों से निकलने वाले बेकार पानी और अपशिष्ट को नदियों में ही फेंका जा रहा था, गाँधी जी ने इसका विरोध किया तथा यह संदेश दिया,''राष्ट्रीय अथवा सामाजिक स्वच्छता की भावना हमारे गुणों में सम्मिलित नहीं है। हम उस कुयें या तालाब अथवा नदी को गंदा करने से नहीं चूकते जिसके किनारे हम नहाते-धोते है। मैं इस दोष को बड़ी भारी बुराई मानता हूँ जो हमारे गांवो के कुओं और पवित्र नदियों की दुर्दशा तथा गदंगी से पैदा होने वाली बीमारियों के लिए जिम्मेदार है।''[18] यदि गाँधी जी के विचारों को महत्व

दिया गया होता तो भारतीय नदियों की आज यह दुर्दशा नही होती।

5. पर्यावरण का अधिक सम्मान करना : गाँधी जी ने कार्यक्रमों में पर्यावरण को सीधे तौर पर सम्बन्धित नही किया लेकिन उनके विचार सीधे तौर पर पर्यावरण के संरक्षण से सम्बन्धित रहे हैं। गाँधी जी के ग्यारह संकल्पों में से एक 'आश्रम संकल्प' को वह आदर्श माना जाता है जिसमें गाँधी जी ने पर्यावरण सम्बन्धित विचारधारा को रखा।[19] गाँधी जी का स्वदेशी संदेश भी पर्यावरण के प्रति उनकी संवेदनशीलता को दर्शाता है जिसमें स्थानीय रुप से प्राप्त वस्तुओं को प्रयोग करने पर जोर दिया जाता है। गाँधी जी प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर तरीके से उपयोग करने के पक्षधर थे। वह प्रकृति, जंगल तथा नदियों के विनाश के खिलाफ थे।

सेवाग्राम में भी गाँधी जी ने कई प्रयोग किये। उन्होंने हथकरघा उद्योग तथा मिट्टी के घरों का प्रयोग किया। गाँधी जी ने अपने सर्वोदय सिद्धांत के माध्यम से समान जीवन निर्वाह स्तर पर जोर दिया।[20] उनका यह विचार शून्य अपशिष्ट अवधारणा को और अधिक मजबूती प्रदान करता है। हालाँकि गाँधी जी ने शून्य अपशिष्ट का संरचित मॉडल नही दिया परन्तु उनके द्वारा किये गए कार्य शून्य अपशिष्ट अवधारणा का ही समर्थन करते हैं। गाँधी जी अपने कालखंड से आगे की विचारधारा के व्यक्ति थे जो शून्य अपशिष्ट जीवन निर्वाह प्रणाली को अपनाते रहे।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन तथा गाँधी विचारधारा की वर्तमान समय में प्रासंगिकता : स्वच्छता गाँधी जी के जीवन का अभिन्न अंग थी। वह शारीरिक स्वास्थ्य तथा स्वच्छ पर्यावरण के समर्थक थे। वह न केवल स्वच्छता के पक्षधर थे अपितु अपशिष्ट के उचित निस्तारण को भी जरुरी मानते थे। उन्होंने कई अवसरों पर स्वयं यह सुनिश्चित किया कि अपशिष्ट का उचित प्रबंधन हो। उन्होंने स्वच्छ भारत और स्वस्थ्य भारत का उत्कृष्ट सामाजिक सन्देश दिया। गाँधी जी की स्वच्छता सम्बन्धित विचारधारा को आधार बनाकर 2 अक्टूबर 2014 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने स्वच्छ भारत अभियान शुरु किया। यह अभियान अपशिष्ट मुक्त वातावरण तथा स्वस्थ्य समाज की संकल्पना पर आधारित है।[21] इस अभियान का उद्देश्य केवल साफ-सफाई नही है बल्कि सफाई के साथ अपशिष्ट प्रबंधन के सभी नियमों का पालन करना है जिसमें अपशिष्ट को कम से कम करने से लेकर शून्य अपशिष्ट की संकल्पना के लक्ष्य को प्राप्त करना सम्मिलित है। गाँधी जी के स्वच्छता सम्बन्धित विचार आज के समय में भी प्रासांगिक हैं जो गाँधी जी को भारत में स्वच्छता तथा अपशिष्ट प्रबंधन का अगुआकार बनाते हैं।

गाँधी जी ने अपनी शहादत से एक दिन पहले 29 जनवरी 1948 को प्रस्तावित लोकसेवा संघ का संविधान तैयार किया। इस संविधान में सेवक का छठवां कार्य यह था : उसे ग्रामीणों को सफाई और स्वच्छता की शिक्षा देनी होगी और उन्हें खराब सेहत तथा बीमारियों से बचाने के लिए एहतियात के सभी उपाय करने होंगे। गाँधी जी के सम्पूर्ण जीवनकाल में स्वच्छता उनकी विशेष प्राथमिकताओं में सम्मिलित रही।[22]

अध्ययन उद्देश्य

1. गाँधी जी के विचारों को प्रेरणा मानकर कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के मुख्य लक्ष्य शून्य अपशिष्ट की अवधारणा को प्रोत्साहित करना।
2. कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की वैज्ञानिक धारणा को पर्यावरण अनुकूल रखते हुये लोकप्रिय बनाना।

भारत में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति : अकुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन आधारभूत ढाँचे को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है तथा इस अपशिष्ट कुप्रबंधन से हो रहे जलवायु परिवर्तन के कारण प्राकृतिक संसाधनों में कमी आने लगती है। भारत में प्रतिवर्ष 65 मिलियन टन ठोस अपशिष्ट उत्पन्न होता है जिसमें से 62 मिलियन टन म्युनिसिपल अपशिष्ट सम्मिलित है। इस ठोस अपशिष्ट में कागज, प्लास्टिक, जैव अपशिष्ट तथा काँच आदि सम्मिलित हैं। इस ठोस अपशिष्ट का लगभग 45.50 प्रतिशत जैविक अपशिष्ट है, 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत रिसाइकिल योग्य अपशिष्ट है तथा 30 प्रतिशत तक निष्क्रिय अपशिष्ट शामिल है। इस म्युनिसिपल अपशिष्ट का 75.80 प्रतिशत एकत्रित किया जाता है तथा केवल 22.28 प्रतिशत का उपचारण हो पाता है यह अपशिष्ट प्रबंधन की अत्यन्त दयनीय स्थिति है। आने वाले समय में यह अपशिष्ट 2031 तक 165 मिलियन टन तथा 2050 तक 436 मिलियन टन हो जाने की संभावना है।[23] वर्तमान में भारत में प्रतिदिन 1.20-1.40 लाख टन अपशिष्ट उत्पन्न हो रहा है जिसे प्रबंधित करना अपने आप में एक कठिन कार्य है।[24]

उपर्युक्त आँकड़ों को देखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है कि कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के बारे में बात की जाये। जिस प्रकार गरीबी तथा बेरोजगारी को हटाना वैश्विक समाज का लक्ष्य है उसी प्रकार वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए कुशल अपशिष्ट प्रबंधन को भी एक लक्ष्य बनाकर इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए जिससे हम शून्य अपशिष्ट की अवधारणा को प्राप्त कर सके।

उत्पन्न हुये अपशिष्ट को उपयोगी वस्तुओं में परिवर्तित करना : यदि हम अपशिष्ट के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदलें तो अपशिष्ट को हम उत्पादित वस्तु के रुप में देख सकते हैं। हम इस अपशिष्ट को उपचारित करके प्रयोग की कई वस्तुयें बना सकते हैं, घरेलू अपशिष्ट को कम्पोस्टिंग से खाद में बदल सकते हैं एवं धातु तथा काँच आदि को रिसाइकिल कर सकते हैं। बेकार हुये कागज से खिलौने, ट्रे, डलिया तथा फोटोफ्रेम आदि बनाये जा सकते हैं। महाराष्ट्र के कई ग्रामीण क्षेत्रों में बेकार कागज से वस्तुओं को बनाने के लिए अनेक स्वयंसेवी संगठन कार्य कर रहें हैं। इसी प्रकार बेकार कपड़े से दरियाँ, सॉफ्ट टॉयज आदि बनाये जा सकते हैं।[25] उत्तर प्रदेश का अमरोहा जिला 'वेस्ट कॉटन' से सम्बन्धित व्यवसायिक क्षेत्र बन चुका है जहाँ पर पुराने कपड़ों को कतरनों में बदलकर उससे गद्दे तथा तकिये बनाये जाते हैं एवं नेपाल तथा बांग्लादेश तक में निर्यात किया जाता है।[26] अन्य भी कई तरीके हैं जिनसे अपशिष्ट का बेहतर ढ़ग से प्रयोग किया जा सकता है।

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य अपशिष्ट से अधिकतम उपयोग के संसाधनों को प्राप्त किया जाये तथा कम से कम अपशिष्ट को लैण्डफिल (अपशिष्ट भराव क्षेत्र) तक पहुँचाया जाये। वर्तमान परिदृश्य में बढ़ते हुए लैण्डफिल के क्षेत्र समस्या बनते जा रहे हैं। किसी भी मेट्रोपोलिटन शहर में लैण्डफिल के बड़े-बड़े पहाड़ देखने को मिल जाते हैं अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपशिष्ट उत्पादन को कम से कम करें तथा प्रारम्भिक चरण से ही अपशिष्ट प्रबंधन को कुशल बनायें।

हमें वैज्ञानिक तरीके से कुशल ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन क्यों करना चाहिए ?

उपरोक्त प्रश्न का जवाब हम निम्नलिखित बिन्दुओं के रुप में देख सकते है :-

1. कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन से लोगों के स्वास्थ्य में सुधार होगा जिससे श्रम करने की क्षमता बढ़ेगी तथा अस्पतालों से मरीजों के भार को कम किया जा सकेगा।
2. कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन से रोजगार के नये क्षेत्रों का गठन होगा इस कारण बेरोजगारी को कम करने में सहायता मिलेगी।
3. जैविक खाद मिलने से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होगी तथा कृषि उत्पादन को बढ़ाने में सहायता मिलेगी।
4. अपशिष्ट के कुशल प्रबंधन होने से ऊर्जा को उत्पन्न किया जा सकेगा इससे कोयला तथा जल पर निर्भरता कम होगी एवं सस्ती ऊर्जा को प्राप्त किया जा सकेगा।
5. कुशल अपशिष्ट प्रबंधन से हमें कई तरह के कच्चे माल की प्राप्ति होगी तथा इस कच्चे माल से बनी वस्तुयें भी आसान कीमतों पर उपलब्ध होंगी।
6. कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर्यावरण के अनुकूल रहेगा जिससे वर्तमान परिदृश्य में हो रही ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में सहायता होगी।

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का पदानुक्रम : ठोस अपशिष्ट के उचित प्रबंधन कर अर्थ है कि अपशिष्ट का प्रबंधन इस प्रकार से किया जाये जिससे पर्यावरण में निष्क्रिय अपशिष्ट की मात्रा कम से कम पहुँचे। कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पदानुक्रम के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है :-

एकत्रीकरण : कुशल तरीके से ठोस अपशिष्ट का एकत्रीकरण करना अपशिष्ट प्रबंधन की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण चरण है। स्वच्छता, सुरक्षा तथा पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए अपशिष्ट को एकत्रित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में अपशिष्ट कंटेनर, अपशिष्ट परिवहन से सम्बन्धित ट्रक और वाहन आदि तथा कुशल श्रमिक होने चाहिए जो अपशिष्ट एकत्रीकरण के कार्य को सुचारु रुप से कर सके। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का एकत्रीकरण चरण श्रम गहन तकनीकी क्षेत्र है अतः श्रमिकों को प्रशिक्षित तथा कार्य में कुशल होना चाहिए। घरेलू अपशिष्ट के लिए घरों में भी छोटे कंटेनर होने चाहिए जिसमें अपशिष्ट को अलग-अलग रखा जा सके।[27]

अपशिष्ट पृथक्करण : अपशिष्ट एकत्रीकरण के बाद ठोस अपशिष्ट पृथक्करण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया में अपशिष्ट की प्रकृति के अनुसार उसे अलग किया जाता है जिसमें बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट नॉन

बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट, रीसाइकिल योग्य अपशिष्ट तथा घातक अपशिष्ट को अलग किया जाना सम्मिलित है। अपशिष्ट उत्पादन क्षेत्र से ही अपशिष्ट को पृथक करने की प्रक्रिया शुरु हो जाती है जैसे गीले तथा सूखे अपशिष्ट को अलग डस्टबिन में रखना।[28]

सामान्यतया अपशिष्ट पृथक्करण का कार्य असंगठित क्षेत्रों से कराया जाता है जिसमें कबाड़ी वाले तथा कबाड़ बीनने वाले सम्मिलित होते हैं। कुशल पृथक्करण का ज्ञान न होने के कारण केवल महँगी वस्तुओं को अलग किया जाता है तथा शेष अपशिष्ट को लैण्डफिल में डम्प कर दिया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि अपशिष्ट पृथक्करण की प्रक्रिया को वैज्ञानिक ढंग से संचालित किया जाये, इस कार्य से जुड़े लोगों को प्रशिक्षण दिया जाये तथा उनके स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए कार्य को सम्पन्न कराया जाये।

सारणी-1 ठोस अपशिष्ट का अधिकतम उत्पादन, संग्रहण तथा शोधन करने वाले प्रमुख राज्य वर्ष (2018-19)

राज्य	उत्पादन मात्रा	एकत्रित मात्र	शोधित मात्रा
महाराष्ट्र	23,844.6	23,675.1	12623.3
उत्तर प्रदेश	17,377.3	17,329.4	4,615.0
पश्चिम बंगाल	14,613.3	13,064.6	916.0
तमिलनाडु	13,968.0	12,850.0	7,196.0
कर्नाटक	11,958.0	10,011.0	4,515.0
दिल्ली	10,817.0	10,614.0	5,714.0

अपशिष्ट निस्तारण : यह प्रक्रिया ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का अंतिम चरण है जिसमें अपशिष्ट की प्रकृति के अनुसार उसका निस्तारण किया जाता है। इस प्रक्रिया को ही प्रभावी बनाकर शून्य अपशिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना अपशिष्ट से जुड़ी संस्था का उद्देश्य होता है। अपशिष्ट निस्तारण के अन्तर्गत बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट को खाद में बदलना, धातु, प्लास्टिक, कागज, काँच आदि को रिसाइकिल करना तथा अपशिष्ट से ऊर्जा का उत्पादन करना शामिल है। अपशिष्ट निस्तारण के कई तरीके हैं जिसमें अपशिष्ट को जलाना, लैण्डफिल में फेंकना, जैविक कम्पोस्टिंग तथा वस्तुओं की रिसाइकिलिंग सम्मिलित है।[29] इन अपशिष्ट निस्तारण के तरीके में अपशिष्ट को जलाना तथा लैण्डफिल में फेंकना पर्यावरण के अनुकूल नही है।

सारणी-2 भारत के राज्यों में अधिकतम कंपोस्ट प्लाण्ट तथा लैण्डफिल क्षेत्रों की संख्या वर्ष 2018-19

राज्य	कंपोस्ट प्लाण्ट की संख्या	लैण्डफिल क्षेत्र की संख्या
केरल	721	1
तमिलनाडु	608	4
छत्तीसगढ़	489	2
महाराष्ट्र	307	320
कर्नाटक	143	215
उत्तर प्रदेश	12	82

उपर्युक्त आँकड़ो के अध्ययन तथा अन्य कई शोध कार्यों से स्पष्ट होता कि कम्पोस्टिंग तथा लैण्डफिल क्षेत्र में विपरीत सम्बन्ध है। कम्पोस्टिंग प्रक्रिया से जैविक अपशिष्ट को खाद अथवा ऊर्जा में परिवर्तित कर दिया जाता है इस प्रक्रिया से अपशिष्ट का सदुपयोग हो जाता है और लैण्डफिल में फेंके जाने वाले अपशिष्ट की मात्रा में कमी आती है तथा कम लैण्डफिल क्षेत्र की आवश्यकता होती है। ठोस अपशिष्ट का कुशल तरीके से प्रबंधन करके कई तरह की समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है जैसे भूमि संसाधनों की सुरक्षा, जल, वायु तथा मृदा को प्रदूषित होने से बचाना एवं पुरानी वस्तुओं के प्रयोग से ऊर्जा की क्षमता में बढ़ोत्तरी करना आदि अनेक ऐसी प्रक्रियायें हैं जिन्हें अपनाकर ठोस अपशिष्ट से जुड़ी समस्याओं से निपटा जा सकता है।

महात्मा गाँधी ने भी अपने स्वच्छता के लिए किये गए कार्यों के अन्तर्गत हमेशा यह ध्यान रखा कि अपशिष्ट को कहीं फेंका न जाये बल्कि अपशिष्ट को उचित तरह से निस्तारित कर दिया जाये। गाँधी जी के इन विचारों को यदि जोड़ कर देखा जाये तो कुशल अपशिष्ट प्रबंधन की धारणा सामने आती है। गाँधी जी के विचार उनकी दूरदर्शी सोच को व्यक्त करते है। गाँधी जी ने आजादी से पहले ही स्वच्छ भारत स्वस्थ्य भारत का नारा दिया था जिसे वर्तमान में अमल में लाया जा रहा है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियमावली 2016 में भी यह उल्लेखित किया गया है कि वन, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण नियंत्रण तथा मानवीय स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए ठोस अपशिष्ट का निस्तारण किया जाये।

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को हम निम्नलिखित आरेख से भी समझ सकते हैं :-

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का अनुक्रम

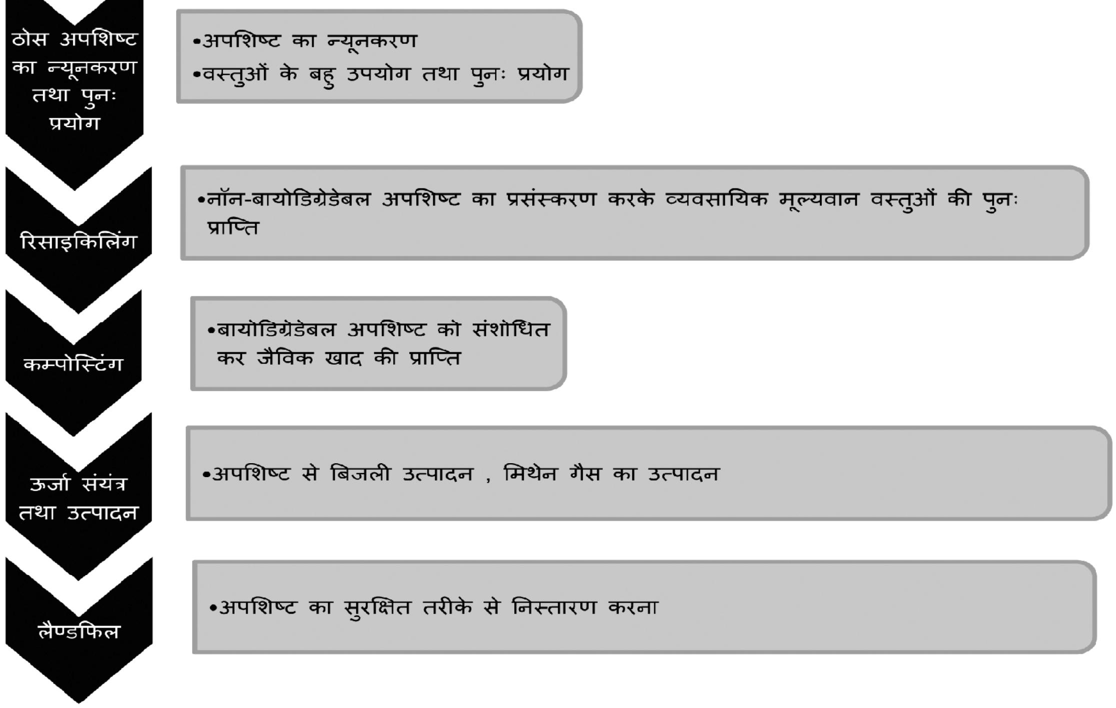

हम अपने दैनिक जीवन में पुनःप्रयोग एवं रिसाइकिल की प्रक्रिया को अपनाकर वस्तुओं को अपशिष्ट में परिवर्तित होने से रोक सकते हैं। वस्तुओं को रिसाइकिल करके उनसे अनेक काम की वस्तुयें बनाई जा सकती हैं।

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को बाधित करने वाली चुनौतियाँ :

1. अपशिष्ट एकत्रीकरण तथा अपशिष्ट पृथक्करण का आपस में संयोजन न होना।
2. कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिए वित्त तथा आधारभूत संरचना का अभाव होना।
3. बढ़ रहे उपभोक्तावादी युग के साथ अपशिष्ट बदलाव के उपचारण के लिए तकनीकी ज्ञान की कमी।
4. लैण्डफिल वाली जगहों पर अपशिष्ट प्रबंधन नियमावली 2016 का क्रियान्वयन न हो पाना।
5. रिसाइकिलिंग प्रक्रिया तथा पुनःप्रयोग की अवधारणा का विकसित न हो पाना।
6. कुशल अपशिष्ट प्रबंधन के विषय में जनजागरुकता का अभाव।

कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को बेहतर बनाने के लिए गाँधीवादी दर्शन का महत्व : वर्तमान समय के दिन प्रतिदिन बदलते परिदृश्य में भी महात्मा गाँधी के विचार महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। गाँधी जी ने स्वच्छता तथा पर्यावरण के लिए जो विचार प्रस्तुत किये उनसे यह निर्धारित हो जाता है कि उन्होंने समय से पहले ही पर्यावरण की समस्याओं का अनुमान लगा लिया था। उनका कम आवश्यकता का नियम, सरल जीवनशैली तथा आध्यात्मिक आयाम समाज और पर्यावरण के प्रति गाँधी जी की जागरुकता को दर्शाते हैं। गाँधी जी प्रकृति को साथ लेकर चलने की बात करते हैं। वर्ष 1937 में पश्चिम बंगाल से एक भारतीय ने गाँधी जी को पत्र लिखकर पूछा कि आदर्श ग्राम की परिभाषा क्या होनी चाहिए ? गाँधी जी ने उत्तर में लिखा, ''आदर्श ग्राम का निर्माण इस प्रकार से किया जाये कि उसमें पूर्ण स्वच्छता रह सके...... गाँव के कार्यकर्ता को सुलझाने के लिए सबसे पहली समस्या स्वच्छता की होगी।''[30] सतत विकास लक्ष्य 2030 के लक्ष्य 6 तथा 11 में स्वच्छता को महत्व दिया गया है जिसमें अन्तर्गत अपशिष्ट प्रबंधन एवं शून्य अपशिष्ट की संकल्पना को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।[31] गाँधी जी एक जागरुक व्यक्ति थे, यह महात्मा गाँधी के दूरदर्शी विचार ही हैं जो आज के समय में भी लागू होते हैं।

निष्कर्ष : वर्तमान 21वीं सदी में वैश्वीकरण, मुक्तबाजार, निजीकरण तथा उदारीकरण जैसे महत्वपूर्ण शब्दों ने पूरे विश्व को एक उपभोक्तावादी समाज में बदल दिया है। गाँधी जी इस उपभोक्तावाद के खिलाफ जाकर कार्यों को करने में सदैव समर्पित रहे। अपशिष्ट अधिक मात्रा में उत्पन्न होने के मुख्य कारक पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील, अकुशल अपशिष्ट प्रबंधन तथा उपभोक्तावादी जीवनशैली को माना जा सकता है। गाँधीवादी दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण, स्वच्छता, आवश्यकतानुसार उपभोग तथा आत्मनिर्भरता पर विशेष बल देता है। गाँधी जी के स्वच्छता सम्बन्धी विचार कुशल अपशिष्ट प्रबंधन में अत्यन्त प्रासंगिक हैं। गाँधी जी की यह दूरदृष्टि सोच वर्तमान समय के कुशल अपशिष्ट प्रबंधन को महत्वपूर्ण बना देती है।

बदल रहे तकनीकी युग में आज भी अपशिष्ट को एक कचरे के रुप समस्या माना जाता है जबकि हमें अपना दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की आधारभूत संरचना को कुशल बनाकर इसे एक समाधान के रुप में पेश करने की जरुरत है। स्थानीय प्रशासन तथा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन से जुड़ी संस्थाओं को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए तथा एक उचित तंत्र की व्यवस्था की जानी चाहिए। कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को प्रभावी बनाने के लिए रिसाइकिलिंग, अपशिष्ट ऊर्जा संयन्त्र, कम्पोस्टिंग, बॉयोगैस तथा पुनःप्रयोग की अवधारणा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। वैज्ञानिक ढंग से ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के सभी चरणों को सुचारु रुप से चलाने के लिए हमें एक व्यवस्था बनानी चाहिए जो ठोस अपशिष्ट प्रबंधन पर प्रभावी ढंग से कार्य करे। कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की प्रक्रिया को अपनाकर अनेक पर्यावरणीय तथा मानवीय समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। अतः वर्तमान समय में आवश्यकता यह है कि हम धारणीय विकास लक्ष्यों की ओर बढ़ते हुए कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को वैज्ञानिक, व्यवस्थित तथा प्रभावी बनायें।

सन्दर्भ

1. Kaza, Silpa Et al. 'What a Waste 2.0', World Bank Publication,2018, World Bank Group, https://openknowledge.worldbank.org/handle/10986/303317
2. Ibid p.5.
3. Ibid p.1.
4. Ibid p.xi
5. Ibid p.3
6. Iyengar, Sudarshan, 'In the Footstep of Mahatma Gandhi & Sanitation', Publication Divisions, Ministry of Information and Broadcasting, GOI, New Delhi (Digitized by Internet Archive in 2018) https://hindi.indiawaterportal.org
7. Ibid, p.33.
8. Iyengar, op.cit. p.39
9. प्रभु, आर.के., 'महात्मा गाँधी के विचार', नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1994, https://www.mkgandhi.org/ebks/hindi/mahatma-...
10. Iyengar,op.cit, p.394-395
11. प्रभु, आर.के., पूर्वोक्त, पृ. 366-372
12 त्रिपाठी, शेलेन्द्र, 'गाँधी जयन्ती विशेष', अक्टूबर 2019, https://www.jagran.com/uttar-pradesh/kanpur-city-mahatma-
13. Ibid, pp. 62-65, 127
14. Gandhi, M.K., 'From Yeravda Mandir', Navajivan Mudranalaya, 2001(third revised edition),p.30-33. https://www.mkgandhi.org/ebks/yeravda.pdf
15. Ibid,p.34-35.
16. Iyengar, op.cit, p.7.
17. Iyengar, op.cit, pp.7-9.
18. प्रभु, आर.के., पूर्वोक्त, पृ. 395.
19. Gandhi, 'India of My Dreams' op.cit. pp.179-180
20. गाँधी मोहनदास करमचंद, 'सर्वोदय', सस्ता साहित्य मंडल, 2011,p.33-35 https://www.mkgandhi.org./ebks/hindi/sarvodaya.pdf
21. "Guidelines for Swachh Bharat Mission Grmin",Ministry of Drinking Water & Sanitation, October 2017,p.2, https://Swachhbharatmission.gov.in
22. प्रभु, आर.के., पूर्वोक्त, पृ. 366-374
23. Standing Committee on Urban Development (2020-2021) Report, Seventh Lok Sabha, Ministry Of Housing and Urban Affairs, Lok Sabha Secretariat, March 2021, New Delhi, p.2. http://www.indiaenvironmentportal.org.in
24. Ibid, p.7.
25. सिंह, महीपाल, 'जनपद अमरोहा (उत्तर प्रदेश) में कॉटन वेस्ट उद्योग का विकास, सम्भावनाएं एंव उससे उत्पन्न पर्यावरणीय समसयाएं-एक भौगोलिक अध्ययन', Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies, Online ISSN 2278-8808, SJIF2021=7.380, January 2022, Vol-9/68, www.srjis.com
26. Ibid
27. Agrwaal, Raveesh Et al. 'Waste Management Initiatives in India For Human Well Being', European Scientific Journal june /special/edition, June 2015/ Special/ edition ISSN: 1857-7881(print) e-ISSN 1857-7431 https://home.iitk.ac.in/~anubha/H16.pdf
28. Ibid
29. Ibid,p.110
30. प्रभु, आर.के., पूर्वोक्त, पृ. 368
31. 'The Sustainable Development Goals Report- 2021', United Nations, p.38,48. https://unstats.un.org/sdgs/report/2021/The-Sustainable-Development-Goals-report-2021.pdf

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महिलाओं में राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन (उत्तराखण्ड के जनपद ऊ.सिं. नगर के विशेष सन्दर्भ में)

❑ डा0 बृजेश कुमार जोशी
❖ कु. अंजलि

सूचक शब्द : राजनीतिक अधिकार, राजनीतिक जागरूकता, राजनीतिक सहभागिता

विश्व की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाओं के उत्थान के बिना कोई भी देश या राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। राजनीति में महिलाओं की भूमिका से तात्पर्य न सिर्फ उनके द्वारा किये गए मतदान से है अपितु राजनीति में उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी से है और इसके लिए परम आवश्यक है कि महिलाओं को अपने राजनीतिक अधिकारों की पूर्ण जानकारी हो। राजनीति में महिलाओं की सहभागिता के मामले में भारत अपने पड़ोसी देशों नेपाल, बाँग्लादेश एवं पाकिस्तान से भी पीछे है क्योंकि यहाँ महिलाओं को राजनीतिक सफलता प्राप्त करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसका एक मुख्य कारण उनमें राजनीतिक जागरूकता का अभाव होना है। यूँ तो संविधान द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये गए किंतु जब संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण बिल की बात आती है तो इस बात पर विचार ही नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त 73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायतों में महिलाओं को जो आरक्षण प्राप्त है उनमें भी उनकी भूमिका एक डमी से अधिक और कुछ भी नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड के जनपद ऊधमसिंह नगर की शहरी महिलाओं में राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया गया है।

एक देश के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उसमें रहने वाले प्रत्येक वर्ग को उसकी संख्या के अनुरूप शासन में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। इस प्रकार विश्व की आधी आबादी महिलाओं की राजनीतिक स्थिति से हमारा तात्पर्य महिलाओं की चुनावों में भागीदारी, उनका राज्य विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व, संसद में प्रतिनिधित्व, राजनीतिक दलों में प्रतिनिधित्व, महिलाओं के लिए आरक्षण आदि से है। किसी भी देश राज्य या जिले में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति या हिस्सेदारी जानने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें महिला मतदाताओं की संख्या क्या है? पुरुष मतदाताओं की तुलना में स्त्री मतदाताओं की चुनाव में वास्तविक भागीदारी कितनी है? आदि।[1] यूँ तो वोट देना महिलाओं का राजनीतिक अधिकार है जो संविधान द्वारा वयस्क मतदान के अधिकार पर आधारित है। इसके बावजूद चुनाव प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी 1962 में 46.6 प्रतिशत थी जो बहुत ही कम थी किंतु धीरे–धीरे समय और परिस्थिति में परिवर्तन आया और महिलाएं आत्मनिर्भर और जागरूक हो गईं जिसके परिणाम स्वरूप 2014 में उनका मतदान प्रतिशत 65.7 हो गया।[2] 1952 में हुए लोकसभा चुनावों में कुल 22 सीटों पर महिलाएं चुनी गयी थीं अर्थात् 4.4 प्रतिशत। तब से लेकर 2010 तक इस प्रतिशत में कोई खास अंतर नहीं आया था किंतु अब 62 वर्षो बाद सन् 2014 में यह 11 प्रतिशत रहा।[3] 2019 में निर्वाचित 17 वीं लोकसभा में संसद में 724 महिला उम्मीदवारों में से 78 निर्वाचित महिला सांसदों के साथ लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 14.36 प्रतिशत के रिकॉर्ड स्तर पर पहुंचा जो अब तक का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व रहा।[4] लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सब को समानता का अवसर देता है। यही बात हमें संसद में भी दिखती है। भले ही महिला सांसदों के लिए आरक्षण अभी यथार्थ नहीं मिल पाया है। लेकिन जब भी इन्हें मौका मिला तो इन्होंने संसद में अपनी पहचान बनाई और दमदार तरीके से लोगों की बात संसद में रख रही हैं।[5] भारतीय संसद में प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी, राजमाता गायत्री देवी, राजमाता विजयराजे सिन्धिया, मृणाल गोरे, रेणुका चक्रवर्ती, गीता मुखर्जी, सुषमा स्वराज, मायावती, ममता बनर्जी, हेमा मालिनी, जया बच्चन आदि ने बहुत

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बाजपुर, ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड)
❖ शोध अध्येत्री राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बाजपुर, ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड)

कम प्रतिनिधत्व के बावजूद अपनी अमिट छाप छोड़ी है। महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता में कमी का कारण राजनीतिक सोच और दृढ़ता का अभाव भी रहा है। अनेक दलों द्वारा समय-समय पर संसद में महिलाओं से संबंधित प्रश्नों को उठाया जाता रहा है, किंतु इस दिशा में छोटे-मोटे कार्यक्रमों के अलावा उनके लिए कोई सुदृढ़ और दूरगामी निर्णय नहीं लिये गये। महिलाओं को राजनीतिक रूप से सशक्त करने हेतु संसद में महिला आरक्षण विधेयक भी लाया गया जिसमें महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान था और ऐसा माना गया जहाँ संसद में 33 प्रतिशत महिलाएं होंगी तो विभिन्न सरकारी योजनाओं और कानूनों में महिलाओं की उपेक्षा नहीं होगी[6] क्योंकि भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय के क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये अतः यह आवश्यक हो जाता है कि महिलाओं की भागीदारी को सार्वजनिक क्षेत्रों में बढ़ाया जाए।[7]

विश्व आर्थिक मंच द्वारा जारी वैश्विक लैंगिक अंतराल रिर्पोट 2021 के अनुसार महिलाओं की भागीदारी और अवसर में गिरावट आयी है। इतना ही नहीं इसमें कहा गया है कि वैश्विक स्तर पर सबसे ज्यादा कमी राजनीतिक सशक्तीकरण के क्षेत्र में आई है। इस दिशा में महिला मंत्रियों की संख्या के संबंध में बात करें तो जहाँ 2019 में 23.1 प्रतिशत थी जो 2021 में घटकर 9.1 प्रतिशत रह गई है। अतः यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जहाँ एक ओर हम लैंगिक भेदभाव को दूर करने की बात कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी जड़ें हमारे सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में मजबूती पकड़े हुए हैं। ऐसे में लैंगिक समानता हमारे लिए एक बड़ी चुनौती है।[8]

9 नवम्बर 2000 को नवगठित उत्तराखण्ड राज्य में गठन के 20 वर्षों के पश्चात् भी महिलाओं का जीवन संघर्षपूर्ण है। 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल जनसंख्या 1,00,86,292 है जिनमें से 49,48,519 महिलाएं हैं। अतः उत्तराखण्ड में निर्णय निर्माण में महिलाओं की अनदेखी करके राज्य के सम्पूर्ण विकास की कल्पना करना व्यर्थ है। उत्तराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा में प्रति हजार पुरूषों के सापेक्ष 1139 सर्वाधिक महिला हैं जबकि सबसे कम महिला प्रतिशत हरिद्वार में 880 है। उत्तराखण्ड राज्य में साक्षरता दर 78.8 प्रतिशत है, जिसमें से महिला साक्षरता दर 70.00 प्रतिशत है। इसके विपरीत सर्वाधिक महिला साक्षर जिला देहरादून तथा न्यूनतम साक्षार जिला ऊधमसिंह नगर है।[9] भौगोलिक दृष्टि से दो पर्वतीय एवं मैदानी भागों में बँटे उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय क्षेत्र की महिलाओं का जीवन मैदानी क्षेत्र की महिलाओं की अपेक्षाकृत बहुत कठिन है, न सिर्फ घर के काम- काज की जिम्मेदारी उन पर है, बल्कि पुरुषों के पहाड़ से पलायन के कारण आर्थिक जिम्मेदारी भी उन्हीं के कंधों पर होती है। ग्रामीण महिलाओं की तुलना में शहरी महिलाओं का जीवन कुछ सुविधाजनक अवश्य है किंतु शहरी महिलाएं अपना पूरा दिन घर के कार्यों में ही व्यतीत न कर अन्य कार्यों में भी योगदान देती हैं। एक समय था जब महिलाओं का घर से बाहर निकलकर कार्य करना हेय दृष्टि से देखा जाता था किंतु आधुनिक परिवेश में महिलाओं को सशक्त करने के लिए विभिन्न अवसर प्रदान किये गये हैं, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं ने अपने अधिकारों को जाना है। सरकारी तथा गैर सरकारी सभी संस्थानों में महिलाओं ने अपनी सक्रिय भूमिका दर्ज करायी है और अपनी एक नयी पहचान स्थापित की है। महिलाएं अपने पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ परिवार की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं[10], इतना ही नहीं उन्होंने प्रारम्भ से ही राजनीति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है चाहे वह चिपको आन्दोलन हो, नशा मुक्ति के विरोध आन्दोलन या पृथक राज्य निर्माण का आन्दोल नही क्यों न हो उन्होंने अपने अदम्य साहस और वीरता का परिचय देकर यह साबित कर दिया महिला आज किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है। किंतु अगर राजनीति में महिलाओं की भूमिका की बात करें तो वह अभी पुरुषों की तुलना में बहुत कम है या फिर यूँ कहें कि न के बराबर ही है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारतीय संविधान के 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया जो कि एक लोकतंत्रात्मक देश जहाँ महिला एवं पुरुषों को बराबरी का अधिकार दिया गया के लिए आवश्यक भी है। सरकार द्वारा की गई इस पहल से न सिर्फ राजनीति में महिलाओं का पदार्पण हुआ अपितु विकेन्द्रीकरण की धारणा को सशक्त रुप देने के साथ-साथ स्थानीय लोगों ने विकास कार्यों में सहयोग कर सक्रिय भूमिका भी निभायी। उत्तराखण्ड राज्य में प्रारम्भ में पंचायतों में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान था किंतु वर्तमान में यहाँ 50 प्रतिशत आरक्षण

है। वहीं अगर उत्तराखण्ड राज्य में महिला विधायकों की बात करें तो उसकी स्थिति कुछ अच्छी नहीं है। उत्तराखण्ड राज्य में 2002 में हुए विधानसभा चुनावों में कुल महिला विधायकों की संख्या 4 थी, तथा 2007 में हुए विधानसभा चुनावों में भी इस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं आया। इसके विपरीत 2012 में हुए विधानसभा चुनावों में महिला विधायकों की संख्या एक सीट की बढ़ोत्तरी के साथ 5 हो गई। 2017 के निर्वाचन के बाद भी इनकी संख्या 5 ही रही किंतु बाद में हुए उपचुनावों में दो ओर महिलाओं के निर्वाचन से इनकी संख्या 7 हो गई। किंतु वर्तमान में हुए 2022 के विधानसभा चुनावों में 8 महिला विधायकों ने जीत प्राप्त की जिनमें ममता राकेश तथा अनुपमा रावत काँग्रेस प्रत्याशी रहीं जबकि बीजेपी से सविता कपूर, सरिता आर्य, शैलारानी रावत, रेनू बिष्ट, ऋतु खंडूरी और रेखा आर्या शामिल हैं।[11]

साहित्य समीक्षा

लता नैनवाल द्वारा 'कुमाऊँ में पंचायती राज व्यवस्थाः एक अध्ययन' शीर्षक पर पीएच0डी0 हेतु शोध किया गया जिसमें महिलाओं के अधिकारों पर प्रकाश डाला गया है। शोध करने पर उन्होंने पाया की 73 वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायतों में आरक्षण तो दिया गया किंतु उनकी स्थिति एक रबड़ स्टम्प या डमी से अधिक और कुछ भी नहीं है जिसका प्रयोग उनके परिवार के पुरुषों द्वारा अपनी सुविधानुसार किया जाता था।[12]

कु0 रेखा बिष्ट द्वारा 'कुमाऊँ में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक स्थिति का अध्ययन' विषय पर विस्तृत अध्ययन किया गया जिसमें उन्होंने महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रुप से पिछड़ेपन के कारणों पर शोध कार्य किया और अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि यहाँ की महिलाओं के पिछड़ेपन का कारण यहाँ की भौगोलिक स्थिति व संरचना है।[13]

उमा देवी ने 'Women in Equality in India A Myth and Reality' में वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति को उजागर किया उन्होंने यह बताया कि जहाँ एक ओर हम स्त्री पुरुष समानता की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर किस तरह आज भी उनका शोषण किया जा रहा है। भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये गये किंतु दूसरी ओर उन्हें सामाजिक धार्मिक आदि बंधनों में जकड़ दिया गया।[14]

कमला मेहता का लेख 'उत्तराखण्ड में महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति' से संबंधित हैं अपने अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि महिलाओं की दशा सुधारने एवं उनमें सामाजिक, राजनीतिक जागरूकता का समावेश करने के लिए महिलाओं को स्वयं आगे आना होगा तथा महिला विरोधी न होकर महिला समर्थक होना पड़ेगा।[15]

धीरज सिंह खाती द्वारा प्रस्तुत लेख 'निर्णय निर्माण में महिलाओं की भागीदारी (उत्तराखण्ड विधानसभा चुनाव 2007 एवं 2012 के विशेष सन्दर्भ में)' में महिलाओं की भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया। अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि उत्तराखण्ड राज्य में होने वाले विधानसभा चुनावों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का प्रतिशत बहुत ही कम है और इसका प्रमुख कारण उन्होंने राजनीतिक दलों को माना है जो महिलाओं को टिकट देना ही नहीं चाहते अतः निर्णय निर्माण प्रक्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी के लिए आवश्यक है कि महिलाओं को सही अनुपात में राजनीति में स्थान दिया जाए।[16]

उदय भान सिंह एवं लवली मौर्या द्वारा 'पंचायती राज संस्थाओं में महिला सहभागिता एवं जागरूकता' लेख में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण कर उनकी सहभागिता व उनकी जागरूकता का अध्ययन अनुसूची के माध्यम से किया गया जिसमें उन्होने पाया कि 73 वें संविधान संशोधन के विषय में महिलाओं में जागरूकता का अभाव है और इसका कारण अशिक्षा, गरीबी, पितृसत्तात्मक परिवार, परम्परागत मूल्य आदि को माना है।[17]

प्रभा शर्मा द्वारा 'राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं सशक्तीकरण' में अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजनीति में महिलाओं की सहभागिता से उनमें आत्मविश्वास का संचार हुआ है और साथ ही महिलाओं के सशक्तीकरण से अब वे यह अनुभव करने लगी हैं कि वे अब अपने साथ-साथ राष्ट्र तथा समाज के कल्याण के लिए भी कार्य कर सकती हैं।[18]

गीता तिवारी ने अपने शोध प्रबन्ध 'पंचायती राज में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं सक्रियता (उत्तराखण्ड राज्य के विशेष सन्दर्भ में)' में पाया कि पंचायतों में 50 प्रतिशत आरक्षण द्वारा महिलाओं को नेतृत्व की कमान तो सौंपी गयी है किंतु वे अभी भी परिवार के पुरुषों पर आश्रित हैं।

अध्ययन का उद्देश्य -शहरी महिलाओं में अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना है तथा यह जानने का प्रयास करना है कि महिलाओं को संविधान

द्वारा प्रदत्त विभिन्न राजनीतिक अधिकारों जैसे- वोट देने का अधिकार, पंचायतों में आरक्षण, लोकसभा में आरक्षण आदि के बारे जानकारी का स्तर क्या है?

शोध पद्धति – प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक है जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक समंकों को भारतीय संविधान, समाचार पत्रों तथा वेबसाइट आदि के माध्यम से संकलित किया गया है तथा प्राथमिक समंकों के लिये अनुसूची का निर्माण कर सबसे लोकप्रिय सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र – उत्तराखण्ड का जनपद ऊधमसिंह नगर मैदानी क्षेत्र है जो कृषि बाहुल्य होने के साथ-साथ उद्योग के क्षेत्र में भी अग्रणी है। औद्योगिक इकाईयों में तथा विभिन्न सरकारी संस्थाओं में बड़ी संख्या में महिलाएं कार्यरत हैं। इस कारण यहाँ पर घरेलू महिला वर्ग के साथ ही कामकाजी महिलाओं की संख्या भी अधिक है। इसलिए महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता के अध्ययन के उद्देश्य से प्रस्तुत शोध पत्र में जनपद की नौ तहसीलों में से प्रत्येक तहसील के दो शहरी क्षेत्रों को अध्ययन क्षेत्र के रुप में चुना गया है। जिनमें से दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र की 14 शहरी घरेलू तथा 14 शहरी कामकाजी कुल 504 महिला उत्तरदाताओं का एक अनुसूची के माध्यम से साक्षात्कार किया गया है।

ऊधमसिंह नगर की महिलाओं का विधानसभा चुनाव 2017 में एक अध्ययन

अध्ययन क्षेत्र	कुल महिला	मत प्रयोग	प्रतिशत
काशीपुर	72002	50337	69.91
जसपुर	53008	42919	80.97
बाजपुर	63786	48960	76.76
गदरपुर	57011	46478	81.52
रुद्रपुर	73318	54570	74.43
किच्छा	55776	41127	73.74
सितारगंज	50067	40921	81.73
नानकमत्ता	52121	41026	78.71
खटीमा	50675	41594	82.07

स्रोत – जिला निर्वाचन कार्यालय, जनपद ऊधमसिंह नगर

उपर्युक्त तालिका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 2017 में हुए विधानसभा चुनाव में सर्वाधिक महिला मतदाता रुद्रपुर में है, जबकि खटीमा विधानसभा में सर्वाधिक 82.07 प्रतिशत महिलाओं ने मताधिकार का प्रयोग किया। इसके विपरीत काशीपुर तहसील की महिलाओं का मतदान प्रतिशत न्यूनतम 69.91 रहा।

ऊधमसिंह नगर की महिलाओं का लोकसभा चुनाव 2019 में एक अध्ययन

अध्ययन क्षेत्र	कुल महिला	मत प्रयोग	प्रतिशत
काशीपुर	76284	50198	65.80
जसपुर	56391	41802	74.13
बाजपुर	66598	48027	72.16
गदरपुर	61697	47006	76.19
रुद्रपुर	80072	55147	68.87
किच्छा	61184	42416	69.33
सितारगंज	52193	40943	78.45
नानकमत्ता	55466	42417	76.47
खटीमा	53978	40754	75.50

स्रोत – जिला निर्वाचन कार्यालय, जनपद ऊधमसिंह नगर

उपर्युक्त तालिका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 2019 में हुए लोकसभा चुनाव में महिला मतदाताओं की सर्वाधिक संख्या रुद्रपुर में 80072 है, जनसंख्या के आधार पर यह कुमाऊँ का दूसरा, जबकि उत्तराखण्ड का पाँचवा सबसे बड़ा नगर है। जिले का मुख्यालय भी रुद्रपुर में ही है। तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जनपद में महिलाओं का सर्वाधिक मतदान प्रतिशत 78.45 सितारगंज में है और न्यूनतम मतदान प्रतिशत 65.80 काशीपुर में है। जबकि सितारगंज के अपेक्षाकृत काशीपुर क्षेत्र अधिक विकसित है किंतु काशीपुर क्षेत्र की महिलाओं में मतदान के प्रति अपेक्षाकृत कम रूचि है।

सूचनादाता महिलाओं से यह पूछे जाने पर कि क्या वे मतदान करती हैं यह देखा गया कि सभी महिलाएं चाहें वे घरेलू महिलाएं हों या कामकाजी मतदान करती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में न सिर्फ महिलाओं को अपने इस अधिकार की जानकारी है बल्कि वे इसका उपयोग कर चुनाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

तालिका संख्या – 1

क्या आप मतदान स्वेच्छा से करती हैं ?

शहरी घरेलू महिलाओं की राय

मनोवृत्ति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	249	98.81
नहीं	3	1.19
योग	252	100

शहरी कामकाजी महिलाओं की राय		
मनोवृत्ति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	252	100
नहीं	0	0
योग	252	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि घरेलू महिलाओं में 98.81 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 100 प्रतिशत महिलाएं अपने मत का प्रयोग स्वेच्छा से ही करती हैं। इसके विपरीत घरेलू महिलाओं में 1.19 प्रतिशत महिलाओं का यह भी कहना था कि वे अपना वोट किसे देंगी यह निर्णय उनके परिवार के पुरूष सदस्यों का होता है जो सही नहीं है मत देना महिलाओं का राजनीतिक अधिकार है।

तालिका संख्या – 2

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में महिलाओं की भूमिका की जानकारी

शहरी घरेलू महिलाओं की राय		
मनोवृत्ति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	61	24.21
नहीं	29	11.50
सामान्य	80	31.75
बहुत कम	82	32.54
योग	252	100
शहरी कामकाजी महिलाओं की राय		
मनोवृत्ति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	100	39.69
नहीं	9	3.57
सामान्य	112	44.44
बहुत कम	31	12.30
योग	252	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि घरेलू महिलाओं में 32.54 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 12.30 प्रतिशत महिलाओं को लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में महिलाओं की भूमिका की बहुत कम जानकारी है, वहीं 11.50 प्रतिशत घरेलू महिलाओं तथा 3.57 प्रतिशत शहरी कामकाजी महिलाओं को इस संबंध में कोई जानकारी नहीं है। अतः सभी महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता लाने की आवश्यकता है जिससे वे लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में अपनी सही भूमिका को समझ सकें।

तालिका संख्या – 3

क्या आपका परिवार महिलाओं को राजनीति में सक्रिय सहभागिता के लिए प्रेरित करता है?

शहरी घरेलू महिलाओं की राय		
उत्तर	संख्या	प्रतिशत
बहुत अधिक	15	5.96
सामान्य	116	46.03
बहुत कम	121	48.01
योग	252	100
शहरी कामकाजी महिलाओं की राय		
उत्तर	संख्या	प्रतिशत
बहुत अधिक	19	7.54
सामान्य	180	71.43
बहुत कम	53	21.03
योग	252	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 48.01 प्रतिशत घरेलू तथा 21.03 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं का यह कहना है कि उनके परिवार के सदस्य उन्हें राजनीति में सक्रिय सहभागिता के लिए बहुत कम प्रेरित करते हैं जबकि 46.01 प्रतिशत घरेलू तथा 71.43 प्रतिशत कामकाजी महिलाओं को उनके परिवार द्वारा राजनीतिक सहभागिता के लिए सामान्यतया प्रेरित किया जाता है।

तालिका संख्या4

महिलाओं का राजनीति से दूर होने का कारण

शहरी घरेलू महिलाओं की राय		
उत्तर	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षा	187	74.20
असुरक्षा का भय	222	88.09
राजनीतिक जागरूकता का अभाव	190	75.39
आर्थिक पराधीनता	144	57.14
राजनीतिक दलों में सत्ता एवं स्वार्थी प्रवृत्ति	127	50.39
शहरी कामकाजी महिलाओं की राय		
उत्तर	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षा	191	75.79
असुरक्षा का भय	195	77.38
राजनीतिक जागरूकता का अभाव	203	80.55
आर्थिक पराधीनता	165	65.47
राजनीतिक दलों में सत्ता एवं स्वार्थी प्रवृत्ति	158	62.69

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि घरेलू महिलाओं में 88.09 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 77.38 प्रतिशत महिलाओं ने, महिलाओं का राजनीति से दूर होने का कारण असुरक्षा का भय माना है जिसका प्रतिशत उपर्युक्त दिये गए सभी विकल्पों में सर्वाधिक है और जो सही भी है न सिर्फ राजनीति में ही बल्कि हर क्षेत्र में महिलाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती उनकी सुरक्षा ही है। महिलाओं का राजनीति से दूर होने का दूसरा महत्वपूर्ण कारण राजनीतिक दलों में सत्ता प्राप्ति एवं स्वार्थ की दूषित प्रवृत्ति है। प्रथम तो महिलाएं असुरक्षा के भय से इसमें आना ही नहीं चाहती और जो आ भी जाती हैं तो उन्हें भी इस दूषित प्रवृत्ति के कारण समाज बुरी नजर से देखता है। यह स्थिति उनके राजनीतिक अस्तित्व पर ही एक प्रश्न चिह्न लगा देती है।

तालिका संख्या - 5

73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायतों में प्राप्त आरक्षण की जानकारी

शहरी घरेलू महिलाओं की राय

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	195	77.38
नहीं	57	22.61
योग	252	100

शहरी कामकाजी महिलाओं की राय

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	204	80.96
नहीं	48	19.04
योग	252	100

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि घरेलू महिलाओं में 22.61 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 19.04 प्रतिशत महिलाओं को यह जानकारी ही नहीं है कि 73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायतों में आरक्षण दिया गया।

तालिका संख्या - 6

उत्तराखण्ड में महिला आरक्षण कितने प्रतिशत है?

शहरी घरेलू महिलाओं की राय

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
33 प्रतिशत	29	11.51
50 प्रतिशत	43	17.06
पता नहीं	180	71.43
योग	252	100

शहरी कामकाजी महिलाओं की राय

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
33 प्रतिशत	28	11.11
50 प्रतिशत	92	36.50
पता नहीं	132	52.39
योग	252	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि घरेलू महिलाओं में 71.43 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 52.39 प्रतिशत महिलाओं को इस बात की जानकारी नहीं है कि उत्तराखण्ड में महिलाओं हेतु पंचायतों के लिए आरक्षण कितने प्रतिशत है। अतः आवश्यकता है कि महिलाओं में इस संबंध में सही जानकारी हो प्रदान की जाय।

तालिका संख्या - 7

महिला आरक्षण पंचायतों में ही नही बल्कि लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा व विधानपरिषद में भी मिलना चाहिए

शहरी घरेलू महिलाओं की राय

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	235	93.25
नहीं	3	1.19
पता नहीं	14	5.56
योग	252	100

शहरी कामकाजी महिलाओं की राय

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	245	97.23
नहीं	1	0.39
पता नहीं	6	2.38
योग	252	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि घरेलू महिलाओं में 93.25 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 97.23 प्रतिशत महिलाओं का यह कहना है कि महिलाओं को मिलने वाला यह आरक्षण न सिर्फ पंचायतों में बल्कि संसद और विधानसभा में भी मिलना चाहिए। इसके विपरीत शहरी घरेलू महिलाओं में 5.56 प्रतिशत तथा कामकाजी महिलाओं में 2.38 प्रतिशत महिलाओं को इस संबंध में जानकारी का अभाव है। अगर महिलाओं को भी पुरुषों के समान बराबरी का अधिकार मिले तो वह भी चुनाव में जीत प्राप्त कर अपने कार्यों से समाज के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर

सकती हैं।

तालिका संख्या - 8

महिला आरक्षण से आपके जिले का विकास संभव है?

शहरी घरेलू महिलाओं की राय

विवरण	सहमत	असहमत
आरक्षण उचित व विकास संभव	199 (79)	53 (21)
न तो आरक्षण उचित न ही विकास संभव	9 (3.57)	243 (96.43)
आरक्षण उचित है पर विकास पूर्णतः संभव नहीं	64 (25.39)	188 (74.61)

शहरी कामकाजी महिलाओं की राय

विवरण	सहमत	असहमत
आरक्षण उचित व विकास संभव	221 (87.69)	31 (12.31)
न तो आरक्षण उचित न ही विकास संभव	10 (3.96)	242 (96.04)
आरक्षण उचित है पर विकास पूर्णतः संभव नहीं	40 (15.88)	212 (84.12)

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शहरी घरेलू महिलाओं में 79 प्रतिशत तथा शहरी कामकाजी महिलाओं में 87.69 प्रतिशत महिलाओं का यह कहना है कि महिलाओं को दिया गया आरक्षण न सिर्फ उचित है बल्कि इससे विकास भी संभव है। वहीं इसके विपरीत 25.39 प्रतिशत घरेलू महिलाओं तथा 15.88 प्रतिशत कामकाजी का यह कहना है कि महिलाओं को दिया गया यह आरक्षण तो उचित है पर विकास पूर्णतः संभव नहीं है कुछ हद तक यह सही भी है।

निष्कर्षः उपर्युक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि शहरी घरेलू महिलाओं में 66 प्रतिशत महिलाएं स्वेच्छा से मतदान करती हैं तथा उन्हें लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में महिलाओं की भूमिका की जानकारी है। उनके परिवार उन्हें राजनीति में सक्रिय सहभागिता के लिए प्रेरित करता है साथ ही उन्हें पंचायतों में महिला आरक्षण की जानकारी भी है। वहीं शहरी कामकाजी महिलाओं में यह संख्या 75 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त शहरी घरेलू महिलाओं में 78 प्रतिशत तथा शहरी कामकाजी महिलाओं में 87 प्रतिशत महिलाएं इस बात से सहमत हैं कि पंचायतों में महिलाओं को दिया गया आरक्षण उचित व विकास संभव है। महिलाओं से उनके राजनीति में सम्मिलित न होने के कारणों के बारे में पूछा जाने पर पाया गया कि शहरी घरेलू महिलाओं में 88 प्रतिशत महिलाओं ने असुरक्षा को इसका कारण माना और यह सही भी है क्योंकि वर्तमान समय में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण अगर कुछ है तो वह है महिला की सुरक्षा तथा शहरी कामकाजी महिलाओं में 80 प्रतिशत महिलाओं ने इसका कारण महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता के अभाव को माना। इसके अतिरिक्त महिलाओं ने राजनीति में महिलाओं के सम्मिलित न होने के और भी अन्य कारण बताए जो निम्न प्रकार हैं-

आर्थिक कारण - सर्वेक्षण में पाया गया कि जो महिलाएं उच्च सामाजिक व आर्थिक वर्गों से होती हैं। राजनीति में उनकी भागीदारी निम्न सामाजिक व आर्थिक स्तर की महिलाओं की अपेक्षा अधिक पायी गई।

पुरुष प्रधान मानसिकता- महिलाओं ने राजनीतिक भागीदारी में कमी का दूसरा कारण पुरुष प्रधान मानसिकता को माना उनके अनुसार यह पुरुष प्रधान समाज महिलाओं को राजनीति में आगे नहीं आने देना चाहता।

सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि - उन महिलाओं के लिए राजनीति में भाग लेना आसान है जिनके परिवार का कोई सदस्य इस क्षेत्र में है। नये चेहरों का राजनीति में आना एक कठिन कार्य है।

घरेलू जिम्मेदारियाँ - अपने सर्वेक्षण में पाया गया कि अधिकांश महिलाओं ने अपनी राजनीतिक दूरी का कारण घरेलू जिम्मेदारियों को माना है।

राजनीतिक जागरूकता का अभाव - कई महिलाओं ने राजनीति में अपनी सक्रिय सहभागिता में कमी का कारण स्वयं में राजनीतिक रूचि का न होना, जागरूकता का अभाव, शैक्षिक पिछड़ापन आदि को माना है।

सांस्कृतिक प्रतिबंध एवं रूढ़िवाद- सांस्कृतिक प्रतिबंध जैसे- पर्दा प्रथा, महिलाओं का बाहर न निकलना, अन्य पुरुषों से बातचीत न करना आदि कारण भी कहीं न कहीं महिलाओं के राजनीति में सम्मिलित न होने के लिए उत्तरदायी है।

राजनीतिक दलों में सत्ता की प्राप्ति एवं स्वार्थ की दूषित प्रवृत्ति - आम लोगों में राजनीति को एक दूषित प्रणाली के रुप में देखा जाता है तथा इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की वजह से महिलाएं राजनीति में सम्मिलित नहीं होना चाहती।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाओं को अपने मताधिकार की

जानकारी तो है, किंतु उनमें लोकतंत्र की वास्तविक भूमिका की जानकारी का पूर्ण अभाव है। यह बात अधिकांश शहरी महिलाओं में भी देखने को मिलती है और जब तक आधे मतदाताओं के रुप में अपनी वास्तविक भूमिका की जानकारी महिलाओं को नहीं होगी तब तक वास्तविक लोकतंत्र की कल्पना करना व्यर्थ है। आवश्यकता है कि महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रयोग की क्षमता का विकास किया जाए। इस हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रमुख कार्य सुझाव के रूप में इस प्रकार है-

सुझाव

1. परिवार व समाज द्वारा महिलाओं को राजनीति में लाने के लिए उनमें नेतृत्व के गुणों का समावेश करने के साथ ही साथ उनमें राजनीतिक दायित्वों की पूर्ति हेतु जागरूकता उत्पन्न करनी चाहिए।
2. राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को पार्टी टिकट दिये जाने के प्रति उदासीनता को कम करना।
3. सरकार को चाहिए कि ऐसे संगठनों व कार्यक्रमों को आवश्यक सहायता उपलब्ध कराये जो महिलाओं को जागरूक करने में अहम् भूमिका निभाते हैं।
4. सरकार को चाहिए कि महिलाओं को जागरूक करने के लिए जनसंचार माध्यमों का सहारा लिया जाए।
5. सरकार को चाहिए कि महिलाओं के साथ दिन-प्रतिदिन होने वाले अपराधों को कम करने के लिए सख्त कदम उठाये।
6. निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को तथा महिला सरपंचों आदि के लिए समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।
7. राजनीतिक दलों को चाहिए कि वे न सिर्फ राजनीतिक परिवार से संबंध रखने वाली महिलाओं को ही राजनीति में आने का अवसर दें बल्कि उन सभी महिलाओं को मौका दें जिनमें देश के लिए कुछ करने का जुनून हो।
8. सरकार को चाहिए कि महिलाओं के लिए रोजगारपरक शिक्षा की व्यवस्था की जाए जिससे उनमें व्यावसायिक कार्यों की जानकारी हो। जिसके परिणामस्वरूप महिलाएं आर्थिक सुदढ़ता प्राप्त कर सके।

सन्दर्भ

1. शर्मा सुभाष, 'भारतीय महिलाओं की दशा', आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकुला हरियाणा, 2012, पृ. 279
2. www.bbc.com, राजनीतिक विश्लेषक - प्रवीन राय, प्रकाशन तिथि -31 मई 2014
3. विश्वास पलाश, 'राजनीति में भी स्त्री देह का विज्ञापन', प्रेरणा अंशु, अप्रैल 2021, पृ. 7
4. https://hindi.oneindia.com>...> प्रकाशक - अंकुर शर्मा, प्रकाशन तिथि-28 उंल 2019
5. अमर उजाला, नैनीताल, रविवार 8 मार्च 2020
6. शर्मा चन्द्र भूषण, 'बालिका शिक्षा से आएगी देश में समृद्धि', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, जनवरी - 2018, पृ. 39
7. बिष्ट निर्दोषिता, 'महिला सशक्तीकरण तथा महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष-23, अंक-2, जुलाई-दिसम्बर 2021, पृ. 171-178
8. https://www.drishtiias.com> वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट, 2021, प्रकाशन तिथि- 2 अप्रैल 2021
9. उत्तराखण्ड सामान्य परिचय, प्रकाशन तिथि-1 अगस्त 2021
10. बिष्ट अनीता, 'ग्रामीण महिलाओं की समाजार्थिक प्रस्थिति', राधा कमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष-16, अंक-1, जनवरी-जून 2014, पृ. 161-163
11. www.tv9hindi.com, प्रकाशक -अपर्णा रांगड़, प्रकाशन तिथि व दिवस - 11 मार्च 2022 शुक्रवार
12. नैनवाल लता, 'कुमाऊँ में पंचायती राज व्यवस्था', अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, वर्ष -1992
13. विष्ट कु रेखा, 'कुमाऊँ में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक स्थिति का अध्ययन', अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, वर्ष -1999
14. देवी उमा 'Women in Equality in India A Myth and Reality' अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, वर्ष -2000
15. मेहता कमला, 'उत्तराखण्ड में महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति, उत्तराखण्ड में महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका', महिला अध्ययन केन्द्र कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, 2014, पृ. 165-170
16. खाती धीरज सिंह, 'निर्णय निर्माण में महिलाओं की भागीदारी, उत्तराखण्ड में महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका', महिला अध्ययन केन्द्र कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, 2014, पृ. 162-164
17. सिंह उदय भान एवं लवली मौर्या, 'पंचायती राज संस्थानों में महिला सहभागिता एवं जागरुकता', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष-17, अंक-2, जुलाई-दिसम्बर-2015, पृ.46-49
18. शर्मा प्रभा, 'भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं सशक्तीकरण', राधाकमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा, वर्ष-17,अंक-2, जुलाई-दिसम्बर-2015 पृ. 72-75
19. तिवारी गीता, 'पंचायती राज में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं सक्रियता (उत्तराखण्ड राज्य के विशेष सन्दर्भ में)', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, वर्ष -2019

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

ऐतिहासिक भूमि, गिलगित–बाल्टिस्तान का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विधिक विश्लेषण

❑ डॉ. गिरीश गौरव
❖ रागिनी शर्मा सरस्वती

सूचक शब्द : ऐतिहासिक भूमि, गिलगित-बाल्टिस्तान, पाक अधिकृत कश्मीर

जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और यहाँ के लोगों को अपनी संस्कृति और विरासत पर गर्व है। गिलगित–बाल्टिस्तान विविध संस्कृतियों, जातियों, भाषाओं और पृष्ठभूमि का घर है। यह क्षेत्र भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर का हिस्सा है किंतु 1947 से ही पाकिस्तान के गैरकानूनी कब्जे में है। प्रस्तुत आलेख गिलगित–बाल्टिस्तान के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विधिक विश्लेषण का एक प्रयास कहा जा सकता है।

परिचय : जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और यहां के लोगों को अपनी संस्कृति और विरासत पर गर्व है। कुछ पौराणिक किंवदंतियाँ, मान्यताएँ और भौगोलिक स्थितियाँ बताती हैं कि जम्मू और कश्मीर भारत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और लंबे समय से रहा है। जम्मू और कश्मीर का नाम ऋषि कश्यप के नाम पर रखा गया। कश्मीर भारत के सबसे पुराने क्षेत्रों में से एक है। महाभारत में जम्मू और कश्मीर का उल्लेख है। पुरातात्विक खुदाई से यह भी पता चला है कि यह सच है (जैसा कि हाल ही में हड़प्पा के अवशेष कश्मीर जिले के अखनूर से मिले थे) कि जम्मू का एक प्राचीन इतिहास है।[1]

भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक संबंध : इस क्षेत्र पर मूल रूप से जम्बूद्वीप के राजा अग्निघ्र का शासन था। इस काल में सतयुग के शासक कश्यप ऋषि थे। त्रेतायुग में भगवान राम के शासन काल के हजारों साल पहले, मनु प्रथम, स्वायंभुव मनु के पोते और प्रियव्रत के पुत्र ने इस भूमि को भारतवर्ष के रूप में स्थापित किया था। उनके शासनकाल के दौरान, कश्मीर जिले का एक हिस्सा था। हालांकि राजतरंगिणी के अनुसार कश्यप ऋषि के नाम पर ही कश्यप सागर और कश्मीर के नाम थे, लेकिन यह मान्यता बहुत प्राचीन मानी जाती है। ऋषि कश्यप आदिवासियों का शासन कैस्पियन सागर से लेकर कश्मीर तक फैला, शोधकर्ताओं के अनुसार कश्यप ऋषि का इतिहास भौगोलिक और धार्मिक दोनों दृष्टि से बहुत प्राचीन है, उनकी पत्नी कद्रू के गर्भ से नागों की उत्पत्ति हुई थी, जिनमें से मुख्य आठ सांप थे। (1) अनंत (शेष) (2) वासुकी (3) तक्षक (4) कर्कट (5) पदम (6) महापदम (7) शंख (8) और कुलिक। इससे नागवंश की स्थापना हुई। आज भी कश्मीर में जगहों के नाम इन्हीं नागों के नाम पर हैं। अनंतनाग नागवंशियों की राजधानी थी।

ऐतिहासिक ग्रंथ राजतरंगिणी तथा नीलम पुराण की कथा के अनुसार कश्मीर की घाटी कभी बहुत बड़ी झील हुआ करती था। कश्यप ऋषि ने अपने तपोबल और सामर्थ्य से यहाँ से पानी निकाल लिया और इसे मनोरम प्राकृतिक स्थल और देवभूमि में बदल दिया। इस तरह कश्मीर घाटी अस्तित्व में आयी।[2]

कश्मीर का प्राचीन स्थान : कश्मीर में आज भी नागों के नाम पर अनेक जगहे हैं - जैसे - अनंतनाग, कमरू, कोकरनाग, वैरीनाग, नारानाग, कौसरनाग आदि।

बारामूला का प्राचीन नाम बराहमूल था। यह प्राचीनकाल में वराह अवतार की उपासना का केन्द्र था। वराहमूल का अर्थ होता है सूअर दाढ़ या दांत। बराह भगवान ने अपने दांत से ही धरती उठा ली थी। इसी तरह कश्मीर के बड़गाम, पुलवामा, कुपवाड़ा, शोपियां, गंदरबल, बाडीपुरा, श्रीनगर और कुलगाम जिलो का अपना-अलग और प्राचीन इतिहास रहा है।

यह इतिहास कश्मीरी पंडितों से जुड़ा हुआ है। कश्मीरी पंडितों की संस्कृति लगभग 6000 साल से भी ज्यादा पुरानी है और वे ही कश्मीर के मूल निवासी हैं।

गांधार, कंबोज और कुरू जनपद के अंतर्गत रहा है। कश्मीर महाभारत काल के पूर्व कश्मीर के हिस्से भारत के 16 महाजनपदों में से तीन गांधार, कंबोज और कुरू महाजनपदों

❑ सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं सामाजिक नृविज्ञान, हिमाचल प्रदेश, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, देहरा, कांगड़ा (हि. प्र.)
❖ एलएल.एम., एम. फिल (अध्ययनरत) सेंटर फॉर जम्मू कश्मीर स्टडी, हिमाचल प्रदेश, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, देहरा, कांगड़ा (हि. प्र.)

के अंतर्गत आते थे। गांधार आज के पाकिस्तान का पश्चिमी तथा अफगानिस्तान का पूर्वी क्षेत्र उस काल में भारत का गंधार प्रदेश था। आधुनिक कंदहार इस क्षेत्र से कुछ दक्षिण में स्थित था।

सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय गंधार में कई छोटी – छोटी रियासतें थीं। जैसे – अभिसार तक्षशिला इसकी राजधानी थी। इसका अस्तित्व 600 ईसा पूर्व से 11 वीं सदी तक रहा। उल्लेखनीय है कि सभा पर्व महाभारत में अभिसारी नामक नगर का उल्लेख मिलता है जो चिनाब नदी के पश्चिम में पुंछ, राजौरी और भिंभर की पहाड़ियों में स्थित था।[3]

कंबोज : कंबोज महाजनपद का विस्तार कश्मीर से हिन्दुकुश तक था। इसके दो प्रमुख नगर थे राजपुर और नंदीपुर। राजपुर को आजकल राजौरी कहा जाता है। पाकिस्तान का हजारा जिला भी कंबोज के अंतर्गत ही था।

बाल्मीकी रामायण के अनुसार कंबोज वाल्हीक और वनायु देश के पास स्थित है। आधुनिक मान्यता के अनुसार कश्मीर के राजौरी से तजाकिस्तान तक का हिस्सा कंबोज था जिसमें आज का पामीर पठार और बदख्शां भी है। बदख्शां अफगानिस्तान में हिन्दुकुश पर्वत का निकटवर्ती प्रदेश है और पामीर का पठार हिन्दुकुश और हिमालय की पहाडियों के बीच का स्थान है।

कनिंघम ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'एंशेंट जियोग्राफी ऑफ इंडिया' में राजपुर का अभिज्ञान दक्षिण – पश्चिम कश्मीर के राजौरी नामक नगर (जिला – पुंछ, कश्मीर) के साथ किया है। यहां नंदीनगर नामक एक और प्रसिद्ध नगर था। सिकंदर के आक्रमण के समय कंबोज प्रदेश की सीमा के अंतर्गत उरशा (पाकिस्तान जिला हजारा) और अभिसार (कश्मीर का जिला पुंछ) नामक छोटे – छोटे राज्य बसे हुए थे।

जिन स्थानों के नाम आज कल काबुल, कंधार, बल्ख, वाखान, बगराम, पामीर, बदख्शां, पेशावर, स्वात, चारसद्दा आदि हैं। उन्हें संस्कृत और प्राकृत पालि साहित्य में क्रमशः कुंभा या कुहका, गंधार, बाल्हीक, वोक्काण, कपिशा, मेरू, कम्बोज, पुरूषपुर (पेशावर), सुवास्तु, पुष्कलावती आदि के नाम से जाना जाता था।

कुरू : महाभारत काल के पूर्व दक्षिण कुरूओं का राज्य हिन्दुकुश के आगे से कश्मीर तक था। बाद में पांचालों पर आक्रमण करके उन्होनें अपना क्षेत्र विस्तार किया। मेरठ और थानेश्वर के आसपास का क्षेत्र राजधानी थी। पहले हस्तिनापुर और बाद में इन्द्रप्रस्थ। बौद्ध काल में यह संपूर्ण क्षेत्र कुषाणों के अधीन हो चला था।

समय के साथ धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभावों का संश्लेषण हुआ, जिससे यहाँ के तीन मुख्य धर्म स्थापित हुए – हिन्दु, बौद्ध और इस्लाम। इनके अलावा सिख धर्म के अनुयायी भी बहुत मिलते हैं।

प्राचीन इतिहास : बुर्जहोम पुरातात्विक स्थल (श्रीनगर के उत्तर – पश्चिम में 16 कि. मी. (9.9मील) स्थित) में पुरातात्विक उत्खनन में 3000 ईसा पूर्व और 1000 ईसा पूर्व के बीच सांस्कृतिक महत्व के चार चरणों का खुलासा किया है। राजतरंगिणी जो कल्हण द्वारा 12वीं शताब्दी ई. में लिखा गया था। तब तक यहाँ पूर्ण हिन्दू राज्य रहा था। यह अशोक महान के साम्राज्य का हिस्सा भी रहा। लगभग तीसरी शताब्दी में अशोक का शासन रहा था,तभी यहाँ बौद्ध धर्म का आगमन हुआ। श्री नगर की स्थापना का श्रेय अशोक महान् को प्राप्त है जो आगे चलकर कुषाणों के अधीन समृद्ध हुआ था।

उज्जैन के महाराज विक्रमादित्य के अधीन छठी शताब्दी में एक बार फिर हिन्दू धर्म की वापसी हुई थी । उसके बाद ललितादित्य का शासन काल 697 ई. से 738 ई. तक रहा। ''आइने अकबरी'' के अनुसार छठी से नौवीं शताब्दी के अंत तक इनका कश्मीर पर शासन रहा। अवंतीवर्मन ललितादित्य का उत्तराधिकारी बना। उसने श्रीनगर के निकट अवंतीपुर बसाया और उसे ही अपनी राजधानी बनाया जो कि एक समृद्ध क्षेत्र था। उसके खंडहर अवशेष आज भी उसकी कहानी कहते हैं। यहाँ महाभारत युग के गणपतयार और खीर भवानी मंदिर आज भी मिलते हैं। गिलगिट में पांडुलिपियाँ हैं और उसमें बौद्ध लेख लिखे हैं। त्रिखा शास्त्र भी यहीं की देन है। यह कश्मीर में ही उत्पन्न हुआ है। यहाँ पर ऋषि परंपरा, त्रिखा शास्त्र और सूफी इस्लाम का संगम मिलता है जो कश्मीरियत का सार है। भारतीय लोकाचार की सांस्कृतिक प्रशाखा कट्टरवादिता नहीं है।

मध्यकाल :– सन 1591 में यहाँ मुगल का राज हुआ। यह अकबर का शासन काल था। मुगल साम्राज्य के विखंडन के बाद यहाँ पठानों का कब्जा हुआ। यह काल यहाँ का काला युग कहलाता है। फिर 1814 में पंजाब के शासक महाराजा रणजीत सिंह द्वारा पठानों की पराजय हुई और फिर सिख साम्राज्य आया।

आधुनिक काल : अंग्रेजों द्वारा सिखों की पराजय 1846 में हुई जिसका परिणाम था लाहौर संधि। अंग्रेजों द्वारा महाराजा गुलाब सिंह को गद्दी दी गई जो कश्मीर के स्वतंत्र शासक बने। गिलगित एजेन्सी अंग्रेज राजनैतिक एजेन्टों के अधीन

क्षेत्र रहा था और गिलगित क्षेत्र को बाहर माना जाने लगा। अंग्रेजों द्वारा जम्मू और कश्मीर में पुनः एजेन्ट की नियुक्ति हुई। महाराजा गुलाब सिंह के सबसे बड़े पौत्र महाराजा हरि सिंह 1925 ई. में गद्दी पर बैठे जिन्होनें 1947 ई. तक शासन किया।[4]

गिलगित-बाल्टिस्तान की सांस्कृतिक विशेषताएं : गिलगित-बाल्टिस्तान विविध संस्कृतियों, जातियों, भाषाओं और पृष्ठभूमि का घर है। प्रमुख सांस्कृतिक कार्यक्रमों में शांदूर पोलो महोत्सव, बाबूसर पोलो महोत्सव और अन्य सम्मिलित हैं। नवरोज़ या फ़ारसी नव वर्ष उत्सव भी एक महत्वपूर्ण घटना है। पारंपरिक नृत्यों में सम्मिलित हैं: बूढ़े व्यक्ति का नृत्य जिसमें एक से अधिक वृद्ध व्यक्ति एक शैल पहनता है; गाय नृत्य (पायलू) जिसमें एक व्यक्ति एक पुरानी पोशाक और लंबे चमड़े के जूते पहनता है और अपने हाथ में एक छड़ी रखता है और एक तलवार, नृत्य जिसमें प्रतिभागी एक तलवार प्रदर्शित करते हैं दाईं ओर और एक ढाल बाईं ओर आप एक साथी के साथ जोड़े में नृत्य करते हैं।[5]

गिलगित - बाल्टिस्तान की सामाजिक और भौगोलिक स्थिति : गिलगित - बल्टिस्तान का एक क्षेत्र के रूप में बड़ा दुःखद इतिहास रहा है यह क्षेत्र भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर का हिस्सा है, किंतु 1947 से ही पाकिस्तान के गैर कानूनी कब्जे में है। (उत्तरी क्षेत्र का नामकरण 1947 के बाद पाकिस्तान द्वारा किया गया था और इस क्षेत्र में गिलगित-बाल्टिस्तान क्षेत्र सम्मिलित है। यह क्षेत्र उपेक्षित अलग - थलग मताधिकारहीन है और इसकी स्थिति को जानबूझकर संदिग्ध और अपरिभाषित रखा गया है।) पाकिस्तान के 1956, 1962, 1972, और 1973 के संविधान में इन उत्तरी क्षेत्रों को पाकिस्तान के भाग के रूप में मान्यता नहीं दी। उसी तरह 1974 के पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पीओके) के अंतरिम संविधान ने गिलगिट और बाल्टिस्तान को इसके - भाग के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया। जम्मू और कश्मीर राज्य की कुल भौगोलिक क्षेत्र 222,236 वर्ग किलोमीटर है। इसमें से वर्तमान में 101,437 वर्ग किलोमीटर भारत के प्रशासनिक नियंत्रण में है। जम्मू और कश्मीर का एक भाग पाकिस्तान/चीन के अवैध नियंत्रण में है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पीओके) जिसमें तथाकथित आजाद कश्मीर (यहाँ आजाद कश्मीर का संदर्भ केवल (पीओके) के शेष भाग से अलग करने के लिए हैं और गिलगित-बाल्टिस्तान जिसमें 78,114 वर्ग किलोमीटर सम्मिलित है। इसमें से गिलगित - बाल्टिस्तान (उत्तरी क्षेत्र) का हिस्सा तथाकथित पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के क्षेत्र का पाँच गुना है। यह भाग, जो चीन के नियंत्रण में है। इसमें 1963 में पाकिस्तान द्वारा चीन को गैर कानूनी तरीके से दिया गया 5,180 किलोमीटर हिस्सा सम्मिलित है। गिलगिट, गिलगित - बाल्टिस्तान की राजधानी है। इसमें नौ जिले हैं।

गिलगित - बाल्टिस्तान क्षेत्र में धार्मिक समूहों में शिया (ट्वेल्वर्स) नरभक्षी, इस्माइली, सुन्नी और अहले हदिथ सम्मिलित हैं। यहाँ बोली जानी वाली भाषाएँ हैं -शिना, बाल्टी, वाखी, खोवर, गुजारी, बुरूशास्की, पुरिकी, कश्मीरी और पश्तो।

गिलगित - बाल्टिस्तान, एक बहुभाषाई क्षेत्र है। जहाँ सामाजिक-संस्कृतिक और सजातीय विविधता है, जो हिंदूकुश और काराकोरम पहाड़ियों से घिरा है। वर्ष 2017 की पाकिस्तानी जनगणना के अनुसार गिलगित - बाल्टिस्तान की जनसंख्या पूर्व में 1998 की जनगणना 870347 की तुलना में 1.8 मिलियन है। शिया 39.85 प्रतिशत और सुन्नी 30.05 प्रतिशत, इस्माइली 24 प्रतिशत और नूरबक्शिस 6.1 प्रतिशत हैं। 2017 की पाकिस्तानी जनगणना के अनुसार तथाकथित आजाद कश्मीर की जनसंख्या 1998 की जनगणना में 2.97 मिलियन की तुलना में 4.45 मिलियन थी। प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में गिलगित - बाल्टिस्तान पन - बिजली और खनिज के मामले में समृद्ध है और वहाँ कई पर्यटक स्थल भी हैं। पोलो उस क्षेत्र का लोकप्रिय खेल है।

1947 में गिलगित - बाल्टिस्तान महाराजा हरि सिंह के शासन के अंतर्गत जम्मू और कश्मीर राज्य का अभिन्न अंग था। उसके बाद से पाकिस्तान में गिलगित - बाल्टिस्तान के संबंध में कुछ थोड़े बदलाव किए जिन्हें एक साथ मिला भी दिया जाए तो उन लोगों के जीवन में कोई भारी बदलाव नहीं हुआ है। नवंबर 1947 में पाकिस्तान ने स्थायी प्रशासन चलाने के लिए गिलगिट में मोहम्मद आलम को प्रतिनिधि के तौर पर भेजा। दो वर्ष बाद 1949 के करांची समझौते के कारण तथाकथित आजाद कश्मीर सरकार को भौगोलिक और प्रशासनिक कारणों का हवाला देते हुए गिलगित-बाल्टिस्तान के प्रशासनिक और कानूनी नियंत्रण को पाकिस्तान की संघीय सरकार को सौपने के लिए कहा गया। उसके बाद से गिलगित-बाल्टिस्तान के राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यो को फ्रंटियर ट्रायबल रेगुलेशन (एफटीआर) के माध्यम से प्रबंधन किया जाता था। तदानुसार ही तथाकथित आजाद कश्मीर और उत्तरी क्षेत्र दो भिन्न सत्ता बन गए जिनके बीच कोई औपचारिक सरकारी संबंध नहीं था। इस करांची समझौते ने पाकिस्तानी सरकार को तथाकथित आजाद कश्मीर की

रक्षा और विदेशी मामले की जिम्मेदारी भी दे दी।

वर्ष 1969 में उत्तरी क्षेत्र परामर्श परिषद (एन.ए.एसी) की स्थापना की गयी, किंतु इसके स्थानीय प्राधिकारियों को निर्णय लेने का कोई अधिकार प्रदान नहीं किया। वर्ष 1970 में आजाद कश्मीर का भाग हुंजा और नागर को गिलगित-बाल्टिस्तान के साथ मिला दिया गया। किंतु यह स्थानीय लोगों ने नहीं माना और संघ सरकार के विरूद्ध विरोध शुरू कर दिया। वर्ष 1974-75 में स्थानीय लोगों के विरोध के कारण प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने एफटीआर को समाप्त कर दिया और उत्तरी क्षेत्र परिषद कानूनी रूपरेखा व्यवस्था को लागू किया। इससे कुछ प्रशासनिक और न्यायिक सुधार तो हुए किंतु किसी भी रूप में गिलगित-बाल्टिस्तान के लोगों को अधिकार प्राप्त नहीं हुए। वर्ष 1977 में जनरल जिया उल हक ने सैन्य तख्तापलट में भुट्टो को पदच्युत करते हुए सत्ता प्राप्त की। उसने उत्तरी क्षेत्र को पाकिस्तान का हिस्सा बनाने के बारे में सोचा। 1982 में जिया उल हक ने ऐलान किया कि उत्तरी क्षेत्र के लोग जम्मू और कश्मीर राज्य का हिस्सा नहीं हैं और अपने 'मार्शल' कानून को उत्तरी क्षेत्र तक विस्तार किया किंतु तथाकथित आजाद कश्मीर में इसे लागू नहीं किया। इस अधिनियम के साथ उन्होनें उत्तरी क्षेत्रों और तथाकथित आजाद कश्मीर के बीच एक स्पष्ट विभाजन किया। भारतीय पत्रकार कुलदीप नैयर को दिए एक विशेष साक्षात्कार (1 अप्रैल 1982 को) में जिया उल हक ने कहा कि उत्तर क्षेत्रों का गिलगित, हुंजा और स्कर्दु विवादित क्षेत्र का हिस्सा नहीं है।

जनरल जिया की घोषणा और भारत का प्रतिरोध : 3 अप्रैल 1982 को मजलिस-ए-शुरा (पाकिस्तानी संसद) को संबोधित करते हुए जनरल जिया उल हक ने घोषणा की कि उत्तरी क्षेत्र से तीन पर्यवेक्षकों को संघीय परिषद या मजलिस-ए-शुरा में नियुक्त किया जायेगा। तीन घंटे के बाद पाकिस्तान स्थित भारतीय प्रभारी राजदूत, जो मजलिस-ए-शुरा के सत्र में उपस्थित थे, ने इस्लामाबाद में कूटनीतिक मिशन के अन्य विदेशी प्रमुखों के साथ पाकिस्तानी विदेशी कार्यालय में जनरल जिया की घोषणा के विरूद्ध विरोध दर्ज किया। बारह दिन बाद 15 अप्रैल 1982 को विदेश मंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने लोक सभा में सूचित किया कि उत्तरी क्षेत्र भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर का न्याय व्यवस्था और संवैधानिक हिस्सा है। हमारे प्रभारी राजदूत ने पहले ही पाकिस्तान के विदेश कार्यालय के साथ इस मामले में विरोध दर्ज करा दिया है और सरकार पाकिस्तान सरकार के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है। इस पर कोई आधिकारिक उत्तर नहीं दिया गया है किंतु पाकिस्तान ने मजलिस - ए - शुरा में उत्तरी क्षेत्र से कोई पर्यवेक्षक नियुक्त नहीं किया।

प्रधानमंत्री के रूप में अपने प्रथम कार्यकाल (1988-90) के दौरान बेनजीर भुट्टो ने उत्तरी क्षेत्र के लिए प्रधानमंत्री के सलाहकार के रूप में स्थानीय पीपीपी नेता कुर्बान अली को नियुक्त किया। अपने दूसरे कार्यकाल (1994) में उनकी सरकार ने उत्तरी क्षेत्र कानूनी रूपरेखा आदेश (एलएफओ) को लागू किया। इस आदेश के अनुसार सभी कार्यकारी अधिकारी के रूप में दोहरी भूमिका में भी थी। उनका अधिकार असीम था और उनके पूर्व अनुमोदन के बिना कोई कानून पारित नहीं किया जा सकता था। 1999 में पाकिस्तान के उच्चतम न्यायालय ने इस्लामाबाद को उत्तरी क्षेत्रों में मूलभूत स्वतंत्रता देने का निर्देश दिया जिसके बाद जनरल परवेज मुर्शरफ शासन काल में एनएएलसी को प्रशासनिक और वितीय अधिकार प्रदान किया गया।

2007 में एनएएलसी को उन्नत कर इसे विधान सभा बना दिया गया । कश्मीर मामले के पाकिस्तानी मंत्री विधानसभा के पदेन सभापति के रूप में कार्य करता रहा। अगस्त 2009 में पीपीपी नीत संघीय सरकार ने गिलगित - बाल्टिस्तान स्वशासन अधिकार आदेश को लागू किया। इससे इस क्षेत्र का नाम बदलकर उत्तरी क्षेत्र से गिलगित-बाल्टिस्तान कर दिया गया और वहाँ राज्यपाल व मुख्यमंत्री के नए पद सृजित किए गये। अब गिलगित- बाल्टिस्तान को अपने स्वयं के लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग और लेखा परीक्षक का भी हक था। इसने गिलगित-बाल्टिस्तान परिषद् में उच्च सदन की भी स्थापना की जिसमें 15 सदस्य थे और जिसमें पाकिस्तान का प्रधानमंत्री इसका पदेन सभापति था। चुनी गयी विधानसभा केवल नाम की ही कार्यशील थी। क्योंकि सभी निर्णय प्रभावी रूप से इस्लामाबाद की संघीय सरकार द्वारा लिये जाते थे। वास्तव में 2009 का आदेश तथाकथित आजाद कश्मीर के अंतरिम संविधान अधिनियम, 1974 की तर्ज पर था तथा दोनो में दो सापेक्षिक प्रदेशों के लिए था जो पाकिस्तान के चार प्रांतो को दी गयी स्वायत्ता से काफी कम था।

गिलगित-बाल्टिस्तान को किसी भी राजनैतिक या आर्थिक लाभ से वंचित करने के लिए स्थानीय लोगों द्वारा व्यापक आलोचना की गयी। ऐसी भी रिपोर्ट थी कि चीन इस क्षेत्र पर व्यापक संघीय नियंत्रण चाहता था। पाकिस्तान सरकार के पास यह विकल्प था कि वह या तो उत्तरी क्षेत्र को तथाकथित आजाद कश्मीर के साथ विलय कर दे, जिसके लिए स्थानीय

प्रतिरोध था, अथवा इस क्षेत्र को पाकिस्तान का पाँचवां क्षेत्र घोषित किया जाए जिसे भी उपयुक्त नहीं माना गया क्योंकि इसका जम्मू और कश्मीर के संबंध में पाकिस्तान की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए जून 2018 में पाकिस्तान में कार्यकाल समाप्त कर रहे अब्बासी सरकार ने गिलगित-बाल्टिस्तान सुधार आदेश 2018, जिसने 2009 के पूर्व के स्वशासन आदेश को प्रतिस्थापित किया था के माध्यम से कुछ बदलाव को करने भर का निर्णय लिया। इस नए आदेश के तहत खनिज, जल- विद्युत और पर्यटन क्षेत्रों के संबंध में कानून बनाने सहित गिलगित - बाल्टिस्तान परिषद् के पास सभी पूर्व अधिकारो को गिलगित - बाल्टिस्तान विधान सभा को दे दिया गया।

अनुच्छेद 41 और अनुच्छेद 60 (4), पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को बहुत अधिक शक्ति प्रदान करता है जो वास्तव में इस सभा से अधिक शक्तिशाली है। गिलगित- बाल्टिस्तान में विपक्षी पार्टियों ने इस आदेश का विरोध किया क्योंकि उन्होने पाया कि इस नए आदेश ने संघीय सरकार की भूमिका को पहले से अधिक बढ़ा दिया जिसके परिणाम स्वरूप वास्तविक अवक्रमण हुआ। विदेश मंत्रालय के विवरण में इसका उल्लेख किया गया कि ''जम्मू और कश्मीर संपूर्ण राज्य जिसमें तथाकथित 'गिलगित- बाल्टिस्तान'' क्षेत्र भी सम्मिलित है, भारत का अभिन्न अंग है'' और पाकिस्तान के जबरन और गैरकानूनी कब्जे के तहत भूभाग की स्थिति में किसी भी तरह के बदलाव के कार्य का कोई कानूनी आधार नहीं है और यह पूर्णतया अस्वीकार्य है।''

यह नोट करना दिलचस्प है कि 1974, 1988, 1994 और 2009 में किए गए प्रशासनिक बदलाव तब किए गए थे जब इस्लामाबाद में पीपीपी की सरकार थी। तथापि, इसका उल्लेख किया जा सकता है कि 2009 में किए गए बदलाव 2006-07 के बाद से विचाराधीन है। जून 2018 में किए गए बदलाव पीएमएल सरकार के तहत किए गये थे। गिलगित - बाल्टिस्तान के संबंध में चार मुख्य मुद्दे हैं। इसमें अन्य बातों के साथ - साथ विशेष रूप से इस क्षेत्र में बढते पृथकतावादी तनाव, चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (सीपीईसी) रूपरेखा के तहत और चीनी भूमिका में समय - समय पर पाकिस्तान द्वारा किए गए बदलावों के प्रति भारत के जबाव के तरीके सम्मिलित हैं।[6]

भारत सरकार की प्रतिक्रिया : सन 1963 से भारत ने पाकिस्तान द्वारा चीन को भूभाग देने के संबंध में पाकिस्तान - चीनी समझौते को चुनौती दी है। यह उल्लेखनीय है कि भारत ने अपनी स्थिति को अन्य मंचो और संधियों में स्पष्ट रूप से बता दिया है। पूर्व पाकिस्तानी विदेश मंत्री खुर्शीद महमूद ने अपने हाल के प्रकाशित पुस्तक 'नाइदर ए हॉक नॉर ए डोव' 2015 में लिखा है कि कश्मीर के संबंध में पीछे के माध्यम की चर्चा के दौरान पाकिस्तान ने गिलगित और बाल्टिस्तान को जम्मू और कश्मीर का भाग माना था। उन्हांने इसमें जोड़ा : -

स्वतंत्रता के पूर्व, इस उत्तरी क्षेत्र में अन्य भागों के साथ-साथ गिलगित और बाल्टिस्तान, जम्मू और कश्मीर के रियासत के भाग थे। पृष्ठ माध्यम संधि के दौरान भी भारत ने इसे पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया था कि यदि उत्तरी क्षेत्र को इस समग्र योजना में सम्मिलित किया जाए तो वे जम्मू और कश्मीर के संबंध में किसी समझौते को स्वीकार कर सकते हैं। हमने इस दुविधा का विरोध किया। इसलिए कई तर्को और समझौते के बाद एक समझौते के उद्देश्यों के लिए दो इकाइयाँ होंगी और इसमें वे क्षेत्र सम्मिलित होंगे जिन पर क्रमशः भारत और पाकिस्तान द्वारा नियंत्रण होगा।[7]

तथाकथित आजाद कश्मीर से गिलगित-बाल्टिस्तान का पृथक्करण : शुरूआत से ही पाकिस्तान ने गिलगित - बाल्टिस्तान को तथाकथित आजाद कश्मीर से अलग कर दिया ताकि इस पर अधिक नियंत्रण बनाये रख सके। इससे इस क्षेत्र के लोगों से अधिक चिंता होने लगी। 1990 में तथाकथित आजाद कश्मीर को उच्च न्यायालय में उत्तरी क्षेत्रों की स्थिति के संबंध में पाकिस्तान की स्थिति को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की गयी जिसे मुस्कीन मामले के रूप में जाना जाता है। तथाकथित आजाद कश्मीर के उच्च न्यायालय ने यह निर्णय लिया कि उत्तरी क्षेत्र इसका भाग है और इसका प्रशासनिक नियंत्रण तथाकथित आजाद कश्मीर सरकार (पीओके) के पास होना चाहिए ना कि पाकिस्तानी सरकार के पास। पाकिस्तान ने उक्त निर्णय को लागू नहीं किया और उसे उसके उच्चतम न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया जिसने कहा कि उच्च न्यायालय को इस मामले में ऐसे आदेश जारी करने का अधिकार नहीं है। इसने इस मामले को कानूनी मुद्दा से अधिक राजनीतिक मुद्दा बताया।[8]

गिलगित-बाल्टिस्तान में बढ़ता पृथकतावाद : गिलगित-बाल्टिस्तान में तीन मुख्य समुदाय-शिया, इस्मालीज और सुन्नी 1947 में प्रचलित कश्मीरी परंपरा से 1970 तक सांप्रदायिक सौहार्द्रता के साथ शांतिपूर्ण तरीके से रह रहे थे। 1975 के बाद से वैमस्यता की शुरूआत हुई। स्कर्दु में शिया लोग बहुसंख्या में हैं। सुन्नी अधिकांशतः दायमीर में रहते हैं

और इस्माइली हूंजा में रहते हैं। प्रथम संप्रदायवादी संघर्ष 1975 में शुरू हुआ, जब गिलगित में शिया मुहर्रम जुलूस पर सुन्नी मस्जिद से हमला हुआ था। अगला बड़ा संघर्ष 1998 में हुआ जब रमजान के अंत के लिए चांद देखने के अवसर पर था। उस समय तक सांप्रदायिक हिंसा सामान्य बात हो गयी थी और 2014 में विदेशी पर्वतारोहियों की हत्या के बाद प्रत्यक्ष रूप से भड़का। कुछ दिन पूर्व दायमीर में 12 विद्यालयों को जला दिया गया। तथ्य यह है कि शिया और सुन्नी अलग-अलग क्षेत्रों में रहते हैं जो प्रतिकुल रूप से ससंजकता को प्रभावित करता है।[9]

काराकोरम राजमार्ग (केकेएच) जो पाकिस्तान को गिलगित-बाल्टिस्तान से जोड़ता है, के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा हथियारों और औषधियों व हमलों में भारी बढ़ोत्तरी हुई है और इस कारण जनांकिक बदलाव हुए हैं। अहिंसक इसमाइली समुदाय भी हमले के लक्ष्य बनने लगे। इस क्षेत्र में विकास कार्य में आगा खाँ प्रतिष्ठान सक्रिय रहे हैं और ऐसी रिपोर्ट है कि उनके कामगारों को भी निशाना बनाया गया है। एसएसआर (राज्य निर्देशक नियम) को समाप्त करने का निर्णय इस क्षेत्र की जनांकिकी को बर्बाद करने का एक प्रयास था। इससे गिलगित-बाल्टिस्तान में बाहरी लोगों जिनमें अधिकांशतः सुन्नी सजातीय पठान और पंजाबी थे,को बसाना आसान हुआ। जनरल मुशर्रफ (तत्कालीन ब्रिगेडियर) ने 1988 में राष्ट्रपति जिया के शासनकाल में शिया विद्रोह को कुचलने में भूमिका निभायी।[10]

गिलगित-बाल्टिस्तान में चीन की भूमिका : एक महत्वपूर्ण कारण कि क्यों गिलगित - बाल्टिस्तान को तथाकथित आजाद कश्मीर से अलग किया गया और इसे पाकिस्तान के प्रत्यक्ष निरीक्षण व नियंत्रण में रखा गया, वह है चीनी कारण। इस क्षेत्र को 1963 में पाकिस्तान द्वारा चीन को दे दिया गया, मिटांका दर्रा के दक्षिण का हिस्सा जो हुंजा से संबंधित था। 2 मार्च 1963 के सीमा समझौते ने चीन के सिंकियांग प्रांत और पाकिस्तान के वास्तविक नियंत्रण में सटा हुआ क्षेत्र के बीच इस सीमा रेखा के संरेखण में भी बदलाव किया। भारत ने पाकिस्तान और चीन दोनों के साथ इस समझौते का विरोध किया। इस क्षेत्र को चीन को देने से पूर्व इसकी गिलगित - बाल्टिस्तान के साथ चर्चा भी नहीं की गयी क्योंकि इसका अपनी कोई चुनी हुई सभा नहीं थी। 1963 के चीन - पाकिस्तान समझौते के अनुच्छेद एक दो और छह में यह स्वीकार किया गया कि इस समझौते द्वारा शामिल क्षेत्र विवादित है। इस समझौते के अनुच्छेद छह में कहा गया है कि दोनों पक्ष इस पर सहमत हुए कि भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर विवाद के समाधान के बाद संबंधित संप्रभु प्राधिकार वर्तमान कश्मीर समझौते के अनुच्छेद दो में दिए गए अनुसार इस सीमा पर पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चीन की सरकार के साथ समझौते को शुरू किया जाएगा।

इस समझौते के अनुच्छेद एक में यह स्वीकार किया गया है कि इस क्षेत्र में भारत - पाकिस्तान सीमा का परिसीमन परिभाषित नहीं किया गया है। इसमें कहा गया है कि :

इस तथ्य के दृष्टिगत कि चीन के सिंक्यांग और सटे हुए क्षेत्र के बीच सीमा, जिसकी रक्षा पाकिस्तान के नियंत्रण में है को औपचारिक रूप से कभी परिसीमित नहीं किया गया है, दोनो पक्ष परंपरागत प्रचलित सीमा के आधार पर परिसीमन के लिए सहमत हुए।

यहाँ चीन मानता है कि यह क्षेत्र पाकिस्तान के संप्रभु नियंत्रण में नहीं है। एक तथ्य जो महत्वपूर्ण बन जाता है जब इसे सीपीईसी के संदर्भ में चीन ने ऐतिहासिक संदर्भ पर अपनी संप्रभुता के दावों को आधार बनाया है। किंतु पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में सीपीईसी परियोजनाओं के संदर्भ में यह बात चीन के लिए द्वितीय और विषयेत्तर बन गया लगता है। ऐतिहासिक और संप्रभुता संबंधी मुद्दे चीन के तर्क के पक्ष में नहीं है। इसलिए वे पीओके से होकर गुजरने के लिए पाकिस्तान में अपने राजनीतिक व रणनीतिक निवेश हेतु वाणिज्यिक तर्कों का उपयोग कर रहे हैं।[11]

चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (सीपीईसी) और गिलगित-बाल्टिस्तान :- सीपीईसी पीओके से होकर गुजरता है जो भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर का एक हिस्सा है। ग्वादर से काशगर तक का सबसे छोटा मार्ग पंजगुर, क्वेटा, जोब, डेरा इस्माइल खान और उसके बाद मियानवली से होते हुए पंजाब में जाकर इस्लामाबाद तक जाता है और उसके बाद केकेएच से झिनझियांग/सिकियांग तक जाता है। ऐसी रिपोर्ट है कि चीन बलूचिस्तान और खैबर पख्तुनखावा व सिंध की सरकारों द्वारा जतायी गयी आपत्तियों के कारण पाकिस्तान सरकार द्वारा यह निर्णय लिया गया कि सीपीईसी के मार्ग के संरेखण में बदलाव किया जाए ताकि यह मुख्य रूप से पंजाब से होकर गुजरे। इसके परिणामस्वरूप सीपीईसी को चीन-पंजाब आर्थिक गलियारा माना जा रहा है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तानी मीडिया में ऐसी खबरें है कि चीन सीपीईसी के बारे में गिलगित - बाल्टिस्तान में नियमित रूप से हो रहे विरोध से चिंतित है क्योंकि प्रस्तावित 2000 किमी के काशगर-ग्वादर गलियारे का 600 किमी. इसी क्षेत्र से होकर गुजरता है।

इसके परिणामस्वरूप, ऐसी आशंका है कि इस परियोजना के कार्यान्वयन की प्रगति की गति प्रभावित हो सकती है। इसलिए पाकिस्तान चीन के दबाव पर गिलगित – बाल्टिस्तान पर अधिक संघीय नियंत्रण के पक्ष में है। कुछ अन्य मीडिया रिपोर्ट में यह खुलासा हुआ है कि चीन के आर्थिक गलियारे की रक्षा करने के लिए मध्य-पूर्व और एशिया में 5000 से अधिक चीनी सैनिक तैनात हैं। इस सूची में से सबसे अधिक संख्या (1800) में सैनिक चीन-पाकिस्तान गलियारे पर तैनात हैं। इनमें से अधिकांश को पीओके में तैनात किया जा सकता है और जो भारत के लिए चिंता का सबब बन सकता है।[12]

सीपीईसी पर इमरान खान के विचार :- पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान पूर्व में सीपीईसी के आलोचक रहे थे। तथापि, बाद में उन्होंने चीन को गुस्सा दिलाने से बचने तथा चीनी राजदूत के साथ बैठक के बाद अपना विचार बदल दिया और बताया कि वह इस परियोजना की पारदर्शिता के बारे में चिंतित थे और वह नहीं चाहते थे कि यह गलियारा पंजाब से नहीं गुजर कर खैबर पख्तुनख्वा से होकर जाए। जुलाई, 2018 में चुनाव के बाद उसने कहा, 'हम सीपीईसी की सफलता के लिए कार्य करना चाहते हैं।' इमरान खान के इस बदले हुए रूख पर टिप्पणी करते हुए एक पाकिस्तानी विद्वान फकीर एजादुद्दीन ने अभी यह उल्लेख किया है कि इमरान खान (जो कभी सीपीईसी के विरोध में थे) ने चीन में दिए गए अपने विजयी भाषण में कहा कि सीपीईसी का इस्तेमाल पाकिस्तान में भारी निवेश के अवसर के रूप किया जाएगा।[13]

निष्कर्ष : सभी पौराणिक मान्यताएँ, धार्मिक विवरण, भौगोलिक उत्थान, स्थानों का नामकरण तथा ऐतिहासिक विश्लेषण और पुरातात्विक साक्ष्य गिलगित-बाल्टिस्तान का संबंध भारतीय राज्य जम्मू-कश्मीर से अभिन्न रूप से जोड़ता है जो विस्तृत जम्मू-कश्मीर का उत्तरी हिस्सा रहा है। इसलिए अगर कोई कहता है कि भारत ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया है, तो यह बिलकुल गलत है। कब्जा तो पाकिस्तान ने आधे कश्मीर राज्य पर कर रखा है जिसे पीओके कहते हैं। पाकिस्तान के नेताओं का चाल, चरित्र व चेहरा इस क्षेत्र के वर्तमान हाल के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है। पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर में अशांति के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेवार है। वह आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देता है। अपनी सेनाओं की घुसपैठ कराता रहा है और इसके लिये आम कश्मीरी को बदनाम करता रहा है। साथ ही भारत के लिए आन्तरिक समस्या बनाता रहा है। हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर दंगा कराना और युवकों को गुमराह करना ही पाकिस्तान का मुख्य उद्देश्य रहा है। हम भारतवासियों को अपनी संपूर्ण संप्रभुता तथा स्वतंत्रता तभी प्राप्त होगी जब गिलगित और बाल्टिस्तान भारत का अभिन्न अंग होगा।

संदर्भ

1. चंद्रा, एस.एस., एस.के. शर्मा, और ए शर्मा, 'डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम और शिक्षा प्रणाली', संपादक का नोट 3 सामाजिक परिवर्तन के लिए स्कूली शिक्षा, बी. रमेश बाबू 5, पं. 48
2. स्नेडेन, सी, 'कश्मीर और कश्मीरियों को समझना', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015
3. चिब, एम, 'जम्मू और कश्मीर में नागा पूजा', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड एनालिटिकल रिव्यू, 4(4), 2017, पृ. 467-469
4. हबीब आई और एफ हबीब, 'भारत का ऐतिहासिक भूगोल 1800-800 ई.पू.', भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्यवाही में, 1991, खण्ड 52, पृ. 72-97
5. अहमद एम, 'जातीयत, पहचान और समूह जीवन शक्ति : श्रीनगर के बुरूशो का एक अध्ययन', जर्नल औफ एथनिक एण्ड कल्चरल स्टडीज, 3 (1), 2016, पृ. 1-10
6. लम्बा एस.के., '1947 से गिलगित-बाल्टिस्तान का दुखद इतिहास', इंडियन फॉरेन अफेयर्स जर्नल', 2016 11 (3) पृ. 227-237
7. अहमद एस, ए.एच. मलिक, 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा : दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय स्थिरता पर प्रभाव', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस एंड डेवलपमेंट, 5 (6), 2017, पृ. 192-202
8. सोकेफेल्ड एम, 'कश्मीर का हिस्सा नहीं, बल्कि कश्मीर विवाद का हिस्सा : गिलगित-बाल्टिस्तान की राजनीतिक भविष्यवाणी', कश्मीर इतिहास, राजनीति, प्रतिनिधित्व, 2018, पृ. 132-149
9. गुप्ता ए, 'पाक अधिकृत कश्मीर : बदल रहा विमर्श, 2011
10. क्रेट्ज़मैन एच, 'गिलगित-बाल्टिस्तान में सीमाएँ और क्षेत्र', समकालीन दक्षिण एशिया, 23 (3), 2015, पृ. 276-291
11. लांबा एस.के., पूर्वोक्त, पृ. 227-237
12. जैन एस.के., 'पाक अधिकृत कश्मीर में चीन की बढ़ती मौजूदगी और भारत की चिंता', वर्ल्ड फोकस, XXXVIII (7), 2017, पृ. 138.141
13. हुसैन ई, 'क्या सरकार बदलने से चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा प्रभावित होगा? बीआरआई, सीपीआई और खान सरकार : एक विश्लेषण' चाइनीज जर्नल ऑफ इंटरनेशनल रिव्यू, 1 (02), 2019, पृ. 195

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में रचनावाद की सार्थकता

❑ कल्पनाथ सरोज
❖ डॉ. अनु जी. एस.

सूचक शब्द : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, रचनावाद, रचनावादी पाठ्यक्रम

शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार में परिमार्जन तथा उसके ज्ञान व कौशल में वृद्धि करके उसे सभ्य और योग्य नागरिक बनाती है। यह मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरस व प्रगतिशील विकास करती है। शिक्षा में रचनावाद विद्यार्थी केन्द्रित अधिगम का एक सिद्धान्त है। यह विद्यार्थी के सक्रिय रूप से ज्ञान का निर्माण, व्याख्या व पुनर्गठन की वकालत करता है और यह भी निर्धारित करता है कि बालक के बौद्धिक विकास में उसका अनुभव, अर्जित ज्ञान, सांस्कृतिक व सामाजिक ज्ञान सहायक होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दस्तावेज में पाठ्यक्रम के विषय-वस्तु को कम करके विद्यार्थियों को आलोचनात्मक तथा समस्याओं समाधानकर्ता, रचनात्मक और बहु-विषयक बनाने के लिए शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में विद्यार्थी केन्द्रित रचनावादी विधियों समस्या आधारित अधिगम, कोआपरेटिव अधिगम तथा कालाबोरेटिव अधिगम का प्रयोग करना चाहिए। इसमें शिक्षक की भूमिका ज्ञान स्थानान्तरणकर्ता से ज्ञान के निर्माण में सुविधा प्रदाता की हो गयी है और विद्यार्थी की भूमिका ज्ञान प्राप्तकर्ता से बदल कर ज्ञान निर्माता की हो गयी है। शिक्षार्थी अपने पूर्व अनुभव के आधार पर सक्रिय रूप से अधिगम प्रक्रिया में संलग्न होकर नये विचारों का निर्माण करता है। शिक्षक विद्यार्थियों के अधिगम की गुणवत्ता में सुधार तथा प्रगति के लिए रचनावादी मूल्यांकन का प्रयोग करता है। पाठ्यक्रम डिज़ाइनर द्वारा विद्यार्थी केन्द्रित पाठ्यचर्या का विकास किया जाना चाहिए, जिसमें विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के अनुभवों से अपनी समीक्षात्मक चिन्तन क्षमता और ज्ञान निर्माण योग्यता में वृद्धि कर सके।

शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार में परिमार्जन तथा उसके ज्ञान व कौशल में वृद्धि करके उसे सभ्य और योग्य नागरिक बनाती है। "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरस व प्रगतिशील विकास करती है।"[1] एन.इ.पी.[2] ने अपने दस्तावेज में स्पष्ट किया है कि किसी समाज का न्यायपूर्ण व न्यायसंगत विकास के लिए गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा होनी चाहिए। तभी वह देश वैश्विक स्तर पर ''सामाजिक न्याय, समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण के सन्दर्भ में प्रगति करता है।''[3] इसके लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम में विषय-वस्तु को कम किया जाय, जिससे विद्यार्थी नये ज्ञान का निर्माण अपनी तार्किक व रचनात्मक चिन्तन में वृद्धि करके करें। नये ज्ञान का नयी परिस्थितियों के अनुसार प्रयोग कर करें। यह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थी केन्द्रित हो जो विद्यार्थियों की जिज्ञासा, खोज, अनुभव तथा संवाद जैसी क्षमताओं का संतुलित विकास करें। शिक्षा विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण के साथ नैतिकता, संवेदनशीलता व करुणा की भावना विकसित करें और उन्हें रोजगार के लिए सक्षम बनाये।

इस प्रक्रिया में शिक्षक पाठ्यक्रम के माध्यम से अधिगम की सुविधाएँ उपलब्ध कराता है और शिक्षार्थी सक्रिय रूप उसमें से सहभागी होते हैं। परम्परागत शिक्षा व्यवस्था अधिगम को बढ़ावा न देकर, विद्यार्थियों को केवल परीक्षा के लिए तैयार करती है। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में रचनावाद सिद्धांतों के आधार पर शिक्षा के पाठ्यक्रम को विकसित करने पर बल दिया है जो प्रभावशाली शिक्षण और अधिगम के क्षेत्र में एक मूलमंत्र है।

रचनावाद की अवधारणा : रचनावाद विद्यार्थी केन्द्रित अधिगम का एक सिद्धान्त है। यह विद्यार्थी के सक्रिय रूप से ज्ञान का निर्माण, व्याख्या व पुनर्गठन की वकालत करता है और यह निर्धारित करता है कि बालक के बौद्धिक विकास में उसके अनुभव, अर्जित ज्ञान, सांस्कृतिक व सामाजिक ज्ञान सहायक होता है। रचनावादी परिपेक्ष्य में, विद्यार्थी खाली स्लेट नहीं है जिस पर कुछ भी लिखा जा सकता है, बल्कि अधिगम की परिस्थिति में अपने साथ अर्जित ज्ञान, विचार व समझ लेकर आता है। वह उस ज्ञान व अनुभवों का उपयोग करके नये ज्ञान का निर्माण करता है। ग्लासेरफेल्ड[5] ने उनके विचारों को बढ़ाते हुए कहा कि

❑ सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, भारतीय कॉलेज ऑफ एजुकेशन उधमपुर, (जम्मू - कश्मीर)
❖ सह आचार्य, शिक्षा विभाग, नागालैण्ड विश्वविद्यालय (नागालैण्ड)

ज्ञान निष्क्रिय रूप से अर्जित नहीं होता है बल्कि सक्रिय रूप से ज्ञान का निर्माण किया जाता है। कर्नू एवं पीटर्स[6] ने भी बताया कि ज्ञान के निर्माण में विद्यार्थी की सक्रिय भूमिका होती है। रचनावाद अधिगम का एक ऐसा उपागम है जिसमें विद्यार्थी सक्रिय रूप से अपने ज्ञान का निर्माण करता है और अधिगम की वास्तविकता अपने अनुभव द्वारा निर्धारित करता है।[7] आगे ग्लासेरफील्ड[8] कहते हैं कि सीखना एक उद्दीपन-प्रतिक्रिया की घटना नहीं है बल्कि एक ऐसी प्रकिया है जिसमें विद्यार्थी आत्म-नियमन और वैचारिक संरचनाओं के विकास के लिए चिन्तन एवं मनन करता है। रचनावादियों का मानना है कि विद्यार्थी अपने अवधारणा और कौशल का प्रयोग करके व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से पर्यावरण द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के समाधान हेतु ज्ञान का निर्माण करता है।[9] इस प्रकार ''रचनावाद शिक्षण का सिद्धांत नहीं है बल्कि यह ज्ञान और अधिगम का एक सिद्धांत है। यह सिद्धांत ज्ञान को अस्थायी, विकासात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक मध्यस्थता के रूप में परिभाषित करता है।[10] इस उपागम का केन्द्रीय सिद्धांत है कि अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें शिक्षार्थी अपने अर्जित ज्ञान को नये ज्ञान के साथ जोड़कर अर्थ का निर्माण करता है।[11] इस प्रकार उपर्युक्त शिक्षाशास्त्रियों के विचारों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि रचनावाद के केन्द्र में शिक्षार्थी है, जो समाज और वातावरण से अन्तःक्रिया करके तथा अपने अनुभवों और ज्ञान का प्रयोग करके सक्रिय रूप से नये ज्ञान का निर्माण करता है।

रचनावाद का उद्‌भव व्यवहारवादी अधिगम सिद्धांत के विपरीत हुआ है। इस अवधारणा का विकास सुकरात, डीवी, मोंटेसरी, पियाजे, वायगोत्स्की और ब्रूनर के कार्यों से संबंधित है। यह विचारधारा सुकरात के संवाद (प्रश्नात्तेर) विधि तथा उनके अनुयायियों से प्रारम्भ होती है जिसमें विद्यार्थी अपने चिन्तन से कमजोरियों का अनुभव करता है। इससे शिक्षक अपने शिक्षार्थियों के अधिगम का मूल्यांकन करते हैं और सीखने के नये अनुभव की योजना बनाते हैं। इसमें आज भी सुकरात की संवाद विधि एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करती है। डीवी[12] के अनुसार शिक्षक शिक्षण विषय-वस्तु की अपेक्षा विद्यार्थियों के अनुभव को अधिक महत्व देना चाहिए। आगे डीवी[13] ने बताया कि सीखना एक सामाजिक क्रिया है जिसमें विद्यार्थी एक-दूसरे के साथ वार्तालाप करके सीखते हैं। मोंटेसरी[14] रचनावादी विचार पर बल देते हुए कहती हैं कि शिक्षक की भूमिका एक सुविधा प्रदाता की होनी चाहिए जिसमें शिक्षक को अपने सभी दायित्व को विद्यार्थियों में वितरित कर देना चाहिए। विद्यार्थियों की प्रत्येक अधिगम क्रियाओं में सक्रिय रूप से सहभागिता होनी चाहिए। पियाजे[15] मनोवैज्ञानिक रचनावाद के प्रणेता माने जाते हैं। उन्होंने बताया कि व्यक्ति की बुद्धि का विकास अनुकूलन और संगठन के माध्यम से होता है। अनुकूलन की प्रक्रिया में आत्मसात और समायोजन होता है। आत्मसात की प्रक्रिया में बच्चे अपने स्कीमा में नये ज्ञान को लाते हैं और उस नये ज्ञान को समायोजित करने के लिए अपने स्कीमा में बदलाव करते हैं। अन्य शब्दों में व्यक्ति नये ज्ञान को आत्मसात करने के पश्चात् उसका स्कीमा में समायोजन करता है। वायगोत्स्की पियाजे के विचार से सहमत थे और उनके बातों को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि ज्ञान का अर्जन सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रक्रिया द्वारा होता है। अन्य व्यक्ति सांस्कृतिक भिन्नता से प्रभावित होकर ज्ञान को आत्मसात करते हैं। वायगोत्स्की[16] ने बताया कि व्यक्ति पहले सामाजिक अन्तःक्रिया (इंटरसाइकोलॉजिकल) के द्वारा और द्वितीय व्यक्तिगत स्तर पर आन्तरिक क्रिया (इंट्रासाइकोलॉजिकल) द्वारा ज्ञान निर्माण करता है। ब्रुनर पियाजे और वायगोत्स्की के कार्यों से अधिक प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने उनके कार्यों को आगे बढ़ाते हुए लिखा कि शिक्षार्थी अपने पूर्व ज्ञान, समझ, पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया और विश्व की नई सूचनाओं के आधार पर सक्रिय रूप से नये ज्ञान का निर्माण करता है। वर्तमान में रचनावाद के कार्यों को आधुनिक शैक्षिक सिद्धांत, अनुसंधान और अनुदेशित शिक्षण विधि प्रभावित करती है।

उपर्युक्त विचारकों के विचारों से स्पष्ट है कि रचनावादी उपागम ज्ञान निर्माण के लिए सक्रिय तकनीकी है जो समस्या समाधान के लिए प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार विद्यार्थियों में चिंतन, सहयोगात्मक और जांच-पड़ताल पर आधारित अधिगम को विकसित करती है। यह अधिगम विद्यार्थियों को अवसर देता है कि वे शिक्षा के क्षेत्र में अधिक योगदान प्रदान कर सकें। इस उपागम से विद्यार्थियों में समस्या समाधान करने की योग्यता विकसित होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में रचनावाद पर प्रकाश : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 दस्तावेज में भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पूर्ण रूप से परिमार्जित करके एक नई शिक्षा

व्यवस्था विकसित करने के लिए अनेक परिवर्तनों पर बल दिया गया है। जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने रचनावादी सिद्धांतों के सन्दर्भ में प्रकाश डालते हुए अपना सुझाव दिया है कि शिक्षा की विषय-वस्तु को कम करने ओर अग्रसर होना चाहिए और इस ओर अधिगम को प्रेरित करना चाहिए कि बालक कैसे आलोचनात्मक चिन्तन करें तथा समस्याओं का कैसे समाधान करें, उन्हें कैसे रचनात्मक और बहु-विषयक बनाया जाय, नए-नए विषयों में नई सामग्री को कैसे अपनाया जाए, उनमें कैसे अनुकूलन किया जाए और नए क्षेत्रों में कैसे बदलाव लाया जाए। शिक्षण से शिक्षा को और अधिक अनुभवात्मक, समग्र, समेकित, जिज्ञासा प्रेरित, खोज उन्मुख, शिक्षार्थी केंद्रित, संवाद आधारित, लचीला और आनंद लेने योग्य बनाना होगा।[17] इसके लिए पाठ्यक्रम को विद्यार्थी केन्द्रित बनाया जाना चाहिए। इन उद्देश्यों के लिए विद्यार्थियों को कौशल और ज्ञान के विकास के लिए अवसर उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने अपने दस्तावेज में शिक्षण विधियों के संबंध में अपना सुझाव दिया है कि ''शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया अधिक संवादात्मक हो; सवालों के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और कक्षा शिक्षण सत्र के दौरान नियमित रूप से छात्रों के लिए अधिक अनुभवात्मक, आनन्दायक, रचनात्मक, सहयोगात्मक और खोज गतिविधियों का उपयोग करना चाहिए।''[18] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्पष्ट उल्लेख है कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में, उच्चत्तर शिक्षा राजभाषा और राष्ट्र भाषा में होनी चाहिए।[19] सामाजिक रचनावादियों का भी मानना है कि बालक भाषा के माध्यम से सामाजिक अन्तःक्रिया द्वारा अर्थ का निर्माण निर्माण करता है।[20] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेख किया है कि ''शिक्षा प्रणाली की संस्कृति में मूल्यांकन का उद्देश्य योगात्मक परीक्षण के स्थान पर रचनात्मक मूल्यांकन बनाने पर बल दिया गया है। यह छात्रों के अधिगम और विकास को बढ़ावा देता है। उच्च-कोटि का परीक्षण करता है, जो छात्रों के विश्लेषण, आलोचनात्मक चिन्तन और वैचारिक स्पष्टता जैसे कौशलों का मूल्यांकन करता है।''[21]

रचनावादी अध्ययन का महत्व : शिक्षा समाज में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो व्यक्ति की क्षमताओं का विकास करके एक कुशल मानव संसाधन और योग्य नागरिक का निर्माण करती है। यह तभी सम्भव होगा जब गुणवत्तापूर्ण शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान की जायेगी। इसके लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। विद्यार्थी केन्द्रित पाठ्यक्रम हेतु विषय-वस्तु को कम करने और लचीलेपन में वृद्धि के साथ रटकर सीखने के स्थान पर रचनावादी उपागम पर बल दिया है। विद्यार्थी तार्किक व रचनात्मक रूप से चिन्तन करें और नये ज्ञान का निर्माण करके अपने जीवन की समस्याओं के समाधान में उसका प्रयोग कर सकें। एन. सी. एफ.[22](2005) में उल्लेख किया है कि ''अधिगम एक ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया है जिसमें शिक्षार्थी अपने पूर्व ज्ञान को नये विचार के साथ जोड़कर सक्रिय रूप से नये ज्ञान का निर्माण करता है।'' जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति[23] 2020 ने भारतीय भाषाओं और भारतीय ज्ञान प्रणालियों को पाठ्यक्रम में स्पष्ट रूप से महत्व दिया है। एम.एच.आर.डी.[24] वार्षिक रिपोर्ट (2014-15) में सुझाव दिया है कि शिक्षा प्रणाली बच्चों के अनुकूल और समावेशी हो और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया रचनात्मक होनी चाहिए। एन.आई.ई.पी.ए[25] वार्षिक रिपोर्ट (2019-20) डिजिटल समाज की शिक्षण विधि कोलाबोरेटिव और रचनावादी प्रकृति के साथ ही अधिगमकर्ता को परिवर्तित करके ज्ञान निर्माता बनाने पर बल दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति[26] 2020 के अनुसार रचनावादी शैक्षिक मूल्यांकन प्रक्रिया ने सीखने के सकारात्मक पक्षों को दर्शाया है जिससे विद्यर्थियों में रचनात्मकता और नवाचार की वृद्धि हुई है तथा उच्च-स्तर की चिन्तन क्षमता, समस्या समाधान की क्षमता, समूह कार्य, संचार कौशल, सीखने की गम्भीरता का विकास हुआ है। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थियों में ज्ञान, सामाजिकता और नैतिकता में वृद्धि होगी। एक समग्र और बहु-विषयक शिक्षा दृष्टिकोण के माध्यम से अनुसंधान में भी सुधार और वृद्धि हुई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में रचनावाद पर प्रकाश : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 दस्तावेज में भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पूर्ण रूप से परिमार्जित करके एक नई शिक्षा व्यवस्था विकसित करने के लिए अनेक परिवर्तन पर बल दिया गया है जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) ने रचनावादी सिद्धांतों के सन्दर्भ में प्रकाश डालते हुए अपना सुझाव दिया है कि ''शिक्षा की विषय-वस्तु को कम करने ओर अग्रसर होना चाहिए और इस ओर अधिगम को प्रेरित करना चाहिए कि बालक कैसे आलोचनात्मक चिन्तन करें तथा समस्याओं का कैसे समाधान करें, उन्हें कैसे

रचनात्मक और बहु-विषयक बनाया जाय, नए-नए विषयों में नई सामग्री को कैसे अपनाया जाए, उनमें कैसे अनुकूलन किया जाए और नए क्षेत्रों में कैसे बदलाव लाया जाए। शिक्षण से शिक्षा को और अधिक अनुभवात्मक, समग्र, समेकित, जिज्ञासा प्रेरित, खोज उन्मुख, शिक्षार्थी केंद्रित, संवाद आधारित, लचीला और आनंद लेने योग्य बनाना होगा।''[27] इसके लिए पाठ्यक्रम को विद्यार्थी केन्द्रित बनाया जाना चाहिए। इन उद्देश्यों के लिए विद्यार्थियों को कौशल और ज्ञान के विकास के लिए अवसर उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने अपने दस्तावेज में शिक्षण विधियों के संबंध में अपना सुझाव दिया है कि ''शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया अधिक संवादात्मक हो; सवालों के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और कक्षा शिक्षण सत्र के दौरान नियमित रूप से छात्रों के लिए अधिक अनुभवात्मक, आनंदायक, रचनात्मक, सहयोगात्मक और खोज गतिविधियों का उपयोग करना चाहिए''।[28] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्पष्ट उल्लेख है कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में, उच्चतर शिक्षा राजभाषा और राष्ट्रभाषा में होनी चाहिए।[29] सामाजिक रचनावादियों का भी मानना है कि बालक भाषा के माध्यम से सामाजिक अंतःक्रिया द्वारा अर्थ का निर्माण करता है।[30] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेख किया है कि ''शिक्षा प्रणाली की संस्कृति में मूल्यांकन का उद्देश्य योगात्मक परीक्षण के स्थान पर रचनात्मक मूल्यांकन पर बल दिया गया है। यह छात्रों के अधिगम और विकास को बढ़ावा देता है। यह उच्च-कोटि का परीक्षण करता है, जो छात्रों के विश्लेषण, आलोचनात्मक चिन्तन और वैचारिक स्पष्टता जैसे कौशलों का मूल्यांकन करता है''।[31]

पाठ्यक्रम में रचनावादी उपागम का एकीकरण : रचनावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में, प्रत्येक विद्यार्थी की मुख्य भूमिका होती जिसमें वह निर्धारित करता है कि उसे क्या सीखना है और कैसे सीखना है। छात्र अधिगम के लिए समूह में समस्याओं पर चर्चा करके समाधान खोजना होता है। शिक्षक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी और प्रासंगिक विषय-वस्तु को अधिगम के लिए निर्धारित करता है। जहाँ विद्यार्थी चिन्तन और संबंध निर्माण की प्रक्रिया के बारे में ज्ञान प्राप्त करते हैं।

रचनावादी शिक्षक : रचनावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में, शिक्षक ज्ञान का स्रोत नहीं होता है बल्कि एक निर्देशक का कार्य करता है। अब शिक्षक की मुख्य भूमिका ज्ञान स्थानान्तरणकर्ता से ज्ञान के निर्माण में सुविधा प्रदाता के रूप में बदल गयी है। शिक्षक विद्यार्थियों की आवश्यकता और रूचि के आधार पर उनके आत्म-विकास के लिए प्रभावशाली अधिगम के अवसर उपलब्ध कराता है।[32] शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षक के साथ तथा शिक्षार्थियों को उनके समूह के साथ संवाद के लिए प्रोत्साहित करता है और उनकी स्वायत्तता और पहल को स्वीकार करता है। ब्रूक्स और ब्रूक्स[33] ने लिखा कि शिक्षक विद्यार्थियों के आत्म-प्रशासन और उद्यमशीलता को स्वीकार करें और उन्हें प्रोत्साहित करें कि वे अपने विचारों का सम्मान करें तथा स्वतत्रंता पूर्वक चिन्तन करें। शिक्षक व विद्यार्थी परस्पर संवाद के द्वारा समस्या हल करें। इस प्रक्रिया में छात्र अपने विचारों का निर्धारण करते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं, अनुमान लगाते हैं और वे अपने ज्ञान को कोआपरेटिव अधिगम के वातावरण में व्यक्त करें। शिक्षण कक्ष में शिक्षक के लिए निम्न कार्य बताये गये हैं -

1. शिक्षक शिक्षण के दौरान प्राथमिक स्रोतों और भौतिक सामग्रियों का उपयोग करेगा।
2. शिक्षक शिक्षार्थियों की प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखेगा और उनका उपयोग अधिगम को आगे बढ़ाने के लिए करेंगा।
3. शिक्षक नए विचारों के बारे में शिक्षार्थियों को पढ़ाने से पहले उनकी समझ के बारे में पता लगा लगाएगा।
4. शिक्षक शिक्षार्थियों को शिक्षक और परस्पर संवाद में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करेंगा।
5. शिक्षक शिक्षार्थियों को विचारशील और एक-दूसरे से प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।
6. शिक्षक शिक्षार्थियों की प्रतिक्रियाओं को विस्तार करने की खोज करेंगा। शिक्षक शिक्षार्थियों को ऐसे अनुभवों से अवगत करायेगा जो विरोधाभास पैदा कर सकते हैं और उन्हें पुनः चर्चा के लिए प्रोत्साहित करेंगा।[34]

रचनावादी विद्यार्थी : रचनावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का केन्द्रबिन्दु शिक्षार्थी होता है जिसमें विद्यार्थी की भूमिका ज्ञान प्राप्तकर्ता से बदल कर ज्ञान निर्माता की हो गयी है। शिक्षार्थी अपने पूर्व अनुभव के आधार पर सक्रिय रूप से अधिगम प्रक्रिया में संलग्न होकर नये विचारों का निर्माण करता है तथा वह अपने विचारों की वैधता की जाँच करता है। नये विचारों को नई परिस्थितियों में प्रयोग करके उसकी व्याख्या और विश्लेषण करता है। विद्यार्थी

अर्जित ज्ञान को अपने समूह में साझा करता है। विद्यार्थियों में आत्म-निर्देशन अधिगम की प्रवृत्ति का विकास करता है तथा दिए गये अधिगम दायित्वों का निर्वहन करता है। रचनावाद विद्यार्थियों को अकादमिक स्वतंत्रता देता है और उन्हें सहयोगात्मक कार्य के लिए प्रोत्साहित करता है।

रचनावादी शिक्षण विधि : शिक्षण शास्त्र शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण घटक है। यह शिक्षण का हृदय है; इसके नियम और सिद्धांत अधिगम के प्रभावी और सक्षम कार्यकलापों को दिशा प्रदान करते हैं।[35] यह उपागम शिक्षार्थियों को अर्थ निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से संलग्न करता है और साथ ही शिक्षण का कार्य इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थी पहले से क्या जानता है उसके आधार पर वह क्या विश्लेषण, जांच, सहयोग, और निर्माण कर सकता है। नोल्स ने[36] शिक्षण शास्त्र को ''बच्चों के शिक्षण की कला और विज्ञान" बताया है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि और उच्च क्रम के चिन्तन की प्राप्ति के लिए कक्षा की गतिविधियाँ, संवाद और पाठ्य सहगामी क्रियाएं सहायता प्रदान करती हैं। रचनावादी शिक्षण विधि सीखने की एक निश्चित विधि नहीं है। इसमें सीखने के अनेक उपागमों को सम्मिलित किया जाता है। समस्या आधारित अधिगम विद्यार्थी केन्द्रित तथा प्रक्रिया उन्मुख उपागम है, यह विद्यार्थी के ज्ञान विकास में सहायता करती है, यह गतिहीन के बजाय उपयोगी और लचीली है। इस उपागम में छात्रों का अधिगम किसी समस्या के समाधान से प्रारम्भ होता है। शिक्षक विद्यार्थियों के लिए समस्या उपलब्ध कराता है और विद्यार्थी समस्या की पहचान व विश्लेषण करता है तथा समस्या के आधार सक्रिय रूप से अपने पूर्व अनुभवों का प्रयोग करके प्रदत्त समस्या के समाधान के लिए परिकल्पना का निर्माण करता है। उस परिकल्पना की जाँच पड़ताल करके नये ज्ञान खोज करता है।[37] को-आपरेटिव अधिगम एक लोकप्रिय उपागम है, जिसमें विद्यार्थी समूह में कार्य करके अधिगम करते हैं। साझेदारी व सहयोग करके साझा लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दूसरों के साथ मिलकर काम करने का एक तरीका है।[38] कोलाबोरेटिव अधिगम एक शैक्षिक उपागम है। यह समूह कार्य से संबंधित है, जिसमें समस्या का समाधान करने, एक कार्य को पूरा करने या लक्ष्य प्राप्ति के लिए शिक्षार्थियों को समूह में सम्मिलित होकर कार्य करने पड़ते हैं। स्कैफोल्डिंग अधिगम सामान्यतः सोवियत मनोवैज्ञानिक लेव वायगोट्स्की के कार्यों से संबंधित है। यह शिक्षण प्रक्रिया के दौरान शिक्षक या वयस्क व्यक्ति द्वारा छात्र को दिया जाने वाला सहयोग है। जहां शिक्षक, विद्यार्थियों को नयी अवधारणाओं या कौशल विकसित में विशेष प्रकार का सहयोग प्रदान करता है। इस प्रकार रचनावादी शिक्षण उपागम विद्यार्थियों को उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने तथा उनमें तार्किक क्षमता का विकास में सहायक होते हैं।

रचनावादी मूल्यांकन : रचनावादी मूल्यांकन का प्रयोग विद्याथियों के अधिगम और शिक्षक विद्यार्थियों की प्रगति के बारे में जानने के लिए किया जाता है। रचनावादी मूल्यांकन योगात्मक परीक्षण के स्थान पर संरचनात्मक मूल्यांकन पर बल देता है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों के अधिगम की गुणवत्ता में सुधार करना होता है। इसमें विद्यार्थियों के सामूहिक मूल्यांकन के स्थान पर व्यक्तिगत मूल्यांकन होता है। विद्यार्थी के अधिगम के दौरान मूल्यांकन किया जाता है, छात्र को प्रतिपुष्टि दिया जाता है। योगात्मक मूल्यांकन विद्यार्थी के एक निश्चित विषय में योग्यता निर्धारित करने पर बल देता है। जबकि रचनावादी वातावरण में, संरचनात्मक मूल्यांकन विद्यार्थी की योग्यता को संगठित करता है और उस ज्ञान को जटिल समस्या के समाधान में उपयोग करता है।[39] इस प्रकार के मूल्यांकन में केस अध्ययन, समूह आधारित प्रोजेक्ट, पोर्टफोलियो, संवाद आदि का प्रयोग किया जाता है।

अ. प्रक्रिया आधारित मूल्यांकन : प्रक्रिया आधारित मूल्यांकन रचनावाद के सिद्धांतों के आधार पर विद्यार्थियों का मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन को फ़ेडरल ब्यूरो ऑफ़ जस्टिस एडमिनिस्ट्रेशन[40] ने परिभाषित करते हुए लिखा है कि शिक्षण अधिगम कार्यक्रम को कैसे कार्यान्वित किया जाय? यह कार्यक्रमों के लिए गए निर्णयों तथा प्रक्रियाओं की पहचान करता है। यह स्पष्ट करता है कि कार्यक्रम कैसे चलाया जाय? यह कार्यक्रम को कार्यान्वित करके सेवाएं प्रदान करता है। हालाँकि, अतिरिक्त रूप से शिक्षण अधिगम कार्यक्रम का दस्तावेजीकरण किया जाता है। इसके द्वारा शिक्षण अधिगम कार्यक्रम के विकास, संचालन और प्रक्रिया का मूल्यांकन किया जाता है। इसके सफलता या असफलता के कारणों का भी मूल्यांकन होता है। यह संभावित प्रतिक्रिया के लिए जानकारी प्रदान करता है। इस तरह के प्रक्रिया आधारित मूल्यांकन से शिक्षण अधिगम कार्यक्रम के स्टाफ सदस्यों को जरूरी

हस्तक्षेपों की पहचान करने तथा शिक्षण अधिगम में सुधार के लिए कार्यक्रम के घटकों को बदलने में मदद मिलती है।[11]

ब. निरन्तर और व्यापक मूल्यांकन एक विद्यालय शिक्षण अधिगम पर आधारित मूल्यांकन है जो बालक के विकास से संबंधित विद्यालय क्रियाकलापों के सभी पहलुओं को समाहित करता है। यह अधिगम की प्रक्रिया और अधिगम के परिणामों का मूल्यांकन करता है यह सीखने के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और मनोचिकित्सक क्षेत्रों का मूल्यांकन करता है। यह बालक के ज्ञान, समझ व अनुप्रयोग जैसे संज्ञानात्मक योग्यताओं का मूल्यांकन करता है।

स. अवलोकन : रचनावादी अधिगम में शिक्षक कक्षा शिक्षण अधिगम के दौरान प्रत्येक विद्यार्थियों के कार्यो का गहनता पूर्वक अवलोकन के द्वारा मूल्यांकन करता है। इससे विद्यार्थियों के संवाद कौशल, आत्मविश्वास, सामाजिक संबंध और शैक्षिक उपलब्धि के अवलोकन द्वारा मूल्यांकन करके उनको प्रतिपुष्टि प्रदान की जा सकती है।

रचनावादी पाठ्यक्रम का अनुप्रयोग : उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में रचनावादी अधिगम के सिद्धांतों के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माता द्वारा विद्यार्थी केन्द्रित पाठ्यक्रम का विकास किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के अनुभवों से अपनी समीक्षात्मक चिन्तन क्षमता और ज्ञान निर्माण योग्यता में वृद्धि कर सके। विद्यार्थियों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया क्रियाकलापों पर आधारित हो, जिसमें विद्यार्थी सक्रिय रूप से भाग लेकर ज्ञान का निर्माण करें। विद्यार्थी के समग्र विकास के लिए शिक्षक द्वारा कक्षा शिक्षण के साथ-साथ पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का भी आयोजन किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में विशेष योग्यताओं का विकास हो सके। कक्षा शिक्षण के दौरान शिक्षक द्वारा एकीकृत उपागम के माध्यम से शिक्षण के सभी संसाधनों का क्रमबद्ध तरीके से उपयोग करके विद्यार्थियों में उच्च स्तर के चिन्तन का विकास करना चाहिए। शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर अधिगम के लिए कोआपरेटिव, कोलाबोरेटिव तथा समस्या आधारित उपागमों का उपयोग करके शिक्षण करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों के उच्च शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि तथा वार्तालाप, परस्पर संबंध जैसे कौशलों का भी विकास होता है। इस प्रकार शिक्षण विधि अधिक लचीली हो, जो सामान्य और विशिष्ट विद्यार्थियों के उच्च शैक्षिक उपलब्धि में सहायक सिद्ध हो। शिक्षक विद्यार्थियों में सकारात्मक ज्ञान निर्माण की संस्कृति का विकास और सीखने की आदत में सहयोग करें। उपर्युक्त सभी विचार रचनावादी शिक्षण अधिगम सिद्धांत का निर्माण करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार शिक्षण अधिगम का माध्यम मातृभाषा, राजभाषा तथा राष्ट्र भाषा होना चाहिए। विद्यार्थियों की प्रगति का आकलन करने के लिए रचनावादी मूल्यांकन पद्धति का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों के वास्तविक विकास व उनकी कमियों का पता लगाया जाय सके। शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों की कमियों में सुधार करने के नये उपाय किये जाय। इस प्रकार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में मूल्यांकन एक अंग है। इसमें प्रक्रिया आधारित मूल्यांकन, कांसेप्ट मैपिंग, निरन्तर एवं व्यापक मूल्यांकन, अवलोकन आदि का प्रयोग करना चाहिए जो रचनावादी सिद्धांतों पर आधारित हो।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विश्लेषण एवं व्याख्या के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि नई शिक्षा नीति 2020 देश के सभी विद्यालयी शिक्षा और उच्च शिक्षा में अनुप्रयोग करने के लिए तैयार की गयी है। इस शिक्षा नीति की पूर्ण सफलता के लिए रचनावादी पाठ्यक्रम का निर्माण, अनुप्रयोग तथा उसके मूल्यांकन का प्रयोग करना चाहिए। यह विद्यालयी शिक्षा और उच्च शिक्षा के नियोजन में विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में संलग्न होने में मदद करेंगी तथा रचनावादी शिक्षा के दूरदर्शी लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करेंगी, जिसमें शिक्षण और विस्तार के साथ अनुसंधान भी सम्मिलित होगा।

सन्दर्भ

1. रूहेला, एस. पी., 'शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2008, पृ. 28.
2. NEP, 'National Education Policy 2020', Ministry of Human Resource Development, 2020, p. 3.
3. Ibid., p. 3.
4. Postner, G. J., Strike, K. A., Hewson, P. W., & Gertzog, W. A., 'Accommodation of a Scientific Conception: Toward a Theory of Conceptual Change', Science Education, 66(2), 1982, pp. 211-227.
5. Von Glaserfeld, E. A 'Constructivist Approach to Teaching',. In L. P. Steffe and J. Gale (Eds), Constructivism in Education, Lawrence Erlbaum Associates, Hillsdale, 1995, pp. 3-15.

6. Cornu, R. L. and Peters, J., 'Towards Constructivist Classroom: The Role of The Reflective Teacher', Journal of Educational Enquiry, 6 (1), 2005, p. 50.
7. Elliott, S.N., Kratochwill, T.R., Littlefield Cook, J. & Travers, J., 'Educational Psychology: Effective Teaching, Effective Learning' (3rd ed.), McGraw-Hill College, Boston, MA., 2000, p. 256.
8. Von Glaserfeld, E. A op.cit., pp. 3-15
9. Davis, R., Maher, C., & Noddings, N., 'Introduction: Constructivist Views on The Teaching and Learning of Mathematics', In R. Davis, C. Maher, & N. Noddings (Eds.) Constructivist Views on The Teaching and Learning of Mathematics, 1990, pp. 7-18, National Council of Teachers of Mathematics, Reston, Va.
10. Brooks, J., & Brooks, M., 'The Case for The Constructivist Classrooms ASCD', Alexandria Va, 1993, p. 7.
11. Naylor, S. & Keogh, B., 'Constructivism in Classroom: Theory Into Practice', Journal of Science Teacher Education, 10, 1999, pp. 93-106.
12. Dewey, J., 'John Dewey on Education' (Selected Writings). London: Macmillan Publishers, 1961.
13. Dewey, J. 'Experience and Education', Collier Books, New York, 1938
14. Montessori, M., 'The Montessori Method'. (A. E. George, Trans), Stokes, New York, 1912.
15. Piaget, J., 'To Understand is to Invent', Grossman, New York, 1953.
16. Vygotsky, L. S., & Cole, M., 'Mind in Society: Development of Higher Psychological Processes'. Harvard University Press, 1978, p. 57.
17. NEP, 'National Education Policy 2020', Ministry of Human Resource Development, 2020, p. 3.
18. Ibid, p.12.
19. Ibid, p.14
20. Lowenthal, P., & Muth, R., Constructivism. In E.F. Provenzo, Jr.(Ed), Encyclopedia of the Social and Cultural Foundations of Education, Sage. Available, Thosand Oaks, CA, 2008. Retrived from 20/10/2012.on http://www.patricklowenthal. com/constructivismreprint.
21. NEP, op.cit., p. 17.
22. NCF, National Curriculum Framework, NCERT, 2005, p. 17.
23. NEP, op.cit., 17.
24. MHRD, Annual report Ministry of Human Resource Development, Government of India, (2014-15), 26. Retrived from http://mhrd.gov.in/ sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/Part1.pdf.
25. Annual Report, National Institute of Educational Planning and Administration, (2020), p. 78.
26. NEP, National Education Policy 2020, Ministry of Human Resource Development, 2020, p. 17.
27. Ibid, p. 3.
28. Ibid, p. 12.
29. Ibid, p. 14.
30. Lowenthal, P., & Muth, R., op.cit.,
31. NEP, op.cit., p. 17.
32. Oguz, A., 'The Effects of Constructivist Learning Activities on Trainee Teacher's Academic Achievement and Attitudes', World Applied Sciences Journal, 4 (6), 2008, p. 837.
33. Brooks, J., & Brooks, M., 'The Case for The Constructivist Classrooms ASCD', Alexandria Va, 1993.
34. Ibid
35. Alan, P., and Woollard, J., 'Psychology for The Classroom: Constructivism and Social Learning, Routledge', Tylor & Francis Group, London, 2010.
36. Knowles, M., 'The Modern Practice of Education: From Pedagogy of Andragogy', Engewood Cliffs NJ: Prentice Hall, 1980, p. 43.
37. Woolfolk, A., 'Educational Psychology', Pearson India education Servece, Noida, 2018, p. 430.
38. Gillies, R., 'The Behaviours, Interactions, and Perceptions of Joiner High School Students During Small Group Learning'. Journal of Educational Psychology, 2003, 96, pp.15-22.
39. Osberg, K.M., 'The Effect of Having Grade Seven Students Construct Virtual Environments on Their Comprehension of Science'. Paper Presented at the Annual Meeting of the American Educational Research, 1997.
40. Footnote http://www.bja.evaluationwebsite.org/html/glossary/p.html
41. Bronte-Tinkew, J., Horowitz, A., Redd, Z., Moore, K., & Valladares, S., 'A Glossary of Research Terms for Out-of-School Time Program Practitioners' (Research-to-Results Fact Sheet). Child Trends, Washington, DC, 2007.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

सरकारी क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं का कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़नः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ. प्रेम प्रकाश पाण्डेय

यौन–उत्पीड़न महिलाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त समानता और सम्मान के अधिकार का हनन करता है तथा उनके जीवन एवं आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। प्रतिशोध के डर, कलंकित होने एवं नौकरी से निकाले जाने आदि के भय से अधिकतर महिलायें ऐसी घटनाओं के विरूद्ध शिकायत दर्ज नहीं करवाती हैं। राजस्थान के भंवरी देवी के सामूहिक बलात्कार के मामले में दायर याचिका 'विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान सरकार, 1997' में कार्यस्थल को महिलाओं के लिए सुरक्षित बनाने हेतु उच्चतम न्यायालय द्वारा एक दिशा–निर्देश (विशाखा दिशानिर्देश) जारी किया गया। इस दिशा–निर्देश के आधार पर भारत सरकार द्वारा 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन–उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध व निवारण) अधिनियम, 2013' पारित किया गया और यह अपेक्षा की गई कि इस अधिनियम के लागू हो जाने के पश्चात कार्यस्थल पर महिलाओं के विरूद्ध होने वाले यौन–उत्पीड़न की घटनायें रूक जायेंगी अथवा समाप्त हो जायेंगी। इसी मान्यता को आधार बनाकर अध्ययनकर्त्ता द्वारा महिलाओं के विरूद्ध कार्यस्थल पर होने वाले यौन–उत्पीड़न के तथ्य का पता लगाने, उसका मात्रात्मक आधार पर समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने तथा अधिनियम की प्रभावशीलता के मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत अध्ययन क्रियान्वित किया गया है।

सूचक शब्द : यौन उत्पीड़न, लैंगिक भेदभाव

कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़न लैंगिक भेदभाव का एक गंभीर रूप है।[1] सभी व्यक्तियों को सम्मान के साथ और भयमुक्त होकर कार्यस्थल पर कार्य करने का अधिकार है। कार्यस्थल वह स्थान है जहाँ व्यक्ति अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए नियुक्त होता है और दिन अथवा रात का अपेक्षाकृत अधिक भाग व्यतीत करता है।[2] यदि कार्यस्थल पर कार्य करने की परिस्थितियाँ किसी कारण प्रतिकूल हैं अथवा पीड़ादायक हैं, तब व्यक्ति पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यौन–उत्पीड़न उन महत्वपूर्ण कारणों में से एक है जो किसी व्यक्ति के लिए कार्यस्थल की परिस्थितियों को प्रतिकूल और पीड़ादायक बनाती हैं। पीड़ित व्यक्ति में कुंठाग्रस्तता पनपती है जिससे उसकी शारीरिक तथा मानसिक कार्यक्षमता घटने लगती है, कार्य–सम्पादन के प्रति उत्साह में कमी होने लगती है और अन्ततः कार्य–सम्पादन की उसकी दक्षता प्रभावित होती है।[3] व्यक्ति की कार्यक्षमता और दक्षता में होने वाली कमी का प्रभाव मात्र एक व्यक्ति पर नहीं पड़ता है, बल्कि सम्बन्धित संस्थान की उपलब्धियों पर भी पड़ता है।[4]

यद्यपि यौन–उत्पीड़न की घटनायें महिलाओं और पुरूषों दोनों के विरूद्ध हो सकती हैं[5], परन्तु कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़न के अधिकतर मामले महिलाओं के ही विरूद्ध होते हैं।[6] कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़न का अर्थ साधारणतः पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिला सहकर्मियों के प्रति अनचाहे और अनुचित यौन व्यवहार से है। राजस्थान की सामाजिक कार्यकर्त्री भंवरी देवी के सामूहिक बलात्कार के मामले में एक महिला संगठन 'विशाखा' और चार अन्य ने भारत में कार्यस्थल को महिलाओं के लिए सुरक्षित बनाने हेतु उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की। यह मामला 'विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान सरकार, 1997' के नाम से जाना जाता है। इस याचिका पर निर्णय करते हुए भारत के उच्चतम न्यायालय ने 13 अगस्त, 1997 को अपने एक ऐतिहासिक फैसले में यौन–उत्पीड़न को रोकने के लिए एक दिशा–निर्देश जारी किया। यह दिशा–निर्देश 'विशाखा दिशानिर्देश' के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार यौन–उत्पीड़न से लैंगिक समानता और व्यावसायिक स्वतंत्रता के अधिकारों का हनन होता है। 'विशाखा दिशानिर्देश' के आधार पर ही भारत में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन–उत्पीड़न के मामलों की रोकथाम के लिए 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन–उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध व निवारण) अधिनियम, 2013' पारित किया गया है।[7]

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव किसान पी०जी० कालेज, बभनान, गोण्डा (उ.प्र.)

यौन-उत्पीड़न के कारण संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 के अन्तर्गत महिलाओं को नागरिक के रूप में प्राप्त समानता के अधिकार और गरिमापूर्वक कार्य करने के अधिकार का हनन होता है। संविधान की प्रस्तावना में यह उल्लेख है कि भारत के सभी नागरिकों को प्रस्थिति एवं अवसर की समानता प्रदान किया जाना चाहिए। इसी के अनुरूप संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा भारत के सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। वास्तव में, समानता का संवैधानिक सिद्धान्त संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 में निहित है। संविधान के ये अनुच्छेद कानून के दायरे में किसी व्यक्ति के वैयक्तिक अधिकार, जीवन जीने की स्वतंत्रता, वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा व्यक्ति के जीवन की सुरक्षा को सुनिश्चित करते हैं, जबकि अनुच्छेद 19(1)(जी) व्यक्ति को अपना पेशा, व्यवसाय या धन्धा चुनने का अधिकार देता है।[8] पुरूषों द्वारा महिला सहकर्मियों के प्रति किया जाने वाला यौन-व्यवहार उनके जीवन एवं आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। यौन-उत्पीड़न महिलाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त समानता और सम्मान के अधिकार का खुला उल्लघंन है और इससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का भी उल्लघंन होता है।[9]

साहित्य समीक्षा : अध्ययनों से यह पता चलता है कि अधिकांश कामकाजी महिलाओं को कार्यस्थल पर किसी न किसी रूप में अनुचित यौन-व्यवहार का सामना करना पड़ता है। आस्ट्रेलियाई मानवाधिकार आयोग के टेलीफोनिक सर्वेक्षण के अनुसार, पिछले 5 वर्षों में 25 प्रतिशत महिलाओं का कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न हुआ है। सर्वेक्षण के नतीजे बताते हैं कि कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का शिकार होने वाली अधिकतर महिलाओं की आयु 40 वर्ष से कम है।[10] यूरोपीय देशों में कार्यस्थल पर 40-50 प्रतिशत महिलायें यौन-उत्पीड़न का शिकार होती हैं, जिसमें मुख्य रूप से अनचाहा यौन-व्यवहार, शारीरिक स्पर्श आदि अवांछित व्यवहार सम्मिलित हैं।[11] यू0एन0 विमेन की एक रिपोर्ट के अनुसार, अमेरिका में 12-16 आयु वर्ग की 83 प्रतिशत लड़कियों का यौन-उत्पीड़न पब्लिक स्कूलों में होता है।[12] इसी तरह से जापान, मलेशिया, फिलीपीन्स, दक्षिण कोरिया में 30-40 प्रतिशत महिलायें कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का शिकार होती हैं।[13] स्पष्ट है कि कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन-उत्पीड़न एक वैश्विक परिघटना है। शुक्ला के अनुसार, कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न लैंगिक भेदभाव का एक महत्वपूर्ण रूप है।[14] सतपोदार ने रॉयटर्स सर्वे द्वारा किये गये सर्वेक्षण के आधार पर बताया कि यौन-उत्पीड़न के मामले में भारत शीर्ष स्तर पर था जिसमें 26 प्रतिशत महिलाओं ने यौन-उत्पीड़न की घटनाओं को स्वीकार किया था।[15] सहगल और डांग ने 'कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़नः महिला प्रबंधकों और संगठनों के अनुभव' शीर्षक के अन्तर्गत अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं का कहना है कि जब एक महिला प्रशिक्षु या फ्रेशर के रूप में नौकरी ज्वाइन करती है तो उसके साथ कार्य करने वाले पुरूष सहकर्मी अनुचित यौन-व्यवहार करने की कोशिश करते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अकेले रहने वाली लड़कियाँ और वे जो अपने घर से दूर छोटे कस्बों से नौकरी करने के लिए आती हैं, ऐसी घटनाओं का शिकार अधिक होती हैं।[16]

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अयोध्या जिले के सरकारी कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं के कार्यस्थल पर होने वाले यौन-उत्पीड़न के तथ्य का पता लगाना और उसका मात्रात्मक आधार पर समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना था। वस्तुतः एक पृथक अध्ययन क्षेत्र से संकलित आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर भारत में कार्यस्थलों पर महिलाओं के यौन-उत्पीड़न के तथ्य की व्यापकता और गम्भीरता की पुष्टि करना भी प्रस्तुत अध्ययन का एक निहित उद्देश्य था। 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन-उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013' को लागू हुए 8 वर्ष से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है। प्रस्तुत अध्ययन उस अधिनियम की प्रभावशीलता के मूल्यांकन का भी अवसर प्रदान करता है। प्रस्तुत अध्ययन इस धारणा पर आधारित था कि कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न को रोकने के लिए कानून बन जाने और उसके लागू हो जाने के बाद भी कार्यस्थल पर महिलाओं के विरूद्ध यौन-उत्पीड़न की घटनाओं का प्रचलन बना हुआ है।

अध्ययन क्षेत्र : अध्ययन का क्षेत्र अयोध्या जिला है और इसका समग्र अयोध्या जिले के विभिन्न सरकारी कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं से निर्मित है, परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए सरकारी क्षेत्र में कार्यरत केवल हिन्दू महिलाओं से ही आँकड़े एकत्र किये गये हैं। समय और धन की सीमा के कारण अयोध्या जिले के सरकारी कार्यालयों में कार्यरत सभी हिन्दू महिलाओं का विस्तृत

प्रातिनिधिक प्रतिदर्श चयनित कर पाना अध्ययनकर्त्ता के लिए सम्भव नहीं था। अतएव, समुचित आकार का प्रतिदर्श गठित करने के लिए समग्र में से 100 उत्तरदात्रियों से आँकड़े एकत्र करने का निश्चय किया गया जिससे कि प्रतिदर्श का आकार न तो बहुत छोटा हो और न ही बहुत बड़ा। इन सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए अयोध्या जिले के विभिन्न सरकारी कार्यालयों में कार्यरत हिन्दू महिला कर्मचारियों में से 100 उत्तरदात्रियों से आँकड़ों का संकलन आकस्मिक निदर्शन की प्रणाली पर आधारित होकर किया गया। प्रतिदर्श में उन्हीं महिलाओं को सम्मिलित किया गया जो इस विषय पर प्रश्नावली के माध्यम से अपना अनुभव व्यक्त करने के लिए तैयार हुईं।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक है। अतः निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पूर्व में किये गये अध्ययनों के आधार पर विकल्पयुक्त प्रश्नों का उपयोग करते हुए उत्तरदात्रियों से प्राथमिक आँकड़ों का संकलन किया गया है। चूँकि अध्ययन में मात्र शिक्षित उत्तरदात्रियों को सम्मिलित किया गया है, अतः आँकड़ों के संकलन हेतु प्रश्नावली प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण : यौन-उत्पीड़न लैंगिक भेदभाव का ही एक रूप है। कानून को अपराध के रोकथाम का एक महत्वपूर्ण उपकरण माना जाता है। अतः अपेक्षा की जाती है कि यौन-उत्पीड़न के विरूद्ध एक सशक्त कानून बन जाने से कार्यस्थल पर महिला यौन-उत्पीड़न के मामलों को समाप्त किया जा सकता है अथवा उसमें कमी लाई जा सकती है। इस तथ्य के मापन के लिए अध्ययन क्षेत्र से संकलित आँकड़ों को उत्तरदात्रियों की शैक्षिक योग्यता तथा उनकी जातीय पृष्ठभूमि के आधार पर प्रस्तुत एवं विश्लेषित किया गया है। तुलना करने की दृष्टि से उत्तरदात्रियों को उच्च शिक्षित तथा कम शिक्षित में विभाजित कर आँकड़ों को विश्लेषित किया गया है। उच्च शिक्षित के अन्तर्गत उन महिलाओं को सम्मिलित किया गया है जिन्होंने स्नातक एवं स्नातक स्तर से ऊपर तक की शिक्षा प्राप्त की है, जबकि कम शिक्षित के अन्तर्गत वे महिलायें सम्मिलित हैं जो इण्टरमीडिएट एवं उससे कम स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की हैं।

तालिका 1

कार्यस्थल पर महिलाओं के पहनावे को लेकर टीका-टिप्पणी करना तथा मजाक बनाना

	शैक्षिक योग्यता					**योग**
	आठवीं	**हाईस्कूल**	**इण्टरमीडिएट**	**स्नातक**	**स्नातक से ऊपर**	
हाँ	09 (75.00)	13 (68.42)	22 (70.97)	19 (76.00)	08 (61.54)	71 (71)
नहीं	03 (25.00)	06 (31.58)	09 (29.03)	06 (24.00)	05 (38.46)	29 (29)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)
	जाति					**योग**
	उच्चतर जाति	**पिछड़ी जाति**		**अनुसूचित जाति एवं जनजाति**		
हाँ	23 (67.65)	35 (74.47)		13 (68.42)		71 (71)
नहीं	11 (32.35)	12 (25.53)		06 (31.58)		29 (29)
कुल योग	34 (100)	47 (100)		19 (100)		100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 1 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 71 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि कार्यस्थल पर महिलाओं के पहनावे को लेकर टीका-टिप्पणी की जाती है तथा उनका मजाक बनाया जाता है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि कार्यस्थल पर महिलाओं के पहनावे को लेकर की जाने वाली टीका-टिप्पणी तथा मजाक बनाये जाने के तथ्य का सामना कम शिक्षित महिलाओं (61.97 प्रतिशत) को उच्च शिक्षित महिलाओं (38.03 प्रतिशत) की तुलना में अधिक करना पड़ता है। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 67.65 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 74.47 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 68.42 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को कार्यस्थल पर महिलाओं के पहनावे को लेकर टीका-टिप्पणी तथा मजाक का सामना करना पड़ता है। स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना सभी जाति की महिलाओं को लगभग समान रूप से करना पड़ता है।

तालिका 2

कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को घूरा जाना

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	08 (66.67)	13 (68.42)	21 (67.74)	16 (64.00)	09 (69.23)	67 (67)
नहीं	04 (33.33)	06 (31.58)	10 (32.26)	09 (36.00)	04 (30.77)	33 (33)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	22 (64.71)	32 (68.09)	13 (68.42)	67 (67)
नहीं	12 (35.29)	15 (31.91)	06 (31.58)	33 (33)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 2 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 67 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को घूरा जाता है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना उच्च शिक्षित महिलाओं (37.31 प्रतिशत) को कम शिक्षित महिलाओं (62.69 प्रतिशत) की अपेक्षा कम करना पड़ता है। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 64.71 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 68.09 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 68.42 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा घूरे जाने सम्बन्धी तथ्य को स्वीकार किया है। स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना सभी जाति की महिलाओं को लगभग समान रूप से करना पड़ता है।

तालिका 3

कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को बाहर खाने-पीने के लिए निमंत्रित किया जाना

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	09 (75.00)	15 (78.95)	25 (80.65)	20 (80.00)	10 (76.92)	79 (79)
नहीं	03 (25.00)	04 (21.05)	06 (19.35)	05 (20.00)	03 (23.08)	21 (21)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	26 (76.47)	38 (80.85)	15 (78.95)	79 (79)
नहीं	08 (23.53)	09 (19.15)	04 (21.05)	21 (21)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 3 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 79 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को बाहर खाने-पीने के लिए निमंत्रित किया जाता है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना कम शिक्षित महिलाओं (62.02 प्रतिशत) को उच्च शिक्षित महिलाओं (37.98 प्रतिशत) की तुलना में अधिक करना पड़ता है। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 76.47 प्रतिशत ने, पिछड़ी जाति की 80.85 प्रतिशत ने तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 78.95 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को बाहर खाने-पीने के लिए निमंत्रित किये जाने की बात स्वीकार की है। स्पष्ट है कि सभी जाति की महिलाओं को लगभग समान रूप से इस तथ्य का सामना करना पड़ता है।

तालिका 4
कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं के निजी जीवन के बारे में जानने के प्रयास

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	07 (58.33)	11 (57.89)	20 (64.52)	17 (68.00)	08 (61.54)	63 (63)
नहीं	05 (41.67)	08 (42.11)	11 (35.48)	08 (32.00)	05 (38.64)	37 (37)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	20 (58.82)	29 (61.70)	12 (63.16)	63 (63)
नहीं	14 (41.18)	18 (38.30)	07 (36.84)	37 (37)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 4 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 63 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा उनके निजी जीवन के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना कम शिक्षा प्राप्त महिलाओं (60.32 प्रतिशत) को उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं (39.68 प्रतिशत) के सापेक्ष अधिक करना पड़ता है। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 58.82 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 61.70 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 63.16 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया है कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा उनके निजी जीवन के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है। स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना सभी जाति की उत्तरदात्रियाँ लगभग समान रूप से करती हैं।

तालिका 5
कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं से गन्दी एवं द्विअर्थी बातें किये जाना

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	11 (91.67)	14 (73.68)	22 (70.97)	17 (68.00)	08 (61.54)	72 (72)
नहीं	01 (08.33)	05 (26.32)	09 (29.03)	08 (32.00)	05 (38.46)	28 (28)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	23 (67.65)	35 (74.47)	14 (73.68)	72 (72)
नहीं	11 (32.35)	12 (25.53)	05 (26.32)	28 (28)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 5 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 72 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं से गन्दी एवं द्विअर्थी बात की जाती हैं। आँकड़ों से स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना कम शिक्षा प्राप्त महिलायें (65.27 प्रतिशत) उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं (34.73 प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक करती हैं। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 67.65 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 74.47 प्रतिशत ने तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 73.68 प्रतिशत ने यह स्वीकार किया है कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं से गन्दी एवं द्विअर्थी बातें की जाती हैं। स्पष्ट है कि सभी जाति की उत्तरदात्रियों को लगभग समान रूप से इस तथ्य का सामना करना पड़ता है।

तालिका 6
पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को अश्लील मैसेज भेजा जाना

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	06 (50.00)	08 (42.11)	12 (38.71)	11 (44.00)	05 (38.46)	42 (42)
नहीं	06 (50.00)	11 (57.89)	19 (61.29)	14 (56.00)	08 (61.54)	58 (58)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	14 (41.18)	20 (42.55)	08 (42.11)	42 (42)
नहीं	20 (58.82)	27 (57.45)	11 (57.89)	58 (58)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 6 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 42 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को अश्लील मैसेज भेजा जाता है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि कम शिक्षा प्राप्त महिलायें (61.90 प्रतिशत) इस तथ्य का सामना उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं (38.10 प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक करती हैं। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 41.18 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 42.55 प्रतिशत ने तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 42.11 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया है कि पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं को अश्लील मैसेज भेजा जाता है। स्पष्ट है कि इस तथ्य का सामना सभी जाति की महिलायें लगभग समान रूप से करती हैं।

तालिका 7
कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं से दुर्व्यवहार एवं छेड़छाड़ किया जाना

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	07 (58.33)	07 (36.84)	09 (29.03)	05 (25.00)	03 (23.08)	31 (31)
नहीं	05 (41.67)	12 (63.16)	22 (70.97)	20 (70.00)	10 (76.92)	69 (69)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	10 (29.41)	14 (29.79)	07 (36.84)	31 (31)
नहीं	24 (70.59)	33 (70.21)	12 (63.16)	69 (69)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 7 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 31 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ यह मानती हैं कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं से दुर्व्यवहार एवं छेड़छाड़ की जाती है। सहगल एवं डांग (2017) के अध्ययन में भी 42 प्रतिशत महिलाओं ने यह माना है कि कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न की घटनाओं को उन्होंने सुना है, जबकि 15 प्रतिशत महिलाओं का कहना था कि वे कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का शिकार रही हैं।[17] वर्ष 2000 में लाल बहादुर शास्त्री इंस्टीट्यूट के अध्ययन में 21.4 प्रतिशत महिला लोक सेवकों ने यह स्वीकार किया कि सरकारी क्षेत्र में यौन-उत्पीड़न की घटनायें बढ़ रही हैं।[18] युगान्तर एजूकेशन सोसाइटी (2003) द्वारा महाराष्ट्र राज्य में कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के सम्बन्ध में किये गये अध्ययन के अनुसार, 37.33 प्रतिशत महिलायें कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का शिकार होती हैं।[19]

शैक्षिक योग्यता के आँकड़ों से स्पष्ट है कि इस तथ्य का

सामना कम शिक्षा प्राप्त महिलायें (74.19 प्रतिशत) उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं (25.81 प्रतिशत) के सापेक्ष अधिक करती हैं। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 29.41 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 29.79 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 36.84 प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने यह स्वीकार किया है कि कार्यस्थल पर पुरूष सहकर्मियों द्वारा महिलाओं से दुर्व्यवहार एवं छेड़छाड़ की जाती है। स्पष्ट है कि सभी जाति की महिलाओं को लगभग समान रूप से इस समस्या का सामना करना पड़ता है।

तालिका 8

महिलाओं को 'यौन-उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013' की जानकारी

	शैक्षिक योग्यता					योग
	आठवीं	हाईस्कूल	इण्टरमीडिएट	स्नातक	स्नातक से ऊपर	
हाँ	00 (00.00)	00 (00.00)	01 (03.23)	04 (16.00)	06 (46.15)	11 (11)
नहीं	12 (100)	19 (100)	30 (96.77)	21 (84.00)	07 (53.85)	89 (89)
कुल योग	12 (100)	19 (100)	31 (100)	25 (100)	13 (100)	100 (100)

	जाति			योग
	उच्चतर जाति	पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति एवं जनजाति	
हाँ	05 (14.71)	05 (10.64)	01 (05.26)	11 (11)
नहीं	29 (85.29)	42 (89.36)	18 (94.74)	89 (89)
कुल योग	34 (100)	47 (100)	19 (100)	100 (100)

(कोष्ठक में प्रदर्शित आँकड़े प्रतिशत को व्यक्त करते हैं)

तालिका 8 के अनुसार, प्रतिदर्श में सम्मिलित 89 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन-उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013' की जानकारी नहीं है। युगान्तर एजूकेशन सोसाइटी द्वारा किये गये अध्ययन में सम्मिलित 600 उत्तरदात्रियों में से 499 (83.16 प्रतिशत) ने यह स्वीकार किया कि उन्हें कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के मामलें में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिये गये दिशानिर्देशों की जानकारी नहीं है।[20]

शैक्षिक योग्यता के आँकड़ों से स्पष्ट है कि कम शिक्षित महिलाओं (68.54 प्रतिशत) को उच्च शिक्षित महिलाओं (31.46 प्रतिशत) की तुलना में इस अधिनियम की जानकारी कम है। प्रतिदर्श में सम्मिलित उच्चतर जाति की 85.29 प्रतिशत, पिछड़ी जाति की 89.36 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति की 94.74 प्रतिशत उत्तरदात्रियों को 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन-उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013' की जानकारी नहीं है। स्पष्ट है कि सभी जाति की बड़ी संख्या में महिलाओं को इस अधिनियम की जानकारी नहीं है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन के आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन-उत्पीड़न को रोकने के लिए कानून बन जाने और उसके लागू हो जाने के बाद भी कार्यस्थल पर महिलाओं के विरूद्ध यौन-उत्पीड़न की घटनाओं का प्रचलन बना हुआ है। तथ्यों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का सामना उच्च शिक्षित महिलाओं के सापेक्ष कम शिक्षित महिलाओं को अधिक करना पड़ता है, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि उच्च शिक्षित संवर्ग में 78.95 प्रतिशत महिलाओं को बाहर खाने-पीने के लिए प्रस्ताव दिये जाने, 71.05 प्रतिशत महिलाओं को उनके पहनावे को लेकर टीका-टिप्पणी तथा मजाक बनाये जाने, 65.79 प्रतिशत महिलाओं को घूरे जाने, उनके निजी जीवन के बारे में जानने का प्रयास किये जाने तथा गन्दी एवं द्विअर्थी बातों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त 42.11 प्रतिशत महिलाओं को अश्लील मैसेज भेजे जाने तथा 21.05 प्रतिशत महिलाओं को पुरूष सहकर्मियों के दुर्व्यवहार एवं छेड़छाड़ का सामना कार्यस्थल पर करना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि कि कम शिक्षित महिलाओं की तुलना में उच्च शिक्षित महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के विभिन्न रूपों का सामना कम करना पड़ता है, परन्तु बड़ी संख्या में उच्च शिक्षित संवर्ग की महिलाओं को भी कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, इसलिए इस समस्या के नियंत्रण में शिक्षा की प्रभावशीलता सीमित दिखलाई पड़ती है। वहीं जातीय पृष्ठभूमि के

आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के विभिन्न रूपों का सामना सभी जाति की महिलायें लगभग समान रूप से करती हैं। यद्यपि कि यह धारणा प्रचलित है कि उच्च शिक्षा प्राप्त तथा उच्च जाति की महिलायें अन्य महिलाओं की अपेक्षा अधिक सशक्त होती हैं, परन्तु अध्ययन से निष्कर्षतः यह प्राप्त होता है कि उच्च शिक्षित तथा उच्च जाति की महिलायें भी कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न का सामना कर रही हैं।

सन्दर्भ

1. Sexual Harassment of Women: Climate, Culture, and Consequences in Academic Sciences, Engineering, and Medicine. Washington, DC: The National Academies Press. 2018, pp.13-14
2. Preventing and responding to sexual harassment at work : Guide to the Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013, India/International Labour Organization, ILO Decent Work Team for South Asia and Country Office for India. - New Delhi, ILO, 2014 ISBN: 9789228282351; 9789228282368 (web pdf), p.9
3. हैस्पल्स एन, कासिम जेड एम, थॉमस सी और मक्केन डी, 'एक्शन अगेन्सट सेक्सुअल हैरस्मेंट एट वर्क इन एशिया एंड पैसिफिक', आई0एल0ओ0, बैंकाक, 2001, पृ.9
4. Kalof, L., Kimberly L. E., Jennifer, L. M. and Rob, J. K., 'The influence of race and gender on student self-reports of sexual harassment by college professors'. Gender and Society, Vol. 15, 2001, pp. 282–302.
5. Preventing and responding to sexual harassment at work, op.cit., p.8
6. Handbook on Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013 for Employers / Institutions / Organisations/ Internal Complaints Committee / Local Complaints Committee, Government of India, Ministry of Women and Child Development, November 2015, pp.4-5
7. ibid, pp. 1-3
8. ibid, p.1
9. Handbook on Sexual Harassment of Women at Workplace Act, 2013 op.cit., p.2
10. आस्ट्रेलियाई मानवाधिकार आयोग, 'वर्किंग विदाऊट फीयरः रिजल्ट ऑफ द सेक्सुअल हैरस्मेंट', नेशलन टेलीफोन सर्वे 2012, आस्ट्रेलियाई मानवाधिकार आयोग, सिडनी, 2012, पृ.1
11. यू0एन विमेन, फैक्ट्स एण्ड फिगर्स ऑन वायलेंस अगेन्सट विमेन, http://www.unifem.org/ gender_issues/ violence_against_women/facts_figures.html
12. ibid.
13. UNIFEM, द फैक्ट्सः वायलेंस अगेन्सट विमेन एण्ड मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स, http://www.unifem.org/ attachments/ products/EVAWkit_02_vawandMDGs_en.pdf
14. Shukla, Seema, 'Indecent Proposal,' Business Today, 1 September, 2002, p. 12
15. Sarpotdar, Anagha: 'Sexual Harassment of Women at Workplace in India' Journal of Business Management and Social Science Research, Vol 3, No 7. July 2014
16. Sahgal, P. and Dang, A., 'Sexual Harassment at Workplace Experiences of Women Managers and Organisations'. Economic & Political Weekly, Vol. 51(22), 2017, p. 49-57.
17. ibid, pp. 49-57
18. ibid, pp. 49-57
19. Yugantar Education Society, 'A Research Study on the Nature, Incidence, Extent and Impact of Sexual Harassment of Women at Workplace in the State of Maharashtra,' Nagpur, 2003, p. 38
20. ibid. pp. 62-63

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन का ऐतिहासिक विश्लेषणः स्वदेशी आंदोलन (1905–11) के सन्दर्भ में

❑ मानस कुमार दास

सूचक शब्दः विभाजन विरोधी आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, विभाजन और शासन नीति, स्वायत्तता, स्वराज, निष्क्रिय प्रतिरोध, क्रांतिकारी आतंकवाद

1905 में लार्ड कर्जन की बंगाली राष्ट्रवाद की उपेक्षा और विभाजन की योजना के विरोध में पूरे बंगाल में शुरू हुए विभाजन विरोधी आन्दोलन या स्वदेशी आन्दोलन ने देश की राजनीति को प्रभावित किया। अब तक के भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन का नेतृत्व मुख्य रूप से उदारवादी नेताओं ने किया था। 1885 से 1905 तक, आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य अनुनय- विनय से ब्रिटिश शासन से स्वायत्तता प्राप्त करना था, लेकिन भारत मे ब्रिटिश विरोधी आंन्दोलन स्वदेशी आंन्दोलन के साथ अलग दिशा में बहने लगा। यह पहली बार हुआ कि बंगाली राष्ट्र ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' की नीति का प्रयोग ब्रिटिश विरोध के उपकरण के रूप मे किया। इसके साथ ही क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों द्वारा सक्रिय ब्रिटिश विरोध को देखा जा सकता है। इस आंन्दोलन की प्रतिक्रिया को बंगाल के अलावा भारत के विभिन्न हिस्सों में देखा जा सकता है। कुछ ही दिनों में इस आंन्दोलन ने अखिल भारतीय रूप ले लिया।[1] स्वदेशी आंन्दोलन के जवाब में राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर 'चरमपन्थी' विचारधारा का उदय हुआ। इसके परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय आंन्दोलन की प्रकृति पूरी तरह से बदल गई। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य इस बात पर प्रकाश डालना है कि किस प्रकार इस स्वदेशी आंन्दोलन की घटनाओं के कारण भारत में ब्रिटिश विरोधी राष्ट्रवादी आंन्दोलन मे एक नई राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ।

1905 का स्वदेशी आंदोलन बंगाल और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक युगांतकारी घटना है। 1905 में लॉर्ड कर्जन की योजना और बंगाल विभाजन की नीति के खिलाफ पूरे बंगाल में जो ब्रिटिश विरोधी आंदोलन हुआ, उसे विभाजन विरोधी आंदोलन या स्वदेशी आंदोलन के रूप में जाना जाता है। विभाजन की योजना के मुख्य रुपकार लॉर्ड कर्जन, उनके सहयोगी गृह सचिव हर्बर्ट रिजले और बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एंड्रयू फ्रेजर थे। बंगाल के विभाजन की योजना की आधिकारिक रूप से 19 जुलाई 1905 को घोषणा हुई थी और 16 अक्टूबर को लॉर्ड कर्जन के आदेश से पूरे बंगाल प्रेसीडेंसी को दो भागों में विभाजित किया गया था।[2] एक हिस्से की राजधानी ढाका को बनाया गया। दूसरे हिस्से पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा को लेकर 'बंगाल प्रांत' का गठन किया गया था जिसकी राजधानी कलकत्ता थी। बंगाल के इस विभाजन के लागू होने के विरोध में पूरे बंगाल और भारत में एक मजबूत जन आंदोलन शुरु किया गया था। यह आंदोलन बंगाली राष्ट्र का पहला पूर्ण राष्ट्रवादी आंदोलन था जिसका उद्देश्य आत्म-जागरूकता, स्वतंत्रता स्थापित करने के लिए दृढ़ संकल्पित होना था।[3]

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार बंगाल के विभाजन का कारण मुख्यतः प्रशासनिक था। यह तर्क दिया गया था कि बंगाल-बिहार-उड़ीसा से मिलकर बने इस विशाल 'बांग्ला प्रेसीडेंसी' पर शासन ठीक से एक केन्द्र से करना संभव नहीं। अतः प्रशासनिक सुविधा के लिए राज्य के आकार को कम करने की जरूरत है। लेकिन सुमित सरकार और अमलेश त्रिपाठी जैसे इतिहासकारों ने बंगाल के विभाजन के पीछे साम्राज्यवादी उद्देश्य को स्पष्ट रूप से दिखाया है। **भारत** सरकार के गृह सचिव रिज़ले ने 6 दिसंबर 1904 को कहा, "Bengal united, is Power, Bengal divided, will pull several different ways'[4] यानि 'संयुक्त बंगाल एक ताकत है, लेकिन अगर इसे तोड़ा गया तो वह बल अलग-अलग क्षेत्रों में बहेगा और कमजोर हो जाएगा'। इस प्रकार लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की योजना प्रशासनिक सुविधा के लिए नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के केन्द्र बंगाल को विभाजित करके राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए और दो बंगालों में बंगाली हिंदुओं के महत्व को कम करने और नवगठित राज्य में धार्मिक विभाजन हिंदू-मुस्लिम में मतभेद बनाने के लिए बनाई। इस अवधि में अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई 'फूट डालो और राज करो की नीति' (Divide and rule

❑ सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग, डोमकल कॉलेज, मुर्शिदाबाद (पश्चिम बंगाल)

policy) का एक उदाहरण 1902 में देखा गया जब बरार के मराठी मुख्य क्षेत्र को मध्य प्रदेश में मिला दिया गया था, न कि मराठी बसे हुए महाराष्ट्र में।[5] यदि विभाजन की योजना बनानी ही थी तो बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग किया जा सकता था। कांग्रेस के अध्यक्ष सर हेनरी कॉटन ने भी इसी तरह का प्रस्ताव रखा था। लेकिन न तो सर एंड्रयू फ्रेजर, रिजले और न ही लॉर्ड कर्जन ने अधिक ध्यान दिया। यह स्पष्ट है कि बंगाली राष्ट्रवाद को कमजोर करने के लिए, बंगाल में एक के बाद एक जिले के विभाजन की प्रक्रिया चल रही थी। बंगाल के विभाजन की योजना को आधिकारिक तौर पर 16 अक्टूबर, 1905 को अपनाया गया था।[6]

'चरमपंथी' (गरमदल) विचारधारा का उदयः बंगाल के विभाजन की घोषणा के विरोध में पूरे बंगाल में एक मजबूत आंदोलन शुरू किया गया था। यह आंदोलन 1905 के अंत से 12 दिसंबर 1911 को दिल्ली की अदालत में जॉर्ज पंचम द्वारा बंगाल के विभाजन के उन्मूलन की आधिकारिक घोषणा तक, चलता रहा था। प्रारंभिक दौर में इस आंदोलन का एकमात्र उद्देश्य बंगाल के विभाजन का विरोध करना और विभाजन को समाप्त करना था। उस समय इस आंदोलन को भारत के स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रकरण के रूप में स्वीकार करने का कोई तर्कसंगत कारण नहीं था। लेकिन जल्द ही इस आंदोलन में एक विशिष्टता आ गई जिसे पूरे भारत ने स्वीकार कर लिया। ऐसा इसलिए है क्योंकि 1885 से 1905 तक भारतीय उदारवादी नेताओं द्वारा चलाए गए ब्रिटिश विरोधी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य याचिका के माध्यम से ब्रिटिश शासन से स्वायत्तता का अधिकार प्राप्त करना था। स्वदेशी आंदोलन के दौर में राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर एक 'चरमपंथी' विचारधारा का उदय हुआ। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल, ब्रह्मबंधब उपाध्याय, अरविंद घोष और अन्य लोग इस चरमपंथी विचारधारा से जुड़े थे। चरमपंथियों ने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी- ब्रिटिश शासन से जुड़कर भारत के लिए उचित कल्याण प्राप्त करना असंभव था। इसलिए उन्होंने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की।[8] धीरे-धीरे नरमपंथी दलों के नेताओं को हटा दिया गया और भारतीय राजनीति में चरमपंथियों का प्रभाव बढ़ गया। इसके साथ ही भारतीय राजनीति में एक नए युग का प्रारंभ हुआ। हरिदास मुखर्जी ने कहा है कि लाला लाजपत राय ने 1905 में वाराणसी कांग्रेस में कहा था, ''Congratulated Bengal on heralding a new political era for the country- If other provinces followed the example of Bengal the day was not far distant when they would win''[9]

'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' का उपयोग : स्वदेशी आंदोलन के दौरान, भारतीय नेताओं ने अनुभव किया कि निहत्थे भारत के लिए स्वतंत्रता संग्राम अधिक दिन तक कार्यकारी नहीं हो सकता। हथियार आत्मनिर्भरता के साथ-साथ 'निष्क्रिय प्रतिरोध' आंदोलन के ठोस अनुप्रयोग के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति का प्रयास आंदोलन को एक नई दिशा में प्रवाहित करेगा। हालांकि, बिपिन चंद्र पाल का मानना था कि स्वदेशी युग में 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के बजाय 'निहत्थे प्रतिरोध' शब्द का प्रयोग अधिक स्वीकार्य है। उनके अनुसार, कई लेखक आज 'Passive Resistance' शब्द का प्रयोग 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के बंगाली पर्याय के रूप में करते हैं। लेकिन यह प्रयोग भ्रमित करने वाला है। 'Passive Resistance' का अर्थ है 'Not non active but non-aggressive' यानि 'गैर-सक्रिय नहीं बल्कि गैर-आक्रामक'- जिसका अर्थ यह है कि इसकी मूल प्रकृति गैर-आक्रामक है, लेकिन निष्क्रिय नहीं है। इसलिए 'निहत्थे प्रतिरोध' शब्द का प्रयोग करना उचित प्रतीत होता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, प्रतिरोध का यह निष्क्रिय रूप बंगाल में साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन में एक नए उपकरण के रूप में उभरा। यह निष्क्रिय प्रतिरोध मुख्यतः 1905 और 1906 ई. के बीच 'बहिष्कार' और 'स्वदेशी आंदोलन' के माध्यम से विकसित हुआ था। रमेश चंद्र मजूमदार के अनुसार, बहिष्कार का विचार पहले आया है, स्वदेशी भी इसके पूरक के रूप में लोकप्रिय हुए हैं और समय के साथ वे एक दूसरे के परिपूरक के रूप में सामने आए हैं। बंगाल के विभाजन की कर्जन की योजना के विरोध में 'बहिष्कार' और 'स्वदेशी' ब्रिटिश सरकार के खिलाफ एक आर्थिक और राजनीतिक धर्मयुद्ध था। 'बहिष्कार' का अर्थ था अंग्रेजों या उनके द्वारा बनाए गए कानून या संस्था के साथ असहयोग और विदेशी सामान, विदेशी शिक्षा, कार्यालय-अदालत, उपाधि आदि का बहिष्कार। 13 जुलाई 1905 को कृष्णकुमार मित्रा ने अपनी 'संजीवनी पत्रिका' में पहले ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का आह्वान किया।[10] सभी वर्गों के लोग बहिष्कार आंदोलन में सम्मिलित हुए। सरकारी कार्यालयों-अदालतों, सभी शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार

किया गया। इस समय भी निष्क्रिय प्रतिरोध की विचारधारा से प्रेरित कई कारखानों में हड़तालें देखी गईं। छात्रों को आंदोलन से दूर रखने के लिए सरकार द्वारा 'कार्लाइल सर्कुलर' जारी किया और आंदोलनकारी छात्रों के निष्कासन और दंड की घोषणा के बाद, छात्र समाज ने सचिंद्र प्रसाद बसु के नेतृत्व में एक 'एंटी सर्कुलर सोसाइटी' का गठन किया। दूसरी ओर, 'स्वदेशी' शब्द का अर्थ है स्वयं के स्वदेशी उत्पादों का उत्पादन और उपयोग। इसके साथ ही स्वदेशी सभ्यता, स्वदेशी संस्कृति, स्वदेशी साहित्य और स्वदेशी संगीत, स्वदेशी वस्तुएं आदि सभी स्वदेशी लोगों के अंग थे। सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक 'The Swadeshi Movement in Bengal' में इस अवधि को 'रचनात्मक स्वदेशी' या 'आत्म- सशक्तीकरण' के रूप में संदर्भित किया है। उन्होंने कहा कि- व्यर्थ और अपमानजनक भीख मांगने की राजनीति को रद्द करके तथा स्वदेशी उद्योगों की स्थापना करके आत्मनिर्भरता प्राप्त की गई। राष्ट्रीय शिक्षा, ग्राम विकास भी इसके उद्देश्य में सम्मिलित थे।[11] इसी को रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने निबंध 'स्वदेशी समाज' में 'आत्मशक्ति' कहा है। प्रफुल्ल चंद्र राय, नीलरतन सरकार और अन्य व्यावसायिक उपक्रम, रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित 'स्वदेशी भंडार', सरला देवी का 'लक्ष्मी भंडार', डॉन सोसाइटी का 'स्वदेशी बिपनी' आदि की स्थापना की गयी थी। वैज्ञानिक प्रफुल्ल चंद्र रॉय ने स्वदेशी पहल पर उद्योग स्थापित करने के उद्देश्य से 'बंगाल केमिकल एंड फार्मास्युटिकल वर्क्स' की स्थापना की थी। सतीश चंद्र मुखर्जी ने गुरुदास बंद्योपाध्याय, सत्येंद्रनाथ टैगोर, हीरेंद्रनाथ दत्त के सक्रिय सहयोग से अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त राष्ट्रीय शिक्षा की स्थापना के लिए 'डॉन सोसाइटी' की स्थापना की। दत्ता और अन्य विचारकों, 92 सदस्यों के साथ 11 मार्च 1906 को कलकत्ता में 'राष्ट्रीय शिक्षा परिषद' (National Council of Education) का गठन किया गया था।[12] 'बंगाल तकनीकी संस्थान' (Bengal Technical institute) का गठन किया गया था जो बाद में 'जादवपुर इंजीनियरिंग कॉलेज' बन गया; और अनेक राष्ट्रीय विद्यालयों का गठन किया गया। इस प्रकार, स्वदेशी आंदोलन के प्रारंभ से, पहले बंगाली राष्ट्र ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' की दोधारी तलवार का इस्तेमाल एक उपकरण के रूप में किया, जो कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में दुर्लभ है। **यह बहिष्कार** आंदोलन और इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग शुरू में बंगाल तक सीमित था; लेकिन जल्द ही शिक्षा, दीक्षा और संस्कृति के इन विभिन्न क्षेत्रों में विदेशियों के आकर्षण को त्यागकर भारत की अपनी सभ्यता को पुनर्जीवित करने का प्रयास स्वदेशी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य बन गया। यह धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य लक्ष्य बन गया। इस प्रकार जिस राजनीतिक व्यवस्था और उद्देश्य के साथ बंगाल में स्वदेशी आंदोलन शुरू किया गया था, वह पूरी तरह से बदल गया और एक राष्ट्रीय आंदोलन में विस्तारित हो गया। इस संदर्भ में रमेश चंद्र मजूमदार लिखते हैं, "हम 1905 में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय जागरण की पहली महत्वपूर्ण प्रवृत्ति देखते हैं जो 1947 में पूरी गति से प्रवाहित हो रही थी। इसलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह भारत के इतिहास में हमेशा के लिए स्वतंत्रता संग्राम और नए युग के अग्रदूत के रूप में पहचाना जाएगा।"[13]

क्रांतिकारी आंदोलन का सूत्रपातः 1905 के बंगाल विभाजन से, बंगाल के नेताओं ने अनुभव किया कि उनकी मांगों को ब्रिटिश सरकार द्वारा याचिकाओं के माध्यम से पूरा नहीं किया जा सकता था, जिसके लिए एक सशस्त्र तख्तापलट की आवश्यकता थी। इसी कारण इस काल में बंगाल में निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन के साथ-साथ क्रांतिकारी गतिविधियाँ चलती रहीं। स्वदेशी आंदोलन के इस चरण को 'क्रांतिकारी आतंकवाद' (Terrorism) कहा जाता है। रमेश चंद्र मजूमदार इसे 'Militant Nationalism' या सैन्यवादी राष्ट्रवाद' कहने के पक्षधर थे। बंगाल के विभाजन की प्रतिक्रिया में, बंगाल के विभिन्न हिस्सों में गुप्त क्रांतिकारी संगठनों की गतिविधियों में वृद्धि जारी रही। सतीश चंद्र बोस, चित्तरंजन दास, अरविंद घोष, ज्योतिंद्रनाथ मुखर्जी और अन्य ने 1906-07 तक बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्रांतिकारी हेमचंद्र कानूनगो ने कोलकाता के मानिकतला में बम बनाने का कारखाना बनाया। 'ढाका अनुशीलन समिति' की स्थापना पूर्वी बंगाल में सितंबर 1908 में पुलिन बिहारी दास के नेतृत्व में की गई थी। 'जुगांतर समिति' की स्थापना 1906 में बरिंद्रनाथ घोष और भूपेंद्रनाथ दत्त के नेतृत्व में हुई थी। जुगांतरदल के दो युवा क्रांतिकारियों खुदीराम बसु और प्रफुल्ल चाकी ने 30 अप्रैल 1906 को कलकत्ता प्रेसीडेंसी के एक मजिस्ट्रेट, तानाशाह किंग्सफोर्ड की हत्या की योजना रची। इस प्रकार, 1911 में बंगाल के विभाजन की वापसी

तक आतंकवाद की प्रवृत्ति छिटपुट रूप से जारी रही।[15] यहां तक कि बंगाली राष्ट्र का एक बड़ा वर्ग जो इतने लंबे समय से राजनीति से बाहर था, वो भी आंदोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गया। परिणामस्वरूप, स्वदेशी आंदोलन में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं एक साथ आयीं और यह साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण प्रकरण बन गयीं और ब्रिटिश विरोधी आंदोलन की तीव्रता कई गुना बढ़ गई।

अखिल भारतीय राजनीति का प्रारंभः 1905 में बंगाल की धरती पर भारतीय क्रांति की शुरुआत बंगाल के विभाजन के कारण हुई उथल-पुथल भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गई।[16] मद्रास प्रेसीडेंसी आदि में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन की प्रतिक्रिया संयुक्त राज्य के 23 जिलों, मध्य प्रदेश के 15 जिलों, बॉम्बे प्रेसीडेंसी के 24 जिलों, पंजाब के 20 जिलों और मद्रास प्रेसीडेंसी के 13 जिलों में देखी जा सकती है।[17] सतीश चंद्र बोस, चित्तरन्जन दास, अरविंद घोष, ज्योतिन्द्रनाथ मुखर्जी आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि, बिपिन चंद्र पाल बंगाली विद्वानों में सबसे उल्लेखनीय थे। बंगाल के बाहर, लाला लाजपत राय और बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में पंजाब और बॉम्बे प्रेसीडेंसी में आंदोलन सबसे व्यापक था।[18] इसके अलावा, यह आंदोलन किसी विशेष वर्ग या समुदाय तक ही सीमित नहीं था। राष्ट्रवाद की इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं देखी गई। इल्बर्ट बिल आन्दोलन या सुरेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय की कैद के विरोध में 1883 ईस्वी में पूरे देश में जो एकजुट आंदोलन देखा गया था, उससे भी यह आन्दोलन कहीं अधिक तीव्र और व्यापक था।

बंगाल में महिला समाज की सक्रिय भागीदारीः बंगाल का विभाजन और स्वदेशी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में पहला स्वतंत्र ब्रिटिश विरोधी आंदोलन था। ब्रिटिश विरोधी भावना का स्वर इतना व्यापक पहले कभी नहीं था। स्वदेशी आंदोलन में ही बंगाल की पहली महिला समाज कठिन सामाजिक बाधाओं को पार करके स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित हुईं। बेशक, 1921-22 के असहयोग आंदोलन, 1930-34 के सविनय अवज्ञा आंदोलन या 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में बड़ी संख्या में महिलाएं सम्मिलित हुईं थीं। लेकिन जातीय आंदोलन में गांधीजी के अवतरण के बाद के आंदोलनों के साथ इसकी तुलना करना अनुचित है। वास्तव में 19 जुलाई 1905 को विभाजन योजना की आधिकारिक घोषणा और 16 अक्टूबर को बंगाल के विभाजन के फैसले के विरोध में बंगाल की महिलाएं भी पुरुषों के सहयोगी के रूप में आंदोलन में सम्मिलित हुईं। स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी के बारे में भारती रॉय ने अपने निबंध 'स्वदेशी आंदोलन और बंगनारी जागरण' में दिखाया है, "स्वदेशी युग में, भारतीय लड़कियों में पहली राजनीतिक चेतना जागृत हुई थी। बाद के दौर में राजनीतिक आंदोलन में उन्होंने जो सक्रिय भूमिका निभाई, उसके पीछे स्वदेशी आंदोलन का काफी योगदान था।"

16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल विभाजन की पूर्व संध्या पर, लड़कियों ने हिंदू-मुस्लिम भाईचारे के बंधन के रूप में रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा आयोजित 'राखी बंधन' उत्सव में उत्साहपूर्वक भाग लिया। रामेंद्रसुंदरा त्रिवेदी के आह्वान पर, बंगाली महिला समाज के एक बड़े वर्ग ने 'अरंधन उपवास दिवस' मनाया। बंगाल की माताओं और बहनों ने उस शाम रामेंद्रसुंदर त्रिवेदी द्वारा लिखित बंगलक्ष्मी का व्रत लिया। इसके अलावा, लड़कियों ने दो बंगालों की एकता के प्रतीक के रूप में बंगाल विभाजन की दोपहर को कोलकाता में अपर सर्कुलर रोड पर 'मिलन मंदिर' की आधारशिला रखने में भी भाग लिया।

विभाजन विरोधी आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं में उल्लेखनीय थीं सरला देवी चौधुरानी, कुमुदिनी बसु, सुबाला आचार्य, हेमांगिनी दास, निर्मला सरकार, लीलावती मित्रा और प्रमुख। इसके अलावा, मुर्शिदाबाद की गिरिजा सुंदरी, बीरभूम की दूकरीबाला देवी, बरिसाल की सरोजिनी देवी और मनोरमा बसु, खुलना की लावण्या प्रभा दत्ता, ढाका की ब्रह्ममयी सेन, फरीदपुर की सौदामिनी देवी और अन्य ने विभाजन विरोधी आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। क्रांतिकारियों को आश्रय देने और उनकी देखभाल करने, समाचार और हथियारों की आपूर्ति आदि के माध्यम से, बंगाल की महिलाओं ने स्वदेशी आंदोलन में बड़ी गतिविधियों से स्वयं को जोड़ा। महिलाएं स्वतः ही बहिष्कार आंदोलन में सम्मिलित हो गई, जो स्वदेशी आंदोलन का एक हिस्सा था। महिलाओं ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार और जलाना, चूड़ियों सहित रसोई में ब्रिटिश नमक, मसाले और विदेशी दवाओं के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने, विदेशी स्कूलों को छोड़ने और शराब की दुकानों पर धरना देने जैसे कार्यक्रमों में भी भाग लिया। कोलकाता में एक महिला सभा में नटोर की रानी ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान

किया। जलपाईगुड़ी में अंबुजा सुंदरी दासगुप्ता, मयमनसिंह में पुष्पलता गुप्ता, काशी में सुशीला बसु और कोलकाता में हेमांगिनी दास ने विदेशी उत्पादों का बहिष्कार करने का आह्वान किया।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के साथ ही महिलाओं से घरेलू उत्पाद बनाने और उपयोग करने का आग्रह किया गया। स्वदेशी उत्पादों के उपयोग को बढ़ाने के लिए, स्वर्णकुमारी देवी ने 'सखी समिति' की स्थापना की और रवींद्रनाथ की भतीजी सरलादेवी चौधुरानी ने 'लक्ष्मी भंडार' की स्थापना की। विभाजन विरोधी स्वदेशी आंदोलन के दौरान चरण कवि मुकुंद दास ने बंगाल की महिला समाज के लिए गाया, 'रेशम की चूड़ियाँ छोड़ो, बंगनारी, कभी और मत पहनो'। महिलाएं स्वदेशी उत्पादों का व्यापक उपयोग करने के साथ-साथ स्वदेशी धन के लिए धन और यहां तक कि सोने के गहने भी दान करती हैं। अबला बसु की उद्‌योग से बनी 'मैरी कारपेंटरहॉल' में लगभग एक हजार महिलाओं ने बंगाल विभाजन के विरूद्ध निष्ठा की शपथ ली।

बंगाल की महिला समाज ने भी विभिन्न पत्रों और पत्रिकाओं के प्रकाशन के माध्यम से बंगाल के विभाजन के खिलाफ प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए, सरलादेवी चौधुरानी द्वारा संपादित 'भारती' पत्रिका, स्वदेशी आंदोलन के पुजारियों में से एक कृष्ण कुमार मित्रा की बेटी कुमुदिनी मित्रा द्वारा संपादित 'सुप्रभात' पत्रिका, मीरा दासगुप्ता द्वारा संपादित 'रेणु' पत्रिका और सरजूबाला द्वारा संपादित 'भारत महिला' पत्रिका बंगालियों के बीच देशभक्ति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वदेशी आंदोलन के दौरान मुस्लिम महिला खैरुननेसा ने 1905 में अखबार 'नबनूर' में 'स्वदेशानुराग' नामक एक कविता लिखी, जिससे बंगाली महिलाओं में राष्ट्रवाद की भावना पैदा हुई।

संस्कृति की विभिन्न शैलियों का विकासः बंगाल का विभाजन और स्वदेशी आंदोलन राजनीति की संकीर्ण सीमाओं तक ही सीमित नहीं थे। बंगाल ने संस्कृति की विभिन्न शैलियों के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में, स्वदेशी आंदोलन ने बंगाली संगीत, साहित्य, विज्ञान और चित्रकला के सभी पहलुओं को प्रभावित किया। सुमित सरकार ने सही लक्षित किया है कि हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के किसी भी दौर में सांस्कृतिक क्षेत्र में इतनी उपलब्धियां नहीं रही जितनी स्वदेशी आंदोलन के दौर की रहीं। इस दौरान असंख्य कविताओं और गीतों के माध्यम से देश प्रेम का संदेश फैलाया गया। रवींद्रनाथ के अलावा, अतुल प्रसाद सेन, रजनीकांत सेन, द्विजेंद्रलाल रॉय और कवि मुकुंद दास के लेखन भी उल्लेखनीय हैं। कवि इस्माइल हुसैन के काव्य प्रवाह में हिंदू और मुस्लिम दोनों राष्ट्रों को भारतमाता की संतान माना जाता है। स्वदेशी या इसकी विचारधारा ग्रामीण बंगाल के लोक गीतों और बाउल गीतों में भी परिलक्षित होती थी। रवींद्रनाथ के 'घरेबाईरे' और इस घटना के संदर्भ में 'गोरा' लिखा गया था। इस दौरान कई लेख प्रकाशित हुए। इसमें रवींद्रनाथ ने अहम भूमिका निभाई। उनमें 'आत्मशक्ति', 'भारतवर्ष', 'स्वदेशी समाज', 'शिक्षा, विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। प्रमथ चौधरी ने 'भारत' पत्रिका में बहिष्कार और राष्ट्रवाद पर कई लेख लिखे। इसके अलावा, द्विजेंद्रनाथ टैगोर, सखाराम गणेश देउस्कर, देवी प्रसन्ना रॉय चौधरी और अन्य के लेखन में बंगाल विभाजन आंदोलन की स्पष्ट छाप थी। बंगाली साहित्य और संस्कृति के अध्ययन के लिए एक केंद्र के रूप में 1894 में गठित बंगीय साहित्य परिषद, बंगाल के विभाजन के दौरान तत्कालीन संपादक रामेंद्र सुंदर त्रिवेदी के नेतृत्व में साहित्य के अध्ययन का मुख्य केंद्र बन गया। 1907 में रवींद्रनाथ की अध्यक्षता में बंगाल साहित्य सम्मेलन के पहले वार्षिक कार्यक्रम ने बंगालियों को प्रेरित किया।

देशभक्ति की विचारधारा ने बंगालियों को विज्ञान की खोज पर ध्यान केंद्रित करने के लिए मजबूर कियाथा। उस समय दो प्रमुख वैज्ञानिकों - आचार्य जगदीश चंद्र बोस और प्रफुल्ल चंद्र रॉय ने बंगालियों को गौरवान्वित किया। जगदीश चंद्र अपने 'प्लांट रिस्पांस थ्योरी' के लिए ऊंचे स्थान पर बैठे थे। यह 1906 ई. की देशभक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। विज्ञान के अभ्यास की उनकी विचारधारा राष्ट्रवाद के अनुरूप हो गई। प्रफुल्ल चंद्र का लेखन उनकी देशभक्ति और शोध का सबसे अच्छा उदाहरण रहा है। इन दो वैज्ञानिकों के बाद प्रेसीडेंसी कॉलेज के केंद्र में कई और युवा वैज्ञानिक आए - उनमें से उल्लेखनीय हैं लाल दत्त, नीलरतन धर, ज्ञानेंद्र चंद्र घोष, मेघनाद साहा और सत्येंद्रनाथ बोस।

बंगाल विभाजन के अवसर पर बंगाल में प्रकाशित सभी समाचार पत्रों और समकालीन पत्रों ने बंगाली पत्रकारिता के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू किया। इस समय, जैसा कि बंगाली अखबारों की भाषा में देखा जाता है, एक तरफ मातृभूमि के विचार में राजनीतिक विश्लेषण और दूसरी तरफ आजादी की धुन, मांगों को पूरा करने के लिए एक मजबूत कदम। इसी प्रकार स्वदेश व्रत के महान

संकल्प में पत्रिकाओं ने भी संयुक्त रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लेख लिखे। कृष्ण कुमार मित्रा ने अपनी 'संजीवनी' पत्रिका में पहला बहिष्कार आंदोलन प्रस्तावित किया था। उन्होंने बंगाल के विभाजन के विरोध में लिखा कि जब तक बंगाल एकजुट नहीं होगा, बंगाली ब्रिटिश सामान नहीं खरीदेंगे और सभी ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार करेंगे। कृष्णकुमार अंग्रेजों को चोट पहुँचाना चाहते थे ताकि यदि उनका व्यापार तनावपूर्ण हो, तो अंग्रेज अपने अस्तित्व के आग्रह पर बंगाल की समस्याओं को देखें। इसके अलावा, रामानंद चट्टोपाध्याय की 'प्रबासी', ब्रह्मबंधब उपाध्याय की 'संध्या', भूपेंद्रनाथ दत्त की 'जुगंतर', अरविंद घोष की 'बंदेमातरम', कृष्णकमल भट्टाचार्य की 'हिताब्दी' बंद्योपाध्याय की 'बंगाली' पत्रिका आदि ने स्वदेशी आंदोलन के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मूल्यांकनः इस प्रकार स्वदेशी आंदोलन के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के चरित्र में भारी बदलाव आया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर चरमपंथी विचारधारा का उदय हुआ और ब्रिटिश विरोधी आंदोलन पूरी तरह से अलग दिशा में बहने लगा। यह पहली बार है कि बंगाली राष्ट्र ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' की दोधारी तलवार का इस्तेमाल एक उपकरण के रूप में किया है। इस आंदोलन के प्रारंभ से ही बंगाल और भारत के विभिन्न हिस्सों में गुप्त संगठन अधिक सक्रिय हो गए। अंततः इस आंदोलन का असर सिर्फ बंगाल में ही नहीं बल्कि पूरे भारत में अनुभव किया गया। इस आंदोलन की प्रतिक्रिया में भी, 12 दिसंबर 1911 को, जॉर्ज पंचम को दिल्ली के दरबार में औपचारिक रूप से बंगाल के विभाजन की घोषणा करने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसने भारत में ब्रिटिश विरोधी आंदोलन को एक नई गति दी और स्वदेशी आंदोलन पहले बंगाल की भूमि में पैदा हुआ और धीरे-धीरे एक अखिल भारतीय रूप ले लिया। 1908 में महात्मा गांधी ने स्वदेशी आंदोलन के बारे में ठीक ही कहा था, 'The real awakening (of India) took place after the partition of Bengal---That day may be considered to be the day of the partition of British Empire'[19]- विल डुरंट ने भी स्वीकार किया कि "It was in 1905, then, that the Indian Revolution began"[20] इस स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से नवजात भारतीय राष्ट्रवाद का एक क्रांतिकारी रूप प्रकट हुआ और भारतीय राजनीति में एक नए युग का प्रारंभ हुआ।

सन्दर्भ

1. मुखर्जी हरिदास, उमा मुखर्जी, 'स्वदेशी आंदोलन और बंगलार नब युग', सरस्वती पुस्तकालय, कलकत्ता, 1961, पृ.1.
2. Sarkar Sumit, 'The Swadeshi Movement in Bengal (1903-1908), People's Publishing House, New Delhi, 1973, p. 12
3. देसाई ए. आर, 'भारतीय जातीयतावाद एवं सामाजिक पृष्ठभूमि', केपी बागची एंड कंपनी, कलकत्ता, 1987, पृ. 263-265।
4. Chandra Bipan, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K. N. Panikkar, 'India's Struggle For Independence 1857-1947', Penguin Books, New Delhi, 1989, p. 125.
5. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ. 15.
6. Banerjee Surendranath, 'A Nation in Making', London, Oxford University Press, 1925, p. 184.
7. बंद्योपाध्याय शेखर, 'पलाशी थेके पार्टिशन : आधुनिक भारतेर इतिहास', कृष्णेंदु रॉय द्वारा अनुवादित, ओरिएंट लॉन्गमैन, दिल्ली, 2004, पृ. 297.
8. चंद्र बिपन, 'आधुनिक भारतेर इतिहास', अनुवादित, ओरिएंट ब्लैकसोवन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 353।
9. मुखर्जी हरिदास और उमा मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 7
10. सरकार सुमित, आधुनिक भारत (1885-1947), के.पी. बागची एंड कंपनी, कलकत्ता, 2004, पृ. 94।
11. Sarkar Sumit, op.cit., 1973, p. 31.
12. Mukherjee Haridas and Uma Mukherjee, 'Origins of the National Education Movement (1905-1910)', Jadavpur University, Calcutta, 1957, pp. 37-44.
13. मुखोपाध्याय हरिदास और उमा मुखोपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ.6
14. Majumdar R. C., 'History of the Freedom Movement in India', Vol. I, Firma K. L. Mukhopadhyay, Kolkata, 1971, p. 390.
15. चंद्र बिपन, पूर्वोक्त, पृ. 267
16. Sitaramayya Pattabhi B., 'The History of the Indian National Congress' Vol. 1 (1885-1935), Working Committee of the Congress, 1935, p. 70.
17. मुखर्जी हरिदास और उमा मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 34
18. बंद्योपाध्याय शेखर, पूर्वोक्त, पृ. 297
19. हरिदास मुखर्जी और उमा मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 7
20. Durant Will, 'The Case for India', Simon and Schuster, New York, 1930, p. 123.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

उत्तराखण्ड में महिला प्रतिनिधित्व : संसद तथा राज्य विधान सभा के विशेष संदर्भ में

❑ मयंक प्रसाद
❖ देवेन्द्र सिंह

सूचक शब्द : उत्तराखण्ड, विधानसभा, संसद, महिला प्रतिनिधित्व, राज्य आन्दोलन, राजनीतिक दल

प्रायः किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता का आकलन इस तथ्य से किया जाता है कि उसमें सम्मिलित विभिन्न हित समूहों का प्रतिनिधित्व विधान निमात्री सभाओं में किस मात्रा में हुआ है। सामान्य तौर पर इस प्रक्रिया से लोकतांत्रिक व्यवस्था की विशेषताओं तथा कमियों का भी ज्ञान हो जाता है। प्रतिनिधित्व के इसी पैमाने को उत्तराखण्ड में लागू कर किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधित्व का अध्ययन किया जा सकता है। उत्तराखण्ड राज्य लंबे जनांदोलनों की परिणति के रूप में 9 नवंबर 2000 को अस्तित्व में आया। इस सपने को साकार करने में राज्य के पुरूषों के साथ साथ महिलाओं ने भी अपना अमूल्य योगदान दिया। उत्तराखंड राज्य आंदोलन अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना थी जिसने राज्य में महिलाओं को भी अपने अधिकार की लड़ाई के लिये पहली बार संगठित तथा आंदोलित किया। राज्य आंदोलन में इस स्तर तक महिलाओं के सम्मिलित होने से पता चलता है कि महिलायें समान रूप से सक्रिय तथा जाग्रत थीं तथा नये राज्य में अपनी भागीदारी को लेकर वे भी उत्सुक थीं। कठिन भौगोलिक विषमताओं एवं थका देने वाली दिनचर्या के बावजूद महिलाओं का इस तरह एकजुट होना उन महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता का द्योतक था। लेकिन राज्य गठन के पश्चात संसद व राज्य विधान सभाओं में महिला प्रतिनिधित्व का अध्ययन करने से पता चलता है कि महिलाओं को राजनैतिक रूप से प्रतिनिधित्व नहीं मिला। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखंड पृथक राज्य गठन के पश्चात संसद तथा राज्य विधानसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का विश्लेषण किया गया है।

वर्तमान समय में राजनीति, समाज तथा देश–दुनिया की प्रत्येक गतिविधि में महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है। आधी आबादी को प्रतिनिधत्व देने के रूप में इसे सुखद कहा जा सकता है किन्तु अभी भी महिलाओं को समान अधिकार देने का रास्ता दूर ही है। एक समय उत्तर प्रदेश में दलितों तथा पिछड़ों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिये कांशीराम ने अपना प्रसिद्ध नारा दिया था, 'जिसकी जितनी संख्या भारी उसकी उतनी हिस्सेदारी'।[1] इस कथन को लगभग सभी राजनीतिक दलों ने अपनी चुनावी रणनीति में सम्मिलित किया। लेकिन जब राजनीति में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का प्रश्न उत्पन्न होता है तब यह विचार भी उन्हें समान भागीदारी दिलाने में नगण्य साबित हुआ है।

वस्तुतः प्रतिनिधि शासन व्यवस्था में जनता द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों को चुनकर विधान निमात्री सभाओं में भेजा जाता है। जो कानून निर्माण की प्रक्रिया में अपने समूह के विशेष हितों तथा आवश्यक मांगों को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं। सर्वस्वीकार्य रूप से ऐसा माना जाता है कि जिस समुदाय के जितने अधिक प्रतिनिधि चुनकर आते हैं उनकी मांगें उतनी ही प्रभावशाली ढंग से संसद अथवा विधानसभाओं में उठायी जाती हैं। प्रतिनिधित्व को परिभाषित करते हुए राबर्ट वॉन मोहल लिखते हैं कि 'प्रतिनिधित्व वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समस्त नागरिक या उनका कोई अंश सरकारी कार्य पर जो प्रभाव डालता है, वह उसकी सुव्यक्त इच्छा के अनुसार होता है, उन्हीं में से थोड़े से लोगों द्वारा उनकी ओर से किया जाता है और यह उनके लिये मानना आवश्यक होता है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं।[2] एक शोधार्थी असीम अली ने प्रतिनिधित्व को विभाजित करते हुए इसके तीन प्रकार बताये, वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक तथा विशेषात्मक। इसमें प्रत्येक अपने पूववर्ती प्रकार से प्रतिनिधत्व के मामले में अधिक प्रगतिशील है। वर्णनात्मक प्रतिनिधित्व का आशय है कि किसी समुदाय के बीच से ही उनके प्रतिनिधि का चयन किया जाय जो उनकी ही तरह दिखता है किन्तु यह मात्र दिखावा ही होता है। दूसरे प्रकार प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि किसी समुदाय के किसी लोकप्रिय तथा मजबूत चेहरे को प्रतिनिधित्व

❑ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल, (उत्तराखण्ड)
❖ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल, (उत्तराखण्ड)

दिया जाता है जो प्रतीक के रूप में अपने समूह के हितों के लिये खड़ा रहता है। इन दोनों ही तरीकों में सामान्य समस्या यह है कि ये केवल खानापूर्ति के लिये प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं जो चुनावी राजनीति से प्रभावित होता है। प्रतिनिधित्व का तीसरा तथा सबसे प्रभावशाली तरीका है विशेषात्मक प्रतिनिधित्व जिसमें प्रतिनिधि ना केवल समूचे समाज का न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व करता है बल्कि उनके हितों तथा चिंताओं के प्रति संवेदनशील भी रहता है तथा उनके हितों की पूर्ति के लिये लगातार आवाज उठाता है। अतः सभी प्रकार के समूह प्रायः इसी तरह के प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं।[3]'

'स्वतंत्रता से पूर्व स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तराखण्ड की महिलायें शिक्षा की पहुंच से बाहर थीं। जून 1929 में महात्मा गांधी के कुमाऊं आगमन ने महिलाओं की भागीदारी को सहज बनाया। गांधी जहां जहां भी गए, महिलाएं बड़ी संख्या में जुलूसों तथा सभाओं में आईं।'[4] यही मूल कारण रहा कि महिलायें धीरे धीरे आजादी के आंदोलन में सक्रिय होने लगीं। देहरादून में 30 अपैल 1930 को अपनी बेटी के साथ शर्मदा त्यागी, दो बच्चों के साथ श्यामा देवी तथा विष्णु देवी, सरस्वती देवी तथा रामदुलारी देवी गिरफ्तार की गईं थी। मई में नैनीताल के प्रसिद्ध झंडा सत्याग्रह मे कुन्ती वर्मा, विशनी देवी शाह, शकुन्तला देवी, भागुली देवी, तुलसी देवी, भक्ति देवी, भागीरथी देवी ने सक्रिय रूप से भाग लिया।[5]

'राष्ट्रीय संग्राम के दौर में देशभर में विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के साथ शराब की दुकानों पर भी धरने दिये गये। 1930 से 1932 के मध्य उत्तराखंड की महिलाओं ने भी शराब की दुकानों पर धरने दिये। कुंती देवी वर्मा, बिश्नीदेवी शाह, तुलसी देवी रावत आदि ने अल्मोडा में; दुर्गा देवी पंत, जीवंती देवी ठकुरानी ने राजखेत में पद्मावती, भागीरथी देवी चौहान आदि ने हल्द्वानी में शराब की भट्ठियों कें आगे धरने दिये।'[6] इसके बाद से ही लगातार महिलायें राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष में अपनी भागीदारी निभाती रहीं। स्वतंत्रता के पश्चात भी महिलाओं का विभिन्न क्षेत्रों में योगदान जारी रहा।

सत्तर के दशक में महिला आन्दोलन : उत्तराखण्ड पृथक राज्य के लिये 1970 के दशक में बड़े स्तर पर राजनीतिक रूप से राज्य के भीतर जनांदोलन शुरू हो गये जिससे प्रदेशभर में जनता अलग राज्य की मांग के साथ लामबंद होने लगी। यही दशक थे जिनमें प्रत्यक्षतः लोग एक संगठित आंदोलन के रूप एकत्रित हुए। 'राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में उत्तराखण्ड की महिलाओं द्वारा किए गये कार्यों को भले ही महत्व न मिला हो, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि स्वाधीनता से पूर्व और पश्चात भी उत्तराखंडी महिला ने अपने सीमित दायरे और सामाजिक रूढ़िवादिता के बावजूद अपने समय की चुनौतियों का सफलता से मुकाबला किया तथा हर समस्या के लिए अपनी लड़ाई स्वयं लड़कर विजय प्राप्त की।[7]

उत्तराखंड पृथक राज्य के आंदोलन में पहले पुरूष ही मुख्य रूप से सक्रिय थे लेकिन उस समय भी महिलायें घरबार संभालती थीं ताकि पुरूष पूरी तरह आंदोलन पर ही ध्यान केन्द्रित कर सके। इस तरह शुरूआती दौर में प्रत्यक्ष तौर पर ना सही लेकिन अप्रत्यक्ष रूप ये राज्य की महिलायें इसमें जरूर पर्दे के पीछे से भागीदारी कर रहीं थीं। इसके बाद के दशकों में महिलायें अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों जैसे; 'नशा नहीं, रोजगार दो' तथा विश्वविद्यालय की मांग को लेकर मुखर होने लगीं। इनमें से पहला मुद्दा तो सीधे तौर पर महिलाओं से ही जुड़ा हुआ था क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों में नशाखोरी एक आम किन्तु बड़ी समस्या थी जिसके सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव सीधे तौर पर महिलाओं पर ही पड़ते। अतः जब इसके विरूद्ध जगह-जगह से आवाजें उठनी लगीं तो महिलायें स्वतः इस कुरीति के खिलाफ खड़ी हो गयीं। परिणामस्वरूप इन आंदोलनों के दबावों के कारण ही सरकार को पौड़ी, चमोली, उत्तरकाशी, टिहरी तथा पिथौरागढ़ में मद्यनिषेध का निर्णय लेना पड़ा।

इसके बाद चिपको आंदोलन निश्चत रूप से उत्तराखंड में महिलाओं की जिजीविषा तथा संघर्ष करने की उनकी प्रवृति को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने वाला साबित हुआ। सत्तर के शरूआती वर्षों में आरंभ यह महत्वपूर्ण पर्यावरणीय आंदोलन देखते देखते जल, जंगल और जमीन के साथ साथ पूरी दुनियां में महिलाओं की अस्मिता के प्रश्न से जुड़ गया। चमोली के रैणी गांव में गौरा देवी के नेतृत्व में महिलाओं ने जिस स्वतःस्फूर्त लड़ाई को शुरू किया वह महिलाओं के अधिकारों के लिये संघर्ष की अनोखी विरासत बन गया। इस आंदोलन ने जहां महिलाओं की चेतना में अपने बुनियादी अधिकार की लड़ाई लड़ने का बीज डाला वहीं दूसरी जो महत्वपूर्ण चीज इससे निकलकर आयी वह यह थी कि विशुद्ध रूप से महिलाओं के इस आंदोलन पर भी नेतृत्वकर्ता के रूप

में पुरूषों का कब्जा हो गया। इसी तथ्य को उजागर करते हुए 'रामचन्द्र गुहा अपनी पुस्तक 'द् अनक्वाइट वुड्स' में लिखा है कि भले ही महिलाओं ने चिपको आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई फिर भी इसे महिलाओं का आंदोलन नहीं कहा जा सकता है, चिपको आंदोलन के शुरूआती दौर में मंडल तथा फाटा गांव में केवल पुरूषों के द्वारा ही जंगल को बचाया गया।'[8] इस एक प्रसंग से उस पूरे संदर्भ को समझा जा सकता है जो महिलाओं को समान प्रतिनिधित्व देने के समूचे विमर्श के इर्द-गिर्द बुना गया है। महिलाओं को दोयम दर्जे में रखने का यही निरंतरता राज्य गठन के पश्चात भी जारी रही।

शराबबंदी, विश्वविद्यालय तथा चिपको जैसे आंदोलनों से ना सिर्फ सामाजिक -राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ बल्कि उससे भी महत्वपूर्ण बात यह रही कि पहाड़ की महिलायें अपने अधिकार के लिये आवाज उठाने के लिये संगठित होने लगीं जो इससे पहले 1930 के दशक में स्वाधीनता आंदोलन में आखिरी बार देखा गया था। इस दृष्टि से 1970 तथा 1980 के दशक के ये जनांदोलन पृथक राज्य के संघर्ष में महिलाओं के लिये पूर्वअभ्यास की तरह साबित हुए जिनका लाभ निश्चित रूप से राज्य आंदोलन की पूरी लड़ाई में उन्हें मिला। 'राज्य आंदोलन की निरंतरता में' '26 मार्च 1984' को 51 आन्दोलनकारियों ने गिरफ्तारी दी जिनमें 15 महिलाएं थी।'[9]

'1994 का उत्तराखण्ड आन्दोलन जहां एक ओर तीव्र सहभागिता और आन्दोलनकारियों के दृढ़ निश्चय को लिये था, वहीं यह जनवादी मूल्यों की लड़ाई का ऐतिहासिक व अहिंसक आन्दोलन रहा। दूसरी ओर तमाम जनतांत्रिक मूल्यों को ताक पर रखते हुए सत्ता ने अपनी शक्ति का यथासंम्भव दुरूपयोग किया जिसमें आन्दोलनकारियों से मारपीट, लूटखसोट, फायरिंग, हत्या आदि के साथ साथ आन्दोलनकारियों पर अवैध रूप से हथियार रखने के झूठे आरोप तक लगाये गये। 1 सितम्बर 1994 को खटीमा में जुलूस पर हुई फायरिंग में 12 लोग मारे गये। मसूरी में 2 सितम्बर 1994 को मसूरी गोलीकांड में 6 आन्दोलनकारियों में शहीद होने वाली दो महिलाएं हंसा धनाई तथा बेलमती चौहान भी थीं। 2 अक्टूबर 1994 की रात को उत्तराखण्ड के निहत्थे, बेगुनाह व शान्तिपूर्ण आन्दोलनकारियों को दिल्ली जाते समय मुजफ्फरनगर से 3 किमी. दूर रामपुर तिराहे पर जनपद प्रशासन द्वारा अमानवीय व्यवहार किया गया।'[10]

'सीबीआई ने कहा कि उस रात मुफ्फरनगर में उत्तराखंडी महिलाओं की इज्जत पर पुलिस और प्रशासन की मिलीभगत से हाथ डाला गया। सीबीआई ने मुजफ्फनगर में हुए बलात्कार के मामलों में मुजफ्फनगर के एसपी संबंधित डीआईजी सहित कई दूसरे पुलिस अफसरों को दोषी ठहराया है। सीबीआई रपट में कहा गया है कि पुलिस के अफसरों ने इन कुकर्मों को मिटाने के लिए अपने हक में संशोधन भी किया है।'[11]

'खटीमा, मसूरी और मुफ्फरनगर में आंदोलनकारियों पर हुई गोलाबारी के बाद 1994 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति रवि एस धवन की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने अपने 273 पृष्ठ के फैसले में लिखा कि आजाद भारत की चुनी हुई सरकारों ने उत्तराखंड के लोगों के साथ वैसा सलूक किया, जैसा जर्मनी में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नाजियों के साथ किया था।'[12]

महिलाओं की जनांकिकीय स्थिति : 'उत्तराखंड में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 1,00,86,292 आबादी है, जिसमें 50.94 प्रतिशत पुरूष तथा 49.6 प्रतिशत महिला आबादी है। साक्षरता दर के अनुसार वर्ष 2011 में उत्तराखण्ड में कुल साक्षरता 78.8 प्रतिशत है जिसमें 87.4 प्रतिशत पुरूष तथा 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। राज्य में महिला लिंगानुपात 963 है जो वर्ष 2001 की जनगणना के समय 962 था। ग्रामीण आबादी में 1000 महिलाएं प्रति हजार पुरूषों में हैं, तो नगरीय आबादी में प्रति हजार पुरूषों में महिलाओं की संख्या घटकर 884 रह गयी। रूद्रप्रयाग, चमोली, उत्तरकाशी एवं टिहरी की ग्रामीण आबादी में महिलाओं की संख्या क्रमशः 677, 767, 838 तथा 857 है। स्पष्ट है कि पुरूष ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय में रोजगार तथा शिक्षा की प्राप्ति के लिये पलायन करते हैं। मुख्य कर्मकर के रूप में महिलाओं की सहभागिता पुरूषों से कम मात्र 60.6 प्रतिशत है।'[13] 'उत्तराखंड में, महिलाएं आन्दोलनकारी हैं और पंचायत में 50 प्रतिशत आरक्षण है, उसके बावजूद राज्य विधानसभा में 2022 के चुनाव में सिर्फ 8 महिलाएं ही चुनकर आयी हैं।'[14]

राजनीतिक प्रतिनिधित्व : प्रतिनिधि लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में जनता कानून निर्माण करने वाली संस्थाओं में अपने प्रतिनिधियों को चुनकर भेजती है। इससे विभिन्न वर्गों के हितों का संरक्षण उनके चुने हुए प्रतिनिधि करते हैं। इसके साथ ही इन संस्थाओं में विभिन्न वर्गों के चुने हुऐ प्रतिनिधियों की संख्या द्वारा प्रतिनिधित्व के लोकतांत्रिक

तथा समावेशी होने का प्रमाण भी प्राप्त हो जाता है। यहां हम उत्तराखण्ड के संदर्भ में संसद तथा राज्य विधानसभा में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व के आंकड़ों का विश्लेषण करेंगे।

राज्य विधानसभा : उत्तराखण्ड एकसदनीय विधायिका वाला प्रदेश है जिसमें कुल 70 विधानसभा सीटें हैं। वर्ष 2000 में राज्य गठन के बाद से वर्तमान तक राज्य में पांच विधानसभा चुनाव संपन्न हो चुके हैं। इन पांचों विधानसभा चुनावों में महिला प्रतिनिधित्व के आंकड़ों को निम्न तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है।

तालिका 1

राज्य में संपन्न चार विधानसभा चुनावों में महिलाओं का प्रदर्शन

विधानसभा चुनाव	कुल महिला मतदाता	जिन्होंने मतदान किया	मतदान प्रतिशत	कुल प्रत्याशी	महिला प्रत्याशी	जीते प्रत्याशी	जमानत जब्त
2002	2557028	1345902	52	927	72	4	60
2007	2946311	1751589	59.45	785	56	4	42
2012	3024346	2060193	68.12	788	63	5	47
2017	3608228	2479480	68.72	637	62	5	47
2022	3935532	2643049	67.16	632	63	8	49

स्रोत : भारतीय निर्वाचन आयोग, https://eci.gov.in.files/category/93-uttarakhand

तालिका 1 का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि राज्य विधानसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को लेकर एक निरंतर असमानता है। पहले से लेकर चौथे विधानसभा चुनाव तक आधी आबादी में से सिर्फ 7 से 8 महिलाओं का निर्वाचित होना दर्शाता है कि जितने तरह की घोषणाऐं और दावे महिलाओं को लेकर किये गये हैं वे व्यवहार के धरातल के दूर हैं। महिलाओं को राजनीतिक दलों द्वारा टिकट वितरण में केवल भेदभाव देखने को मिला है। राज्य के पांच विधानसभा चुनावों में महिलाओं की जीत का प्रतिशत क्रमशः 5.55, 7.14, 7.93, 8.06 तथा 12.69 है। इस प्रकार 2022 के विधानसभा चुनाव में अधिकतम जबकि 2002 के पहले विधानसभा चुनावों में न्यूनतम रहा।

तालिका में संतोषजनक तथ्य यह है कि राज्य के पहले विधानसभा चुनाव से आखिरी संपन्न विधानसभा चुनाव तक महिलाओं के मतदान के प्रतिशत लगातार वृद्धि हुई है। अंतिम संपन्न विधानसभा चुनाव 2022 में तो महिलाओं का मतदान प्रतिशत (67.16) पुरूषों (61.27) से भी अधिक था।

संसद : भारत में सबसे बड़ी कानून निर्माण करने वाली सभा अर्थात् संसद में भी महिलाओं के प्रतिनिधित्व पर दृष्टिपात करने पर स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। स्वाधीनता प्राप्ति के इतने वर्षों के पश्चात 17वीं लोकसभा 2019 में 78 महिलायें चुनकर संसद में पहुंची। कुल लोकसभा सदस्यों के 14.3 प्रतिशत के साथ यह पहले आम चुनावों के बाद सबसे बड़ी संख्या है।'[15] 'आजादी के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी किसी स्वतंत्र देश की ऐसी दूसरी महिला थीं जिन्होंने अपने देश में शासन संचालन किया।'[16] 'इसी प्रकार श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल भी वर्ष 2007 से 2012 तक स्वतंत्र भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर चुकी हैं।'[17] इसके बावजूद संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की चिंताजनक स्थिति है। राष्ट्रीय संदर्भों में महिलाओं की भागीदारी के प्रश्न पर 'कमिटी ऑन द् स्टेटस ऑफ वूमन ऑफ इंडिया 1975' में कहा गया कि "समाज एवं राजनीति में महिलाओं की स्थिति बताती है कि संविधान में उन्हें पुरूषों के समकक्ष दर्जा देकर जिस क्रान्ति की आशा कही गयी थी, वह अभी भी बहुत दूर है। अधिकतर महिलाओं के पास अभी ऐसे प्रवक्ता नहीं हैं, जो उनकी विशिष्ट समस्याओं को समझ सकें तथा राज्य की प्रतिनिधि संस्थाओं में उन्हें उठाने एवं समाधान करने के प्रति समर्पित हों।"[18]

संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के आंकड़ों पर अगर दृष्टि डालें तो पूरी तस्वीर सामने आती है। 'स्वतंत्रता के बाद से आज तक सिर्फ तीन ही महिलाऐं चुनकर उत्तराखण्ड से लोकसभा पहुंची हैं। कमलेन्दु मति शाह स्वतंत्रता के

पश्चात 1952 में स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में टिहरी लोकसभा सीट से चुनी गयीं तथा नैनीताल से भाजपा के टिकट पर 1998 में संयुक्त उत्तर प्रदेश के गोविन्द बल्लभ पंत की पुत्रवधू इला पंत चुनकर पहुंची।'[19] राज्य गठन के पश्चात एकमात्र महिला टिहरी राजघराने से संबंध रखने वाली माला राजलक्ष्मी शाह टिहरी संसदीय सीट से 2014 तथा 2019 में चुनी गयीं।

इन तीनों महिलाओं में सामान्य तथ्य इनकी प्रभावशाली पारिवारिक पृष्ठभूमि है जिसके कारण इन्हें टिकट दिया गया। सामान्य पृष्ठभूमि की महिलाओं को टिकट ही नहीं मिलता है और अगर वे स्वतंत्र रूप से भी चुनाव लड़ती हैं तो उनके जीतने की कोई संभावना नहीं रहती। हालांकि बसपा से जरूर 1989 तथा 1991 के लोकसभा चुनावों में सुश्री मायावती ने चुनाव लड़ा किन्तु वे हार गयीं। 'राज्यसभा में महिला प्रतिनिधि के रूप में सुषमा स्वराज को वर्ष 2000 में तथा मनोरमा डोबरियाल शर्मा को 2014 में राज्य का प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला।'[20] वर्ष 2022 में भाजपा ने कल्पना सैनी को उत्तराखण्ड से राज्यसभा का उम्मीदवार बनाया है।

राज्य में महिला प्रतिनिधत्व कम रहने के कारण : प्रदेश में महिला प्रतिनिधित्व के अत्यधिक कम होने के प्रमुख कारणों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि चुनाव दर चुनाव लगातार महिलाओं के चुनाव लड़ने की संख्या में कमी आई है क्योंकि उन्हें कभी जिताऊ उम्मीदवार नहीं समझा जाता है। इसके साथ ही राजनीतिक दलों से टिकट प्राप्त करने की पूरी प्रतियोगिता में भी वे पिछड़ जाती हैं। 'चुनाव में खड़े होने का अर्थ है 5 से 15 लाख तक का खर्चा। महिला प्रत्याशी इस प्रकार का प्रबन्ध कर पाने में असमर्थ होती हैं। 2017 के चुनाव में देहरादून के रायपुर विधानसभा क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में खड़ी सुश्री निर्मला बिष्ट अपने अनुभव साझा करते हुए कहती हैं कि, दूसरी पार्टियों द्वारा शराब बांटी जा रही थी, टेन्ट की व्यवस्था कर भोजन करवाया जा रहा था। बूथ में बैठने का प्रति व्यक्ति 500 रूपया, खाना आदि मांगा जा रहा था। ऐसे में महिलाएं संगठन बनाकर चुनाव जीतने की नहीं सोच सकती थीं।'[21] ऐसे में जबकि महिलाओं को चुनाव लड़ने के लिये अतिरिक्त प्रयास करने पड़ते हैं तब उन्हें चुनावी राजनीति में बने रहना कठिन होता है। राज्य के सामाजिक -सांस्कृतिक परिवेश के कारण भी महिलायें राजनीति में अधिक सक्रिय नहीं रह पाती हैं। सामातन्यतः राज्य में पितृसत्ता का अधिक प्रभाव रहता है जिससे स्वाभाविक रूप से महिलायें सहजता से राजनीति की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं हो पायी हैं।

उत्तराखण्ड मार्च 2008 में पंचायतों में महिलाओं के लिए पचास प्रतिशत सीटें आरक्षित करने वाला पहला राज्य है जिससे कि वर्तमान में महिलाओं की भागीदारी स्थानीय संस्थाओं में 70 प्रतिशत तक बढ़ गयी है। इसका उदेश्य ही स्थानीय सरकारों में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करना है ताकि महिलायें भी इन ग्रामीण सरकारों के माध्यम से मुख्यधारा में सम्मिलित हो सकें। संसद तथा विधानसभाओं में इस तरह के प्रावधान नहीं होने के कारण भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व इन संस्थाओं में बढ़ नहीं पाया है।

निष्कर्ष : उत्तराखंड पृथक राज्य गठन के पश्चात संपन्न पांच विधानसभा चुनावों तथा संसद के आंकड़ों के विश्लेषण से प्रदेश में महिला प्रतिनिधित्व को लेकर कुछ विशेष प्रवृतियां देखने को मिलती हैं जिन्हें हम इस तरह समझ सकते हैं कि राज्य के पांचों विधानसभा चुनावों में ना केवल महिला प्रत्याशियों की संख्या तुलनात्मक रूप से अत्यधिक कम रही है बल्कि उनमें जीतने वाली महिलायें भी संख्या में कम हैं जिससे विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व लगातार अल्पमत में ही रहा है। विधानसभा चुनाव जीतने वाली महिलाओं में भी नेतृत्व को लेकर विविधता नहीं रही है बल्कि इनमें कुछ ही महिलायें लगातार चुनाव जीत रही हैं जिससे महिलाओं में भी एक 'महिला राजनीतिक अभिजन' की स्थिति उत्पन्न हो गयी। राज्य में संतोषजनक रूप से महिला मतदान प्रतिशत में चुनाव दर चुनाव वृद्धि हुई है जो महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता को प्रदर्शित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलायें अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति समय के साथ अधिक जागरूक हुई हैं तथा महिलाओं की भागीदारी राजनीतिक क्रियाकलापों में बढ़ रही है। राज्य में महिलाओं की संख्या कुल जनसंख्या का लगभग 49 प्रतिशत है लेकिन इसकी तुलना में 2022 के विधानसभा चुनाव में निर्वाचित महिलाओं का प्रतिशत सिर्फ 12.69 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि विधानसभा चुनावों में महिलाओं की जीत का प्रतिशत बढ़ रहा है हालांकि इसकी प्रगति अतिशय धीमी है। लेकिन इसका एक पक्ष यह भी है कि 2022 के चुनावों में महिला उम्मीदवारों की

संख्या भी पहले की तुलना में कम थी। हाल ही में संपन्न पांचवें विधानसभा चुनाव महिला प्रतिनिधित्व की दृष्टि से सकारात्मक कहे जा सकते हैं। इस बार ना केवल सबसे अधिक 8 महिलाओं ने जीत प्राप्त की बल्कि राज्य गठन के बाद पहली बार किसी महिला विधायक (ऋतु खंडूडी) को विधानसभा अध्यक्ष भी बनाया गया है।

प्रतिनिधित्व के जिन प्रकारों का उल्लेख पहले किया गया है उनकी कसौटी पर रखकर उत्तराखंड की स्थिति को देखकर ज्ञात होता है कि यहां महिलायें प्रतिनिधित्व के मामले में पहले तथा दूसरे स्तर तक ही कहीं उलझी हुई प्रतीत होती हैं। राजनीतिक दलों द्वारा मुख्यतः विधानसभा चुनावों में महिलाओं को टिकट नहीं दिया जाता जिससे उनके तीसरे चरण तक जाने की पूरी प्रक्रिया अत्यधिक धीमी पड़ गयी है जबकि उनके लिये तीसरे प्रकार के प्रतिनिधित्व की मांग लगातार की जाती रही है।

संदर्भ

1. https://satyagrah.scroll.in/article/110268/kanshi-ram-bsp-life-work-profile
2. https://www.scotbuzz.org/2019/02/pratinidhitv.html
3. https://youtu.be/7P4STFpR_n8
4. पाण्डे, जया, 'आन्दोलन और राजनीति में महिलाएँ', उत्तराखण्ड की महिलाएं स्थिति एवं संघर्ष, जुलाई 2021, पृ0 261
5. वही, पृ0 261
6. जोशी वीणापाणी, 'उत्तराखंण्ड की सामाजिक हलचलों में महिलाओं की भूमिका', धाद, प्रथम संस्करण 1994, पृ0 293
7. वही, पृ0 292
8. डंगवाल, सुरेखा, 'महिलाओं के योगदान के प्रति दुराग्रह क्यों?', रीजनल रिपोर्टर, नवंबर 2018, पृ0 264
9. रजवार, शीला, 'आन्दोलनों की निरन्तरता, उत्तराखण्ड की महिलाएं स्थिति एवं संघर्ष', जुलाई 2021, पृ0 46
10. नेगी, कमल, रजवार शीला, भट्ट उमा, 'मुजफ्फरनगर काण्ड : मानवीय अस्मिता का सवाल', उत्तराखण्ड की महिलाएं स्थिति एवं संघर्ष जुलाई 2021, पृ. 145-146
11. जनसत्ता, 3 जनवरी 1995
12. मैखुरी, इन्द्रेश, 'विकास का आन्दोलन', उत्तराखंड दशक 2000-2010, अमर उजाला, पृ0 28
13. पाण्डे, जया, पूर्वोक्त, पृ0 264
14. पंत, बी.आर., 'उत्तराखंड की जनगणना में लिंगानुपात, उत्तराखंड की महिलाएं स्थिति एवं संघर्ष', पृ0 15,16,17,18,19,20,22
15. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/the-17th-lok-sabha-has-the-highest-number-of-women-mps
16. गुहा, रामचंद्र, 'भारत नेहरू के बाद', पेंगुइन बुक्स, पृ. 27
17. https://en.wikipedia.org/wiki/Pratibha_Patil
18. पटनायक, रमा, 'राजनीति में महिलाएं : राज्यों के अनुभव, महिलाएं एवं राजनीतिक सशक्तिकरण', इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली, 1995 पृ. 29-38
19. https://timesofindia.indiatimes.com/elections/lok-sabha-elections-2019/uttarakhand/news/in-ukhands-poll-history-only-5-candidates-have-been-women-although-states-50-population-is-female/articleshow/68635829.cms
20. https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_Rajya_Sabha_members_from_Uttarakhand
21. पाण्डे, जया, पूर्वोक्त, पृ. 265

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महिलाओं पर प्राकृतिक आपदाओं से पड़ने वाला प्रभाव : सामाजिक संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ सुश्री शैलजा
❖ प्रोफेसर हिमांशु बौड़ाई

सूचक शब्द : प्राकृतिक आपदा, महिलाएं, सामाजिक प्रभाव, भेद्यता, पितृसत्ता।

प्रत्येक प्राकृतिक आपदा अपने साथ अनेक समस्याएं लेकर आती है व समाज का कोई भी वर्ग प्राकृतिक आपदा के दुष्प्रभावों से अछूता नहीं रहता है। परन्तु प्राकृतिक आपदाएं समाज के सभी वर्गों पर एक जैसा प्रभाव नहीं डालती हैं। समाज के सबसे संवेदनशील वर्गों जैसे महिला, बच्चे व बुर्जुगों को आपदा के दोहरे दंश झेलने पड़ते हैं। पितृसतात्मक समाज में महिलाएं सामाजिक रूप से पुरूषों से कमतर आंकी जाती हैं और समाज द्वारा महिलाओं पर विभिन्न मापदंडों को थोप कर उनकी सामाजिक स्थिति को और कमजोर कर दिया गया है। प्राकृतिक आपदा के दौरान अनेक कारणों से महिलाएं अधिक भेद्यता का अनुभव करती हैं जो महिलाओं को और अधिक जोखिम में डाल देता है। यह सर्वसिद्ध सत्य है कि किसी भी आपदा के पश्चात समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग ही इसकी सर्वाधिक चपेट में आता है। प्रस्तुत शोध पत्र प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा महिलाओं के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है व प्राकृतिक आपदा से कैसे महिलाओं का सामाजिक जीवन प्रभावित होता है? के अध्ययन को समाहित करने का प्रयास है। शोध-पत्र को पूर्ण करने में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एंव वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है।

परिचय :- प्राकृतिक आपदाओं के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक आपदाएं पृथ्वी के निर्माण के साथ ही अवस्थित रही हैं, पृथ्वी का निर्माण इन प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ ही गतिमान रहा है और मनुष्य की उत्पति व विकास के साथ यह प्राकृतिक आपदाएं यथावत बनी रहीं। मनुष्य पृथ्वी में हो रही अप्रत्याशित घटनाओं को पुनः घटित देखकर इन अप्रत्याशित घटनाओं पर अपनी समझ विकसित करने लगा था, जिनसे सुरक्षित रहने के लिए मनुष्य ने विभिन्न विधियों का आविष्कार किया जो कि मनुष्य के पारम्परिक ज्ञान का प्रारम्भ भी था। प्रकृति का स्वभाव असंभावित है प्रकृति कभी भूकम्प, भूस्खलन, बाढ़, तूफान, बिजली गिरने, ज्वालामुखी और दावानल या कभी मौसम के किसी अन्य विकराल रूप से मनुष्य को भयभीत करती रही है।[1] प्राकृतिक आपदाओं को तब तक प्रभावी नहीं माना जाता है जब तक समाज व मानव जीवन उससे प्रभावित नहीं होता है।[2] लेकिन यह तर्क अपने आप में अपूर्ण है प्राकृतिक आपदाएं केवल समाज व मानव तक सीमित नहीं होती हैं इस प्रकृति में तमाम प्रकार के जीव व वनस्पतियां हैं जो कि प्राकृतिक आपदा से सीधे तौर पर प्रभावित होती हैं और उन्हें इसके बुरे परिणाम झेलने होते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के वैश्विक परिदृश्य को देखें तो प्राकृतिक आपदाओं के कारण (संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार) प्रत्येक वर्ष लगभग 20 करोड़ लोग प्रभावित होते हैं, जिसमें प्रतिवर्ष औसतन 60000 लोग मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।[3] कभी-कभी यह आंकड़े असामान्य रूप से परिवर्तित हो जाते हैं, उदाहरणतः 1983-85 के इथोयोपिया में अकाल और सूखा, 2004 में हिंद महासागर में आए भूकंप और सुनामी, 2008 में म्यांमार में आए च्रकवात और 2010 में आए हैती में भूकम्प ने मृत्यु आंकड़ों को 200000 तक बढ़ा दिया था।[4]

प्राकृतिक आपदाएं व महिलाएं : आपदा के पश्चात् महिलाओं पर पड़ने वाले दुष्परिणामों पर हुए अध्ययनों के उपरान्त महिलाओं के आपदा प्रभाव संबंधित समस्याओं व चुनौतियों पर ध्यान दिया जाना प्रारम्भ हुआ है। हालांकि पूरे विश्व में ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक व पितृसतात्मक मानदंड स्थापित हैं जिनके कारण अक्सर महिलाएं व बालिकाएं

❑ शोध अध्येत्री, राजनीति विज्ञान विभाग, बिड़ला परिसर, हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल, (उत्तराखण्ड)
❖ प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बिड़ला परिसर, हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल, (उत्तराखण्ड)

हिंसा का अनुभव करती हैं। हिंसा किसी एक अप्रत्याशित घटना से जुड़ी हुई नहीं होती है बल्कि आपदा पहले से अवस्थित हिंसा को बढ़ा देती है। प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले प्रभावों की समीक्षा में अभी भी लिंग आधारित समीक्षा का विषय सीमित है, वरन् समय के साथ विचारों व दृष्टि में परिवर्तन के कारण अब यह विषय शनैः-शनैः मुख्यधारा के विषयों में सम्मिलित हो रहा है।[5] इन संवेदनशील विषयों में सुधार के लिए आपदा संभावित देशों को उनकी आपदा न्यूनीकरण व जलवायु परिवर्तन की नीतियों में लैंगिक मुद्दों को समन्वित करना अभी भी शेष है।

सामाजिक असमानताओं से उत्पन्न लिंगभेद व रूढ़िवादिता, जो महिलाओं को पुरूषों की तुलना में कमजोर बनाती है, और महिलाओं को प्राकृतिक आपदा में उच्च जोखिमों में डाल देती हैं । वर्तमान तक के आंकड़ों पर दृष्टि डालें तो यह ज्ञात होता है कि किसी भी आपदा में महिलाओं की मृत्यु औसतन पुरूषों से अधिक होती है , उदाहरणतः बांग्लादेश में आए 1991 के साइक्लोन, 2004 में हिंद महासागर में सुनामी व आचे (इंडोनेशिया) में भूकम्प , 2007 सिद्र साइक्लोन (बांग्लादेश) व 2009 में बांग्लादेश के अइला साइक्लोन में समस्त आयु वर्ग की महिलाओं की मृत्युदर पुरूषों से अधिक थी और 2005 में यूएसए में कटरीना तूफान और 2003 में यूरोप हीट वेव में महिलाओं ने सबसे दयनीय स्थिति का अनुभव किया था। माहासेन साइक्लोन के अध्ययन के पश्चात् आकंडों के आधार पर यह पता चला कि म्यांमार, श्री लंका व बांग्लादेश में मरने वालों की संख्या 50 थी जिसमें से 17 महिलाएं और शेष बच्चे थे। एशियाई सुनामी के दौरान भी यही प्रवृति अनुभव की गई, जहां पुरूषों की तुलना में महिलाओं की मृत्यु तीन गुना अधिक हुई थी।[6] ब्रैडशॉ और फोर्डहम ने भी कहा है कि आपदाओं में महिलाओं व बच्चों (बालक व बालिकाएं दोनों) की मृत्यु पुरूषों की तुलना में 14 गुना अधिक होने की संभावना है।[7]

इन आंकडों के विभिन्न कारण हो सकते हैं कुछ हमारे समक्ष उपस्थित हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अधिकांश देशों में महिलाओं के नियमित पहने जाने वाले वस्त्र प्रतिबंधात्मक होते हैं अर्थात उन वस्त्रों में महिलाएं तेजी से चलना, दौड़ना और तैरने में असमर्थता अनुभव करती हैं, घरेलू कार्यों के लिए घर के अन्दर रहने वाली महिलाएं अधिकतर उच्च स्तरीय भूकम्प की चपेट में आ जाती हैं। मातृ व जनन स्वास्थ्य के कारण महिलाओं में संक्रमण की संभावनाएं हमेशा अधिक रहती हैं व आपदा के उपरांत संक्रमण के आसार और भी तीव्र हो जाते हैं। सामाजिक परिवेश में अगर परिवार में महिला व पुरूष दोनों आपदाग्रस्त हैं तो प्रथम उपचार परिवार द्वारा पुरूष को दिए जाने की संभावना अधिक रहती है। महिलाओं के जीवन का मूल्य अभी भी समाज में पुरूषों के जीवन मूल्य से कमतर है। बच्चों तथा वस्तुओं के रखरखाव की जिम्मेदारी अभी भी समाज में सिर्फ महिलाओं की ही मानी जाती है। कभी-कभी महिलाएं बच्चों व सामान को बचाने के लिए अधिक जोखिम ले लेती हैं जो उन्हें आपदाग्रस्त कर देता है, और भी कई अन्य कारक हैं जो आपदा के दौरान व पश्चात् महिलाओं की उच्च मृत्युदर से जुड़े हुए हैं।[8] आपदा के उपरान्त अमानवीय घटनाओं की संख्या में भी बढ़ोतरी होती है जिनमें लिंग आधारित हिंसा बलात्कार, मानव तस्करी एवं घरेलू हिंसा प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं।[9] इन अमानवीय घटनाओं के आसार और भी अधिक दृढ़ हो जाते हैं यदि प्रशासनिक व्यवस्था जिसमें पुलिस, फायर बिग्रेड व सेना सभी प्रभावित क्षेत्रों में व्यवस्था स्थापित करने में असमर्थ होती हैं। जिन देशों में राजनीतिक व्यवस्था कमजोर होती हैं वहां समस्याओं के गम्भीर होने की संभावनाएं अधिक होती हैं।[10]

प्राकृतिक आपदा निर्धनों को धन संपन्न लोगों की तुलना में अधिक प्रभावित करती हैं। इस तथ्य पर व्यापक सहमति है। धन संपदा वाले लोग अक्सर आपदा से बचाव को ध्यान में रखकर रहने के स्थानों व भवनों का निर्माण करते हैं। निर्धन व्यक्तियों के पास इतनी धनराशि नहीं होती कि वह यह खर्च निर्वहन कर सकें। निर्धन अक्सर आपदा संभावित क्षेत्रों में रहते हैं व उनके पास आपदा के प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए वित्तीय संसाधनों व शिक्षा की कमी रहती है।[11] महिला विषयों में निर्धनता के संबंध में कई प्रश्न किए गए हैं जिसमें सबसे बड़ा प्रश्न यह रहा है कि निर्धनता व महिलाओं का क्या सहसंबंध है? इस प्रश्न के उत्तर में सिल्विया चांट ने उल्लेख किया है कि महिलाएं निर्धनों की संख्या में सबसे आगे खड़ी हैं व धीरे-धीरे उनकी यह संख्या बढ़ती ही जा रही है। महिलाओं से संबंधित चौथी संयुक्त राष्ट्र संघ कान्फ्रेंस में कहा गया कि विश्व में 70 प्रतिशत महिलाएं निर्धन हैं और यह प्रतिशत संभवतः लगातार बढ़ रहा हैं।[12] इन सभी आंकडों से यह तात्पर्य है कि महिलाएं

प्राकृतिक आपदा से अधिक प्रभावित होती हैं क्योंकि वे निर्धनता में आनुपातिक रूप से सबसे शीर्ष पर उपस्थित हैं।

प्राकृतिक आपदाओं का महिलाओं पर सामाजिक प्रभावः प्रत्येक प्राकृतिक आपदा अपने साथ बहुत सारी समस्याओं को लेकर आती हैं जिसका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक के साथ अन्य विविध पहलू होते हैं। किसी भी आपदा के दूरगामी प्रभाव ज्यादा भयावह होते हैं। प्राकृतिक आपदा किसी लिंग विशेष के लिए तो नहीं आती है परन्तु यह सामाजिक तौर पर कमजोर वर्ग महिलाओं, बच्चें और बुजुर्गों पर अधिक दुष्प्रभाव डालती है। महिलाएं प्राकृतिक आपदाओं में विशेष रूप से सामाजिक प्रभावों से बुरी तरह प्रभावित होती हैं। महिलाओं का गृहस्थ जीवन में अधिक समय व्यतीत होने के कारण वह सामाजिक तौर पर पुरूषों से पिछड़ जाती हैं। यह असमानता महिलाओं को आपदा की दृष्टि से अति संवेदनशील बनाती है।[13] ऐसी स्थिति में किसी पुरूष के आपदाग्रसित होने पर महिला पर आर्थिक के साथ सामाजिक दबाव भी बढ़ जाता है। एक महिला के लिए उसके पति की मृत्यु के पश्चात् कई सामाजिक भूमिकाओं का भार उत्पन्न हो जाता है। उसे घर का मुखिया बनकर फैसले लेने होते हैं। यदि एकल माता व विधवा होने के कारण महिला के पास आय का साधन नहीं है, तो महिला के समक्ष जीविकोपार्जन का संकट व अपने बच्चों का भरण पोषण का दायित्व भी आ जाता है। समाज की दृष्टि में किसी महिला के पति के अकालिक मृत्यु के पश्चात् महिला को कलंकित माना जाता है और कलंकित महसूस करने के कारण वह सामाजिक जीवन से धीरे-धीरे कटना शुरू कर देती हैं। इन कारणों से महिला की दिनचर्या में पूर्णतः बदलाव आ जाते हैं जिसे सम्भालने में उसे अधिक समय लग जाता है।[14]

सामाजिक तौर पर महिलाएं इतनी सक्षम नहीं होती हैं कि वे आपदा के पश्चात् संसाधनों का प्रयोग खुद से कर पाएं क्योंकि उनके पास संसाधनों के उपयोग करने के अधिकार और संसाधनों पर नियंत्रण की कमी होती है व निर्णय-निर्माण में भी महिलाओं की स्थिति पुरूषों के समांतर नहीं हैं क्योंकि उन्हें निर्णय-निर्माण की शक्ति कभी समाज द्वारा प्रदान ही नहीं की गई है।[15] लिंग आधारित भेदभाव व सामाजिक असमानताओं के साथ-साथ समाज द्वारा किया गया शक्ति वितरण महिलाओं को प्राकृतिक आपदा में अधिक क्षति पहुंचाता है। पुरूषों की अपेक्षा उन पर निर्भर महिला, बच्चे व बुर्जुगों को आपदा के पूर्व व पश्चात् का ज्ञान सीमित रहता है। वह आपदा से उस प्रकार बाहर नहीं निकल पाते जिस तरह पुरूष निकल जाते हैं।[16] ब्रैड शॉ ने आपदा के पश्चात् होने वाले प्रभावों से संबधित एक रिपोर्ट में आपदाओं के पश्चात् के प्रभावों को मृत्यु आंकड़ों व संपति के नुकसान से अलग वर्णित किया है। उनके अनुसार वास्तविक सामाजिक प्रभाव के तौर पर वह हिंसा और मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देते हैं, जिसमें महिलाएं व बालिकाएं दोहरी आपदा झेलती हैं। ब्रैड शॉ और फ्रेडहम ने यह भी पाया कि प्राकृतिक आपदा के बाद घर हो या शिविर, महिलाएं हिंसा का अनुभव करती है जो सामान्य स्थितियों से अधिक भयावह होती है। महिलाओं को शिविरों में बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों के साथ हर छोटे से कार्य को पूरा करने के लिए शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ता है जिसके कारण वे मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना का अनुभव करती हैं। महिलाएं स्वास्थ्य की दृष्टि से संवदेनशील होती हैं। मातृ व जनन संबंधी समस्याओं के साथ स्वच्छता के लिए जरूरी सैनेटरी पैड्स उपलब्ध ना होने के कारण महिलाओं व बच्चियों में यौन संबंधी व अन्य बीमारियों का खतरा आपदा के उपरान्त अधिक उत्पन्न हो जाता है। आपदा के पश्चात् आर्थिक रूप से कमजोर होने व आपदा शिविरों में निवास करने से बच्चों की शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है, अगर घर पर दो बच्चें हैं तो सीधे तौर पर आर्थिकी कमजोर होने से एक ही बच्चे की शिक्षा का भार वहन हो सकता है इस परिस्थिति में बालक की शिक्षा को वरीयता दी जाती है। खाद्य असुरक्षा के डर से आपदा प्रभावित क्षेत्रों में बालिकाओं का विवाह छोटी आयु में बड़े पुरूषों के साथ कर दिया जाता है या उन्हें तस्करों के हाथों बेच दिया जाता है। मानव तस्करी का शिकार केवल बालिकाएं ही नहीं वरन् महिलाएं भी होती हैं, जब महिलाएं आर्थिक रूप से कमजोर व असहाय रहती हैं उन्हें जबरन तस्करों के हाथों बेच दिया जाता है।[17] समाज में किसी भी प्रकार की प्राकृतिक आपदा के घटित होने के पश्चात् महिलाएं और भी दयनीय स्थिति का अनुभव करती हैं यह विभिन्न प्रकार के साहित्यों के अध्ययन से और भी स्पष्ठ हो जाता है।[18]

प्राकृतिक आपदाओं से महिलाओं के समक्ष सामाजिक

चुनौतियां और संसाधनों तक उनकी पहुंच : विश्व के अधिकतर देशों के सामाजिक मानदंड इस प्रकार महिला असमानता को समर्थित करते हैं कि उनकी खाई को पाटने के लिए अभी लंबे समय का इंतजार करना होगा। आपदा के बचाव कार्यों में भी हमें यह देखने को मिलता है कि पुरूषों को उपचार में महिलाओं से पहले वरीयता मिलने की संभावना अधिक रहती है। महिला असमानता के सामाजिक स्तर को इस उदाहरण से समझा जा सकता है कि बांग्लादेश में आए 1991 में चक्रवात में एक पिता जब अपने बेटा और बेटी दोनों को बहने से रोकने में असमर्थ था तो उसने बेटी को बहने दिया ताकि बेटा जिन्दा रह सके। यह असमानता केवल प्राकृतिक आपदाओं के काल में नहीं आ जाती हैं, इसका अपना एक लम्बा इतिहास रहा है। भेदभावपूर्ण व्यवहार का क्षेत्र जीवन के पहलू तक सीमित नहीं है यह लिंग, आयु विशेष के मूलभूत आवश्यकताओं से लेकर उनके जीवन जीने के प्रत्येक पहलू में सम्मिलित हैं।[19]

'अमृत्य सेन ने कहा है कि - विश्वभर के प्रमाणों से ज्ञात होता है कि भोजन का वितरण परिवार में असमान रूप से लैंगिंक पूर्वाग्रह व आयु से सम्बंधित पूर्वाग्रह के आधार पर वितरित किया जाता है। बंगाल में जब बाढ़ आई थी वहां के सभी खेत व फसलें नष्ट हो गई थीं। उसके परिणामस्वरूप मिलने वाली खाद्य राहत सामग्री से महिलाओं को वंचित रखा गया था।[20] एक ऐसा ही उदाहरण तमिलनाडु में आई सुनामी के समय देखने को मिला, जब बुजुर्ग महिलाओं को राहत सामग्री से इस गलत धारणा के कारण बाहर कर दिया गया था कि उन्हें अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कम भोजन की आवश्यकता होती है।[21] पैन-अमेरिकन हेल्थ ऑर्गनाइजेशन ने आपदा राहत क्षेत्रों, शिविरों में वितरित हुई राहत सामग्री में असमानताओं को ध्यान में रखते हुए एक शोध के आधार पर माना है कि प्राकृतिक आपदाओं में यह वास्तविक साक्ष्य के रूप में उपस्थित है, जो शायद खाद्य वितरण की सामान्य प्रवृति का प्रतिनिधित्व करता है व समाज में स्थित असमान शक्ति संरचना का अंतर्निहित कारण है। पैन-अमेरिकन हेल्थ ऑर्गनाइजेशन का मानना है कि अधिकतर आपदा राहत प्रयासों का तात्पर्य पूर्ण आपदा प्रभावित क्षेत्र के सारे आपदा प्रभावितों को राहत पहुंचाना है। हालांकि जब वह संसाधन वितरण की वर्तमान संरचना के आधार पर वितरण करते हैं तो ज्ञात होता है कि सामाजिक संरचना में अवस्थित पितृसतात्मक अवधारणा के कारण आपदा राहत संसाधनों के उपयोग करने में महिलाओं की स्थिति हाशिए पर है।[22]

निष्कर्ष एवं सुझाव : प्राकृतिक आपदाओं का महिलाओं पर पड़ने वाले सामाजिक प्रभाव का अध्ययन करने से यह परिलक्षित होता है कि इससे महिलाएं विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। महिलाओं की मृत्युदर औसतन पुरूषों से अधिक होना इस बात का प्रमाण है कि आपदा पुरूषों की तुलना में महिलाओं के लिए अधिक जोखिम भरी होती है व समाज द्वारा बनायी गयी मान्यताएं और मापदंड असमानता को बढ़ावा देकर महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। सामाजिक परिवेश में महिलाओं को निर्णय निर्माण की शक्ति प्राप्त ना होने के कारण महिलाएं खुद से जुड़े फैसले नहीं ले पाती हैं और पूर्णतः पुरूषों पर निर्भर रहती हैं, परिणामतः इसका परिणाम महिलाओं को भुगतना पड़ता है। आपदा के पश्चात् महिलाओं को शारीरिक हिंसा, मानसिक प्रताड़ना व अनेक स्वास्थ्य संबंधी विकारों के साथ महिला तस्करी से भी जूझना पड़ता है। लैंगिक पूर्वाग्रहों के कारण आपदा राहत संसाधनों के वितरण में भी महिलाओं की स्थिति हाशिए पर रहती है। महिलाओं को पूर्व से ही सामाजिक स्तर पर निचले पायदान पर रखा गया है सामाजिक मान्यताओं ने प्रारम्भ से ही महिलाओं को ऐसा जकड़ा है कि उन मान्याताओं से बाहर निकलते ही महिला को हेय दृष्टि से देखा जाने लगता है। सामाजिक-राजनीतिक ढांचे के अन्तर्गत महिलायें सबसे कम विमर्श के केन्द्र में रहती हैं तथा आपदा के पश्चात् भी विशेषीकृत महिला केन्द्रित नीति ना होने से यह समस्या समय के साथ बढ़ती जाती है। प्रकृति से समीपता के कारण महिलाएं अपने आस-पास के पर्यावरण को पुरूषों की तुलना में अधिक बेहतर जानती हैं, महिलाएं प्राकृतिक आपदाओं के समय भी एक अच्छी प्रबंधक साबित होती हैं, महिलाओं में प्रबंधन संबंधी क्षमता विकास कौशल को विकसित किया जाना चाहिए और आपदा प्रबन्धन संबंधित प्रशिक्षण में सीधे तौर पर सम्मिलित कर अवसर और आपदा प्रबन्धन का ज्ञान प्रदान किया जाए तो आपदा के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में सुधार हो सकता है और यह महिलाओं में आत्मविश्वास को बढ़ाने का कार्य भी करेगा। धीरे धीरे समाज परिवर्तित हो रहा है परन्तु इसकी गति अभी इतनी नहीं है कि समाज के प्रतिबंधात्मक नियम खत्म हो जाएं,

इसके लिए महिलाओं को लम्बा संघर्ष करना होगा। यह बात ठीक है कि आपदाएं किसी के भी नियंत्रण से बाहर होती हैं जिन पर मानव का नियंत्रण अभी भी शून्य है किन्तु इससे प्रभावित होने वाले एक बड़े वर्ग के रूप में महिलायें प्रायः दोहरी मार झेलती हैं ।

संदर्भ

1. पाठक शेखर, 'दास्तान-ए-हिमालय', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 305
2. Bhadra Subhasis, 'Women in Disasters and Conflicts in India : Interventions in View of the Millennium Development Goals', Int J Diaster Risk Sci (2017) 8:196-207,13 june 2017, p. 196
3. Mauch Cristof, Pfister Christian, 'Natural Disaster, Cultural Responses', Lexington Books, Lanham, 2009, p. 2
4. Ritchie Hannah, Roser Max, Natural Disaster, Our World in Data, 2021, p. 1
5. Bradshaw Sarah, Fordham Maureen, 'Women, Girls and Disasters a Review for DFID', Gov.UK , 2013, p. 7
6. Alam Khurshed & Rahman Md. Habibur, 'The Role of Women in Disaster Resilience', Handbook of Disaster Risk Reduction & Management, World scientific Singapore 2018, p. 702
7. Bradshaw Sarah, op.cit., p.12
8. Bhadra Subhasis, op.cit., p. 201
9. Moreno Jenny, Shaw Duncan, 'Women"s Empowerment Following Disaster : a Longitudinal Study of Social Change', Springer, Nat Hazards 92:205-224, 2018, p. 206
10. Neumayer Eric , Plumper Thomas, 'The Gendered Nature of Natural Disasters:The Impact of Catastrophic Events on the Gender Gap in Life Expectancy, 1981-2002', Annals of the Association of American Geographers , Volume 97, 2007- issue 3, p.13
11. Ibid. p.13
12. Chant Sylvia, 'Re-thinking the 'Feminization of Poverty' in Relation to Aggregate Gender Indices', Journals of human development, 7(2). pp.201-220
13. Gokhale Vasudha, 'Role of Women in Disaster Management : An Analytical Study with Refrence to Indian Society', The 14th World Conference on Earthquake Engineering,October 12-17, 2008, Beijing, China, p.2
14. Ibid., p.2
15. Singh Nikita, 'Gender and Disaster', Academia.Edu, 2020
16. Doocy,S. , Gorokhovich, Y., Burnham, G., Balk, D., and Robinson, C. 'Tsunami Mortality estimates and Vulnerability Mapping in Aceh, Indonesia, American Journal of Public Health, 2007, 97(S1), p. 146
17. Chee, L.. 'Women in Natural Disasters : Indicative Findings in Unraveling Gender in Institutional Responses', An ASEAN Intergovernmental Commission on Human Rights (AICHR) Thematic Study, 2018 p. 2
18. Fothergill Alice, 'Gender, Risk, and Disaster", March 1996, International Journal of Mass Emergencies and Disasters, Vol. 14, No. 1 p.37
19. Neumayer Eric, op.cit., pp.10-11
20. op cit., pp. 10-11
21. Alam Khurshed & Rahman Md. Habibur, 'The role of women in disaster Resilience', Handbook of Disaster Risk Reduction & Management, World Scientific Singapore 2018, p. 702
22. Neumayer Eric, op.cit., p.11

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारतीय राजनीति में अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ मुनेश कुमार

सूचक शब्दः भारतीय राजनीति, अटल बिहारी वाजपेयी, लोकतंत्र, राजनीतिक नेतृत्व, राजनीतिक व्यवस्था।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीति में अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा विभिन्न प्रस्थितियों में निर्वहन की गई भूमिकाओं का विश्लेषण किया गया है। संसद सदस्य, नेता प्रतिपक्ष, विदेश मंत्री, एक राजनीतिक दल के संस्थापक अध्यक्ष से लेकर प्रधानमंत्री तक के रूप में उनके द्वारा दिए गए नेतृत्व का समग्रता में अध्ययन करना ही इस शोध पत्र का केंद्र बिंदु है। शोध पत्र को पूर्ण करने में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तुलनात्मक और वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है।

स्वातंत्रयोत्तर भारत में लोकतंत्र, राजनीतिक व्यवस्था और संवैधानिक तंत्र कई पड़ावों से गुजरता हुआ अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुंचा है। भारतीय लोकतंत्र जिसे विश्व का सबसे विशाल एवं स्पंदनशील तथा तृतीय विश्व का सबसे सफल लोकतंत्र माना जाता है, के विकास में अनेक राजनीतिक नेतृत्वकर्ताओं का अवदान रहा है। भारत में लोकतांत्रिक संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं का सफलतापूर्वक कार्यकरण महज संयोग नहीं है अपितु यह भारत के राष्ट्रीय स्वातंत्रय समर की विरासत, भारतीय संविधान निर्मात्री सभा की सहमति और समायोजन युक्त कार्य शैली, आम जनमानस में संविधान निर्माताओं की आस्था, राजनीतिक नेतृत्व के सतत प्रयासों तथा लोक की सजगता का सूचक और परिणाम दोनों है।[1] उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दीर्घकालिक संघर्ष के दौरान ही भारत के राष्ट्रीय मानस में स्वतंत्र भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप के विषय में आम सहमति बन चुकी थी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ब्रिटिश शासन द्वारा की गई ज्यादतियों और निरंकुश व्यवहार, मानवाधिकारों के गंभीर हनन ने राष्ट्रीय आंदोलनकारियों के मध्य इस विचार को जन्म दिया था कि स्वतंत्र भारत में शासन के लोकतांत्रिक गणतंत्रीय स्वरूप को अपनाया जाएगा। हमारे देश में स्वतंत्रता संग्राम से लोकतंत्र को बेहद प्रोत्साहन मिला; कारण कि इस संग्राम का आधार मुख्यतः विशाल सामान्य जन की सक्रिय भागीदारी थी। विदेशी साम्राज्य से मुक्ति पाने के लिए संग्राम की इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से हमें लोकतंत्रीय गणतंत्र स्थापित करने की प्रेरणा मिली परिणामतया गणतंत्र के उद्घाटन के साथ ही साथ सार्वभौम वयस्क मताधिकार और प्रतिनिधि शासन का भी प्रादुर्भाव हुआ। यह एक ऐसी उपलब्धि है जिसकी प्राप्ति के लिए अन्य देशों को जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं शताब्दियां लग गईं।[2] इस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था के बारे में पहले से विचार स्पष्ट होने के कारण संविधान सभा में इस पर बहुत अधिक वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं पड़ी। भारतीय संविधान के शिल्पियों ने भारतीय आम जनमानस में अपनी अभूतपूर्व आस्था का परिचय देते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया तथा एक ही प्रयास में बिना जाति, धर्म, लिंग, रंग, जन्मस्थान, मूलवंश या अन्य किसी कृत्रिम भेदभाव के सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था को लागू किया।[3] भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था और विशेषतः संसदीय व्यवस्था की सफलताओं के संबंध में न केवल विदेशी बल्कि अनेक स्वदेशी मूल्यांकनकर्ताओं को भारी संदेह था। पश्चिमी जगत के मूर्धन्य राजनीति वैज्ञानिक रॉबर्ट ए0 डहल ने लिखा कि ''हिन्दुस्तान की स्थिति को देखते हुए यह कहना बिल्कुल असंभव लगता है कि यह देश लोकतांत्रिक संस्थाओं को आगे बढ़ा पाएगा। यहाँ किसी तरह की अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं हैं।[4] सरकार के सफलतापूर्वक कार्यकरण एवं राष्ट्र की अधिकांश समस्याओं और चुनौतियों के संवैधानिक एवं विधिक तरीके से संबोधन के उपरांत भी कुछ आलोचक भारतीय राजव्यवस्था के बिखर जाने

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, शहीद मंगल पांडे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय माधवपुरम, मेरठ (उ.प्र.)

की कामनायुक्त भविष्यवाणी करते रहे। प्रख्यात इतिहासकार बिपिन चंद्र ने इन्हें कयामत, अंधकार और सर्वनाश के वाचाल भविष्यवक्ता कहा है।[5]

अनेक देशी एवं विदेशी विद्वानों, विचारकों, विश्लेषकों एवं आलोचकों की चुनौतियों एवं नकारात्मक भविष्यवाणियों के बीच भारत में प्रथम आम चुनाव शुरू हुआ और सफलतापूर्वक संपन्न भी। उसके पश्चात आज तक भारतीय लोकतंत्र 17 लोकसभा तथा अनेक विधानसभा और स्थानीय निकायों के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों का साक्षी बना है। भारतीय लोकतंत्र को यहां तक लाने और उसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक सफल लोकतंत्र को शिखर तक पहुंचाने में जिन महनीय राजनीतिक नेतृत्वकर्ताओं की भूमिका रही है, अटल बिहारी वाजपेयी उनमें प्रमुख हैं। अटल बिहारी वाजपेयी ने भारतीय राजनीति में एक सांसद, नेता प्रतिपक्ष, विदेश मंत्री, एक राजनीतिक दल के संस्थापक अध्यक्ष और अंततः तीन बार प्रधानमंत्री के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन किया। इन राजनीतिक भूमिकाओं से इतर वे विदेश नीति के गंभीर जानकार, लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्षधर, राजनीतिक कुरीतियों पर कुठाराघात करने वाले व्यंग्यकार और अपनी दलीय निष्ठा से ऊपर उठकर सकारात्मक राजनीति करने वाले नेताओं के प्रशंसक रहे। अटल बिहारी वाजपेयी की लोकप्रियता सभी दलों में है। यहां तक कि विपक्ष में भी उनके प्रति सम्मान का भाव है। कांग्रेसी नेता और भारत के दो बार प्रधानमंत्री रहे मनमोहन सिंह ने उन्हें भारतीय राजनीति का भीष्म पितामह कहा। अटल बिहारी वाजपेयी ने कभी अपनी दलीय महत्वाकांक्षाओं के कारण लोकतांत्रिक परंपराओं का हनन नहीं होने दिया। उन्होंने जिन भूमिकाओं में भारतीय राजनीति को अपने अवदान से सिंचित किया उनका उल्लेख निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है-

सांसद के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका- अटल बिहारी वाजपेयी का संसद में पदार्पण दूसरे आम चुनाव 1957 में हुआ। इसके पश्चात उन्होंने अपने संपूर्ण राजनीतिक कैरियर में 4 राज्यों के 6 लोकसभा क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व किया। वे उत्तर प्रदेश के बलरामपुर और लखनऊ, मध्य प्रदेश के ग्वालियर और विदिशा गुजरात के गांधीनगर और दिल्ली के नई दिल्ली संसदीय क्षेत्र से चुनाव जीते। अपने राजनीतिक जीवन का पहला चुनाव उन्होंने लखनऊ संसदीय सीट पर हुए उपचुनाव के रूप में लड़ा जिसमे उन्हें पराजय मिली। लेकिन इस चुनाव ने राजनीतिक गलियारों में उनके नाम की चर्चा को तेज कर दिया। इसके पश्चात लोकसभा के दूसरे आम चुनाव 1957 में अटल बिहारी वाजपेयी 3 लोकसभा सीटों लखनऊ, मथुरा और बलरामपुर से चुनाव लड़े। मथुरा से जमानत जब्त हुई, लखनऊ में हार मिली और बलरामपुर से जीत।[6]

तीसरे लोकसभा चुनाव 1962 में लखनऊ सीट से चुनाव मैदान में उतरे लेकिन जीत हासिल नहीं कर सके; इसके बाद में राज्यसभा सदस्य के रूप में चुनाव में जीतकर संसद पहुंचे। 1971 में ग्वालियर और 1977, 1980 के चुनावों में नई दिल्ली संसदीय क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया। 1984 में अटल बिहारी वाजपेयी को ग्वालियर में माधवराव सिंधिया के सामने हार का सामना करना पड़ा। 1991 के आम चुनाव में लखनऊ और विदिशा से चुनाव जीते, 1996 में गांधीनगर और लखनऊ से चुनाव में विजय मिली। 1998 और 1999 में लखनऊ से सांसद रहे। वह संसद में बोलने का कोई अवसर नहीं चूकते थे, कई बार तो लोकसभा अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित करने के लिए उन्हें वॉक आउट करना पड़ता था। संसद सदस्य के रूप में उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों का फलक बहुत विस्तृत है। इसमें पूजा स्थानों का दुरुपयोग, गरीबी, राष्ट्रधर्म, तिब्बत पर चीन का आक्रमण, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, पाकिस्तान का भारत विरोधी प्रचार, गोवध निषेध, सरकारी तंत्र का दुरुपयोग, शिमला समझौता की आलोचना, राम जन्मभूमि, हिंदी की दयनीय स्थिति, पूर्वी पाकिस्तान के हिंदू, पर्यावरण संरक्षण, भारतीय विज्ञान की चुनौतियां, भारत का परमाणु क्षमता संपन्न राष्ट्र होना, भारत की विदेश नीति, भारतीय पंथनिरपेक्षता, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, लोकतंत्र, न्यायपालिका, आतंकवाद, आणविक शक्ति, अस्पृश्यता आदि रहे। अटल बिहारी वाजपेयी को संसद और संसदीय वाद-विवाद में उनके द्वारा दिए गए अद्‌भुत योगदान के लिए 1994 में सर्वश्रेष्ठ सांसद पुरस्कार से विभूषित किया गया।[7]

राजनीतिक दल के नेता के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका- अटल जी का मत था कि लोकतंत्र की सफलता के लिए दलीय पद्धति का सुदृढ़ होना बहुत आवश्यक है। भारत जैसे विशाल और विविधता पूर्ण देश में ब्रिटेन की तरह द्विदलीय पद्धति तो व्यावहारिक नहीं जान पड़ती। किंतु यह जरूरी है कि जो भी दल हों वे नीतियों और कार्यक्रमों पर आधारित हों, लोकतांत्रिक

तरीकों से चलें, उनमें नियमित रूप से सदस्यता हो, अनिवार्यतः संगठनात्मक चुनाव हों और वे अपने सुनिश्चित घोषणा पत्र के आधार पर मतदाताओं के समक्ष जाकर उनका समर्थन प्राप्त करें।[8] एक दल के नेता के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी की भारतीय राजनीति में भूमिका सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में महत्वपूर्ण है। स्वतंत्र भारत की दलीय व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए प्रोफेसर रजनी कोठारी ने इसे कांग्रेस सिस्टम[9] जबकि मॉरिस जॉन्स ने एक दल प्रधान प्रणाली की संज्ञा दी।[10] इसका कारण स्पष्ट था कि उस समय तक भारत में कांग्रेस का लगभग एकछत्र शासन था। अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य तथा 1968 से 72 तक अध्यक्ष रहे । भारतीय जनसंघ के सदस्यों की संख्या सदन में कम होने के बावजूद वे तत्कालीन कांग्रेसी सरकारों के लिए एक वैचारिक चुनौती अवश्य बने रहे। इसके पश्चात वे जनता पार्टी के संस्थापक सदस्य रहे। 1977 में जनता पार्टी बहुमत में आयी और संघ में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी। अपने अंतर्कलहों और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण 1979 में यह सरकार गिर गई। इसके पश्चात 1980 में अटल बिहारी वाजपेयी ने एक नए राजनीतिक दल, भारतीय जनता पार्टी का गठन किया। भारतीय जनता पार्टी ने अपने जनाधार को विस्तार देना शुरू किया; परिणाम यह हुआ कि न केवल भारतीय दलीय व्यवस्था के एकदल प्रधान स्वरूप में परिवर्तन आया बल्कि आज की स्थिति में रजनी कोठारी के मुहावरे का प्रयोग 'भाजपा सिस्टम' के लिए किया जाने लगा है। किसी दल विशेष के खिलाफ नकारात्मक एजेण्डे पर राजनीतिक दल खड़ा करने के बजाय उन्होंने हिंदुत्व, सकारात्मक पंथनिरपेक्षता और विकास के आधारों पर एक राजनीतिक दल को खड़ा किया और लोकप्रिय बनाया। पंडित अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय संसद के दोनों सदनों के सदस्य रहे, नेता प्रतिपक्ष रहे, विदेश मंत्री रहे और तीन बार भारत के प्रधानमंत्री भी। इससे इतर उन्होंने एक ऐसे राजनीतिक दल को खड़ा किया जिसने भारतीय राजनीति में कांग्रेस के एकछत्र वर्चस्व को चुनौती दी और भारतीय दलीय व्यवस्था की प्रकृति में व्यापक बदलाव का कारक बना। अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 1980 में स्थापित भारतीय जनता पार्टी ने रजनी कोठारी के उस प्रतिमान या विश्लेषण को उलट दिया जिसमें उन्होंने भारतीय दलीय व्यवस्था की प्रकृति का सैद्धांतीकरण करते हुए इसे कांग्रेस सिस्टम कहा था। आज चुनावी राजनीति में भारतीय जनता पार्टी के प्रदर्शन ने अकादमिक जगत और राजनीति मर्मज्ञों के बीच एक नई बहस को जन्म दिया है और भारतीय दलीय व्यवस्था को अब रजनी कोठारी के विश्लेषण की तर्ज पर भाजपा व्यवस्था या भाजपा सिस्टम कहने की नौबत आ गई है। नीचे दिए गए रेखाचित्र से यह स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाती है-

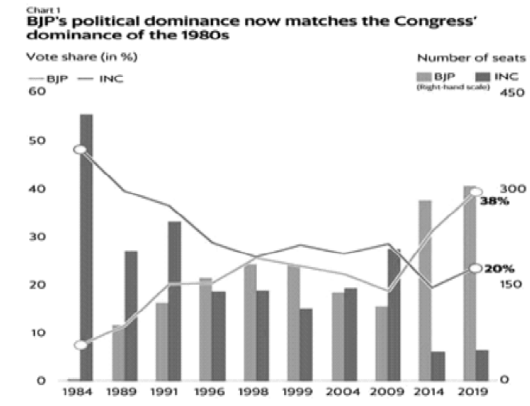

स्रोत : https://www.livemint.com/elections/lok-sabha-elections/ten-charts-that-explain-the-2019-lok-sabha-verdict-1558636775444.html[11]

उपर्युक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि 1984 में अपनी चुनावी यात्रा शुरू कर भारतीय जनता पार्टी ने 2004 एवं 2009 के अपवाद को छोड़कर निरंतर अपने जनाधार का विस्तार किया है। 1984 में भारतीय जनता पार्टी को जहां 7.74 प्रतिशत वोट मिले वहीं 2019 में 38 प्रतिशत मतदाताओं ने भाजपा पर विश्वास जताया है। इसके विपरीत 1984 में 415 सीटों पर लगभग 48 प्रतिशत वोट के साथ विजय प्राप्त करने वाली कांग्रेस 2019 में महज 52 सीटों पर सिमट गई है। यह भारतीय दलीय व्यवस्था में एक रेखांकनीय बदलाव है और इसमें अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका निःसंदेह महनीय है। लालकृष्ण आडवाणी ने लिखा है कि, "मैंने और अटल जी ने सहकर्मियों के साथ 1980 में भारतीय जनता पार्टी के गठन के लिए काम किया। बीजेपी की तेजोमय प्रगति ने देश की राजनीति को द्विध्रुवीय राजनीतिक व्यवस्था में बदला।[12] अपने प्रथम चुनाव में

भारतीय जनता पार्टी को महज 2 सीटों पर विजय मिली और पिछले आम चुनाव 2019 में 303 सीटों पर। भारतीय दलीय व्यवस्था की प्रकृति में आमूलचूल परिवर्तन निश्चित ही भारतीय राजनीति में उनकी भूमिका का एक अहम साक्ष्य है।

विपक्षी के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी की भूमिका– जेनिंग्स के अनुसार, "यदि यह जानना हो कि अमुक देश की जनता स्वतंत्र है या नहीं तो यह जानना आवश्यक है कि वहां पर विरोधी दल है या नहीं और है तो कहां पर है।"[13] आइवर जेनिंग्स ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में विपक्ष की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि, "महागरिमामयी का विपक्ष उसकी वैकल्पिक सरकार होता है।"[14] टायर्नी ने कहा है कि विपक्ष का दायित्व है कोई प्रस्ताव न रखना और प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध कर सरकार को बाहर कर देना।[15] लार्ड रेनडोल्फ चर्चिल ने स्वीकार किया कि विपक्ष का कार्य जैसा कि मैनें समझा विरोध करना है न कि सरकार का समर्थन। लेकिन जेनिंग्स का मानना है कि दोनों ही वाक्य पुरातन हैं। विपक्ष की भूमिका कहीं अधिक जटिल है।[16] विपक्ष का नेता एक वैकल्पिक प्रधानमंत्री की भूमिका का निर्वाह करता हुआ 'छाया मंत्रिमंडल' का भी निर्माण करता है जो मंत्रिमंडल की ही भांति शासन के विभिन्न विभागों का बंटवारा करता है और अपनी नियमित रूप से बुलाई गई बैठकों में नीति संबंधी निर्णय लेता है।[17] भारत में प्रत्येक सदन में विपक्ष के सबसे बड़े दल के नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी जाती है किंतु उस दल के सदस्यों की संख्या कितनी होनी चाहिए जो सदन की कार्यवाही को चलता रख सके अर्थात सदस्य संख्या सदन की बैठक के लिए नियत गणपूर्ति से कम नहीं होनी चाहिए। 1977 से लोकसभा तथा राज्यसभा में विपक्ष के नेताओं को कतिपय आधिकारिक पदस्थिति तथा कैबिनेट मंत्री के बराबर वेतन, संसद भवन में कार्यालय आदि जैसी सुविधाएं दी जाती हैं वेतन तथा भत्ते संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम 1977 द्वारा विनियमित होते हैं।[18] इस प्रकार संसदीय लोकतंत्र में चाहें द्विदलीय व्यवस्था हो या बहुदलीय व्यवस्था हो विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके कारण सरकार निरंकुश नहीं हो पाती और न संसदीय शक्ति का ह्रास ही हो पाता है।[19]

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के दौरान लोकसभा में 15 मई 1957 को अपने संसदीय जीवन के पहले भाषण में अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा था, "मैं विरोधी दल में खड़ा हूं लेकिन विरोध के लिए विरोध मेरा उद्देश्य नहीं हो सकता। इस सदन में भारतीय जनसंघ के सदस्यों की संख्या कम है किंतु हमारे सामने स्वर्गीय श्यामा प्रसाद मुखर्जी का आदर्श है और हम इस बात का प्रयत्न करेंगे कि उससे अनुप्राणित होकर राष्ट्र निर्माण के महान यज्ञ में अपना भी योगदान दें।[20] स्वयं से विपरीत विचारधारा रखने वाले दलों और उनके नेताओं से भी अटल बिहारी वाजपेयी का व्यवहार बेहद सहज, मधुर और सम्मानजनक था। वे वर्तमान में सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों के लिए एक सबक या आदर्श प्रारूप हैं। अटल जी मुद्दों पर बहुत पैनी नजर रखते थे और मौका मिलते ही अपनी प्रांजल भाषा, व्यंग और चुटकियों के माध्यम से अपना पक्ष रखते थे। वाजपेयी संविधान को सर्वोच्च मानते और उसका सम्मान करते थे। अटल जी कहते थे कि पार्टी तोड़कर सत्ता के लिए नया गठबंधन करके अगर सत्ता हाथ में आती है तो मैं ऐसी सत्ता को चिमटे से भी छूना पसंद नहीं करूंगा।[21] यह सबसे ऊंचा प्रतिनिधि संस्थान है। शब्दों के प्रयोग में तो शालीनता होनी चाहिए; एक स्थान तो ऐसा होना चाहिए जहां गहरे मतभेद भी शालीन भाषा में प्रकट हो सकें और यह ऐसा ही स्थान है।[22]

2 अप्रैल 1998 को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुए अटल जी ने कहा था लोकतंत्र में प्रतिपक्ष की व्यवस्था है और प्रतिपक्ष के बिना लोकतंत्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। 28 मार्च 1998 को मंत्रिमंडल में विश्वास मत के प्रस्ताव का उत्तर देते हुए अटल जी ने कहा था कि यह इतना बड़ा देश है, इतना प्राचीन देश है, इतनी बड़ी जनसंख्या और इतनी विविधताएं हैं तो क्या यह देश बिना आम सहमति के चल सकता है? आगे बढ़ सकता है? नहीं बढ़ सकता। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुए 31 मार्च 1998 को अटल जी ने कहा हम राजनीतिक बिखराव को इस सीमा तक न जाने दें कि इस देश में मिलकर काम करना, विशेषकर बुनियादी सवालों पर मिलकर काम करना असंभव हो जाए।

2008 में वाजपेयी के विषय में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि वे 'राजनीति के भीष्म पितामह' हैं।[23] उनके निधन के बाद बहुतों ने उन्हें अजातशत्रु की संज्ञा दी। आज भी विपक्ष के सदस्य कहते हैं वाजपेयी की बात और थी। किसी भी तरह का व्यक्ति हो उसके दिल में वाजपेयी के लिए स्नेह और आदर की भावना थी। चंद्रशेखर जो

जननायक के नाम से लोकप्रिय हुए, तो सदैव उनको गुरु कहकर संबोधित करते थे। उनके प्रति विपक्ष और विपक्ष के प्रति उनके सहज और सकारात्मक रवैये का प्रमाण यह भी है कि जब एन.एम घटाटे ने "संसद में वाजपेयी के चार दशक" (फोर डिकेड्स इन पार्लियामेंट) के विमोचन का आयोजन किया तो मुख्य अतिथि कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता और उस समय के लोकसभा अध्यक्ष एल.के पाटिल थे।[24] ग्रंथों का लोकार्पण करते हुए उन्होंने अत्यंत भावभीने शब्दों में कहा कि जब वह हैदराबाद में विद्यार्थी थे वह हर बार वाजपेयी को सुनने को आतुर रहते थे उनके व्यक्तित्व, उनके व्यवहार और वाणी की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की। हर दृष्टि से अजातशत्रु उनके संबंध में औपचारिक नहीं सार्थक और सर्वमान्य है। अटल जी की क्षमता का एक और सबूत 26 जनवरी 1992 को आया जब उन्हें कांग्रेस के नेतृत्व वाली नरसिंह राव सरकार द्वारा पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया, जो उस समय सत्ता में थी। यह इस अर्थ में असामान्य कार्य था कि सत्तारूढ़ दल के द्वारा विपक्ष को विभूषित किया जाना कोई सामान्य घटना नहीं थी। वास्तव में नरसिंह राव ने अटल जी को 1993 में जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में आधिकारिक भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में नियुक्त किया था, यह एक महत्वपूर्ण बैठक थी क्योंकि भारतीय प्रतिनिधिमंडल को कश्मीर में मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोपों का सामना करना पड़ा था।[25]

कवि हृदय अटल जी अजातशत्रु हैं। इतने लंबे राजनीतिक जीवन में कोई उनका शत्रु नहीं बना। वे लगभग आधी शताब्दी तक हमारी संसदीय प्रणाली के बेजोड़ नेता रहे। चंद्रशेखर तो सदैव उनको गुरु कहकर संबोधित करते थे।[26] वे अपनी सौम्यता से सबको अपना बना लेते थे। वे कहते थे कि मतभेद हो सकते हैं पर मन भेद नहीं होना चाहिए।[27] उनकी अंतरराष्ट्रीय ख्याति तथा सभी दलों में उनके सम्मान का ही प्रमाण है कि लगभग सभी प्रमुख राज्यों के राष्ट्र प्रमुखों तथा सभी राजनीतिक दलों के नेताओं ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की तथा उनकी मृत्यु को देश, दुनिया तथा लोकतंत्र के लिए अपूर्णीय क्षति बताया।[28] वाजपेयी हिंदू राष्ट्रवादी ब्लॉक से शायद एकमात्र नेता बन जाते हैं जिन्होंने इतनी व्यापक और विस्मयकारी प्रशंसा जीती।[29] वाजपेयी उदारवादी थे, धर्मनिरपेक्ष थे, आधुनिक सोच रखते थे और सारी पार्टियां उनकी इज्जत करती थीं।[30] अटल बिहारी वाजपेयी ने कभी भी राजनीति को 51 बनाम 49 का खेल नहीं माना।[31]

भारतीय विदेश नीति एवं अटल बिहारी वाजपेयी- विदेश नीति अटल बिहारी वाजपेयी का पसंदीदा विषय रहा। अटल जी ने स्वयं लिखा है विदेश नीति पर मेरे पहले भाषण ने ही संसद का ध्यान आकृष्ट किया। सदन में अंग्रेजी छाई रहती थी। विदेश नीति पर तो अधिकांश भाषण अंग्रेजी में ही होते थे। समाजवादी दल के ब्रजराज सिंह जरूर हिंदी में बोलते थे। मेरी प्रांजल भाषा और धाराप्रवाह शैली सदस्यों को पसंद आती थी। अटल जी का लोकसभा में दिया गया पहला भाषण इतना प्रभावशाली था कि तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अनायास यह टिप्पणी कर उनका मनोबल बढ़ाया कि 'यह नौजवान एक दिन देश का प्रधानमंत्री बनेगा'।[32] 20 अगस्त 1958 को प्रधानमंत्री नेहरु जी ने पूरी बहस का उत्तर देते हुए अंग्रेजी भाषण को समाप्त करने के बाद अध्यक्ष से हिंदी में कुछ कहने की अनुमति मांगी। सदस्यों ने तालियां बजाकर स्वागत किया। जब नेहरू जी ने अटल जी का नाम लेकर हिंदी में बोलना शुरू किया तो पुनः प्रसन्नता प्रकट की। नेहरू जी का भाषण इस प्रकार था- "कल जो भाषण हुए उनमें से एक भाषण श्री वाजपेयी जी का भी हुआ। अपने भाषण में उन्होंने एक बात कही थी और यह कहा था मेरे ख्याल में कि जो हमारी विदेश नीति है वह उनकी राय में सही है। मैं उनका मशकूर हूं कि उन्होंने यह बात कही लेकिन एक बात उन्होंने और भी कही और कहा कि बोलने के लिए वाणी होनी चाहिए और चुप रहने के लिए वाणी और विवेक दोनों चाहिए; इस बात से मैं पूरी तरह सहमत हूँ।[33] उपर्युक्त प्रसंग यह दर्शाता है कि किस तरह अटल बिहारी वाजपेयी के रचनात्मक आगातों को पंडित नेहरू ने स्वीकार किया और उसकी सराहना भी की। 1991 में तत्कालीन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ भारत आए उनके आमंत्रण पर वाजपेयी उनसे मिलने अशोक होटल गए। नवाज शरीफ ने कहा कि वाजपेयी जी मैं पहले आपसे कभी नहीं मिला लेकिन मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि जब आप विदेश मंत्री थे तो उस समय जैसे दोनों देशों के मधुर एवं सौहार्दपूर्ण संबंध कभी नहीं हुए।[34] अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय विदेश नीति के मूलभूत सिद्धांतों में विश्वास रखते थे एवं उन्हें उपयोगी मानते थे। अटल जी अपने मत को लेकर स्पष्ट रहते और उतनी ही स्पष्टता से उनको उजागर करते। पाकिस्तान संबंधों को लेकर उन्होंने कहा कि मैं पाकिस्तान से दोस्ती करने के खिलाफ नहीं हूँ;

सारा देश पाकिस्तान से संबंधों को सुधारना चाहता है लेकिन जब तक कश्मीर पर पाकिस्तान का दावा कायम है तब तक शांति नहीं हो सकती।

विदेश मंत्री के रूप में अगस्त 1978 में राज्यसभा में वाद-विवाद के दौरान अटल जी ने स्वीकार किया कि हम गुटनिरपेक्षता की नीति को स्वीकार करते हैं क्योंकि केवल यही नीति है जो भारत की आजादी के पश्चात भारत स्वीकार कर सकता था। अपनी सरकार के पक्ष को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि हम गुटनिरपेक्षता की नीति पर कायम है क्योंकि यह राष्ट्रहित में सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यह शांति की नीति है, गुटनिरपेक्षता तटस्थता नहीं है। हम युद्ध और शांति के बीच नहीं रह सकते हैं।[35] अपने समय की गुटनिरपेक्षता को उन्होंने वास्तविक गुटनिरपेक्षता[36] की नीति कहा। 1979 में चीन की यात्रा की और संबंधों में सुधार की नई उम्मीद जगाई। 10 अक्टूबर 1978 को संयुक्तराष्ट्र महासभा में बोलते हुए उन्होंने कहा कि भारत का मानना है कि आंशिक उपाय जैसे कि परमाणु मुक्त क्षेत्र बनाना जिसमें न्यूक्लियर हैव नोटस सम्मिलित हैं से कोई वास्तविक सुरक्षा की भावना पैदा नहीं होने की उम्मीद नहीं है जब तक कि साथ-साथ निःशस्त्रीकरण की दिशा में समुचित कदम न उठाए जाएं।[37] भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने इस संबंध में कहा थाः "अटल के अंतरराष्ट्रीय संबंधों के ज्ञान और विदेश मंत्री के रूप में उनके अनुभव ने उन्हें आज दुनिया में अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में अग्रणी विशेषज्ञों में से एक बना दिया है।"[38]

विदेशों में बसे भारतीयों के हितों पर अटल जी हमेशा बोलते थे। 2 सितंबर 1957 को विदेश नीति पर अपने पहले भाषण में उन्होंने कहा था कि मैंने प्रारंभ में विदेशों में जो भारतीय बसे हुए हैं उनका उल्लेख किया। मुझे खेद है कि उन भारतीयों की और हमें जितना ध्यान देना चाहिए था हमने नहीं दिया है। विदेशों में पचास लाख भारतीय हैं। बर्मा में आठ लाख हैं और उनकी संख्या कम होती जा रही है। मॉरीशस में 64 प्रतिशत भारतीय हैं वे हमारे अधिक निकट आ सकते हैं। लेकिन मुझे यह देखकर खेद हुआ है कि हमारे जो भी कमिश्नर मॉरीशस में जाते हैं वे वहां के लोगों की पार्टीबंदी में फंस जाते हैं। ब्रिटिश गायना और फ़िजी में जो भारतीय हैं वे 44 और 45 फीसदी हैं। ये सभी भारत माता के पुत्र हैं और समान संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। उनको हमें निकट लाने का प्रयास करना चाहिए उनकी और हमें जितना ध्यान देना चाहिए उतना हम नहीं दे पाए हैं।[39]

प्रधानमंत्री के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी- अटल बिहारी वाजपेयी भारत के प्रथम गैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री थे जिन्होंने 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। वे 1996 में 13 दिन के लिए, 1998-1999 में 13 महीने के लिए तथा 1999-2004 में पूरे 5 वर्ष के कार्यकाल के लिए भारत के प्रधानमंत्री रहे। प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने गठबंधन की सरकार को भी जिस सहजता से 5 वर्ष तक चलाया वह निश्चय ही राजनीतिक दलों के लिए एक बड़ा सबक है। प्रधानमंत्री के रूप में उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियों में पोखरण परीक्षण द्वितीय (मई 1998) और उससे उपजी अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों एवं प्रतिबंधों का सामना करना, कारगिल विजय, स्वर्णिम चतुर्भुज योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, सर्व शिक्षा अभियान, लाहौर समझौता, दिल्ली से लाहौर तक सदा-ए-सरहद नाम से बस की शुरुआत, पड़ोसी देशों से संबंधों में सुधार, संविधान समीक्षा आयोग का गठन आदि रहीं। उदार रवैया अपनाते हुए अटल जी ने सबको साथ लेकर चलने पर बल दिया। गुजरात दंगों के दौरान उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को राजधर्म का पालन करने की नसीहत दी। प्रधानमंत्री के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी ने दूरसंचार, राष्ट्रीय राजमार्गों सहित अवसंरचना, ग्रामीण सड़कों, हवाई अड्डों और बंदरगाहों, निजी क्षेत्र की भागीदारी, विनिवेश सहित बुनियादी क्षेत्रों में मौलिक रूप से उन्होंने 'मिशन कनेक्ट इण्डिया' का नेतृत्व किया। उनके उद्यम से देश आज भी समृद्ध लाभांश प्राप्त कर रहा है। अटल जी ने अपने समकालीन शास्त्री जी के जय जवान-जय किसान के नारे के महत्व को समझने के लिए जय विज्ञान को जोड़ा।[40] वेंकैया नायडू ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए लिखा कि भारत रत्न श्री अटल बिहारी वाजपेयी का व्यक्तित्व, वक्तृत्व, कर्तृत्व, नेतृत्व सभी संयुक्त रूप से दीर्घकाल तक स्मरण किए जाएंगे। वह एक दार्शनिक सम्राट के रूप में थे। एक राजा के रूप में जिसने अपने वचनों और कर्मों से सभी भारतीयों के हृदय पर राज किया। इस तरह के राजनेता और दूरदर्शी इस धरती पर विरले ही विचरणशील होते हैं।[41]

अटल बिहारी वाजपेयी अपने अभियान में जुटे रहने वाले व्यक्ति थे, जो अपनी दृष्टि, शब्दों और कर्मों से आम सहमति बनाने वाले महान नेता बने। वे गठबंधन वाली सरकार, सामंजस्य की राजनीति तथा समावेशी विकास के जनक बने। अटल जी ने दुनिया को अटल की मिसाल के एक नए राजनीतिक व्यवहार को दिखाया है।[42] अटल

बिहारी वाजपेयी भारतीय राजनीति के उन नेतृत्वकर्ताओं में से हैं जिन्होंने लगभग सभी महत्वपूर्ण दायित्वों में भूमिका का निर्वहन किया और भारतीय राजनीति को नवीन दिशा दी। उन्होंने भारत के समग्रोत्थान के लिए सहमति एवं समायोजन की राजनीति पर बल दिया। भारतीय लोकतंत्र, भारतीय दलीय व्यवस्था एवं संसदीय परंपराओं को उन्होंने गंभीरता से प्रभावित किया। उन्होंने अपने जीवन के लगभग पांच दशक भारतीय राजनीति को दिए। भारतीय लोकतंत्र को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाने में उनकी भूमिका निश्चय ही महत्वपूर्ण है। राजनेताओं की भावी पीढ़ियों के लिए उनका नेतृत्व एक आदर्श प्रारूप की तरह है। विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं और निर्णयों का गंभीर विश्लेषण भावी नीति-नियंताओं के लिए मार्गदर्शक होगा।

सन्दर्भ

1. ऑस्टिन, ग्रैनविल 'भारत का संविधान : राष्ट्र की आधारशिला' वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2019 पृ. 454-463
2. बीथम, डेविड एवं केविन बॉयले, 'लोकतंत्र : 80 प्रश्न और उत्तर' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2015 पृ. 17 (भूमिका)
3. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 326
4. गुहा, रामचन्द्र, 'भारत गाँधी के बाद : दुनिया के विशालतम लोकतंत्र का इतिहास', पेंगुइन रेंडम हाउस, इण्डिया, 2011 पृ. XV (प्रस्तावना)
5. चंद्र, बिपिन, 'आजादी के बाद का भारत', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 2017 पृ. 05
6. वाजपेयी अटल बिहारी, 'मेरी संसदीय यात्रा', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली खंड - 1 (संपादक ना.मा. घटाटे) वर्ष 2000 पृ. 1-2
7. https://en.wikipedia.org/wiki/Atal_Bihari_Vajpayee (Retrieved on 11:45 Dated 18 May 2022)
8. साहित्य अमृत (विशेषांक) दिसंबर 2018 ISSN 2455-1171 पृ.25
9. Kothari Rajni, 'Asian Survey', Vol. 4, No. 12, December 1964, pp. 1161-1173
10. चौधरी बी.एन. एवं युवराज कुमार (संपा.) 'भारत में राजनीतिक प्रक्रियाएं', 'हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय', दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013, पृ. 5
11. https://www.livemint.com/elections/lok-sabha-elections/ten-charts-that-explain-the-2019-lok-sabha-verdict-1558636775444.html (Retrieved on 10:45 AM Dated 18 May 2022)
12. कथूरिया, चंद्रगुप्त (संपादित) 'शत शत नमन', संस्कार भारती, मेरठ 2018 पृ. 8
13. सिंह, अनिल कुमार, 'संसदीय जनतंत्र में विपक्ष की अवधारणाः एक अवलोकन' भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका वर्ष : पंचम, अंक : प्रथम, जनवरी-जून 2013 पृ. 311
14. Jennings, Sir Ivor, 'Parliament' Cambridge University Press 1970, p.79
15. Ibid, p.167
16. Ibid, p.167
17. सिंह, अनिल कुमार, पूर्वोक्त पृष्ठ 322-323
18. कश्यप, सुभाष 'हमारी संसद' नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2008 पृ. 225
19. सिंह, अनिल कुमार, पूर्वोक्त पृ. 331
20. वाजपेयी अटल बिहारी, 'मेरी संसदीय यात्रा' पूर्वोक्त, पृ. 284
21. वाजपेयी, अटल बिहारी, (संपादक चंद्रिका प्रसाद शर्मा) 'शक्ति से शांति' किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 175
22. वही, पृ. 202
23. साहित्य अमृत, पूर्वोक्त, पृ. 11
24. वही, पृ. 11
25. Nag, Kingshuk, 'Atal Bihari Vajpayee : A Man for all Seasons' Rupa Publications, New Delhi, 2017 pp.4-5
26. साहित्य अमृत, पूर्वोक्त, पृ. 11
27. ठाकुर, जनार्दन, 'ये नये हुक्मरान' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1978 पृ. 136
28. वही, पृ. 159-163
29. N.P, Ullekh, 'The Untold Vajpayee : Politician and Paradox' Penguin Books, India 2018 Page 45
30. संघवी, वीर, 'जनादेशः जनता का आदेश' यात्रा बुक्स वेस्टलैंड लिमिटेड, नई दिल्ली 2015 पृ. 93
31. साहित्य अमृत, पूर्वोक्त, पृ. 40
32. कथूरिया, चंद्रगुप्त, पूर्वोक्त पृ. 34
33. अटल बिहारी वाजपेयी (संपादक चंद्रिका प्रसाद शर्मा) पूर्वोक्त पृ. 110-111
34. http://hdl.handle.net/10603/327492 (Retrieved on 10:20 AM Dated 18 May 2022)
35. http://hdl.handle.net/10603/356358 (Retrieved on 09:45 AM Dated 18 May 2022)
36. साहित्य अमृत, पूर्वोक्त, पृ.34
37. https://www.un.org/ga/search/view_doc.asp?symbol=A/33/PV.29 (Retrieved on 10:45 AM Dated 18 May 2022)
38. http://hdl.handle.net/10603/356358 (Retrieved on 10:00 AM Dated 18 May 2022)
39. साहित्य अमृत, पूर्वोक्त, पृ.27
40. पूर्वोक्त, पृ. 65
41. पूर्वोक्त, पृ. 66
42. पूर्वोक्त, पृ. 85

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी–जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

पाकिस्तान के लिए अच्छा व बुरा तालिबान

❑ महेश जगोठा
❖ राहुल सिंह

सूचक शब्द : शरीयत कानून, तालिबान, तहरीक-ए-तालिबान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, आतंकवाद।

प्रस्तुत शोध पत्र मुख्यतः अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन के सत्ता संभालने व 31 अगस्त 2021 में अमेरीकी सेनाओं की वापसी की घोषणा के बाद से अफगानिस्तान में तालिबान के फैलाव से पैदा हुए नए वैश्विक समीकरण के अंतर्गत पाकिस्तान द्वारा इसका समर्थन करने की अनेक घटनाओं व सूचनाओं के प्रसारित होने पर तालिबान को लेकर पाकिस्तान की नीति व चरित्र को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। जिसके अंतर्गत उसके हितों के हिसाब से उसके लिए कौन सा तालिबान अच्छा है, व कौन सा बुरा है को जानने का प्रयास किया गया है। साथ ही आतंकवाद को लेकर पाकिस्तान किस प्रकार के दोहरे मानदंडों को अपनाता है को भी विस्तृत रूप में समझने का प्रयत्न किया गया है जो कहीं न कहीं आतंकवाद को लेकर उसकी मानसिकता को उजागर करता है।

आज आतंकवाद अपने वैश्विक प्रसार से विश्व के सभी लोकतांत्रिक देशों के लिए सबसे बड़ी चुनौती बना हुआ है, जो असंवैधानिक व अलोकतांत्रिक तरीकों से भय उत्पन्न करके अपने व्यक्तिगत, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्ति अपने तरीके से करता है। आतंकवाद के इस प्रसार को यदि हम दक्षिण एशिया के संदर्भ में देखें तो वर्तमान समय में दक्षिण एशिया में शांति एवं स्थिरता की स्थापना में यह एक सबसे बड़ी चुनौती है, जिसकी पहचान का कारण अब विभिन्न हिंसक धार्मिक अतिवादी समूह बने हुए हैं जिसमें तालिबान, अलकायदा व लस्कर-ए-तैयबा इत्यादि जैसे संगठन प्रमुख हैं।[1] इस प्रकार अतिवादी या आतंकवाद के संदर्भ में यदि हम अफगानिस्तान में तालिबान का वर्णन करें तो अफगानिस्तान के संदर्भ में इस बात का अनुमान पहले से ही लगाया जाता था कि यदि अमेरिका इस क्षेत्र से अपने सैनिकों की वापसी करेगा तो वैश्विक समीकरणों के साथ-साथ दक्षिण एशियाई समीकरणों में भी वृहद रूप से बदलाव देखने को मिलेगा, साथ ही अफगानिस्तान को भी अनेक रूपों में अस्थिरता का सामना करना पड़ेगा। नयें अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन के द्वारा सत्ता में आने के बाद से यह घोषणा की गई कि अमेरिका द्वारा अपनी सेनाओं को 31 अगस्त 2021 तक हर हाल में अफगानिस्तान से बाहर निकाला जाएगा। अमेरिका द्वारा इस प्रकार की घोषणा के बाद से दक्षिण एशिया में अस्थिरता का जो अनुमान लगाया जा रहा था उसका पहला शिकार बना है पाकिस्तान। 13 जुलाई 2021 में विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले समाचार के अनुसार पाकिस्तान के खैबर पख्तूनख्वा प्रांत स्थित कुर्रम में आतंकवादियों के द्वारा हमला किया गया जिसमें पाकिस्तान सेना के कैप्टेन समेत 11 जवानों की मौत हो गई व कई जवान घायल भी हो गए। वहीं मीडिया रिर्पोट के अनुसार कई जवानों को अगवा भी कर लिया गया। जिसके लिए पाकिस्तान के द्वारा तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान (टीटीपी) को उत्तरदायी माना गया। बताया जा रहा है कि यह हमला तब हुआ जब पाकिस्तानी सेना की ओर से कुर्रम इलाके में टीटीपी के आतंकियों के खिलाफ ऑपरेशन चलाया जा रहा था जिसमें घात लगाकर बैठे जवानों पर आतंकवादियों ने हमला कर दिया। पाकिस्तान में टीटीपी काफी लंबे समय से आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देता आया है। यह वही संगठन है जिसने पेशावर में 16 सितम्बर 2014 को आर्मी स्कूल पर आतंकी हमला किया था जिसमें तकरीबन 200 मासूम बच्चों की जान चली गई थी।[2]

वहीं यदि हम अफगानिस्तान में अमेरिकी सेनाओं की

❑ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, हे०न०ब० केन्द्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)
❖ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, हे०न०ब० केन्द्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

पूर्ण वापसी की तिथि 31 अगस्त 2021 के बाद से अफगानिस्तान में तालिबान के द्वारा 15 अगस्त 2021 को काबुल पर कब्जे व 16 अगस्त 2021 को अफगानिस्तान पर उसके नियंत्रण की औपचारिक घोषणा के बीच की समयावधि में तालिबान को लेकर पाकिस्तान की भूमिका की बात करें तो, अनेक अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट व समाचार पत्रों मे प्रसारित खबरों के अनुसार अफगानिस्तान पर तालिबान के कब्जे के लिए पाकिस्तान के द्वारा उसको खुला समर्थन दिया गया। तालिबान को मिलने वाले पाकिस्तान के समर्थन का ही परिणाम था कि अमेरिकी सेनाओं की पूर्ण वापसी 31 अगस्त 2021 की समयावधि से 15 दिन पहले ही तालिबान का काबुल पर कब्जा हो गया। यदि हम देखें तो एक तरफ पाकिस्तान कई बार तालिबान को सहयोग करते हुए पाया गया है जबकि दूसरी ओर तालिबान से वह खुद भी जूझ रहा है जो पाकिस्तान में लगातार कई आतंकवादी हमलों को अंजाम देकर उसको बड़े स्तर पर क्षति पहुँचा रहा है। इसके अलावा यदि हम अफगान तालिबान के साथ सत्ता में आने के बाद से पाकिस्तान के संबंधों को देखें तो भले ही प्रारंभिक दौर में इन दोनों के संबंध सामान्य रहे हों परंतु जैसे-जैसे पाकिस्तान में आतंकवादी हमले हुए व पाकिस्तान द्वारा अफगान बॉर्डर को बंद रखना जारी रखा गया वैसे-वैसे इनके बीच गलतफहमियां व मनमुटाव देखने को मिलने लगे, जिससे पहले की तुलना में इनके संबंध खराब होते दिखे। इस प्रकार देखें तो पाकिस्तान को जहाँ एक मोर्चे पर उसके लिए अच्छे आतंकवाद (अफगान तालिबान) से जूझना पड़ रहा है वहीं दूसरी तरफ बुरे आतंकवाद (तहरीक-ए-तालिबान) से भी, जो पाकिस्तान के लिए एक मुख्य चिंता का सबब बन गया है।

साहित्य समीक्षा :

शिवम शेखावत[3] के अनुसार ऐतिहासिक डूरंड लाइन अब भी एक चुभते हुए कांटे की तरह है क्योंकि पाकिस्तान और अफगानिस्तान दोनों इसे लेकर किसी परस्पर लाभकारी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बीच डूरंड लाइन का विवाद एक औपनिवेशिक विरासत के रूप में है जिसको लेकर अफगानिस्तान में पाकिस्तान समर्थित वर्तमान तालिबान भी संतुष्ट नहीं है जिसके कारण पाकिस्तान व अफगान तालिबान के बीच रिश्ते लगातार बिगड़ते जा रहे हैं क्योंकि पाकिस्तान सेना द्वारा अफगान सीमा के अंदर 15 कि0मी0 तक चहार बुर्जक जिले तक जमीन हथिया कर बाड़ लगाने की कोशिश की गयी है जिसे तालिबान ने विफल कर दिया। इस प्रकार तालिबान के राज में भी डूरंड लाइन को लेकर पाकिस्तान व तालिबान सामान्य होते नजर नहीं आ रहे हैं।

पीटीआई[4] रिपोर्ट में बताया गया है कि पाकिस्तान, हाल के महीनों में प्रतिबंधित तहरीक-एक-तालिबान पाकिस्तान (टीटीपी) सहित आतंकवादी समूहों को खत्म करने के लिए तालिबान सरकार की अनिच्छा से अधिक निराश हो गया है क्योंकि तालिबान का नेतृत्व अपने संगठनों पर कार्रवाई करने के लिए तैयार नहीं है जिसका एक मूल कारण है कि ये समूह तालिबान के साथ अमेरिकी नेतृत्व वाली विदेशी ताकतों के खिलाफ लड़ रहे थे जो एक ही विचारधारा साझा कर रहे थे। इसके अलावा इस रिपोर्ट में पाकिस्तान की सीमा में वर्ष 2022 के दौरान होने वाले आतंकवादी हमलों के जिक्र के साथ-साथ पाकिस्तान द्वारा अफगानिस्तान के कुनार और खोस्त प्रांतों में आतंकवादी ठिकानों को खत्म करने के लिए हवाई हमलों का जिक्र भी किया गया है जिसके अंतर्गत आतंकवाद को लेकर पाकिस्तान व तालिबान के बीच पैदा होने वाले मतभेदों को भी उजागर किया गया है।

रविन्द्र कुमार[5] ने अपनी पुस्तक "दक्षिण एशिया में चीन की रणनीति एवं भारतीय सुरक्षा चुनौतियां" के अन्तर्गत दक्षिण एशिया के सभी देशों के साथ भारत के संबंध एवं उन संबंधों के बीच चीन की रणनीति किस प्रकार की रही है का वर्णन किया है। इसके साथ-साथ इस पुस्तक में लेखक ने दक्षिण एशिया में आतंकवाद को लेकर चीन की रणनीति को भी उजागर किया है।

सिद्धान्त किशोर[6] के अनुसार अफगानिस्तान को लेकर पाकिस्तार की रणनीति बिल्कुल उल्टी पड़ गयी है जिसने उसे दक्षिण एशियाई भू-राजनीति की जटिलताओं में उलझा दिया है। क्योंकि अगस्त 2021 में अफगानिस्तान में काबुल के पतन अर्थात काबुल पर तालिबान के कब्जे ने टीटीपी जैसे आतंकी गुटों जिसकी जड़ें अफगानिस्तान में हैं को पूरी डूरंड लाइन पर अपनी स्थिति को दोबारा मजबूत करने का मौका दिया है जिसके कारण से पाकिस्तान सैन्य प्रतिष्ठानों को निशाना बनाकर पाकिस्तान में टीटीपी के हमले और बढ़े हैं।

नीशू कुमार[7] ने अपनी पुस्तक "दक्षिण एशिया में राजनीतिक स्थिरता एवं विकास में भारत की भूमिका" में दक्षिण

एशिया में आतंकवाद से संबंधित अध्यायों में पाकिस्तान व अफगानिस्तान का वर्णन आतंकवाद से सबसे ज्यादा ग्रसित राष्ट्रों के रूप में किया है जिसके अंतर्गत लेखक के द्वारा अफगानिस्तान, पाकिस्तान व भारत के बीच पैदा होने वाले उन तमाम विवादों व कमियों का उल्लेख भी किया गया है जिसने आतंकवाद को यहां पर बड़े स्तर पर आश्रय प्रदान किया है।

शोध का उद्देश्य :-

1. आतंकवाद को लेकर पाकिस्तान की भूमिका व उसके चरित्र का विश्लेषण करना।
2. पाकिस्तान व अफगानिस्तान को लेकर अफगान तालिबान व तहरीक-ए-तालिबान के मूल उद्देश्यों को उजागर करना।
3. पाकिस्तान के लिए अच्छे व बुरे तालिबान के बीच के अंतर को स्पष्ट कर उसके प्रभावों का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धतिः- प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक विवरणात्मक, तुलनात्मक व विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध में मुख्यतः द्वितीयक शोध सामग्री का उपयोग किया गया है। जिसके अंतर्गत विषय से संबंधित विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख एव पुस्तकों की सहायता ली गई है साथ ही समसामयिक मुद्दों एवं घटनाओं की जानकारी हेतु इंटरनेट से प्राप्त विषय सामग्री को भी प्रयोग में लिया गया है।

पाकिस्तान के लिए अच्छा व बुरा तालिबानः- वर्ष 2021 जुलाई के दूसरे सप्ताह में उज्बेकिस्तान की राजधानी ताशकंद में आयोजित होने वाले एक अंतर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलन में भाग लेने के दौरान अफगानिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति अशरफ गनी ने तालिबान को समर्थन देने के लिए पाकिस्तान की अपने भाषण के दौरान कड़ी आलोचना की, राष्ट्रपति अशरफ गनी ने मध्य और दक्षिण एशिया क्षेत्रीय संपर्कः चुनौतियां और अवसर विषय पर आयोजित सम्मेलन में कहा कि पाकिस्तान व दूसरे स्थानों से लगभग 10,000 से अधिक जिहादी लड़ाके अफगानिस्तान में घुसे हैं।[8] पाकिस्तान के द्वारा अपने इन जिहादी लड़ाकों को अफगानिस्तान में खासतौर पर तालिबान में शामिल होने के लिए इसलिए भेजा गया क्योंकि जब अमेरिकी या नाटो फौज की वापसी की घोषणा 31 अगस्त 2021 तक होनी सुनिश्चित हो गई तो अफगानिस्तान मे शक्ति शून्यता की स्थिति का लाभ जब तालिबान (अफगानिस्तान में व्याप्त आतंकी संगठन) इसके अनेक क्षेत्रों को अपने कब्जे में लेकर उठाने लगा तो अफगानिस्तान में भारत के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से पाकिस्तान अफगानिस्तान में तालिबान का समर्थन करना अपनी कूटनीतिक रणनीति का एक हिस्से के रूप में देखने लगा। इसके साथ ही तालिबान का समर्थन करते हुए उसने तालिबान को अपनी मंशा साझा करते हुए यह भी कहा कि अफगानिस्तान के क्षेत्रों पर कब्जे के साथ-साथ तालिबान भारत से आये प्रभावशाली व्यक्तियों की संपत्ति को भी तहस नहस कर दें। अफगानिस्तान में तालिबान को मिलने वाला पाकिस्तान का वो भरपूर सहयोग ही था जिससे तालिबान अमेरिकी सैनाओं की पूर्ण वापसी से पहले ही अफगानिस्तान की सत्ता पर काबिज हो गया। जहाँ एक तरफ पाकिस्तान अफगानिस्तान में तालिबान को सहयोग करते हुए पाया जाता है वही दूसरी तरफ वह स्वयं भी पाकिस्तान में तालिबान के आतंक से जूझ रहा है। तालिबान द्वारा पाकिस्तान में कई आतंकी हमलों को अंजाम दिया गया जिसमें 16 दिसम्बर 2014 को पाकिस्तान के आर्मी स्कूल में 200 बच्चे मारे जाने वाला हमला भी शामिल है जो बड़ा ही भयानक था। जिसने पाकिस्तान में तालिबान के प्रभाव को विश्व पटल पर 2014 में उजागर किया था।

यदि हम पाकिस्तान को केन्द्र में रखकर तालिबान को समझने का प्रयत्न करें तो यहां पर हम मुख्यतः तालिबान को दो रूपों में वर्गीकृत कर सकते हैं। जिसमें एक अफगान तालिबान है जो अफगानिस्तान में अमरीकी फौज की वापसी 31 अगस्त 2021 की घोषणा से पूर्व ही अफगानिस्तान पर 15 अगस्त 2021 को पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर चुका है। यही वो तालिबान है जिसको पाकिस्तान अपने हितों को लेकर सपोर्ट करता है जबकि दूसरा जो तालिबान है वह पाकिस्तान में है जिसे तहरीक-ए-तालीबान के नाम से भी जाना जाता है जिसका वह विरोध करता है। यदि हम अफगान तालिबान की उत्पत्ति इसका संगठनात्मक ढांचा व इसके उद्देश्यों की चर्चा करें तो अफगान तालिबान या तालिबान एक कट्टर सुन्नी इस्लामिक आंदोलन है। जिसने 1996 से 2001 तक की समयावधि के बीच अफगानिस्तान में शासन किया था। पश्तो भाषा के शब्द तालिबान का मतलब होता है स्टूडेंट यानी वो छात्र जो इस्लामिक कट्टरपंथ की विचारधारा में यकीन रखते हैं। यही वो

कट्टरपंथी छात्र हैं जिनसे मिलकर तालिबान बनता है।[9]

यदि हम अफगानिस्तान में हुए तालिबान की गतिविधियों पर नजर डाले तो नाटो या अमरीकी सेनाओं ने जब 2001 में अपना अभियान 'आतंक के विरूद्ध युद्ध' (War on Terror) चलाकर इन्हें सत्ता से हटाया तो 2004 में इन्होंने पुनः संगठित होना शुरू कर दिया। इसी दौरान इन्होंने राजद्रोह शुरू कर दिया व अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान में गुरिल्ला युद्ध शुरू कर दिया जिसमें उन्होंने बेरोजगार भटके हुए कबाइली पठान नवयुवकों को बड़ी संख्या में शामिल किया। इसके अलावा इन्होंने अनेक इस्लामिक देश जैसे उज्बेक, तजाकिस्तान, अरब, चैचेन्य और कुछ पंजाबी स्वयंसेवको को भी जेहाद में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। इस दौरान लगातार इनका गोरिल्ला युद्ध पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान की सीमा रेखा डूरंड लाइन के आसपास चलता रहा जबकि उस समय इनका मुख्यालय क्वेटा में था। तालिबान आंदोलन को मुल्ला मोहम्मद उमर के द्वारा चलाया गया था। मुल्ला उमर यह एक अफगान शरणार्थी था जिसकी शिक्षा इस्लामिक धार्मिक स्कूल मदरसा (पाकिस्तान) में हुई थी। तालिबान के प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान सरकार द्वारा तालिबान को हथियार, प्रशिक्षण व अन्य सामान उपलब्ध कराया गया जो गुरिल्ला युद्ध के लिए आवश्यक समझा जाता था। यही वो समय था जब पाकिस्तान की गुप्तचर ऐजेंसी ने मदरसों से नवयुवकों को तैयार करने में प्राथमिक स्तर से मदद की[10] वहीं दूसरा तालिबान पाकिस्तान तालिबान जिसका एक और नाम भी है तहरीक-ए-तालिबान (टीटीपी) है जो पाकिस्तान के लिए बुरा है जिसका पाकिस्तान विरोध करता है। भारत पाकिस्तान के द्वारा आतंकवाद के इस दोहरे चरित्र पर संयुक्त राष्ट्र संघ में कई बार कहता है कि पाकिस्तान के लिए कुछ आतंकवाद अच्छा है और कुछ बुरा। अक्सर जो ग्रुप पाकिस्तान को सहयोग करता है और उसके शत्रुओं को हानि पहुंचाता है वह पाकिस्तान के लिए अच्छा आतंकवाद है और जो ग्रुप उसके विरोध में है तो वे उसके लिए बुरा आतंकवाद है।

यदि हम पाकिस्तान के विरोध में हिंसक घटनाओं को अंजाम देने वाले तालिबान आतंकी संगठन (टीटीपी) की उत्पत्ति की बात करें तो पाकिस्तान में छोटे-छोटे आतंकवादी संगठन 2007 में इकट्ठा आये जिन्होंने मिलकर तहरीक-ए-तालिबान नामक एक संयुक्त आतंकवादी संगठन बनाया। इस ग्रुप का एकमात्र उद्देश्य यह था कि पाकिस्तान में सरकार को हटाकर सत्ता पर तहरीक-ए-तालिबान का कब्जा हो जिससे वो पाकिस्तान में शरीयत कानून लागू कर सके। तहरीक-ए-तालिबान की इसी प्रकार की मंशा पाकिस्तान के लिए थी, जो मुख्यतः अफगानिस्तान में अफगान तालिबान की भी थी जो अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक सरकार को हटाकर उसपर शासन करना चाहता था। इस प्रकार यदि हम अफगान तालिबान व पाकिस्तानी तालिबान की एकरूपता की बात करें तो अफगान तालिबान जहां शरीयत कानून लागू करने के लिए अफगानिस्तान पर नियंत्रण चाहता है। दूसरी ओर पाकिस्तान तालिबान पाकिस्तान में शरीयत कानून लागू करना चाहता है। शरीयत कानून ऐसे कानून जिसके तहत पाकिस्तान के नागरिकों को बहुत बंदिशें झेलनी पड़ती और उनकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगता। पाकिस्तान ये बात जानता था इसलिए वो शरिया रूल या शरीयत कानून के लिए बिल्कुल भी तैयार नही था। यही कारण था कि तहरीक-ए-तालिबान के खिलाफ व उसे सीमित करने के लिए पाकिस्तान की सरकार ने दो ऑपरेशन चलाए थे। जिसमें प्रथम था जर्ब-ए-अज्ब जो 2014 से 2016 तक चलाया गया था जिसमें पाकिस्तान की सरकार के द्वारा इस आतंकी संगठन को काफी छति पहुंचाई गई थी। जिसमें तहरीक-ए-तालिबान के 3500 आतंकवादियों को पाकिस्तान के द्वारा मार गिराया गया था। तहरीक-ए-तालिबान इस कार्रवाई के बाद से पाकिस्तान में काफी कमजोर हो चुका था परन्तु यह पूरी तरीके से खत्म नहीं हो पाया।

पाकिस्तान के द्वारा इसको पूरी तरह खत्म करने के लिए एक दूसरा ऑपरेशन 2017 में चलाया गया जिसका नाम था रेड-उल-फसाद जिसके अंतर्गत इसको पूरी तरीके से समाप्त करने की कोशिश पाकिस्तान के द्वारा की जा रही है।[11] इसकी प्रक्रिया अभी भी जारी है। इस प्रकार पाकिस्तान के लिए अफगान तालिबान जहाँ अपने हितों के मुताबित अच्छा है क्योंकि अफगानिस्तान में इसके प्रभाव में आने से दक्षिण एशिया में आतंकवाद का स्थाई आश्रय बन जाएगा जिससे अफगानिस्तान में भारत का प्रभाव पूर्णतः समाप्त हो जाएगा और धीरे-धीरे अफगान तालिबान की सहायता से भारत में पाकिस्तान के द्वारा आतंकवाद को और अधिक प्रसारित किया जा सकेगा। वहीं पाकिस्तानी तालिबान इसके लिए बुरा आतंकवाद है, क्योंकि इसके सत्ता प्राप्त करने पर पाकिस्तान में तालिबान

के शरीयत कानून लागू होंगे जिससे पाकिस्तानी नागरिकों की स्वतंत्रता पूरी तरह छिन जाएगी जो पाकिस्तान किसी भी हाल में नही चाहता।

अफगानिस्तान में तालिबान की सत्ता प्राप्ति के बाद अफगान नागरिकों की स्थितिः– यदि हम अफगानिस्तान में तालिबान के काबिज होने के बाद से यहां पर होने वाली हिंसा, खौफ व महिलाओं की स्थिति व उनके अधिकारों पर नजर डालें तो 16 अगस्त 2021 में सत्ता में आने के बाद से तालिबान आम लोगों की माफी के बाद भी यहां पर बदले की कार्रवाई कर रहा है जिसके चलते उसके द्वारा उन लोगों को लगातार निशाना बनाया गया जो असरफ गनी सरकार में अनेक पदों पर कार्यरत थे, इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र का कहना था कि उसे कम से कम सौ ऐसे मामलों का पता चला है जिसमें तालिबान पर बदले की कार्रवाई के आरोप लगे हैं जबकि बीबीसी की पड़ताल के मुताबित इन मामलों की संख्या इससे भी कहीं ज्यादा है।[12] यदि वहां पर अन्य मामलों के साथ महिलाओं की स्थिति पर नजर डालें तो पिछले 20 सालों के अफगानिस्तान को तालिबान ने अपने एक महीने के शासन काल में ही काफी बदल दिया था। तालिबान के सत्ता में आने की सुगबुगाहट के समय ही तालिबान ने आश्वासन दिया था कि महिलाओं पर अत्याचार नहीं होंगे, लेकिन अब तालिबान के सत्ता में आने के बाद से ही अफगान महिलाओं पर कई पाबंदियां लगा दी गईं। तालिबान ने महिलाओं से जुड़े मंत्रालय का नाम बदलकर प्रमोशन ऑफ वर्चू एंड प्रमोशन ऑफ वाइस भी रख दिया, जिसके जारिए महिलाओं पर और भी कड़े शरीयत कानून लागू किए जाएंगे।

इस प्रकार देखें तो तालिबान के काबुल की सत्ता कब्जाने के बाद अपने व्यवहारिक क्रियाकलापों व अनेक निर्णयों के तहत महिलाओं में अपनी सुरक्षा को लेकर भय व अपने भविष्य को लेकर चिंता है क्योंकि पिछले 29 सालों में जो महिलाएं अपने घर से बाहर नौकरी करने के लिए स्वतंत्र थी वो अब इस प्रकार की स्वतंत्रता की कल्पना बिलकुल भी नहीं कर सकती।[13] मानवाधिकार संगठन एमनेस्टी इंटरनेशनल ने अपनी एक रिपोर्ट में अफगानिस्तान में शिया हजारा समुदाय के नरसंहार का दावा किया है। एमनेस्टी इंटरनेशनल ने कहा है कि हाल ही में तालिबान ने गज़नी प्रांत में हजारा समुदाय के लोगों का कत्ल किया है जिसके बारे में चश्मदीदों ने एमनेस्टी इंटरनेशनल को इसकी जानकारी दी, अफगानिस्तान में हजारा अफगानिस्तान के तीसरे सबसे बड़े नस्लीय समूह हैं जो हजारा शिया इस्लाम को मानते हैं, जिनका सुन्नी बहुल अफगानिस्तान व पाकिस्तान में दशकों से शोषण हो रहा है, जिनको तालिबान चुन-चुन कर मार रहा है। ताबिलान द्वारा उसके राज में क्रेन से चौराहे पर फांसी देना उसके नियमों का पालन न करने पर सरेआम गोली मारकर हत्या करना जैसे अनेक अकल्पनीय मामलों की भरमार तालिबान के अगस्त 2021 में सत्ता में आने से देखने को प्रतिदिन मिल रहे हैं जो उसकी वास्तविक क्रूरता से भरी प्रकृति को उजागर करते हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो वैश्विक पटल व बाहर से तालिबान अपने आपको कितना भी नया व बदलावपूर्ण बताये परंतु उसके शासन के तौर तरीके उसकी इस सच्चाई को पूर्णतः बयां कर देते है कि वह आज भी ऐसा ही है जो 1996 के आसपास था।

अफगानिस्तान में तालिबान की सत्ता प्राप्ति के बाद अफगान तालिबान व तहरीक-ए-तालिबान के साथ पाकिस्तान के संबंधः– अफगानिस्तान में तालिबान की सत्ता प्राप्ति के बाद अफगान सरकार के गठन की असंमजसता लगातार बरकरार थी जिसे पाकिस्तान की खुफिया ऐजेंसी आई0एस0आई0 के प्रमुख जनरल फैज हामिद के सहयोग से पूर्ण कर लिया गया था। जनरल फैज हामिद के काबुल में पहुंचने के तीन दिन बाद तालिबान के द्वारा जिस अंतरिम सरकार की घोषणा की गई, वो विश्व के कुख्यात, प्रतिबंधित आतंकियों से भरी हुई थी जिसका संदर्भ पूर्णतः पाकिस्तान से मिलता जुलता ही दिखा। इसी संदर्भ में इंडियन एक्सप्रेस ने अपनी एक रिर्पोट में कहा कि “तालिबान की नई सरकार में पाकिस्तान की सेना का असर साफ दिख रहा है।”[14]

इस प्रकार देखें तो अफगान तालिबान की सत्ता प्राप्ति के लिए पाकिस्तान ने उसका जो समर्थन प्रत्यक्ष रूप से किया था उसका प्रथम फल उसे कहीं न कहीं अफगानिस्तान में तालिबान सरकार के गठन में अपने प्रभाव को स्थापित करने के रूप में मिला। जिसके चलते उसने हक्कानी नेटवर्क व कंधार केन्द्रित तालिबान को सत्ता के शीर्ष स्तर पर रखा जबकि भारत के प्रति नरम रूख रखने व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बार्ता शुरू करने वाले दोहा स्थित तालिबान ग्रुप को सत्ता से कोसों दूर फैंक दिया था। लेकिन अफगानिस्तान में तालिबान के सत्ता पर पूर्णतः काबिज होने के बाद जैसे-जैसे तालिबान लीडर अपनी

सत्ता को भोगने के लिए व्यवहारिक तौर पर निकले तो विदेशों में अफगान संपत्ति के फ्रीज होने व अमेरिका तथा पश्चिमी देशों की आर्थिक सहायता बंद होने से इन्हें (तालिबानियों को) देश के संचालन के लिए धन की कमी के चलते विवश और बेबस होते देखा गया। जिस वजह से अन्य देशों के साथ अच्छे व संतुलित संबंध कायम रखना इनकी एक मजबूरी बन गई, क्योंकि कोई भी देश चाहे किसी भी स्थिति में क्यों न हो उसके भी अपने कुछ विशेष राष्ट्रहित होते ही हैं, जो उसे उन हितों की पूर्ति व उसके आसपास आचरण करवाने के लिए उसे विवश करते है। इसलिए तालिबान जब अफगानिस्तान की सत्ता से बाहर था तो वो पूर्णतः पाकिस्तान समर्थित ही था, लेकिन जैसे ही वह सत्ता में आता है तो अपनी राष्ट्र की गतिविधियों को संचालित करने के लिए उसको अपने राष्ट्रहित को साधने की मजबूरी नजर आने लगती है। जिस वजह से उसे अपने हितों की पूर्ति के लिए सिर्फ पाकिस्तान पर ही निर्भर होना उचित नही दिखता, इसलिए राष्ट्रहित की पूर्ति के लिए उसे वैश्विक मंच पर अपने आपको संतुलित करते हुए उसके आचरण में देखा गया, जिस वजह से भी वह पूर्णतः पाकिस्तान की निर्भरता व नियंत्रण से बाहर होता दिखा। क्योंकि राष्ट्र की व्यवस्था को संचालित करने के लिए अब तालिबान को जो पैसा व अनाज चाहिए था वो पाकिस्तान स्वयं अपनी तंग हालत के चलते उसे दे नही सकता। इसलिए पाकिस्तान का जो प्रभाव तालिबान पर बना था वह कई मोर्चों पर सत्ता प्राप्ति के बाद प्रभावहीन होने लगा।

यदि हम अफगानिस्तान की सत्ता में तालिबान के आने के बाद से पाकिस्तान के साथ उसके संबंधो पर नजर डालें तो भले ही पाकिस्तान के द्वारा अपने अनेक हितों की संभावनाओं की पूर्ति के चलते तालिबान को अफगान की सत्ता प्राप्ति के लिए सहयोग किया गया। परंतु पाकिस्तान व तालिबान अपने इन मधुर रिस्तों को लंबे समय तक संचालित नहीं कर सके, जो मात्र 5 से 6 महीने के बीच ही अनेक विवादों के चलते अपनी प्रतिक्रिया एक दूसरे के प्रति दिखाते दिखे।

इस प्रकार यदि हम पाकिस्तान व तालिबान के बीच होने वाली इन कड़वाहट रूपी तथ्यों की चर्चा करें तो इसमें मुख्यतः दो मुद्दे ऐसे है जो इनके बीच अपने राष्ट्रहितों के चलते टकरा रहे हैं, जिसमें पहला है 'सीमा विवाद' व दूसरा पाकिस्तान के दृष्टिकोण से अफगान सीमा का प्रयोग पाकिस्तान में होने वाले हमलों के लिए प्रयोग में लाना। यदि हम प्रथम विवाद पाकिस्तान-अफगानिस्तान सीमा विवाद व उसकी भू-राजनीति की बात करें तो 18वीं शताब्दी में दुर्रानी वंश के शासन के खत्म होने के साथ ही पश्तून साम्राज्य बिखर गया जिसके बाद से इस क्षेत्र में ब्रिटिश परचम लहराने लगा, लेकिन ब्रिटेन को भी इसके दूर-दराज के इलाकों को नियंत्रण में रखना काफी मुश्किल था। इस प्रकार जब दो बार के एंग्लो-अफगान युद्ध (1832-42 और 1878-80) से भी ब्रिटिश प्रभाव का विस्तार संभव नहीं हो सका और वह संघर्षरत कबीलाई समूह पर कब्जा नहीं जमा सका तो विवशता में ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी नीतियों में बदलाव करने की सोची क्योंकि जिसके अंतर्गत ब्रिटेन द्वारा मोर्टिमर डूरंड को अफगानिस्तार के अमीर अब्दुर रहमान के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए भेजा गया, जिसके बाद 12 नवम्बर 1883 को डूरंड लाइन से पश्तून-आबादी वाले क्षेत्र का सीमांकन किया गया। जिससे समान संस्कृति व जातीयता साझा करने वाले लोगों के बीच एक दरार पैदा हो गई जिसने ब्रिटेन के लिए पश्तून राष्ट्रवाद को रोकने के लिए फूट डालो और शासन करो की रणनीति को पूरा बना दिया। 1897 में अंतिम सीमा के साथ ही सीमा आयोग का गठन किया गया जिसमें कबीलाई समूह ने डूरंड लाइन का विरोध करना शुरू कर दिया, जिसमें साल 1949 में लोया जिरगा (आदिवासी सभा) में अफगानिस्तान ने इस समझौते से एकतरफा हटने का फैसला लिया और इसका विरोध किया जो 1897 से आज तक जारी है।[15]

इस प्रकार यदि हम 1947 में पाकिस्तान की स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान तक डूरंड लाइन पर दोनों देशों की नीति की बात करें तो पाकिस्तान जहाँ इस सीमा रेखा को ही स्थायी रूप से मानने पर बल देता है वहीं दूसरी तरफ अफगानिस्तान की किसी भी सरकार ने इस सीमा रेखा को स्वीकार नहीं किया जिसके लिए उनका कहना है कि यह सीमा रेखा अंग्रेजों ने अपनी सुविधा के लिए बनाई थी जिसका वह 1893 से विरोध करते आये हैं जबकि 1923 में किंग अमानुल्ला से लेकर वर्तमान सत्ता तालिबान तक डूरंड लाइन के बारे में यही धारणा है जो पाकिस्तान व अफगानिस्तान के बीच आज भी सीमा विवाद के रूप में उत्पन्न है। पाकिस्तान व अफगानिस्तान के बीच छब्बीस सौ किलोमीटर के आसपास खुली बॉर्डर थी जिसे

पाकिस्तान काबुल के विरोध की अनदेखी करते हुए 2017 से पक्का कर रहा था।[16] जिससे असहमत व नाराज अफगान तालिबान भी नजर आया, इसी संदर्भ में दिसम्बर-जनवरी 2021-2022 में तालिबान की तरफ से बहुत सारी ऐसी वीडियों इसी संदर्भ में सामने आयी है जिसमें पाकिस्तान की इस पक्की बॉर्डर को तालिबान के द्वारा तोड़कर उखाड़ फैंका गया। जबकि दूसरा मामला सीमा पार से होने वाले हमले हैं जिसके लिए पाकिस्तान लगातार अफगानिस्तान को आरोपित करता है कि अफगानिस्तान की सरजमी का इस्तेमाल पाकिस्तान में होने वाले आतंकवादी हमलों के लिए किया जा रहा है। **इसके** अतिरिक्त यदि हम अफगान तालिबान के अलावा पाकिस्तान के संबंधों को पाकिस्तान तालिबान (टीटीपी) या तहरीक-ए-तालिबान से देखें तो पिछले कुछ वर्षों में पाकिस्तानी सेना द्वारा चलाए गए अपने कई अभियानों में प्रतिबंधित संगठन टीटीपी को पाकिस्तान में काफी नुकसान हुआ था। जिससे पाकिस्तान में होने वाली ऐसी हिंसक घटनाओं में काफी गिरावट आयी थी। लेकिन जबसे अफगानिस्तान में तालिबान सत्ता में आया, इन घटनाओं में पुनः से तेजी आ गयी है। इस्लामाबाद में एक स्वतंत्र शोध संस्थान 'पाकिस्तान इंस्टीट्यूट फॉर पीस स्टडीज' के अनुसार टीटीपी ने 2021 में अमेरिकी सैनिकों की वापसी के बाद से आठ महीनों में अब तक 78 हमलों का दावा किया है। इन हमलों में अभी तक 158 लोग पाकिस्तान में मारे जा चुके हैं। 'पाकिस्तान इंस्टीट्यूट फॉर पीस स्टडीज' के निदेशक और आतंकवाद विरोधी मामलों के विशेषज्ञ मोहम्मद आमिर राणा ने बीबीसी को बताया कि अफगानिस्तान में तालिबान के आने के बाद से दुनिया भर में इस तरह के चरमपंथी संगठनों का हौसला बढ़ गया है। आमिर राणा ने कहा कि जब से अफगानिस्तान में तालिबान आया है तब से तहरीक-ए-तालिबान (टीटीपी) या पाकिस्तानी तालिबान सहित अन्य संगठनों के लिए वो एक 'रोल मॉडल' बन गया है।[17] कुल मिलाकर यदि देखें तो अफगान तालिबान को काबुल में बिठाकर पाकिस्तान ने अपने राष्ट्रहितों को लेकर जो रणनीतिक चाल अफगान तालिबान की सहायता से पाकिस्तान तालिबान टीटीपी को नियंत्रित करने के संदर्भ में चली थी वो भी अभी तक के पाक-तालिबान के समीकरणों के चलते पूर्णतः असफल ही रही।

यदि हम अफगान तालिबान व तहरीक-ए-तालिबान की बात करें तो वह भले ही अपने आपको कई मोर्चों पर पाकिस्तान समर्थित बता चुका है। परंतु फिर भी उसने कभी भी ना तो ये कहा कि टीटीपी से हमारा कोई लेना देना नही है और ना ही उसने पाकिस्तान में टीटीपी की कार्रवाइयों की कभी निंदा की है।[18]

इस प्रकार इन अनेक विशेषज्ञों व आंकड़ों के विवरण से देखें तो पाकिस्तान जो अपनी अनेक महत्वकाक्षाओं के कारण अफगानिस्तान में तालिबान को सत्ता में ले आया वह आज खुद अनेक प्रभावों के चलते तहरीक-ए-तालिबान को भी प्रभावित कर पाकिस्तान में और अधिक आतंकी हमलों के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से उसे तैयार कर इनको और अधिक संगठित बनाने के लिए प्रेरित कर रहा है। जिस वजह से पाकिस्तान चाहे अच्छा तालिबान (अफगान तालिबान) हो या बुरा तालिबान (तहरीक-ए-तालिबान टीटीपी) हो समय और परिस्थितियों के अनुरूप दोनों के बीच पिसता हुआ नजर आ रहा है। जो आतंकवाद के वर्तमान संदर्भ में यदि पाकिस्तान की इस स्थिति का मूल्यांकन करें तो हिलेरी क्लिंटन की ये लाइनें इस पर बिल्कुल सही तरीके से चित्रित होती है कि 'You can't keep snakes in your backyard and expect them to only bite your neighbor'[19] कि अगर आप सांप पालते हो अपने घर के पीछे इस उम्मीद से कि ये सांप आपके पड़ोसी को काटेंगें तो ये सांप सिर्फ आपके पड़ोसी को ही नही आपको भी काटेंगे।[20]

निष्कर्ष :- अफगान तालिबान हो या पाकिस्तानी तालिबान/ तहरीक-ए-तालिबान दोनों का एक मूल उद्देश्य शरीयत कानून को लागू करना है। जहां अफगान तालिबान अफगानिस्तान में इसके लिए काफी संघर्षशील है वही तहरीक-ए-तालिबान भी अपनी स्थिति को लगातार मजबूत कर पुनः अपने संगठनों को पाकिस्तान में खड़ा कर रहा है। यदि अफगान तालिबान की तरह पाकिस्तान तालिबान भी अपना विस्तार कर उसके बराबर यानी अफगान तालिबान के बराबर शक्ति को अर्जित करता है तो पाकिस्तान के साथ-साथ चीन को भी काफी ज्यादा नुकसान हो जाएगा क्योंकि चीन पाकिस्तान में कई परियोजनाओं पर कार्य कर रहा है, जो ऐसी स्थिति में पूर्णतः बाधित हो जाएगें।

इस प्रकार देखें तो भले ही आज पाकिस्तान अफगान तालिबान को अफगानिस्तान में उसकी सत्ता प्राप्ति के लिए बड़े स्तर पर सहयोग कर उसे सत्ता पर काबिज कर

चुका है। परंतु पाकिस्तान अफगान तालिबान के सत्ता में आने के बाद वाले उसके प्रसार के चरणों सीमा विवाद से पैदा होने वाली भावी मनमुटाव की शृंखलाओं व उसमे भी व्याप्त अनेक ऐसे बड़े चेहरे जो पाकिस्तान के हस्तक्षेप को ज्यादा स्वीकारना नही चाहते जो पाकिस्तान के अक्सर विरोध में रहते हैं के द्वारा जो कभी भी पूर्णतः अपनी प्रतिक्रिया का रूख पाकिस्तान के विरूद्ध कर सकते हैं तो ऐसी स्थिति में उसे पाकिस्तान तालिबान व अफगान तालिबान से एक साथ लड़ना पड़ सकता है जो स्वयं उसके लिए काफी विकट परिस्थितियां पैदा कर लेगा। इसलिए पाकिस्तान को इस बात को बड़े स्तर पर समझने की जरूरत है कि आतंकवाद चाहे अच्छा हो या बुरा लेकिन वास्तविक अर्थों में ये हर लोकतांत्रिक व्यवस्था या सरकार का शत्रु है। जिसका तिरस्कार प्रत्येक लोकतांत्रिक राष्ट्र को प्रत्येक स्थिति में करना चाहिए।

संदर्भ

1. कुमार, नीशू, 'दक्षिण एशिया की राजनैतिक एवं सामाजिक संस्कृति में भारत की भूमिका', नालंदा प्रकाशन, दिल्ली, 2021 पृ0 42
2. कुमार झा, संजीव, 'पाकिस्तानः खैबर पख्तूनख्वा में सेना पर आतंकवादी हमला कैप्टेन समेत 11 जवानों की मौत, कई को किया गया अगवा', अमर उजाला (वर्ल्ड डेस्क), 13 जुलाई 2021, https://www.amarujala.com/world/terrorist-attacked-pakistan-army-in-khyber-pakhtunkhwa-kurram
3. शेखावत, शिवम, अफगानिस्तान-पाकिस्तान सम्बन्ध और डूरंड लाईन की अहमियत?, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, 12 फरवरी 2022, https://www.orfonline.org/hindi/research/afghanistan-pakistan-relations-and-the-durand-line-why-is-it-important/
4. पीटीआई, पाकिस्तान-अफगानिस्तान सीमा से आतंकियों को खदेड़ रहा तालिबानः रिपोर्ट, 'द हिंदू, 25 अप्रैल 2022,https://www.thehindu-com.translate.goog/news/international/taaliban-moving-away-terrorists-from-pakistan0afghan-border report/article65353722.ece?_xtr _tr_ sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_ tr_hl =hi&_x_tr_pto=tc,sc
5. कुमार, रविन्द्र, 'दक्षिण एशिया में चीन की रणनीति एवं भारतीय सुरक्षा चुनौतियां', आकृति प्रकाशन, दिल्ली, 2021
6. किशोर, सिद्धान्त, 'तालिबान की पसन्द - एक अस्थिर पाकिस्तान; कैसे उल्टा पड़ गया पाकिस्तान का अफगानिस्तान का दाँव?', ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, 24 मई 2022, https://www.orfonline.org/hindi/research/pakistans-afghan-dilemma-haunts-the-islamabad-rawalpindi-nexus/
7. कुमार, नीशू, पूर्वोक्त, पृ. 42
8. मिश्रा, प्रियेस, 'तालिबान की मदद के लिए पाकिस्तान ने 10 हजार जिहादी भेजे, इमरान के सामने अफगानिस्तान राष्ट्रपति ने खूब सुनाया', नवभारत टाइम्स, 16 जुलाई 2021, https://navbharattimes.indiatimes.com/world/asian-countries/pakistan-sent-10-thousand-jihadis-to-help-taliban-saya-afghan-president-ashraf-ghani-in-front-of-imran-khan/articleshow/84476933.cms
9. सिन्हा, राहुल, 'अफगान सेना और तालिबान लड़ाकों के बीच भीषण जंग, या अफगानिस्तान पर फिर कब्जा करेगा तालिबान?', टीवी9 भारतवर्ष, न्यूज चैनल, 23 जुलाई 2021, https://youtu.be/IM9iPYbN518
10. सिंह, रामपाल, 'पाकिस्तान आतंकवाद का गढ' (भाग-1), चेतना प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ0 215
11. धवन, प्रशांत, 'Taliban Atacks Pakistan Soldiers, Pakistan' World Affairs, 13 जुलाई, 2021, https://youtu.be/ru2lcjOFpUc.
12. सिंह, सारिका, Afghanistan Crisis: Taliban Government में किस तरह खौफ में जी रहे हैं लोग? (BBC Hindi) BBC News Hindi, 17 Feb 2022, https://youtu.be/_aA3dmARvGo.
13. सिंह सारिका, 'तालिबान ने एक महीने में अफगानिस्तान को कितना बदला', बी.बी.सी. हिन्दी समाचार 18 सितम्बर 2021 https://youtu.be/viuuno8uciq.
14. नेगी, नवीन, Taliban की नई सरकार Pakistan की जीत और India के लिए झटका क्यों है? (BBC Hindi), BBC News Hindi, 8 Sep 2021, https://youtu.be/Bizv0h8Wy4g.
15. शेखावत, शिवम, अफगानिस्तान-पाकिस्तान संबंध और डूरंड लाइन की अहमियत?, ऑब्जर्बर रिसर्च फांउडेशन, 12 फरवरी 2022, https://www.orfonline.org/hindi/research/afghanistan-pakistan-relations-and-the-durand-line-why-is-it-important/
16. सिंह, सारिका, पूर्वोक्त, 17 Feb 2022, https://youtu.be/_aA3dmARvGo.
17. सैनी, गुरप्रीत, Pakistan पर क्या Afghanistan का असर? अचानक बढ़े Tehreek-e-Taliban Pakistan के हमले (BBC Hindi),BBC News Hindi, 21 Sep 2021, https://youtu.be/MMnRb07kuO4
18. खान, वुसअतुल्लाह Pakistanesa Tehreek-e-Taliban Pakistan के हौसले और हमले क्यों बढ़ गए है। (BBC Hindi) BBC News Hindi, 3 Oct 2021, https://youtu.be/X-GrsfH4wis.
19. Clinton, Hiliary First Post, 21 Oct 2022, https://www.firstpost.com/world/clinton-continues-to-talk-tough-with-pakistan-113492.html/amp.
20. धवन, प्रशांत, Taliban destroys Border fencing with Pakistan, world Affairs, 24 Dec 2021, https://youtu.be/hBkP8Fsvu6s.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले में स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान स्थिति का आर्थिक अध्ययन

❑ धनपत कुमार
❖ डा. राजकुमार नागवंशी

सूचक शब्द : सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण, महिला सशक्तीकरण, स्वयं सहायता समूह, सूक्ष्म वित्त, एनपीए एवं ग्रामीण उद्यमिता

स्वयं सहायता समूह देश की ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के सर्वांगीण विकास में एक विशेष भूमिका अदा कर रहे हैं। ग्रामीण महिला उद्यमी एवं महिलाओं की आत्मनिर्भरता को बढ़ाने में समूहों का विशेष स्थान है जो देश की अर्थव्यवस्था को बल प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं। इसी संदर्भ में अध्ययन क्षेत्र में स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान स्थिति एवं उनकी महत्ता का मूल्यांकन किया गया है साथ ही अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का पता लगाने का प्रयास भी किया गया है। आंकड़ों के मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में स्वयं सहायता समूहों की स्थिति बेहतर पायी गई है व स्वमं सहायता समूहों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है साथ ही समूहों में महिलाओं की भागीदारी में भी निरंतर वृद्धि हुई है। अध्ययन क्षेत्र में श्रेणीवार समूहों की संख्या व समूहों में महिलाओं की भागीदारी अन्य श्रेणीवार समूहों की अपेक्षा अनुसूचित जनजातीय समूह की भागीदारी अधिक पायी गई है जो यह स्पष्ट करता है कि जनजातीय विकास में सूक्ष्म वित्त के माध्यम से स्वयं सहायता समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण है। वहीं योजना द्वारा सूक्ष्म वित्त वितरण में भी प्रगति देखी गई है जो स्वयं सहायता समूहों के विकास में सहायक है साथ ही महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि उनकी आत्मनिर्भरता में वृद्धि को स्पष्ट करती है।

स्वयं सहायता समूहों के वर्तमान स्वरूप का प्रारंभ 1980 के प्रारम्भिक वर्षो में बांग्लादेश में एक प्रयोग के रूप में मोहम्मद युनूस के द्वारा किया गया उन्होंने भूमिहीन तथा सीमान्त एवं मांगने वाली महिलाओं को इसमें सम्मिलित करते हुए लघु व्यापार को लघु ऋण पर आधारित करते हुए प्रारंभ किया, जिसनें बाद में सामाजिक, आर्थिक सशक्तीकरण के क्षेत्र में एक वृहद आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार विकास के क्षेत्र में एक नये दृष्टिकोण एवं उपागम का सूत्रपात हुआ।[1] देश में वर्तमान समय में अभी भी अधिकांश ग्रामीण महिलाएं सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई हैं। महिलाओं का विकास और सशक्तीकरण विकास का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। क्योंकि महिला सशक्तीकरण से ही समग्र विकास की गति निर्धारित होती है। विकास के लिए सशक्तीकरण से अधिक प्रभावी तरीका कोई दूसरा नहीं है।[2] भारत सरकार द्वारा 'स्वयं सहायता समूह' कार्यक्रम का सूत्रपात महिलाओं को रोजगार की दिशा में आगे बढ़ाते हुए सशक्त और सबल बनाने के लिए किया गया है। ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु स्वयं सहायता समूह योजना का संचालन किया जा रहा है जो ग्रामीण महिलाओं को उनके क्षेत्र में ही रोजगार प्राप्त करा कर महिलाओं के सशक्तीकरण की एक अग्रणी योजना बन कर उभरी है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बनकर ग्रामीण महिलाओं के विकास हेतु वरदान साबित हो रही हैं।[3] स्वयं सहायता समूहों को महिलाओं के आर्थिक-सशक्तीकरण के रूप में इनकी भागीदारी को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में माना जाता है। किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं सन्तुलित विकास के लिए महिला वर्ग का राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना अत्यंत आवश्यक है। स्वयं सहायता समूह का गठन महिलाओं की आर्थिक निर्भरता को समाप्त कर उन्हें आर्थिक रूप से सबल करने का एक नया प्रारूप है।[4] स्वयं सहायता समूह का मूल उद्देश्य यह है कि पंजीकृत महिला सदस्यों के बीच उनकी आर्थिक निर्णय एवं ग्रामीण उद्यमियों में उनकी भागीदारी को सशक्त करने के रूप में एक मंच प्रदान करने का कार्य करना है। स्वयं सहायता समूह को अधिकांशतः निर्धन

❑ शोध अध्येता अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)
❖ सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

अर्थात निम्न आय वाली ग्रामीण महिलाएं मुख्य रूप से सम्मिलित होती है एवं उनकी वित्तीय संस्थानों तक संपर्क व पहुँच नहीं होती है जिन्हें स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज कार्यक्रम के अंतर्गत सूक्ष्म वित्त के माध्यम से वित्तीय संस्थाओं के साथ जोड़ने का कार्य करते हैं। एवं समूह के सदस्य आपस में आर्थिक सहयोग के साथ नई आर्थिक गतिविधियों में संलग्नता के साथ उन्हें सक्षम बनाने का कार्य करते हैं। भारत में स्वयं सहायता समूह वित्तीय मध्यस्था के लिए अद्वितीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते है एवं समूह के महिला सदस्य के लिए स्वप्रबंधन और विकास के प्रकिया के साथ कम लागत वाली वित्तीय सेवाओं तक जोड़ने का कार्य करते हैं। इस प्रकार समूह व्यापक रूप से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के रूप में भी जुड़ा हुआ है। सूक्ष्म वित्त के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने में स्वयं सहायता समूह की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही उनके बचत को बढ़ाने एवं नए उद्यमियों को प्रारंभ करने हेतु प्रोत्साहित करने का कार्य भी करते हैं। भारत में ग्रामीण महिलाओं के लिए यह योजना शुरू करने से पहले काफी हद तक नगण्य थी लेकिन हाल के वर्षों में स्वयं सहायता समूह एक सबसे महत्वपूर्ण उभरती प्रणाली के रुप में महिलाओं के जीवन में सुधार लाने और ग्रामीण गरीबी को कम करने में इसने बड़ी सफलता प्राप्त की है तथा कई स्वयं सहायता समूहों की महत्वपूर्ण सफलता दर्शाती है कि ग्रामीण गरीब वास्तव में ऋण और वित्त का प्रबंध करने में सक्षम हैं।

स्वयं-सहायता समूह का गठन इस उद्देश्य के साथ किया गया है ताकि गरीब लोगों के लिए आसानी से कोष की व्यवस्था की जा सके, जिससे कि वे अपनी गरीबी से निकल सकें मुख्य रूप से इस समूह को बनाने का उद्देश्य महिलाओं मे आर्थिक निर्भरता और उनके निर्णय लेने की क्षमता में विकास करना है।[5]

देश में नाबार्ड प्रायोजित स्वयं सहायता समूह- बैंक लिंकेज के माध्यम से सूक्षम वित्त प्रदान कर, साथ ही उन्हें व्यवसायिक गतिविधियों में प्रशिक्षण प्रदान कर तथा स्वयं सहायता समूह की धन राशि से संचालित गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप सशक्त बनाने का प्रयास किया गया है जो सूक्ष्म वित्त के क्षेत्र में सबसे सफल प्रयास माना जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. अध्ययन क्षेत्र के स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. जिले के स्वयं सहायता समूहों की कार्य पद्धति का अध्ययन करना।
3. जिले के स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की सहभागिता का अध्ययन करना।
4. अनूपपुर जिले के स्वयं सहायता समूहों की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धतिः प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से द्वितीयक आकड़ों का प्रयोग किया गया है जिसमें अध्ययन से संबंधित आवश्यकतानुसार विभिन्न वार्षिक प्रतिवेदन, आलेख, पत्र- पत्रिकाए, पुस्तकें एवं नाबार्ड व एनआरएलएम की वार्षिक प्रतिवेदनों का भी प्रयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षा :

मिश्रा आभा[6] के अध्ययन के अनुसार स्वयं सहायता समूह के ऋण - बचत क्रिया कलाप के माध्यम से समूह के सदस्यों में आपसी एकता, समय-समय पर ऋण अदायगी के साथ सूक्ष्म ऋण को गरीबों तक पहुँचाने एवं गरीबों को साहूकारी व्यवस्था के शोषण के चंगुल से बचने में स्वयं सहायता समूह अहम् भागीदारी निभा रहे हैं तथा सूक्ष्म ऋण के माध्यम से सदस्य अपनी अल्प अर्जित बचत से एक दूसरे की ऋण आवश्यकता को पूरी करती हैं जिसमे उनकी रोजमर्रा की ऋण आवश्यकताएं भी सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार स्वयं सहायता समूह की महिलाओं की स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुए हैं जो न सिर्फ उनके जीवन-यापन बल्कि आधारभूत संरचना को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे है।

जोशी उमा एवं पाण्डेय कंचन[7] द्वारा अपने अध्ययन के अनुसार ग्रामीण महिलाओं को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं सहायता समूह अहम् योगदान दे रहें है। ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं पर किये गए घरेलू हिंसा तथा शोषण पर प्रभावशाली ढंग से रोक लगाई गई है जिसमें कुछ हद तक सुधार आया है एवं स्वयं सहायता समूह ने महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़कर उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन सशक्तीकरण की दिशा की ओर उन्मुख किया है जिससे ग्रामीण महिलाएं अपनी विशेष पहचान बनाने के साथ-साथ गाँव के विकास में अहम् भूमिका निभा रही हैं जो सराहनीय है।

सबा नसरीन[8] द्वारा अध्ययन में यह पाया कि सूक्ष्म वित्त

के माध्यम से स्वयं सहायता समूहों की महिलाओं के स्वावलम्बन एवं आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है। सूक्ष्म वित्त संस्थाओं की ग्रामीण महिला उद्यमियों की व्यावसायिक संरचना, आर्थिक एवं सामजिक स्थिति की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका है। इससे ग्रामीण महिलाओं में आर्थिक संपनन्नता, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं बचत प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। सूक्ष्म वित्तीय संस्थाओं को ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन के एक सबल विकासात्मक आधार के रूप में माना जाता है।

मानिकपुरी गैंद दास एवं अन्य[9] के द्वारा अपने शोध अध्ययन में बताया कि अध्ययन क्षेत्र में स्वयं सहायता के साथ जुड़ी ग्रामीण महिलाओं की आय में वृद्धि हुई है स्वयं सहायता समूह की महिलाओं की साक्षरता के माध्यम से आर्थिक स्थिति मजबूत हुई है। साथ ही स्वयं सहायता समूह की महिलाओं द्वारा साक्षरता अभियान चलाकर शत प्रतिशत महिलाओं को साक्षर किया गया तथा ग्रामीण महिलाओं में स्वयं सहायता समूह के माध्यम से नेतृत्व करने की क्षमता का विकास हुआ है।

दीक्षित अनुपमा[10], ने अपने अध्ययन में यह पाया कि महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाकर उनका सशक्तीकरण करने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। स्वयं सहायता समूह में जुड़कर महिलाएं घरेलू हिंसा, शोषण से मुक्त हुई हैं समाज में महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार आया है। साथ ही समूहों की महिलाओं को आर्थिक आजादी के साथ महिलाओं को विकास की मुख्य धारा में जोड़कर उनके सामाजिक, व्यक्तिगत एवं आर्थिक जीवन में उनका सशक्तीकरण किया है। ग्रामीण महिलाओं ने स्वयं सहायता समूहों से जुड़कर अपने जीवन में आर्थिक सम्पन्नता, सामजिक प्रतिष्ठा एवं बचत कि प्रवृत्ति में वृद्धि की है।

स्वयं सहायता समूह की अवधारणा : स्वयं सहायता समूह वह समूह है जो सूक्ष्म वित्त के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के लिए एक आर्थिक मंच प्रदान करता है जो ग्रामीण गरीब लोगों की स्थिति को सकारात्मक रूप से बदलने में सहायक है। इस प्रकार स्वयं सहायता समूह समाज को बेहतर बनाने के रूप में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को बढ़ाने में सहायक होता है। प्रत्येक स्वयं सहायता समूह में लगभग 10 से 20 ग्रामीण महिलाएं सम्मिलित होती हैं जो उनके सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को हल करने के उद्देश्य से निर्मित की जाती है। वित्तीय स्वतंत्रता का अवसर प्रदान करने के अलावा स्वयं सहायता समूह पंजीकृत सदस्यों के बीच उनकी मितव्ययिता एवं बचत को भी बढ़ाने का कार्य करते हैं। स्वयं सहायता समूह आंदोलन में एक सबसे उल्लेखनीय मील का पत्थर था जब नाबार्ड ने फरवरी 1992 में स्वयं सहायता समूह बैंक लिंकेज कार्यक्रम के प्रायोगिक चरण का प्रारंभ किया। यह परिपक्व स्वयं सहायता समूह का पहला उदाहरण था जिसे सीधे एक वाणिज्यिक बैंक द्वारा वित्तपोषित किया गया था एवं गरीबों के अनौपचारिक मितव्ययिता और ऋण समूहों को बैंक योग्य ग्राहकों के रूप में मान्यता दी गई थी।

महिला सशक्तीकरण की अवधारणा : महिला सशक्तीकरण को महिलाओं के आत्म-मूल्य की भावना को बढ़ावा देने, अपने स्वयं के विकल्पों को निर्धारित करने की उनकी क्षमता और स्वयं और दूसरों के लिए सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने के उनके अधिकार को बढ़ावा देने के लिए परिभाषित किया जा सकता है। महिला सशक्तीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा महिलाओं को व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक प्रयासों को आगे बढ़ाने के लिए पुरुषों के समान आधार पर समाज के सभी हिस्सों में सम्मिलित होने का प्रभाव और समान अवसर मिलता है। इस प्रकार राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में महिलाओं की पर्याप्त व सक्रिय भागीदारी में विश्वास रखता है। एक राष्ट्र का सर्वांगीण व समरसता पूर्ण विकास तभी संभव है जब महिलाओं को समाज में उनका यथोचित स्थान व पद दिया जाए। उन्हें पुरुषों के साथ-साथ विकास की सहभागी माना जाए। सशक्तीकरण के अंतर्गत महिलाएँ अपने आर्थिक स्वावलम्बन, राजनैतिक भागीदारी व सामाजिक विकास के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों पर पहुँच व नियंत्रण प्राप्त करती हैं। अपनी शक्तियों व सम्भावनाओं, क्षमताओं व योग्यताओं तथा अधिकारों व जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होती हैं।

महिला आर्थिक सशक्तीकरण आर्थिक सशक्तीकरण कम संसाधनों वाले लोगों को उन संसाधनों के साथ सशक्त बनाना है जिनकी उन्हें केवल निर्वाह से परे रहने की आवश्यकता है। आर्थिक सशक्तीकरण उन्हें वित्तीय स्थिरता का मौका देता है जो बदले में उनके लिए जीवन में अधिक विकल्प खोलता है। महिलाओं के लिए आर्थिक सशक्तीकरण का विकास उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर करता है और क्या महिलाओं के पास उनका उपयोग

करने का कौशल है। इसके अलावा, यह आर्थिक अवसरों तक महिलाओं की पहुंच और उन पर नियंत्रण पर निर्भर करता है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण द्वारा महिलाएं आर्थिक संसाधनों के अपने अधिकार और निर्णय लेने की शक्ति को बढ़ाती हैं जिससे उन्हें, उनके परिवार और उनके समुदायों को लाभ होता है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण में निवेश से गरीबी कम करने और पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता का मार्ग प्रशस्त होता है।

जिले में संचालित स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान स्थिति : अनूपपुर जिले में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत संचालित स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान वर्गवार स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है जो तालिका मे निम्नानुसार प्रदर्शित है-

तालिका 1

अनूपपुर जिले में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत संचालित स्वयं सहायता समूहों की वर्तमान स्थिति

विकासखण्ड	अनु. जाति	अनु. जनजातीय	अल्पसंख्यक	अन्य	कुल योग
अनूपपुर	88	583	-	582	1253
जैतहरी	86	1206	3	769	2064
कोतमा	60	382	3	334	779
पुष्पराजगढ़	180	2660	13	251	3104
कुल	**414**	**4831**	**19**	**1936**	**7200**

स्रोत-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन पोर्टल जिला अनूपपुर

उपर्युक्त तालिका 01 में सामाजिक श्रेणीवार स्वयं सहायता समूहों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है जो कि अनुपपुर जिले में वर्तमान कुल 7200 स्वयं सहायता समूह कार्यरत हैं जिसमें जिले के अनूपपुर, जैतहरी, कोतमा एवं पुष्पराजगढ़ में विकासखंडवार स्वयं सहायता समूह वर्तमान में सर्वाधिक संख्या 3104 पुष्पराजगढ़ विकासखंड में पायी गई है तथा साथ ही जिले में स्वयं सहायता समूह में अनुसूचित जनजातीय वर्ग के ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी सर्वाधिक पायी गई है।

जिले में उन्नत स्वयं सहायता समूहों की संख्या : अनूपपुर जिले में एनआरएलएम द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूह को उन्नत किये गए हैं। स्वयं सहायता समूहों की वर्षवार स्थिति 2 में प्रदर्शित है-

तालिका 2

जिले में उन्नत स्वयं सहायता समूहों की संख्या

वर्ष	संख्या
2009	206
2010	154
2011	150
2012	342
2013	1227
2014	2042
2015	1516
2016	357
2017	456
2018	61
2019	130
2020	145
2021	18

स्रोत- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन पोर्टल जिला अनूपपुर

उपर्युक्त तालिका 02 में अनूपपुर जिले में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन द्वारा संचालित विभिन्न वित्तीय वर्षों में उन्नत किये गए स्वयं सहायता समूह को प्रदर्शित किया गया है जिसमें वित्तीय वर्ष 2009 में उन्नत किये गए स्वयं सहायता समूह की संख्या 206 पायी गई है इसी प्रकार वर्ष 2010, वर्ष 2011, वर्ष 2012 एवं वर्ष 2013 में उन्नत किये गये समूहों की संख्या की दर में लगभग निरंतर वृद्धि पायी गयी है, जो वर्ष 2014 में बढ़कर 2042 पायी गयी है एवं वर्ष 2015 में उन्नत समूहों की संख्या में पिछले वर्षों की तुलना कमी हुई है जिसकी संख्या 1516 पायी गई है तथा वर्ष 2016 से वर्ष 2021

तक उन्नत किये गए स्वयं सहायता समूह की संख्या में निरंतर अधिक कमी पायी गई है।

स्वयं सहायता समूहों में सम्मिलित किये गए परिवार : जिले में विभिन्न वर्षों में स्वयं सहायता समूह में सम्मिलित किये गए परिवारों की संख्या का वर्षवार विवरण तालिका 3 में प्रदर्शित है-

तालिका 3

स्वयं सहायता समूहों में सम्मिलित किये गए परिवारों की संख्या

वर्ष	संख्या
2009	2259
2010	1556
2011	1623
2012	3825
2013	13829
2014	22872
2015	17037
2016	4803
2017	4946
2018	1189
2019	2150
2020	3324
2021	487

स्रोत- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन पोर्टल जिला अनूपपुर

उपर्युक्त तालिका 03 में जिले में संचालित स्वयं सहायता समूह के माध्यम से विभिन वित्तीय वर्षों में समिल्लित किये गए परिवारों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है जो जिले में संचालित स्वयं सहायता समूह के माध्यम से वर्षानुसार जोड़े गए। वर्ष 2009 में 2259 परिवार जोड़े गए हैं, इसी प्रकार वर्ष 2010 से वर्ष 2013 में जोड़े गए परिवारों के संख्या में औसतन वृद्धि पायी गई है एवं वर्ष 2014 में स्वयं सहायता समूह के माध्यम से 22872 परिवार जोड़े गए हैं जो विभिन्न वित्तीय वर्षों की तुलना में जोड़े गए परिवारों की संख्या में सर्वाधिक है जिसका मुख्य कारण जिले में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका के क्रियान्वयन में प्रशासनिक सक्रियता की मुख्य भूमिका थी। तथा वर्ष 2014 से वर्ष 2021 तक जिले में स्वयं सहायता समूह के माध्यम से जोड़े गए परिवारों की संख्या में निरंतर कमी पायी गई है।

स्वयं सहायता समूह की संख्या एवं प्रदान किये गए परिक्रामी निधि (आर.एफ.) राशि : अनूपपुर जिले में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन अंतर्गत परिक्रामी निधि (आर.एफ.) राशि प्रदान किये गए स्वयं सहायता समूहों की वर्षवार तुलनात्मक विवरण तालिका 4 में प्रदर्शित है-

तालिका 4

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत परिक्रामी निधि (आर.एफ.) प्रदान किये गए स्वयं सहायता समूहों की सूची

वर्ष	संख्या	निधि राशि
2013	560	7843000
2014	703	10385000
2015	638	8935000
2016	2254	27447000
2017	525	5797000
2018	263	3055000
2019	241	2779000
2020	542	6167000
2021	147	1650000

स्रोत - राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन पोर्टल जिला अनूपपुर

तालिका 04 में जिले में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन अंतर्गत निम्नलिखित वित्तीय वर्षों में कार्यरत स्वयं सहायता समूहों की संख्या एवं स्वयं सहायता समूहों को प्रदान की गयी परिक्रामी निधि (आर.एफ.) की राशि का वर्षवार विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है जिसमें वर्ष 2013 में 560 स्वयं सहायता समूह को 7843000 रुपये की परिक्रामी निधि (आर.एफ.) राशि प्रदान की गयी है इसी प्रकार वर्ष 2016 में 2254 स्वयं सहायता समूह को 27447000 रुपये की परिक्रामी निधि (आर.एफ.) राशि प्रदान की गयी है तथा वर्ष 2021 में 147 स्वयं सहायता समूह को 1650000 रुपये की परिक्रामी निधि (आर. एफ.) राशि प्रदान की गयी है। इससे यह ज्ञात होता है की राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के माध्यम से सरकार द्वारा जिले में स्वयं सहायता समूहों को वित्तीय सहायता के रूप में नियमित एवं पर्याप्त परिक्रामी निधि (आर.एफ.) राशि प्रदान की जा रही हैं जो स्वयं सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण कदम है।

स्वयं सहायता समूह एवं प्रदान किये गए सामुदायिक

निवेश कोष (सीआईएफ) राशि : अनूपपुर जिले में संचालित राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह के गरीब सदस्यों को जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने और स्वयं सहायता समूह के सदस्यों की आजीविका और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा ऋण योग्यता और निवेश योग्यता का प्रदर्शन करने के लिए स्वयं सहायता समूहों को प्रदान किए गए सामुदायिक निवेश कोष (सीआईएफ) राशि की स्थिति का वर्षवार अध्ययन किया गया है जो तालिका मे निम्नानुसार प्रदर्शित है-

तालिका 5

सामुदायिक निवेश कोष (सीआईएफ) प्रदान किए गए स्वयं सहायता समूहों की संख्या

वर्ष	संख्या	निधि राशि
2012	1	50000
2013	11	950000
2014	208	10043189
2015	575	21595230
2016	2181	108164140
2017	802	27269360
2018	399	16895110
2019	400	19128800
2020	220	6895618
2021	21	660000

स्रोत- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन पोर्टल जिला अनूपपुर

उपर्युक्त तालिका 05 में अनूपपुर जिले में संचालित राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह के गरीब सदस्यों को जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने और स्वयं सहायता समूह के सदस्यों की आजीविका और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा ऋण योग्यता और निवेश योग्यता का प्रदर्शन करने के लिए स्वयं सहायता समूहों को प्रदान किए गए सामुदायिक निवेश कोष (सीआईएफ) राशि की स्थिति का वर्षवार विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है जिसमें वर्ष 2012 में सामुदायिक निवेश कोष (सीआईएफ) की संख्या 01 में 50000 की राशि, वर्ष 2013 में 950000 एवं इसी प्रकार वित्तीय वर्ष 2016 में (सीआईएफ) में 108164140 की राशि है जो कि वर्ष 2016 में सर्वाधिक सामुदायिक निवेश कोष (सीआईएफ) के साथ सर्वाधिक राशि प्रदान की गयी है इससे यह ज्ञात होता है की सरकार राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के माध्यम से स्वयं सहायता समूह के गरीब सदस्यों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ साथ उनके ऋण एवं निवेश योग्यता को बढ़ाने के लिए सामुदायिक निवेश कोष (सीआईएफ) राशि प्रदान कर निरंतर प्रयास कर रही है।

सूक्ष्म वित्त के माध्यम से बैंक लिंकेज स्वयं सहायता समूहों में ऋणों का वितरण : सूक्ष्म वित्त के अंतर्गत नाबार्ड द्वारा प्रायोजित स्वयं सहायता समूहों को विभिन्न बैंकों से ऋण सुविधा उपलब्ध करायी जा रही है यह आकड़े वित्तीय वर्ष 2017-18 से वित्तीय वर्ष 2020-21 तक के है जो तालिका मे निम्नानुसार प्रदर्शित हैं-

तालिका 6

स्वयं सहायता समूहों में ऋणों का वितरण (राशि लाख में)

वित्तीय वर्ष	वाणिज्यिक बैंक		क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक		निजी क्षेत्र बैंक		कुल योग	
	संख्या	बैंक ऋण	संख्या	बैंक ऋण	संख्या	बैंक ऋण	संख्या	बैंक ऋण
2017-18	623	179.41	367	93.47	-	-	990	272.88
2018-19	651	319.61	586	282.92	01	1.22	1238	603.75
2019-20	623	394.50	993	736.54	02	3.52	1618	1089.56
2020-21	892	580.21	1459	1031.08	100	154.41	2451	1765.70
CAGR	9%	34%	41%	82%	-	-	25%	59%

उपर्युक्त तालिका 06 में जिले में अनूपपुर जिले के राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन द्वारा संचालित बैंक लिंकेज स्वयं सहायता समूहों की वार्षिक वृद्धि दर एवं सूक्ष्म वित्त के माध्यम से जिले में संचालित सार्वजानिक क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ऋण उपलब्धता की संयुक्त वृद्धि दर का विश्लेषण किया गया है वित्तीय वर्ष 2017-18 से 2020-21 की अवधि में स्वयं सहायता समूहों की संख्या में 25 प्रतिशत की संयुक्त

वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई है तथा विभिन्न बैंकों द्वारा ऋण सुविधाओं प्रदान करने में 59 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि पायी गयी है। जिलें में स्वयं सहायता समूहों को ऋण उपलब्ध कराने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 82 प्रतिशत, सार्वजानिक क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक की 34 प्रतिशत वृद्धि दर रही है, साथ निजी क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक का भी योगदान है। इस प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं सार्वजानिक क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक की ऋण उपलब्धता वृद्धि दर सकारात्मक रही है। निजी क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक का ऋण उपलब्धता दर में कमी पायी गई है।

स्वयं सहायता समूहों को प्रदान किये गए ऋण के समक्ष बकाया बैंक ऋण : अनूपपुर जिले के बैंक लिंकेज-स्वयं सहयता समूह को वर्ष 2017-18 से वर्ष 2020-21 में सूक्ष्म वित्त के माध्यम से उपलब्ध कराये गए ऋण की राशि का तुलनात्मक अध्ययन तालिका 7 में प्रदर्शित है।

तालिका 7

स्वयं सहायता समूहों की ऋण के समक्ष बकाया बैंक ऋण (राशि लाख में)

वित्तीय वर्ष	वाणिज्यिक बैंक		क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक		निजी क्षेत्र का बैंक		कुल योग	
	संख्या	ऋण राशि	संख्या	ऋण राशि	संख्या	ऋण राशि	संख्या	ऋण राशि
2017-18	623	296.42	367	191.52	-	-	990	487.94
2018-19	651	422.23	586	600.79	01	-	1238	1023.02
2019-20	623	451.04	993	996.51	02	2.67	1618	1450.22
2020-21	892	628.48	1459	1445.98	100	149.89	2451	2234.35
CAGR	9%	21%	41%	66%	.	.	25%	46%

प्रस्तुत तालिका 07 में अनूपपुर जिले के स्वयं सहायता समूहों की ऋण के समक्ष बकाया बैंक ऋण की राशि का विश्लेषण किया गया है जो मार्च 2018 तक 990 बैंक लिंकेज - स्वयं सहायता समूहों पर 487.94 लाख रुपये ऋण की बकाया राशि की तुलना में मार्च 2021 को 2451 बैंक लिंकेज - स्वयं सहायता समूहों पर कुल 2234.35 लाख रुपये बकाया ऋण की राशि थी। इस प्रकार विगत चार वित्तीय वर्षों की अवधि में बैंक लिंकेज-स्वयं सहायता समूहों के समक्ष बकाया ऋणों के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों की संख्या में 25 प्रतिशत एवं बकाया ऋण की राशि में 46 प्रतिशत की संयुक्त वृद्धि पायी गई है। यह वृद्धि दर है क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं सार्वजानिक क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक द्वारा बड़े पैमाने पर नियमित रूप से ऋण वितरण एवं समय पर वसूली नहीं होने के कारण है। इस प्रकार स्वयं सहायता समूहों के समक्ष बकाया ऋणों के के सम्बन्ध में समस्त क्षेत्र के बैंकों को प्रदर्शन में सुधार करने की आवश्यकता है।

सुझाव

1. स्वयं सहायता समूहों की महिलाओं को सभी कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए और उन्हें एक व्यवसाय शुरू करने का विश्वास दिलाना चाहिए, जो उन्हें स्वतंत्र रूप से जीवन जीने का आत्मविश्वास देगा।
2. निरक्षर सदस्यों को न्यूनतम समय सीमा में साक्षर करना आवश्यक है ताकि वे स्वयं सहायता समूहों के कामकाज में अधिक प्रभावी ढंग से भाग ले सकें।
3. ग्रामीण क्षेत्र के स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के आय सृजन और स्वरोजगार पर अधिक से अधिक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान किए जाने चाहिए। यह स्वयं सहायता समूह सदस्यों को ऋण प्राप्त करने, कम वेतन वाले व्यवसाय से बाहर निकलने और अधिक धन अर्जित करने में सक्षम बनाएगा।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली अधिकांश महिलाएं परिवार और समाज में अपने कानूनी अधिकारों से अनजान हैं। इसलिए, यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह समाज में महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए कानूनी अधिकारों पर ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करे।
5. महिला उद्यमियों को प्रेरित करने के लिए सरकार को स्वयं सहायता समूहों के लिए एक अलग विभाग बनाना चाहिए और सभी ग्राम पंचायतों में शाखाएं खोलनी चाहिए। यह कदम महिलाओं को आगे आने

और वास्तविक दुनिया में चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित करेगा।

निष्कर्ष : स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की भागीदारी ने स्पष्ट रूप से गरीब महिलाओं के जीवन पद्धत्ति एवं उनकी जीवन शैली पर सकारात्मक प्रभाव डाला है और उन्हें न केवल व्यक्तियों के रूप में बल्कि समुदाय और पूरे समाज एवं परिवार के सदस्यों के रूप में भी विभिन्न स्तरों पर सशक्त बनाया है। देश में नाबार्ड प्रायोजित स्वयं सहायता समूह- बैंक लिंकेज के माध्यम से सूक्ष्म वित्त प्रदान कर, साथ ही उन्हें व्यवसायिक गतिविधियों में प्रशिक्षण प्रदान कर एवं साथ ही एकत्रित स्वयं सहायता समूह की धन राशि से संचालित गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप सशक्त बनाने का प्रयास किया गया है जो सूक्ष्म वित्त के क्षेत्र में सबसे सफल प्रयास माना जाता है और उनकी यह सफलता वर्तमान समय में स्वयं सहायता समूह- बैंक लिंकेज कार्यक्रम के अंतर्गत सूक्ष्म वित्त भारत जैसे विकासशील देश में गरीबी निवारण, शिक्षा, महिला जागरूकता के रूप में ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में अहम् भूमिका का निर्वहन कर रही है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्तमान में अनूपपुर जिले में स्वयं सहायता समूहों की कुल संख्या 7125 हैं। वित्तीय वर्ष 2017-18 से वित्तीय वर्ष 2020-21 की अवधि में स्वयं सहायता समूहों की संख्या में 25 प्रतिशत की संयुक्त वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई है तथा विभिन्न बैंकों द्वारा ऋण सुविधाओं प्रदान करने में वृद्धि 59 प्रतिशत पायी गयी है। जिलें में स्वयं सहायता समूहों को ऋण उपलब्ध कराने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 82 प्रतिशत, सार्वजानिक क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक की 34 प्रतिशत वृद्धि दर रही है, साथ निजी क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंक का भी योगदान है। जिले के स्वयं सहायता समूहों की ऋण के समक्ष बकाया बैंक ऋण की राशि का विश्लेषण किया गया है जो मार्च 2018 तक 990 बैंक लिंकेज-स्वयं सहायता समूहों पर 487.94 लाख रुपये ऋण की बकाया राशि की तुलना में मार्च 2021 को 2451 बैंक लिंकेज-स्वयं सहायता समूहों पर कुल 2234.35 लाख रुपये बकाया ऋण की राशि थी। अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान में स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्रों के महिलाओं के लिए अर्थोपार्जन का मुख्य स्रोत बनकर ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण एवं आर्थिक सक्षमता का परिचायक बन रहे हैं।

सन्दर्भ

1. तिवारी राकेश कुमार, 'महिला सशक्तीकरण एवं स्वयं सहायता समूह : एक समाजशास्त्रीय विमर्श', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परंपरा, वर्ष 20, अंक 1, जनवरी-जून 2018, पृ. 58-67
2. पाण्डेय जितेन्द्र कुमार, 'महिला सशक्तीकरण एवं पंचायती राज', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परंपरा, वर्ष 21, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2019, पृ. 6-13
3. आर्या रिंकी, 'महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परंपरा, वर्ष 23, अंक 1, जनवरी-जून 2021, पृ. 144-149
4. यादव कुलदीप एवं प्रसाद जितेन्द्र, 'महिलाओं के आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूह की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परंपरा, वर्ष 17, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015,पृ. 50-55
5. गुप्ता लक्ष्मी, 'ग्रामीण महिलाओं के उत्थान में स्व-सहायता समूह की भूमिका', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परंपरा, वर्ष 19, अंक 1, जनवरी -जून 2017, पृ.179-183
6. मिश्रा आभा 'महिला सशक्तिकरण एवं स्वयं सहायता समूहः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण रांची जिले के नामकुम प्रखंड के विशेष सन्दर्भ में', जर्नल ऑफ सोशल-एजुकेशनल एंड कल्चरल रिसर्च, 2(5), जुलाई-दिसंबर 2016, पृ. 75-82
7. जोशी उमा एवं पाण्डेय कंचन, 'स्वयं सहायता समूह एवं महिला सशक्तिकरण' जर्नल ऑफ एडवांस एंड स्कॉलरली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन, 16 (9) जून 2019, पृ. 1418-1424
8. सबा नसरीन, 'ग्रामीण महिला उत्थान में सूक्ष्म वित्त की भूमिका' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड रिसर्च, 6(10) 2020, पृ. 886-889
9. मानिकपुरी गैंद दास एवं अन्य, 'ग्रामीण महिला स्वसहायता समूह के विकास में शिक्षा के महत्त्व का अध्ययन' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूज एंड रिसर्च इन सोशल साइंस, 8(4), अक्टूबर-दिसंबर 2020, पृ. 256-264
10. दीक्षित अनुपमा, 'महिला सशक्तिकरण एवं स्वयं सहायता समूह' इनोवेशन द रिसर्च कॉन्सेप्ट, 6(5)जून 2021, पृ. 27-37

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

बिहार में महिला सशक्तीकरण के विविध आयाम

❑ डॉ. सुनीता राय

सूचक शब्द : महिला सशक्तीकरण, सामाजिक न्याय, घरेलू हिंसा, यौन हिंसा, बाल विवाह, आर्थिक विकास

सशक्तीकरण से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस योग्यता से है जिसमें वह अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। महिला सशक्तीकरण से महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है ताकि उन्हें रोजगार, शिक्षा, आर्थिक विकास में बराबरी के अवसर मिल सकें। जिससे वे सामाजिक स्वतंत्रता तथा उन्नति कर सकें और महिलाएं भी पुरुषों की तरह अपनी सभी आकांक्षाओं को पूरा कर सकें। महिला सशक्तीकरण की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि प्राचीन समय से भारत में लैंगिक असमानता थी और शुरू से ही भारत पुरुष प्रधान देश रहा है। प्राचीन भारतीय समाज में दूसरी भेदभावपूर्ण प्रथायें सती प्रथा, नगर वधू व्यवस्था, दहेज प्रथा, यौन हिंसा, बाल मजदूरी, बाल विवाह, आदि परंपराएं थीं। इनमें से कई सारी कुप्रथाएं आज भी समाज में उपस्थित हैं। सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण के लिए कई सारी योजनाएं चलाई जा रही हैं। महिला एवं बाल विकास कल्याण मंत्रालय तथा भारत सरकार द्वारा भारतीय महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, महिला हेल्पलाइन योजना, उज्ज्वला योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, महिला शक्ति केंद्र योजना, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, महिला शक्ति केंद्र जैसी योजनाएं चलाई जा रही हैं। बिहार में भी महिला सशक्तीकरण के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही हैं। प्रस्तुत आलेख बिहार में महिला सशक्तीकरण के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करता है।

महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। महिलाएं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाती हैं। जब तक महिलाएं जागरूक नहीं होंगीं तथा राष्ट्रीय विकास की धारा में अपनी सक्रिय भूमिका तथा भागीदारी नहीं निभाएंगीं तब तक राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की अहम भूमिका को दृष्टि में रखते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि ''यदि जनता में जागृति पैदा करनी है तो महिलाओं में जागृति पैदा करो। एक बार वे आगे बढ़ती हैं तो परिवार आगे बढ़ता है, गांव तथा शहर आगे बढ़ता है, स्वयं सारा देश आगे बढ़ता है''।[1] इस तथ्य से सभी सहमत हैं कि किसी भी स्वस्थ एवं विकसित समाज के निर्माण में स्त्री एवं पुरुष दोनों की सहभागिता आवश्यक है। साथ ही नैसर्गिक सिद्धांत तथा पर्यावरणीय असंतुलन की दृष्टि से भी ऐसा नितांत आवश्यक है। वैसे भी मानव समाज के समुचित और सर्वांगीण विकास में महिलाओं का योगदान कभी भी कम नहीं रहा परंतु यह एक विडंबना ही है कि समाज में उन्हें बराबरी का दर्जा शायद ही कभी प्राप्त हुआ हो।

महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रतिनिधित्व दक्षता में अभिवृद्धि सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति को हासिल करके उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है। महिलाओं का सशक्तीकरण उन्हें क्षितिज दिखाने का प्रयास है जिसमें वे नई क्षमताओं को प्राप्त कर स्वयं को नए तरीके से देखेंगी, घरेलू शक्ति संबंधों का बेहतर समायोजन करेंगी और घर एवं पर्यावरण में स्वायत्तता की अनुभूति करेंगी। लैंगिक असमानता, दहेज, सामाजिक मान्यता एवं समुचित शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कुछ पहलुओं की दिशा में प्रयास करके ही महिला सशक्तीकरण किया जा सकता है। सशक्तीकरण की गतिविधियों के द्वारा नारी समाज के नव जागरण और कल्याण की ठोस शुरुआत की जानी है। महिला सबलीकरण आधुनिक जीवन में सामाजिक न्याय की जड़ों को मजबूत करता है। समाज के रवैये में बुनियादी परिवर्तन लाकर महिलाओं के विवेक, सामर्थ्य एवं योग्यताओं को मिलने वाली चुनौतियों के बीच उन्हें प्रोत्साहित करता है। अपनी क्षमताओं को पहचान कर और उन्हें काम में लाकर व्यवहार में परिणित करना जिससे वे समाज के उत्थान में योगदान कर सकती हैं। महिलाओं का सशक्तीकरण एक लगातार चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है, इसका मूल उद्देश्य है कि हाशिये के लोगों को मुख्यधारा में लाया जा सके और सत्ता-संरचना में भागीदार बनाया जा सके।[2]

❑ एसोशिएट प्रोफेसर, पी.एम.आई.आर. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

साहित्य समीक्षा : दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक विकास संभव हुआ हो। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य व देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारत की कुल आबादी की आधी महिलाओं को सशक्त बनाए बिना सुदृढ़ भारत का सपना पूरा नहीं किया जा सकता, विशेषकर 'ग्रामीण महिला' को सशक्त किए बिना।[3]

कौर[4] के अनुसार, 'महिला सशक्तीकरण' का सीधा साधा अर्थ है- सबलता, सुयोग्यता, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास। दूसरे शब्दों में, महिलाओं को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराना, मनचाही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देना व घर-परिवार व समाज के बारे में स्वतंत्र निर्णय करने का हक देना, सशक्तीकरण है। अन्य अवधारणा के अनुसार, महिला सशक्तीकरण का सीधा सा अर्थ हैं, महिलाओं को शक्तिशाली बनाना, महिलाओं के हाथ में अधिकार देना तथा उन्हें स्वावलंबी बनाना। इसके अंतर्गत अन्य अर्थ में, महिला सशक्तीकरण का तात्पर्य पुरुषों की बराबरी करना न होकर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की सशक्त भागीदारी से है।

महिला सशक्तीकरण को दुनिया के लगभग सभी समाजों में स्त्री पुरुष भेदभाव को कम करने के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा है। सशक्तीकरण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसके अंतर्गत शक्तिहीन लोगों को अपने जीवन की परिस्थितियों को नियंत्रित करने के बेहतर अवसर मिलते हैं। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव के बारे में वे जागरूक बनें।

चौधरी[5] के अध्ययन के अनुसार, महिला सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई महिला अपने जीवनस्तर को उन्नत करने के लिए विद्यमान सामाजिक व्यवस्थाओं और संस्कृति को चुनौती देती है और इस प्रक्रिया के माध्यम से उसकी योग्यतायें उभरकर आती हैं। वास्तविक महिला सशक्तीकरण की श्रेणी में केवल वही गतिविधियों समाहित की जा सकती हैं, जिसके माध्यम से महिलाएँ समाज के वर्तमान व्यवस्थाओं का प्रतिरोध करती हैं और इस प्रक्रिया में उनकी जीवन परिस्थितियों में स्पष्ट सुधार परिलक्षित होता है।

सोमनाथे, सिलवाल[6] के अध्ययन के अनुसार हमारे देश की आधी जनसंख्या महिलाओं की है, जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है, महिलायें राष्ट्र की उन्नति एवं विकास में पुरुषों जितना ही महत्व रखती है, उन्होंने अपने आर्थिक स्तर पर महत्वपूर्ण योगदान देते हुये यह सिद्ध कर दिया है कि देश के विकास में पुरुष एवं महिलायें विकास रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। विगत दशकों में कृषि, उद्योग, यातायात, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में तेजी से विकास हुआ, जिसमें महिलाओं ने स्वालम्बन और आत्मनिर्भरता दिखाते हुए राष्ट्र के विकास में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में सहभागी बनने लगी।

सिंह, कुशल व गौतम[7] ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष दिया है कि महिलाओं का एक अत्यधिक बड़ा प्रतिशत स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता के बाद सकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ है। महिलाओं की समूह में भागीदारी उन्हें अपनी आंतरिक शक्ति को खोजने, आत्मविश्वास अर्जित करने, सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण और क्षमता निर्माण करने योग्य बनाता है।

लोकेश[8] के अनुसार स्व सहायता समूहों के पास देश में सामाजिक, आर्थिक क्रांति लाने की शक्ति है। यह आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रस्थिति, निर्णय निर्माण को परिवर्तित करने में योगदान कर सकता है और महिलाओं की बाहरी गतिविधियों में वृद्धि करता है।

शोध का उद्देश्य :

1) बिहार में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन।
2) महिला सशक्तीकरण की आवश्यकता पर प्रकाश डालना।
3) महिला संवेदी बजट का अध्ययन करना।
4) लैंगिक समानता के लिए योजनाओं पर प्रकाश डालना।
5) महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव का अध्ययन।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध द्वारा बिहार राज्य में महिला सशक्तीकरण के विविध आयामों का अध्ययन किया जाना है। महिला सशक्तीकरण से महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से इस विषय का चुनाव किया गया है। प्रस्तुत शोध द्वितीयक सामग्री पर आधारित है। विशेषकर बिहार आर्थिक सर्वेक्षण का सहारा लिया गया है। इसके अलावा कई

पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेख का भी सहारा लिया गया है जिनमें कुरुक्षेत्र, योजना, आदि प्रमुख हैं।

शोध विश्लेषण : भारत के संविधान में स्त्रियों और पुरुषों को न केवल समान अधिकार और सुविधाएं दी गई हैं बल्कि महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए हैं। देश में महिलाओं के स्तर और स्थिति को उन्नत करने के लिए समय-समय पर कई सामाजिक कानून बनाए गए हैं। महिलाओं के उत्थान के लिए भारत सरकार समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाओं को क्रियान्वित करती रहती है जिससे महिलाएं सशक्त हों, अधिकार संपन्न हों, विकास की प्रक्रिया में समानता का अवसर मिले। इसी क्रम में वर्ष 1975 को महिला दिवस के रूप में और वर्ष 2001 को राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा करके सरकार ने महिलाओं को विकास के हर क्षेत्र में समानता का अवसर प्रदान करने का प्रयास किया है।[9]

सशक्तीकरण का अर्थ अपनी पसंद रखने और तय करने के अधिकार, अवसरों तथा संसाधनों की प्राप्ति तथा अधिक न्यायपूर्ण और सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिए सामाजिक परिवर्तन की दिशा को प्रभावित करने की क्षमता से है। अतः महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं को पुरुषों के समान वैधानिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। लैंगिक समानता और सभी महिलाओं तथा लड़कियों के सशक्तीकरण के लिए लक्षित संधारणीय विकास लक्ष्य-5 में महिलाओं को दुनिया में उचित स्थान देने की जरूरत पर बल दिया गया है।[10]

बिहार में महिलाओं के सशक्तीकरण के बिना विकास की उम्मीद नहीं की जा सकती। महिलाओं को सशक्त किए बिना बिहार के विकास की कल्पना एक कोरी कल्पना होगी। महिलाओं को कृषि, उद्योग के साथ-साथ सेवा क्षेत्रों में लाना पड़ेगा और इस आबादी को क्रियाशील जनसंख्या में परिवर्तित करना पड़ेगा तभी हम बिहार के विकास की कल्पना कर सकते हैं।[11] बिहार में महिला सशक्तीकरण का सूचक मुख्यतः तीन मापदंडों पर आधारित है (क) घरेलू निर्णय लेने में महिलाओं की भागीदारी, (ख) कोई बैंक खाता होना, और (ग) अपने पास घर या जमीन होना। राष्ट्रीय पारिवारिक एवं स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस-5) (2019-20) के आंकड़ों से पता चलता है कि बिहार में 86.5 प्रतिशत विवाहित महिलाएं (15 से 49 वर्ष उम्र की) घरेलू निर्णय में भाग लेती हैं, जो एनएफएचएस-4 के आंकड़े 75.2 प्रतिशत से 11.3 प्रतिशत अंकों की वृद्धि दर्शाती हैं। एनएफएचएस -5 के अनुसार, खुद संचालित करने वाले बैंक खातों के मामले में यह आंकड़ा 76.7 प्रतिशत है जो एनएफएचएस -4 में 26.4 प्रतिशत ही था। यह 50 प्रतिशत अंकों की उल्लेखनीय वृद्धि दर्शाता है जो राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा उनके सशक्तीकरण के लिए किए गए प्रधानमंत्री जन धन योजना जैसे विभिन्न उपायों का परिणाम हो सकता है। हालांकि अकेले या संयुक्त रूप से घर/जमीन रखने वाली महिलाओं के हिस्से में 3.5 प्रतिशत अंकों की कमी आई है जो 2015-16 (एनएफएचएस -4) के 58.8 प्रतिशत से घटकर 2019-20 (एनएफएचएस -5) 55.3 प्रतिशत रह गया।[12] देश में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार महिलाओं के सशक्तीकरण को स्पष्ट लक्ष्य के तौर पर सम्मिलित किया गया था। महिला घटक योजना के साथ इसे नवीं योजना में आगे बढ़ाया गया था जिसमें महिलाओं के कार्यक्रमों के लिए धनराशि के प्रवाह को सूचित करना चिन्हित मंत्रालयों के लिए जरूरी किया गया था। बाद में 12वीं योजना में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सशक्तीकरण के द्वारा योजना प्रक्रिया में लैंगिक समानता के जिन मुख्य सूचकों पर काम किया जाना था, उनकी पहचान की गई थी।[13] केंद्र सरकार के अलावा, राज्य सरकार भी महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए हाल के वर्षों में अनेक प्रयास करती रही है।

महिला संवेदी बजट : लैंगिक बजट को लिंग अनुकूल बजट, लिंग संवेदन बजट, लिंग बजट, महिलाओं का बजट, आदि नाम से भी संबोधित किया जाता है किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लैंगिक बजट महिलाओं के लिए कोई अलग से बजट है। अपितु राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय राजकीय आय व्यय विवरण बजट के अंतर्गत लिंग आधारित आवंटन एवं उनके प्रभाव आदि का अध्ययन करने वाला उपकरण एवं तकनीक है। लैंगिक बजट राजकीय बजट को लैंगिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने का तरीका है जिसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि यह महिलाओं के प्रति कैसा है और इस बजट से महिलाओं

पर क्या प्रभाव पड़ेगा। दूसरे शब्दों में लैंगिक बजट सरकार के राजस्व एवं व्यय का महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन का एक तरीका है। यूरोपीय संघ की विशेषज्ञ समिति के अनुसार लैंगिक बजट बजटीय प्रक्रिया का लैंगिक आधार पर अध्ययन करता है – जिसका अभिप्राय बजट का लिंग आधारित मूल्यांकन, लैंगिक परिप्रेक्ष्य को बजटीय प्रक्रिया के सभी स्तरों को संयुक्त करना, लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करने के लिए राजस्व एवं व्यय को पुनः संचारित करने से है। राज्य सरकार 2008-09 के जेंडर बजट प्रकाशित करती रही है। वर्ष 2015 में महिला विकास निगम (डब्लू डी सी) के एक कोषांग – लैंगिक संसाधन केंद्र को कल्याण विभाग द्वारा जेंडर बजट निर्माण के लिए नोडल अभिकरण नामित किया गया। वर्ष 2013-14 से 2017-18 महिला विकास पर कुल व्यय का सारांश तालिका 01 में प्रस्तुत है। प्रशंसा की बात है कि इन 5 वर्षों के दौरान महिलाओं से संबंधित योजना पर व्यय 2013-14 में 5165 करोड़ रुपए से लगभग तिगुना बढ़ कर 2017-18 में 13952 करोड़ रुपए हो गया। राज्य के कुल बजट में महिलाओं का हिस्सा थोड़े बहुत अंतर के साथ लगभग 9 प्रतिशत रहा है। हालांकि सकल राज्य घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के बतौर महिलाओं के लिए परिव्यय 2013-14 के 1.5 प्रतिशत से बढ़कर 2017-18 में 2.9 प्रतिशत हो गया।[14]

तालिका 01
महिलाओं पर कुल व्यय (2013-14 से 2017-18)
(रकम करोड़ रुपए में)

विवरण	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17	2017-18
महिलाओं के लिए श्रेणी-1 की योजनाएं (100% लाभार्थी)	1729.97	3390.65	3113.50	5980.42	3072.99
महिलाओं के लिए श्रेणी-2 की योजनाएं (30% लाभार्थी)	3435.15	4499.12	6784.90	7117.65	10878.55
महिलाओं के लिए कुल व्यय	5165.18	7889.77	9898.40	13098.60	13591.54
राज्य बजट का कुल आकार	80405.18	94698.00	112328.00	126302.00	136427.00
राज्य बजट में महिलाओं का हिस्सा (%)	6.40	8.30	8.80	10.40	10.20
सकल राज्य घरेलू उत्पाद	343662.79	402282.99	487316.00	540556.00	487628.00
महिलाओं के लिए व्यय सकल राज्य घरेलू उत्पाद के प्रतिशत में	1.50	2.00	2.00	2.40	2.90

स्रोत :- वित्त विभाग, बिहार सरकार।

लैंगिक समानता के लिए योजनाएं : लैंगिक असमानता से निपटने के लिए किए जाने वाले राज्य सरकार के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप दो मुख्य शीर्षों पर आते हैं : बाल रक्षा (बाल विवाह रोकने के लिए मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना) तथा सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा (लक्ष्मीबाई सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना, कन्या विवाह योजना और नारी शक्ति योजना) (तालिका - 02)। वर्ष 2018 में शुरू हुई कन्या उत्थान योजना सरकार की सबसे महत्वाकांक्षी योजना है। इसमें किसी लड़की के जीवन का उसके जन्म से लेकर स्नातक होने तक आच्छादन होता है। यह समाज कल्याण, स्वास्थ्य और शिक्षा विभाग द्वारा संयुक्त रूप से क्रियान्वित योजना है। वहीं, 2007-08 में शुरू की गई नारी शक्ति योजना का लक्ष्य विभिन्न योजनाओं के द्वारा महिलाओं का सशक्तीकरण करना है। इसके अलावा इस योजना के अंतर्गत हेल्पलाइन सेवाओं, अल्पवास गृह, कामकाजी महिला आवासों और संरक्षा गृहों के जरिए भी महिलाओं की मदद की जाती है। मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना के तहत बीपीएल परिवार की 18 वर्ष या उसके बाद विवाह करने वाली लड़कियों को 5000 रूपये की वित्तीय सहायता दी जाती है। विगत वर्षों के दौरान इन फ्लैगशिप योजनाओं पर व्यय क्रमशः बढ़ा है। बस 2014-15 से 2019-20 के बीच इन योजनाओं पर व्यय में 52 प्रतिशत वृद्धि हुई है।[15]

तालिका 02
लैंगिक भेदभाव से निपटने वाली योजनाएं (2014-15 से 2019-20)
(करोड़ रु)

योजना	2014-15	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20
लक्ष्मीबाई सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना	32.51	357.48	213.86	260.47	281. 83	300.00
मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना	0.00	11.20	24.60	61.52	66.17	20.46
मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना	143.54	26.85	21.59	38.16	46.51	40.37
मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना	-	-	-	-	96.72	42.73
योग	266.05	395.53	266.20	436.42	491.23	403.60

स्रोत :- समाज कल्याण विभाग, बिहार सरकार।

आर्थिक सशक्तीकरण : किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक प्रगति को जानने के लिए वहां की महिलाओं की स्थिति एवं स्तर का आकलन करना अति आवश्यक है। समाज में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। महिलाओं की शक्ति का समुचित उपयोग करने एवं सम्माननीय स्थान देने पर वे राष्ट्र के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित कर सकती हैं। यह सच है कि ग्रामीण महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार धीमी गति से हुआ है, जिसका मुख्य कारण ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का सीमित प्रभाव रहा है। इन कार्यक्रमों का लाभ दूर-दराज के इलाकों तक नहीं पहुंच पाया है। इसलिए योजना के प्रारूप में स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लाभ से महिलाओं को वंचित नहीं रखा जाए और सामान्य विकास कार्यक्रमों के साथ-साथ महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम भी चलाए जाएं। सामान्य विकास कार्यक्रमों में आर्थिक जेंडर संवेदनशीलता परिलक्षित की जानी चाहिए।

कृषि कार्य ग्रामीण जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले अनेक कार्य बुवाई, निराई-गुड़ाई, चारे की कटाई, अनाज निकलवाने, आदि तक सीमित हैं। इसके अतिरिक्त महिलाएं मुर्गी पालन, पशु पालन और मधुमक्खी पालन के कार्य भी करती हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र की 83 प्रतिशत महिलाएं कृषि और कृषि से संबंधित कार्यों में लगी हुई हैं। भारत सरकार ने ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की भागीदारी बढ़ाने के लिए समय-समय पर नीतियों का निर्माण किया है। बिहार में ग्रामीण विकास, रोजगार संवर्धन व विभिन्न क्षेत्रों की विशेष किस्म की समस्याओं को हल करने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं।[16]

आरक्षित रोजगार महिलाओं का अधिकार : काम में भागीदारी के द्वारा महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण बढ़ाने के लिए राज्य सरकार द्वारा सभी सरकारी सेवाओं में नियुक्ति में महिलाओं को 35 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। साथ ही, पंचायती राज संस्थानों और नगरपालिका निकायों में चयनित महिला प्रतिनिधियों को 50 प्रतिशत आरक्षण दिया जाता है। इसके अलावा राज्य सरकार ने महिला पुलिस थाने भी स्थापित किए हैं और बिहार आरक्षी सेवा की सेवाओं में महिलाओं को 35 प्रतिशत आरक्षण दिया जाता है। जीविका द्वारा गठित महिला स्वयं सहायता समूहों से भी महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ा है।

सशक्त महिला सक्षम महिला : सात निश्चय 2 के अंतर्गत राज्य सरकार का खास लक्ष्य इन योजनाओं के द्वारा महिलाओं का सशक्तीकरण करना है :-

महिला उद्यमिता के लिए विशेष योजना :- राज्य में महिला उद्यमिता बढ़ाने के लिए एक विशेष योजना तैयार की गई है। इस योजना के अंतर्गत महिलाओं द्वारा स्थापित उद्यमों के लिए 50 प्रतिशत परियोजना व्यय बिहार राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। इसके अलावा महिला उद्यमियों को 5 लाख रूपये तक अनुदान और अधिकतम 5 लाख रूपये तक ब्याज मुक्त ऋण दिया जाएगा।

उच्च शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन :- लड़कियों में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अविवाहित लड़कियों को इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी होने पर 25000 रूपये और स्नातक की पढ़ाई हो पूरी होने पर 50000 रूपये दिए जाएंगे।

क्षेत्रीय प्रशासन में महिलाओं की आरक्षण के अनुसार भागीदारी :- क्षेत्रीय प्रशासन, पुलिस, प्रखंड, अनुमंडल और जिला स्तर के कार्यालयों में महिलाओं की भागीदारी आरक्षण योजना के अनुसार बढ़ाई जाएगी।

सूक्ष्म बीमा (बीमा सुनिश्चय) : बीमा टीम द्वारा प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (पीएमजेजेबीवाई) और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना के अंतर्गत शत-प्रतिशत नामांकन का लक्ष्य राज्य के सभी जिलों में प्राप्त किया गया। वर्ष 2019-20 में 20.88 लाख स्वयं सहायता समूह सदस्यों का नामांकन किया गया। उसी वर्ष मृत्यु के 1906 मामले दर्ज किए गए जिसमें से एक 1177 को कुल 23.54 करोड़ रुपए का मुआवजा दिया गया।

वैकल्पिक बैंकिंग : 'बैंक हमारे गांव' : जीविका मैं बैंक सखियों द्वारा, जो आमतौर पर जीविका के स्वयं सहायता समूह की सदस्य होती हैं, संचालित ग्राहक सेवा केंद्र (सीएसपी) खोलने में सहयोग के लिए प्रमुख बैंकों के व्यवसायिक संवाददाताओं के साथ मिलकर काम शुरू किया है। ग्राहक सेवा केंद्रों को दूर-दराज के गांवों में खोला गया है जहां के लोगों के लिए आमतौर पर बैंकों तक पहुंचना आसान नहीं है। वर्ष 2019-20 में 33 जिलों के 245 प्रखंडों में कुल 919 ग्राहक सेवा केंद्र स्थापित किए गए। फलतः ग्राहक सेवा केंद्रों में कुल 43613 बैंक खाते खोले गए और कुल 1081.53 करोड़ रुपए की लेन-देन हुई।[17]

कृषि मूल्य श्रृंखला : जीविका द्वारा प्रवर्तित कृषक उत्पादक कंपनियों (एफपीसी) का लक्ष्य सामग्रियों का बाजार संपर्क बढ़ाकर कृषक समुदाय की मोलतोल की क्षमता बढ़ाना है। जीविका द्वारा अभी तक 10 जिलों में 10 महिला उत्पादक कंपनियों को परिवणतत किया गया है जो लगभग 40000 किसानों को सेवा दे रही हैं। कृषक उत्पादन कंपनियों का कामकाज उनके हितधारकों और उत्पादक समूह द्वारा संचालित होता है।

महिला विकास निगम (डब्लूडीसी) : राज्य में महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए राज्य के सभी 38 जिलों में महिला विकास निगम के जिला स्तरीय कार्यालय खोले गए हैं। वर्ष 2019-20 में कुल बजट आवंटन 5.00 करोड़ रुपए का था जिसमें से 4.25 करोड़ रुपए खर्च किए जा चुके हैं। वर्ष 2020-21 के लिए 5.00 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है।[18]

सामाजिक सशक्तीकरण : बिहार में महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में जो प्रमुख प्रयत्न किए गए हैं उनका उल्लेख निम्न प्रकार से है[19]

खाद्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षा हस्तक्षेप : खाद्य सुरक्षा परिवारों में असुरक्षित स्थिति में कमी लाने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है। इसलिए जीविका ने सामुदायिक-विक्रय प्रक्रिया के द्वारा खाद्यान्नों और खाद सामग्रियों की जरूरत पूरी करने के लिए स्वयं सहायता समूह सदस्यों को खाद्य सुरक्षा कोष उपलब्ध कराने की पहल की है। मुख्यतः खेती का काम नहीं होने के दौरान स्वयं सहायता समूह सदस्यों को खाद्यान्न की कमी का सामना करना पड़ता है। इस कोष का निर्माण यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि वह कर्ज के लिए अनौपचारिक वित्तीय संस्थानों का शिकार नहीं बन जाएं। स्वयं सहायता समूह सदस्यों को साल में तीन या चार बार अपनी पसंद की खाद सामग्रियां खरीदने के लिए प्रेरित किया जाता है। वर्ष 2019-20 में कुल 3476 ग्राम संगठनों को खाद्य सुरक्षा कोष प्राप्त हुआ और 21000 से भी अधिक ग्राम संगठनों द्वारा खाद्य सामग्रियों की खरीद की गई।

अल्पावास गृह : सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित महिलाओं के पुनर्वास के लिए राज्य सरकार द्वारा राज्य के सभी जिलों में अनाथालय चलाने का निर्णय लिया गया है। इसका संचालन महिला विकास निगम के जरिए किया जा रहा है। प्रत्येक अनाथालय में 25 महिलाओं को आवास उपलब्ध कराया जाता है। इन निवासियों को सुरक्षा-संरक्षा प्रदान की जाती है। इन उत्पीड़ित महिलाओं की क्षमता बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के प्रशिक्षण और उद्यमिता विकास की व्यवस्था की जाती है। अभी 38 स्वीकृत अल्पावास गृहों में से 12 चालू हैं। अभी तक कुल 16858 निबंधित मामलों में से 16799 महिलाओं का पुनर्वास कराया गया है और 59 मामले अभी भी लंबित हैं।

लैंगिक मुख्यधारा में लाने से संबंधित हस्तक्षेप : इस हस्तक्षेप के अंतर्गत बिहार राज्य शिक्षा परिषद से ऑनलाइन माध्यम से कला विषयों की पढ़ाई कर रहे विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या आधारित शिक्षा देने पर फोकस है। परियोजना

से स्मार्टफोन और सस्ती डाटा कनेक्टिविटी की उपलब्धता का लाभ मिलेगा। अभी इस परियोजना का संचालन 18 जिलों के 36 प्रखंडों में किया जा रहा है।

मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजन : इस योजना का लक्ष्य बाल विवाह को हतोत्साहित करने और लड़कियों की उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए गरीब परिवार को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना के अंतर्गत लड़की के परिवार को उसकी शादी के समय 5,000 रूपये की वित्तीय सहायता दी जाती है। इस योजना का लाभ उन लड़कियों को दिया जाता है जिनका विवाह निबंधित हुआ हो और जिनकी परिवारिक आय 60,000 रूपये प्रति वर्ष से अधिक नहीं हो। वर्ष 2019-20 में योजना के लिए 49.75 करोड़ रूपये का बजट प्रावधान किया गया जिसमें से 40.37 करोड़ रूपये खर्च हो चुके थे।

मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना : योजना का मुख्य उद्देश्य भ्रूण हत्या रोकने और लड़कियों के जन्म को बढ़ावा देकर लैंगिक असमानता दूर करना है इस योजना के अंतर्गत जन्म के समय 2000 रूपये और 1 वर्ष पूरा होने तक आधार में नामांकन होने पर 1000 रूपये दिए जाते हैं प्रत्यक्ष लाभांतरण के लिए आधार को माता/पिता अभिभावक के बैंक खातों से जोड़ा जाता है। यह सुविधा हर परिवार के दो लड़कियों के लिए दी जाती है। वर्ष 2019-20 में 43 लाख रुपये का बजट परिव्यय था जिसमें से 42.72 करोड रूपये (99.3 प्रतिशत) व्यय हो गया।

मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना : मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना महिलाएं महिलाओं के सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक सशक्तीकरण की एक व्यापक योजना है। इस योजना के अंतर्गत घरेलू हिंसा और मानव व्यापार की शिकार महिलाओं और किशोरियों को मुफ्त सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सहयोग और कानूनी सहायता उपलब्ध कराई जाती है। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं और बच्चों के लिए भी विशेष विकास योजनाएं हैं, जैसे महिला हेल्पलाइन की स्थापना, संरक्षा गृह, अल्पवास गृह, पालनाघर, स्वयं सहायता समूह का निर्माण, अंतरजातीय विवाह को बढ़ावा देना, पोषण तथा विभिन्न क्षेत्रों में क्षमता निर्माण। वर्ष 2019-20 में इसके लिए 20.46 करोड़ रूपये का बजट परिव्यय था और व्यय भी 20.46 करोड़ रूपये (100 प्रतिशत) था।

सर्व कार्य केंद्र-सह-हेल्पलाइन : महिलाओं का उत्पीड़न से बचाने के लिए महिला विकास निगम ने महिला हेल्पलाइन सह सर्व कार्य केंद्र (वन स्टॉप सेंटर) की शुरुआत की है। राज्य के सभी 38 जिलों में हेल्पलाइन सुविधा के लिए स्वीकृति दी गई है। वहां कोई जरूरतमंद महिला वहां खुद से या किसी सेवा प्रदाता के माध्यम से आकर आवेदन दे सकती है और परामर्श सेवाएं पा सकती है। हेल्पलाइनद द्वारा जरूरत के अनुसार दंडाधिकारी को घरेलू हिंसा की सूचना भी दी जाती है। हेल्पलाइन की परियोजना प्रबंधक को राज्य सरकार द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 के अंतर्गत संरक्षण अधिकारी अधिसूचित किया गया है। राज्य सरकार के निर्णय के आलोक उसे केंद्र सरकार के सर्व कार्य केंद्र में बदल दिया गया है। सामाजिक शक्तिकरण के अंतर्गत दर्ज और निष्पादित मामलों की संख्या मामलों की तालिका 03 में दी गई है।

तालिका 03 में महिला उत्पीड़न से संबंधित दर्ज और निपटाए गए मामलों की संख्या दर्शायी गई है। कुल दर्ज मामलों में सबसे अधिक घरेलू हिंसा के थे और उसके बाद दहेज उत्पीड़न के। उल्लेखनीय है कि 2019-20 में सभी में से 42 प्रतिशत मामले का निपटारा कर दिया गया। पिछले वर्षों के लंबित मामलों के कारण विगत वर्षों में यह प्रतिशत 100 से भी अधिक होता था।

टिप्पणीः तालिका 3 में कोष्टकों में दिए गए आंकड़े कुल दर्ज मामलों में से निष्पादित मामलों का प्रतिशत दर्शाते हैं। कुछ मामलों में निष्पादित मामले विगत वर्षों से ही चलते रहे हैं जिसके कारण निष्पादित मामलों की संख्या दर्ज मामलों से अधिक हैं।

तालिका 03

सामाजिक सशक्तीकरण के अंतर्गत दर्ज और निष्पादित मामलों की संख्या (2017-18 से 2019-20)

मामलों के प्रकार	2017-18		2018-19		2019-20	
	दर्ज़	निष्पादित	दर्ज़	निष्पादित	दर्ज़	निष्पादित
घरेलू हिंसा	4021	4113(102.3)	3985	4418(110.9)	4723	4040(85.5)
दहेज उत्पीड़न	815	698(85.6)	727	772(106.2)	1095	838(76.5)
दहेज हत्या	3	3(100.0)	2	6(300.0)	0	0
दूसरा विवाह	107	99(92.5)	117	152(129.9)	230	138(60.0)
बलात्कार और मानव व्यापार के मामले	3	3(100.0)	12	6(50.0)	4	3(75.0)
अन्य स्थानों पर यौन उत्पीड़न	95	87(91.6)	90	121(134.4)	1	1 100.0)
कार्यस्थल में यौन उत्पीड़न	16	7(43.8)	29	19(65.5)	5	2(40.0)
मोबाइल और सोशल मीडिया	0	0	4	2(50.5)	11	7(63.6)
अन्य	1357	1444(106.4)	1268	1564(123.3)	1468	1160(79.0)
कुल मामले	6417	6454(100.6)	6234	7060(113.2)	7537	6189(82.1)

स्रोत :- बिहार राज्य महिला विकास निगम, बिहार सरकार।

शोध निष्कर्ष : उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि बिहार में महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए राज्य सरकार ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त होना आवश्यक है। इससे न सिर्फ महिलाओं का कल्याण होगा बल्कि इसके साथ-साथ बिहार राज्य का विकास भी होगा। आज आवश्यकता है कि महिलाओं को न केवल कृषि बल्कि उद्योग और सेवा क्षेत्रों में आरक्षण दिया जाए। महिलाओं में उच्च शिक्षा के प्रति जागृति पैदा करने के लिए निःशुल्क उच्च एवं तकनीकी शिक्षा दी जानी चाहिए। साथ ही महिलाओं को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए वित्तीय सहायता की व्यवस्था की जानी चाहिए। आज सरकार महिलाओं के उत्थान, विकास और उन्हें सशक्त बनाने वाले सारे प्रयासों पर बल दे रही है, वैश्वीकरण के इस दौर में महिलाएं हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। महिलाओं अर्थात आधी आबादी का जितना तेजी से विकास होगा उतनी तीव्र गति से राज्य प्रगति, खुशहाली और समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होगा।

सन्दर्भ

1. मोदी, के. एम., 'ग्रामीण महिला रोजगार में स्वयं सहायता समूहों का योगदान', कुरुक्षेत्र, वर्ष 60, अंक 12, अक्टूबर - 2014, पृ. 25
2. कुमार विपिन, 'वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरणः विविध आयाम', रीगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 28
3. शर्मा, प्रेमनारायण एवं विनायक वाणी 'गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तीकरण', भारत बुक सेन्टर, 2011, पृ. 138
4. कौर, 'स्वयं सहायता समूह', परिचय मार्ग दर्शिका स्वशक्ति उत्तर प्रदेश, आई.सी.सी.एम.आर.टी., लखनऊ हेतु विकसित, 2013, पृ. 11 - 15
5. चौधरी 'सशक्तीकरण एवं स्वसहायता समूह की अवधारणा व स्वसहायता समूहों का प्रभाव' अध्याय-3, 2010
6. सोमनाथ सिलवाल, 'लघु एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र में महिला उद्यमी, International Journal of Social Sciences 1(2) Oct-Dec. 2013, pp. 63-65
7. सिह, कुशल व गौतम 'ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु स्वसहायता समूह योजना का महत्व', अध्याय-6, 2007
8. लोकेश 'ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु स्वसहायता समूह योजना का महत्व' अध्याय-6, 2009
9. आर्या रिंकी, 2021, 'महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 23 अंक 1, जनवरी-जून, 2021, पृ. 149
10. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21
11. वही, पृ. 10
12. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21
13. वही, पृ. 50
14. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21
15. रिपोर्ट समाज कल्याण विभाग, भारत सरकार
16. वही, पृ. 36
17. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21
18. वही, पृ. 69
19. वही, पृ. 102